

# रुद्रयामलम् ।

उत्तर-तन्त्रम् ।

पण्डितकुलपतिना वि, ए उपाधिधारिणा  
श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येण  
सम्पादितम्  
तदात्मजाभ्यां श्रीआशुबोध-विद्याभूषण  
तथा  
श्रीनित्यबोध-विद्यारत्नाभ्यां  
प्रतिसंस्कृत्य प्रकाशितम् ।

व ती य सं स्म र ण म् ।

कलिकातामहानगर्याम्,  
वाचस्पत्ययन्त्रे मुद्रितम् ।

इं १८३७ ।

प्रकाशक— { पण्डित-श्रीआशुबोध-विद्याभूषण  
तथा  
पण्डित-श्रीनित्यबोध-विद्यारत्न।

प्राप्तिस्थान— { २ न०, रमानाथ मजुमदार ट्रीट्  
आम्हारट्ट्रीट् पोष्ट-अफिस, कलिकाता।

प्रिण्टर—वि, वि, मुखर्जी।

२ न०, रमानाथ मजुमदार ट्रीट्, कलिकाता।

# सूचीपत्रम् ।

## विषयानुक्रमणी ।

### प्रथमः पटलः ।

| विषयः              | पत्राङ्कः |
|--------------------|-----------|
| उपक्रमणिका         | ... १     |
| विविधसाधनसंग्रहः   | ... १     |
| दिव्यादिभावप्रशंसा | ... १०    |

### द्वितीयः पटलः ।

|              |        |
|--------------|--------|
| कुलाचारविधिः | ... २० |
| पशुभावः      | ... २१ |
| होत्राविधिः  | ... ३१ |

### तृतीयः पटलः ।

|                     |        |
|---------------------|--------|
| होत्राया चक्रविचारः | ... ३४ |
| शिवचक्रम्           | ... ४० |
| विष्णुचक्रम्        | ... ४२ |

### चतुर्थः पटलः ।

|                   |        |
|-------------------|--------|
| ब्रह्मचक्रम्      | ... ४५ |
| ऋषिधनिचक्रम्      | ... ५१ |
| सन्तदोषादिनिर्णयः | ... ५४ |
| रामचक्रम्         | ... ५५ |
| सूर्यचक्रम्       | ... ५८ |

### पञ्चमः पटलः ।

|                |        |
|----------------|--------|
| मन्त्रसंस्कारः | ... ६० |
|----------------|--------|

### षष्ठः पटलः ।

|                    |        |
|--------------------|--------|
| पशुभावपूजकः        | ... ६४ |
| सुषुक्तासाधनम्     | ... ६५ |
| श्रीनेत्रनीस्त्रवः | ... ६६ |

| विषयः | पत्राङ्कः |
|-------|-----------|
|-------|-----------|

|                |        |
|----------------|--------|
| पशुभावप्रशंसा  | ... ६८ |
| भावविद्याविधिः | ... ७० |
| कुमारोत्सवम्   | ... ७१ |

### सप्तमः पटलः ।

|            |        |
|------------|--------|
| कुमारोपूजा | ... ७१ |
|------------|--------|

### अष्टमः पटलः ।

|                 |        |
|-----------------|--------|
| कुमारोजपहोमौ    | ... ८१ |
| कुमारोस्त्रवः   | ... ८२ |
| कुमारोत्तर्याम् | ... ८५ |

### नवमः पटलः ।

|                  |        |
|------------------|--------|
| कुमारो-स्त्रवचम् | ... ८८ |
|------------------|--------|

### दशमः पटलः ।

|                       |        |
|-----------------------|--------|
| कुमार्याः सहस्रनामानि | ... ९२ |
|-----------------------|--------|

### एकादशः पटलः ।

|                |         |
|----------------|---------|
| भाषार्थनिर्णयः | ... १०६ |
| भावत्रितयम्    | ... १०६ |
| चक्रनामानि     | ... ११२ |

### द्वादशः पटलः ।

|              |         |
|--------------|---------|
| कामचक्रम्    | ... ११२ |
| राशिचक्रम्   | ... ११४ |
| षाशाचक्रफलम् | ... ११५ |

### त्रयोदशः पटलः ।

|                    |         |
|--------------------|---------|
| षाशाचक्रसारसङ्केतः | ... ११७ |
|--------------------|---------|

### चतुर्दशः पटलः ।

|                |         |
|----------------|---------|
| वाचनिकचक्रफलम् | ... १२५ |
|----------------|---------|

| विषयः                       | पन्नाङ्कः |
|-----------------------------|-----------|
| <b>पञ्चदशः पटलः ।</b>       |           |
| वेदप्रकरणम्                 | ... १३३   |
| याज्ञिककलत्रवचनम्           | ... १३६   |
| <b>षोडशः पटलः ।</b>         |           |
| आज्ञाचक्रसाधना              | ... १३८   |
| <b>सप्तदशः पटलः ।</b>       |           |
| अथर्ववेदप्रश्नसा            | ... १४२   |
| प्राणायामप्रणाली            | ... १४५   |
| वशिष्टस्य तपस्याप्रसङ्गः    | ... १५१   |
| वशिष्टस्य महाशोने गमनम्     | ... १५२   |
| महाशोनाचारः                 | ... १५३   |
| <b>अष्टादशः पटलः ।</b>      |           |
| कामचक्ररचना                 | ... १५५   |
| <b>एकोनविंशः पटलः ।</b>     |           |
| षट्चक्रभेदः                 | ... १६४   |
| <b>विंशः पटलः ।</b>         |           |
| आज्ञाचक्रान्तर्गत-चक्राणि   | ... १६८   |
| <b>एकविंशः पटलः ।</b>       |           |
| वीरभावस्य साक्षात्प्राप्तम् | ... १७१   |
| <b>द्वाविंशः पटलः ।</b>     |           |
| षट्चक्रनिर्घण्टवचनम्        | ... १८०   |
| योगधारणा                    | ... १८१   |
| योगप्रकारवचनम्              | ... १८२   |
| योगयज्ञवचनम्                | ... १८२   |
| वीरसाधनाविधिविषयः           | ... १८४   |
| ईशवचनम्                     | ... १८८   |

| विषयः                       | पन्नाङ्कः |
|-----------------------------|-----------|
| <b>त्रयोविंशः पटलः ।</b>    |           |
| योगिनां भोजननियमः           | ... १८०   |
| आसननियमः, तद्देहाद्य        | ... १८१   |
| <b>चतुर्विंशः पटलः ।</b>    |           |
| योगसाधना                    | ... १८८   |
| नरासनम्                     | ... २०२   |
| शवसाधना                     | ... २०३   |
| शवसाधनासिद्धिः              | ... २०८   |
| जापकस्य विधिविषयः           | ... २०८   |
| <b>पञ्चविंशः पटलः ।</b>     |           |
| सूक्ष्मचट्टिस्थितिसंज्ञाराः | ... २१०   |
| ब्रह्मसाधनम्                | ... २१३   |
| योगिनां सूक्ष्मतीर्णानि     | ... २१४   |
| योगिनां जपनियमः             | ... २१७   |
| अध्यात्मज्ञानम्             | ... २१८   |
| <b>षड्विंशः पटलः ।</b>      |           |
| षट्चक्रभेदः                 | ... २२१   |
| देव्या वीरध्वेयरूपम्        | ... २२५   |
| योगिनां सूक्ष्मज्ञानम्      | ... २२७   |
| कौलानां सन्ध्या             | ... २२८   |
| कौलतर्पणम्                  | ... २२८   |
| मानसपूजा                    | ... २२९   |
| मानसहोमः                    | ... २३०   |
| पञ्चमकारपूजा                | ... २३१   |
| पञ्चमकारमाहात्म्यम्         | ... २३२   |
| <b>सप्तविंशः पटलः ।</b>     |           |
| प्राणायामवचनम्              | ...       |

|                    |           |
|--------------------|-----------|
| विषयः              | पन्नाङ्कः |
| प्रत्याहारः        | ... २३५   |
| भावमाहात्म्यम्     | ... २३५   |
| धारणा              | ... २३५   |
| ध्यानम्            | ... २३६   |
| समाधिः             | ... २३६   |
| गणमतक्षणम्         | ... २३८   |
| ध्यानलक्ष्यविवरणम् | ... २४०   |

**अष्टाविंशः पटलः ।**

|                     |         |
|---------------------|---------|
| मन्त्रसिद्धिलक्षणम् | ... २४२ |
| भैरवीलक्षणम्        | ... २४४ |
| भैरवीचक्रम्         | ... २४४ |
| भैरवीपूजा           | ... २४७ |
| कन्दवासिनीस्तोत्रम् | ... २४७ |

**एकोनविंशः पटलः ।**

|                 |         |
|-----------------|---------|
| षट्चक्रभेदनियमः | ... २५१ |
| षट्चक्रयोगः     | ... २५२ |
| मनोमहाप्रलयः    | ... २५४ |

**त्रिंशः पटलः ।**

|                 |         |
|-----------------|---------|
| मूलपञ्चभेदनम्   | ... २५५ |
| डाकिनोसाधनम्    | ... २५६ |
| डाकिनोस्तोत्रम् | ... २५७ |

**एकत्रिंशः पटलः ।**

|                 |         |
|-----------------|---------|
| भेदिनीसाधनम्    | ... २५८ |
| भेदिनीस्तोत्रम् | ... २६० |
| केदिनीसाधनम्    | ... २६२ |
| योगिनीस्तोत्रम् | ... २६३ |

**द्वात्रिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| कन्दवासिनीध्यानम् | ... २६५ |
|-------------------|---------|

|                     |           |
|---------------------|-----------|
| विषयः               | पन्नाङ्कः |
| कन्दवासिनीस्तोत्रम् | ... २६६   |

**त्रयस्त्रिंशः पटलः ।**

|                  |         |
|------------------|---------|
| कन्दवासिनीकवचनम् | ... २६८ |
|------------------|---------|

**चतुस्त्रिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| पञ्चस्तरादियोगाः  | ... २७४ |
| विजयासेवनमन्त्राः | ... २७५ |
| नेतीयोगः          | ... २७७ |
| दन्तीयोगः         | ... २७७ |

**पञ्चत्रिंशः पटलः ।**

|             |         |
|-------------|---------|
| धौतौयोगः    | ... २७६ |
| नेत्रलौयोगः | ... २८० |

**षट्त्रिंशः पटलः ।**

|                                     |     |
|-------------------------------------|-----|
| कुण्डलिन्याः अष्टोत्तर-सङ्ख्यनामानि | २८३ |
|-------------------------------------|-----|

**सप्तत्रिंशः पटलः ।**

|                              |         |
|------------------------------|---------|
| स्वाधिष्ठाने श्रीकृष्णसाधनम् | ... २८८ |
|------------------------------|---------|

**अष्टत्रिंशः पटलः ।**

|                            |         |
|----------------------------|---------|
| श्रीकृष्णमन्त्रः           | ... ३०४ |
| नरसिंहमन्त्रः              | ... ३०४ |
| श्रीकृष्णस्य मन्त्रान्तरम् | ... ३०५ |
| श्रीकृष्णध्यानम्           | ... ३०६ |
| श्रीकृष्णपूजा              | ... ३०६ |

**एकोनचत्वारिंशः पटलः ।**

|                    |         |
|--------------------|---------|
| श्रीकृष्णस्तोत्रम् | ... ३०६ |
|--------------------|---------|

**चत्वारिंशः पटलः ।**

|                       |         |
|-----------------------|---------|
| योगस्य दृढतासम्पादनम् | ... ३१३ |
|-----------------------|---------|

**एकचत्वारिंशः पटलः ।**

|                  |         |
|------------------|---------|
| राक्षसीस्तोत्रम् | ... ३१५ |
|------------------|---------|

| विषयः                                 | पत्राङ्कः |
|---------------------------------------|-----------|
| <b>द्विचत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| राकिणोत्पादनम्                        | ... ३२१   |
| राकिणोमन्त्राः                        | ... ३२२   |
| श्रीकृष्ण-राकिणोसहस्रनामानि           | ३२३       |
| <b>त्रिचत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| योगरहस्यम्                            | ... ३२७   |
| <b>चतुश्चत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| षट्चक्ररहस्यम्                        | ... ३४१   |
| <b>पञ्चचत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| मणिपूरचक्रभेदनम्                      | ... ३४७   |
| साकिणोशक्तिस्तोत्रम्                  | ... ३४८   |
| <b>षट्चत्वारिंशः पटलः ।</b>           |           |
| क्रियाकालादिकथनम्                     | ... ३५०   |
| मणिपूरचक्रसाधनम्                      | ... ३५३   |
| <b>सप्तचत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| रुद्राणोक्तोत्रम्                     | ... ३३६   |
| <b>अष्टचत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| रुद्राख्याः रुद्राण्य च मन्त्रोच्चारः | ३६५       |
| रुद्राणो-रुद्रयोः पूजाप्रकरणम्        | ३६६       |
| रुद्राण्य एकपञ्चाशद्नामानि            | ... ३६८   |
| रुद्राणोनामानि                        | ... ३६९   |
| ऋष्यादिन्यासः                         | ... ३७३   |
| श्रीकण्ठन्यासः                        | ... ३७५   |
| पञ्चमूर्तिन्यासः                      | ... ३७५   |
| कलान्यासः                             | ... ३७६   |
| पञ्चमन्त्रन्यासः                      | ... ३७९   |
| सत्युद्भवविधिः                        | ... ३८३   |

| विषयः                        | पत्राङ्कः |
|------------------------------|-----------|
| <b>द्विचत्वारिंशः पटलः ।</b> |           |
| पीठन्यासः                    | ... ३८४   |
| सत्युद्भवयज्ञव्यादिन्यासः    | ... ३८५   |
| हराङ्गन्यासः                 | ... ३८५   |
| सत्युद्भवध्यानम्             | ... ३८६   |
| सत्युद्भवपूजा                | ... ३८६   |
| <b>एकीनपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| सत्युद्भव-स्तोत्रम्          | ... ३८७   |
| <b>द्विपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| साकिणोस्तोत्रम्              | ... ३९०   |
| <b>एकपञ्चाशः पटलः ।</b>      |           |
| विविधसिद्धिस्वात्मप्रसङ्गः   | ३९५       |
| योगाङ्गशुद्धौ पञ्चासवविधानम् | ३९७       |
| पञ्चासवविधानम्               | ... ३९७   |
| विजयाशोचने विशेषः            | ... ३९८   |
| <b>द्विपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| साकिणोस्तोत्रम्              | ... ४०१   |
| <b>त्रिपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| पञ्चासवविधानम्               | ... ४११   |
| पञ्चासवविधानम्               | ... ४११   |
| पञ्चासवविधानम्               | ... ४१२   |
| पञ्चासवविधानम्               | ... ४१२   |
| <b>चतुःपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| मणिपूरचक्रसाधनम्             | ... ४१८   |
| मणिपूरमन्त्रदेवताध्यानम्     | ... ४१९   |
| <b>चतुःपञ्चाशः पटलः ।</b>    |           |
| बनरापञ्चकसाधनम्              | ... ४२१   |
| नेतीक्रिया                   | ... ४२२   |
| शौतोक्रिया                   | ... ४२३   |
| नेत्रलोक्रिया                | ... ४२४   |
| हस्तोक्रिया                  | ... ४२५   |

|                    |           |
|--------------------|-----------|
| विषयः              | पन्नाङ्कः |
| प्रत्याहारः        | ... २३५   |
| भावनाहातम्यम्      | ... २३५   |
| धारणा              | ... २३५   |
| ध्यानम्            | ... २३६   |
| समाधिः             | ... २३६   |
| गणमतकल्पनम्        | ... २३८   |
| ध्यानलक्ष्यविवरणम् | ... २४०   |

**अष्टाविंशः पटलः ।**

|                     |         |
|---------------------|---------|
| मन्त्रसिद्धिलक्षणम् | ... २४२ |
| भैरवीलक्षणम्        | ... २४४ |
| भैरवीचक्रम्         | ... २४४ |
| भैरवीपूजा           | ... २४७ |
| कन्दवासिनोस्तीव्रम् | ... २४७ |

**एकोनविंशः पटलः ।**

|                  |         |
|------------------|---------|
| टचक्रभेदनिघण्टुः | ... २५१ |
| योगः             | ... २५२ |
| ज्ञानः           | ... २५४ |

**त्रिंशः पटलः ।**

|                 |         |
|-----------------|---------|
| शिवभेदनम्       | ... २५५ |
| डाकिनोसाधनम्    | ... २५६ |
| डाकिनोस्तीव्रम् | ... २५७ |

**एकत्रिंशः पटलः ।**

|                 |         |
|-----------------|---------|
| भेदिनीसाधनम्    | ... २५८ |
| भेदिनीस्तीव्रम् | ... २६० |
| केदिनीसाधनम्    | ... २६२ |
| योगिनोस्तीव्रम् | ... २६२ |

**द्वात्रिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| कन्दवासिनोध्यानम् | ... २६५ |
|-------------------|---------|

|                     |           |
|---------------------|-----------|
| विषयः               | पन्नाङ्कः |
| कन्दवासिनोस्तीव्रम् | ... २६६   |

**त्रयस्त्रिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| कन्दवासिनोक्वचनम् | ... २६६ |
|-------------------|---------|

**चतुस्त्रिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| पञ्चस्तरादियोगाः  | ... २७४ |
| विजयासेवनमन्त्राः | ... २७५ |
| नेतीयोगः          | ... २७७ |
| दलीयोगः           | ... २७७ |

**पञ्चत्रिंशः पटलः ।**

|             |         |
|-------------|---------|
| धीतीयोगः    | ... २७८ |
| नेत्रलोयोगः | ... २८० |

**षट्त्रिंशः पटलः ।**

|                                    |     |
|------------------------------------|-----|
| कुण्डलिन्याः अष्टोत्तर-सहस्रनामानि | २८३ |
|------------------------------------|-----|

**सप्तत्रिंशः पटलः ।**

|                                |         |
|--------------------------------|---------|
| स्त्राधिष्ठाने श्रीकृष्णसाधनम् | ... २८६ |
|--------------------------------|---------|

**अष्टत्रिंशः पटलः ।**

|                            |         |
|----------------------------|---------|
| श्रीकृष्णमन्त्रः           | ... २८४ |
| गरसिंहमन्त्रः              | ... २८४ |
| श्रीकृष्णस्य मन्त्रान्तरम् | ... २८५ |
| श्रीकृष्णध्यानम्           | ... २८६ |
| श्रीकृष्णपूजा              | ... २८६ |

**एकोनचत्वारिंशः पटलः ।**

|                    |         |
|--------------------|---------|
| श्रीकृष्णस्तीव्रम् | ... २९८ |
|--------------------|---------|

**चत्वारिंशः पटलः ।**

|                       |         |
|-----------------------|---------|
| योगस्य दृढतासम्पादनम् | ... ३१३ |
|-----------------------|---------|

**एकचत्वारिंशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| रात्रिषोस्तीव्रम् | ... ३१४ |
|-------------------|---------|

| विषयः                                | पद्याङ्कः |
|--------------------------------------|-----------|
| <b>द्विचत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| राक्षिणीसाधनम्                       | ... ३२१   |
| राक्षिणीमन्त्राः                     | ... ३२२   |
| श्रीकृष्ण-राक्षिणीमन्त्रनामानि       | ३२३       |
| <b>त्रिचत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| योगरहस्यम्                           | ... ३३७   |
| <b>चतुश्चत्वारिंशः पटलः ।</b>        |           |
| घट्चक्ररहस्यम्                       | ... ३४१   |
| <b>पञ्चचत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| मणिपूरचक्रभेदनम्                     | ... ३४७   |
| लाङ्गिणीशक्तिस्तोत्रम्               | ... ३४८   |
| <b>षट्चत्वारिंशः पटलः ।</b>          |           |
| क्रियाकालाटिकसनम्                    | ... ३५०   |
| मणिपूरचक्रसाधनम्                     | ... ३५३   |
| <b>सप्तचत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| रुद्राष्टोत्तोरम्                    | ... ३५६   |
| <b>अष्टचत्वारिंशः पटलः ।</b>         |           |
| रुद्राष्टाः रुद्रस्य च मन्त्रोच्चारः | ३६५       |
| रुद्राष्टो-रुद्रयोः पूजाप्रकारस्यम्  | ३६६       |
| रुद्रस्य एकपञ्चाशद्नामानि            | ... ३६८   |
| रुद्राष्टोनामानि                     | ... ३६९   |
| ऋष्यादिन्यासः                        | ... ३७३   |
| श्रीकण्ठन्यासः                       | ३७५       |
| पञ्चमूर्तिन्यासः                     | ... ३७५   |
| कालान्यासः                           | ... ३७६   |
| पञ्चमन्त्रन्यासः                     | ... ३७९   |
| ऋष्युच्चयविधिः                       | ... ३८३   |

| विषयः                             | पद्याङ्कः |
|-----------------------------------|-----------|
| पीठन्यासः                         | ... ३८४   |
| ऋष्युच्चयनृत्यादिन्यासः           | ... ३८५   |
| कराङ्गन्यासः                      | ... ३८५   |
| ऋष्युच्चयध्यानम्                  | ... ३८६   |
| ऋष्युच्चयपूजा                     | ... ३८६   |
| <b>एकीनपञ्चाशः पटलः ।</b>         |           |
| ऋष्युच्चय-स्तोत्रम्               | ... ३८७   |
| <b>षष्ठाशः पटलः ।</b>             |           |
| लाङ्गिणीस्तोत्रम्                 | ... ३९०   |
| <b>एकपञ्चाशः पटलः ।</b>           |           |
| विविधसिद्धिलाभप्रसङ्गः            | ... ३९५   |
| योगाङ्गशुद्धौ पञ्चासवविधानम्      | ३९७       |
| पञ्चासवशोधनम्                     | ... ३९७   |
| विजयाशोधने विशेषः                 | ... ३९८   |
| <b>द्विपञ्चाशः पटलः ।</b>         |           |
| लाङ्गिणीमन्त्राऋष्युच्चयस्तोत्रम् |           |
| आसवशुद्धेः परिमाणान्तरम्          | ... ३९९   |
| आसवशुद्धेः न्तान्तरम्             | ...       |
| आसवशुद्धेः कोनान्तरम्             | ...       |
| <b>त्रिपञ्चाशः पटलः ।</b>         |           |
| मणिपूरी मन्त्रचैतन्यम्            | ... ४१८   |
| मणिपूरमन्त्रदेवताध्यानम्          | ... ४१९   |
| <b>चतुःपञ्चाशः पटलः ।</b>         |           |
| अनुरापञ्चकसाधनम्                  | ... ४२१   |
| नेतीक्रिया                        | ... ४२२   |
| धीतीक्रिया                        | ... ४२३   |
| नेत्रलोक्रिया                     | ... ४२४   |
| दन्तीक्रिया                       | ... ४२५   |



|                       |           |
|-----------------------|-----------|
| विषयः                 | पन्नाङ्कः |
| मातीशालनक्रिया        | ... ४२४   |
| ज्ञानक्रिया           | ... ४२५   |
| सन्ध्याबन्धनादिक्रिया | ... ४२६   |

**पञ्चपञ्चाशः पटलः ।**

|                   |         |
|-------------------|---------|
| पञ्चासवशोधनक्रिया | ... ४२६ |
| अनराशोधनम्        | ... ४२८ |

**षट्पञ्चाशः पटलः ।**

|           |         |
|-----------|---------|
| कायवश्यम् | ... ४२८ |
|-----------|---------|

**सप्तपञ्चाशः पटलः ।**

|                              |         |
|------------------------------|---------|
| हृत्पद्मादीनां प्रकारप्रश्नः | ... ४३१ |
| हृत्पद्मध्यानम्              | ... ४३२ |
| अनाहतपद्मविन्यासः            | ... ४३३ |

( विषयोऽयं पूर्वप्रश्नायां विश्वशुक्लादयो  
निवेशनीयः )

**अष्टपञ्चाशः पटलः ।**

|            |         |
|------------|---------|
| काकिनोपूजा | ... ४३८ |
|------------|---------|

**एकोनषष्टितमः पटलः ।**

|                |         |
|----------------|---------|
| काकिनोप्याहारः | ... ४४२ |
| काकिनोप्यानम्  | ... ४४३ |

**दशष्टितमः पटलः ।**

|                        |         |
|------------------------|---------|
| काकिनोक्षोत्रम्        | ... ४४४ |
| कुण्डलीग्रामनविज्ञानम् | ... ४४७ |

|                         |           |
|-------------------------|-----------|
| विषयः                   | पन्नाङ्कः |
| कण्ठपद्मादिभेदविज्ञानम् | ... ४४८   |
| कण्ठपद्मादिबन्धध्यानम्  | ... ४४९   |
| विन्दुस्थितिकरणम्       | ... ४५२   |

**एकषष्टितमः पटलः ।**

|                     |         |
|---------------------|---------|
| शाकिनोप्यानम्       | ... ४५४ |
| शाकिनोमन्त्रोच्चारः | ... ४५४ |

**द्वादशष्टितमः पटलः ।**

|                    |         |
|--------------------|---------|
| शाकिनोपूजा         | ... ४५७ |
| शाकिनोप्यानान्तरम् | ... ४६० |

|                 |         |
|-----------------|---------|
| भूतशुद्धिः      | ... ४६० |
| प्राणप्रतिष्ठा  | ... ४६१ |
| पूजाप्रारम्भः   | ... ४६१ |
| प्रथमप्रदक्षिणे | ... ४६६ |

**त्रिंशष्टितमः पटलः ।**

|             |         |
|-------------|---------|
| साधनरहस्यम् | ... ४७० |
|-------------|---------|

**चतुःषष्टितमः पटलः ।**

|                       |         |
|-----------------------|---------|
| काकिनोत्तररहस्यनामानि | ... ४७३ |
|-----------------------|---------|

**पञ्चषष्टितमः पटलः ।**

|                        |         |
|------------------------|---------|
| काकिनोत्तररहस्यान्तरम् | ... ४८३ |
|------------------------|---------|

**षट्षष्टितमः पटलः ।**

|                        |         |
|------------------------|---------|
| काकिनोत्तररहस्यान्तरम् | ... ४८९ |
|------------------------|---------|

**सूचीपत्रं समाप्तम् ।**

# रुद्रयामलम् ।

उत्तरतन्त्रम् ।

प्रथमः पटलः ।

उपक्रमणिका ।

भैरव उवाच ।—

पराश्रीपरमेशानी-वदनाभोजनिःसृतम् ।  
श्रीयामलं महातन्त्रं स्वतन्त्रं विष्णुयामलम् ॥ १ ॥  
शक्तियामलमाख्यातं ब्रह्मणः सुतिहेतुना ।  
ब्रह्मयामलवेदाङ्गं सर्वञ्च कथितं प्रिये ! ॥ २ ॥  
इदानीमुत्तराकाण्डं वद श्रीरुद्रयामलम् ।  
यदि भाग्यवशाद्देवि ! तव श्रीमुखपङ्कजे ॥ ३ ॥  
यानि यानि स्वतन्त्राणि संदत्तानि महीतले ।  
प्रकाशय महातन्त्रं नान्यतन्त्रेषु ढसिमान् ॥ ४ ॥  
सर्ववेदान्तवेदेषु कथितव्यं ततःपरम् ।  
तदा ते भक्तवर्गाणां सिद्धिः सञ्चरते ध्रुवम् ।  
यदि भक्ते दया भद्रे ! वद त्रिपुरसुन्दरि ! ॥ ५ ॥  
महाभैरववाक्यञ्च पङ्कजायतलाचना ।  
श्रुत्वोवाच महाकाली कथयामासं भैरवम् ॥ ६ ॥  
विविधसाधनसंग्रहः ।

भैरव्युवाच ।—

शम्भो ! महात्मदर्पण ! कामहीनकुलाकुल ! ।  
चन्द्रमण्डलशीर्षाच्च ! हलाहलनिषेवक ! ॥ ७ ॥

अद्वितीयाघोरमूर्त्त ! रक्तवर्णशिश्वोज्ज्वल ! ।  
 महाऋषिपते ! शिष्य ! सर्वेषाञ्च नमो नमः ॥ ८ ॥  
 सर्वेषां प्राणमथन ! शृणु आनन्दभैरव ! ।  
 आदौ बालाभैरवीणां साधनं षट्कलात्मकम् ॥ ९ ॥  
 पश्चात् कुमारीललिता-साधनं परमाद्भुतम् ।  
 कुरुकुलाविप्रचित्ता-साधनं शक्तिसाधनम् ॥ १० ॥  
 योगिनीखेचरीयक्ष-कन्यकासाधनं ततः ।  
 उन्मत्तभैरवीविद्या-कालीविद्यादिसाधनम् ॥ ११ ॥  
 पञ्चमुद्रासाधनञ्च पञ्चबाणादिसाधनम् ।  
 प्रत्यङ्गिरासाधनञ्च कलौ साक्षात्करं परम् ॥ १२ ॥  
 हरितालिकास्वर्णविद्या-धूम्रविद्यादिसाधनम् ।  
 आकाशगङ्गाविबिध-कन्यकासाधनं ततः ॥ १३ ॥  
 भ्रूलतासाधनं सिद्ध-साधनं तदनन्तरम् ।  
 उल्काविद्यासाधनञ्च पञ्चतारादिसाधनम् ॥ १४ ॥  
 अपराजितापुरुङ्गता-चामुण्डासाधनं ततः ।  
 कालिकासाधनं कौल-साधनं धनसाधनम् ॥ १५ ॥  
 चर्चिकासाधनं पश्चात् घर्घरासाधनं ततः ।  
 सम्पत्प्रदा सप्तकूटा-साधनं चेटीसाधनम् ॥ १६ ॥  
 शक्तिकूटादिषट्कूटा-नवकूटादिसाधनम् ।  
 कनकाभाकाञ्चनाभा-वङ्गराभासाधनं ततः ॥ १७ ॥  
 वज्रकूटापञ्चकूटा-सकलासाधनं ततः ।  
 तारिणीसाधनं पश्चात् षोडशीसाधनं स्मृतम् ॥ १८ ॥  
 किन्नाद्युग्रचण्डाद्या-साधनं सुमनोहरम् ।  
 उल्कामुखीरक्तमुखी-साधनं वीरसाधनम् ॥ १९ ॥  
 नानाविधाननिर्माण-श्रवसाधनमेव च ।  
 कृत्वा देवीसाधनञ्च कृत्वाह साधनं ततः ॥ २० ॥

नक्षत्रविद्यापटलं कालोपटलमेव च ।  
 श्मशानकालिकादेवी-साधनं भूतसाधनम् ॥ २१ ॥  
 रतिक्रीडासाधनञ्च सुन्दरीसाधनं तथा ।  
 महामालासाधनञ्च महामायादिसाधनम् ॥ २२ ॥  
 भद्रकालीसाधनञ्च नीलासाधनमेव च ।  
 भुवनेश्रीसाधनञ्च दुर्गासाधनमेव च ॥ २३ ॥  
 वाराहो गारुडो चान्द्रौ-साधनं परमाद्भुतम् ।  
 ब्रह्माणोसाधनं पञ्चात् हसोसाधनमुत्तमम् ॥ २४ ॥  
 माहेश्वरीसाधनञ्च कौमारोसाधनं तथा ।  
 वैष्णवीसाधनं धात्री-धनदारतिसाधनम् ॥ २५ ॥  
 पञ्चाम्नावलिपूर्णास्या नारासिंही-सुसाधनम् ।  
 कालिन्दोरुक्लिणोविद्या-राधाविद्यादिसाधनम् ॥ २६ ॥  
 गोपीश्वरोपद्मनेत्रा-पद्ममालादिसाधनम् ।  
 मुण्डमालासाधनञ्च भृङ्गारोसाधनं ततः ॥ २७ ॥  
 सकलाकर्षिणीविद्या-कपालिन्यादिसाधनम् ।  
 गुह्यकालीसाधनञ्च वगलामुखीसाधनम् ॥ २८ ॥  
 महाबालासाधनञ्च कलावत्यादिसाधनम् ।  
 कुलजाकलिकाकक्षा-कुक्कुटोसाधनं महत् ॥ २९ ॥  
 चिञ्चादेवीसाधनञ्च शङ्करोगूढसाधनम् ।  
 प्रफुल्लजमुखीविद्या-काकिनोसाधनं ततः ॥ ३० ॥  
 कुंजकासाधनं नित्या सरस्वत्यादिसाधनम् ।  
 भूर्लखा-शशिमकुटा-उग्रकाल्यादिसाधनम् ॥ ३१ ॥  
 मणिहोपेश्वरोमाह-साधनं यक्षसाधनम् ।  
 केतकोकमलाकान्तिप्रदाभेद्यादिसाधनम् ॥ ३२ ॥  
 वागीश्वरी-महाविद्या-अन्नपूर्णादिसाधनम् ।  
 ब्रह्मदण्डारक्तमयी-मन्वारीसाधनं तथा ॥ ३३ ॥

हस्तिनीहस्तिकर्णाद्या-मातङ्गोसाधनं ततः ।  
 परानन्दानन्दमयो-साधनं गतिसाधनम् ॥ ३४ ॥  
 कामेश्वरीमहालज्जा-ज्वालिनीसाधनं वसोः ।  
 गौरीवेतालकङ्काली-वासवीसाधनं तथा ॥ ३५ ॥  
 चन्द्रास्यासूर्यकिरणा-रटन्तीसाधनं ततः ।  
 किङ्किनीपावनीविद्या भ्रवधूतेश्वरीति च ॥ ३६ ॥  
 एतासां सिद्धविद्यानां साधनाद्बुद्ध एव सः ।  
 अलकाकालियुगस्था-शक्तिटङ्करसाधनम् ॥ ३७ ॥  
 हरिणीमाहिनीक्षिप्रा-दृष्ट्यादिसाधनं तथा ।  
 अट्टहासा-घोरनादा-महामेघादिसाधनम् ॥ ३८ ॥  
 वल्लरीकौरविष्णादि-साधनं परमाद्भुतम् ।  
 रङ्गिणीसाधनं पश्चात् नन्दकन्यादिसाधनम् ॥ ३९ ॥  
 मन्दिरासाधनं कात्यायनीसाधनमेव च ।  
 रजनोराजतौघोना-साधनं तालसाधनम् ॥ ४० ॥  
 पादुकासाधनं चिन्ता-साधनं रविसाधनम् ।  
 मुनिनाथेश्वरीशान्तिवल्लभासाधनं तथा ॥ ४१ ॥  
 मदिरासाधनं वीरभद्रासाधनमेव हि ।  
 मुण्डालीकलिनीदैत्यदंशिनीसाधनं ततः ॥ ४२ ॥  
 प्रविष्टवर्णालक्ष्मीमा-मीनादिसाधनं महत् ।  
 फेत्कारीसाधनं भक्तातकौसाधनमद्भुतम् ॥ ४३ ॥  
 उड्डीयानेश्वरीपूर्णा-गिरिजासाधनं तथा ।  
 सौकरीराजवशिनी-दौर्घजङ्घादिसाधनम् ॥ ४४ ॥  
 अयोध्यापूजिता-देवी-द्राविणोसाधनाद्भुतम् ।  
 ज्वालामुखीसाधनञ्च कृष्णजिह्वादिसाधनम् ॥ ४५ ॥  
 पञ्चवक्त्रप्रियाविद्याऽनन्तविद्यादिसाधनम् ।  
 श्रीविद्याभुवनेशानी-साधनं कायसाधनम् ॥ ४६ ॥

रक्तमालामहाचण्डी-महाज्वालादिसाधनम् ।  
 प्रक्षिप्तामन्त्रिकाकामभूजिताभक्तिसाधनम् ॥ ४७ ॥  
 श्वामस्थावायवौप्राप्ता-लेलिहानादिसाधनम् ।  
 भैरवीललितापृष्ठी-वाटुकोसाधनं तथा ॥ ४८ ॥  
 अगम्या-आकुलीमीलीन्द्राञ्जनमन्त्रसाधनम् ।  
 कुलावतौकुलक्षिप्ता-रतिचीनादिसाधनम् ॥ ४९ ॥  
 शिवाक्रोडादितरुणी-नायिकामन्त्रसाधनम् ।  
 साधनं शैलवासिन्या अकस्मात् सिद्धिवर्द्धनम् ॥ ५० ॥  
 मन्त्रयन्त्रस्त्रतन्त्रादि-पूज्यमानाः परात्पराः ।  
 एताः सर्वाः कालियुगे कालिका हरकोमलाः ॥  
 मन्त्राद्या येन सिध्यन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५१ ॥  
 महाकाल ! शिवानन्द ! परमानन्दपारग ! ।  
 भक्तानामनुरागेण विद्यारत्नं पुनः शृणु ॥ ५२ ॥  
 आदौ वैष्णवदेवस्य मन्त्राणा नित्यसाधनम् ।  
 ततस्ते मङ्गलं मन्त्र-साधनं परमाद्भुतम् ॥ ५३ ॥  
 अकस्माद्दिहिता सिद्धिर्येन सिध्यति भूतले ॥ ५४ ॥  
 बालाभैरवयोगेन्द्र-साधनं शिवसाधनम् ।  
 महाकालसाधनञ्च तथा रामेश्वरस्य च ॥ ५५ ॥  
 अघोरमूर्ते ! रमणा-साधनं शृणु यत्नतः ।  
 क्रोधराज ! भूतराज ! एकचक्रादिसाधनम् ॥ ५६ ॥  
 गिरीन्द्रसाधनं पश्चात् कुलनाथस्य साधनम् ।  
 वटुकेशादिश्रीकण्ठेशादिसाधनमेव च ॥ ५७ ॥  
 सृत्युञ्जयस्य रौद्रस्य कालान्तकहरस्य च ।  
 उन्नतभैरवस्यापि तथा पञ्चास्यकस्य च ॥ ५८ ॥  
 कैलासेशस्य शम्भोश्च तथा शूलिन एव च ।  
 भार्गवेशस्य सर्वस्य महाकालस्य साधनम् ॥ ५९ ॥

सुरान्तकस्य पूर्णस्य तथा देवस्य शङ्कर ! ।  
 हरिद्रागणनाथस्य वरदेश्वरमालिनः ॥ ६० ॥  
 ऊर्ध्वकेशस्य धूम्रस्य जटिलस्यापि साधनम् ।  
 आनन्दभैरवस्यापि बाणनाथस्य साधनम् ॥ ६१ ॥  
 करीन्द्रस्य शुभाङ्गस्य हिलोत्तमर्दकस्य च ।  
 पुष्पनाथेश्वरस्यापि वृषनाथस्य साधनम् ॥ ६२ ॥  
 कापिलेशस्य रुद्रस्य तथा पिङ्गाक्षकस्य च ।  
 दिगम्बरस्य सूक्ष्मस्य उपेन्द्रपूजितस्य च ॥ ६३ ॥  
 अवधूतेश्वरस्यापि अष्टवसोश्च साधनम् ।  
 अष्टमूर्त्तः कालमूर्त्तेश्चन्द्रशेखरसाधनम् ॥ ६४ ॥  
 क्रमुकस्यापि घोरस्य कुवेगराधितस्य च ।  
 त्रिपुरान्तकमन्त्रस्य कमलाक्षस्य साधनम् ॥ ६५ ॥  
 इत्यादि भिन्नमन्त्राणां मन्त्रार्थं विविधं मुदा ।  
 उदितं तद्विशेषेण सुविस्तार्य शृणुष्व तत् ॥ ६६ ॥  
 इन्द्रादिदेवताः सर्वा येन सिध्यन्ति भूतले ।  
 तत्प्रकारं महादेव ! सानन्दमवधारय ॥ ६७ ॥  
 उपविद्यासाधनञ्च मन्त्राणि विविधानि च ।  
 नानाकर्माणि धर्माणि षट्कर्मसाधनानि च ॥ ६८ ॥  
 श्रीरामसाधनं यक्ष-साधनं योगसाधनम् ।  
 सर्वविद्यासाधनञ्च राजज्वालादिसाधनम् ॥ ६९ ॥  
 मन्त्रसिद्धिप्रकारश्च हनूमत्साधनादिकम् ।  
 विषज्वालासाधनञ्च पाताललोकसाधनम् ॥ ७० ॥  
 भूतलिपिप्रकारश्च तत्तत्साधनमेव च ।  
 नवकन्यासाधनञ्च अष्टसिद्धिप्रकारकम् ॥ ७१ ॥  
 आसनानि च अङ्गानि साधनानि बहूनि च ।  
 कात्यायनीसाधनानि चैटीसाधनमेव च ॥ ७२ ॥

कृष्णमार्जारसिद्धिश्च खड्गसिद्धिस्ततःपरम् ।  
 पादुकाजङ्घसिद्धिश्च निजजिह्वाटिसाधनम् ॥ ७३ ॥  
 संस्कारगुटिकासिद्धिः खेचरौसिद्धिरेव च ।  
 भूप्रवेशप्रकारत्वं नित्यतुङ्गाटिसाधनम् ॥ ७४ ॥  
 स्तम्भनं दारु(र)णं पञ्चाटाकर्षणं मुनेरपि ।  
 नानाविधानि देवेश ! औषधादीनि यानि च ॥ ७५ ॥  
 हरितालादिसिद्धिश्च रसपारदसाधनम् ।  
 नानारससमुद्भूतं रसभस्माटिसाधनम् ॥ ७६ ॥  
 वृद्धस्य तरुणाकार-साधनं परमाद्भुतम् ।  
 वैजयन्तिसाधनञ्च चरित्रं वासकस्य च ॥ ७७ ॥  
 शिवाचरित्रमश्वस्य चरित्रं वायसस्य च ।  
 कुमारीणां प्रकारन्तु वज्राणां वारणं तथा ॥ ७८ ॥  
 सम्पत्तिसाधनं देश-साधनं कालसाधनम् ।  
 गुरुपूजाविधानञ्च गुरुसन्तोषसाधनम् ॥ ७९ ॥  
 निजदेवाराधनञ्च निजसाधनमेव च ।  
 वारुणीपैष्टिकौगौडी-कैतकीमाध्वीसाधनम् ॥ ८० ॥  
 स्व(स)देहगमनं स्वर्गं मर्त्यामर्त्यैश्च दुर्लभम् ।  
 शरीरवर्द्धनञ्चैव कृष्णभावस्य साधनम् ॥ ८१ ॥  
 नयनाकर्षणञ्चैव कालसर्पस्य दर्शनम् ।  
 रणक्षोभप्रकारञ्च पञ्चेन्द्रियनिवारणम् ॥ ८२ ॥  
 योगविद्यासाधनञ्च भक्तप्रस्थनिरूपणम् ।  
 चान्द्रायणव्रतञ्चैव शृणु तत् योगसिद्धये ॥ ८३ ॥  
 यामलाग्रे न शंसन्ति यानि सर्वाणि कानि च ।  
 ब्रह्माण्डे यानि वस्तूनि सर्वत्र दुर्लभं शिव ! ॥ ८४ ॥  
 येऽभ्यसन्ति महातन्त्रं बालाहा यन्त्रतोऽपि वा ।  
 यामलं मम वक्त्राभोरुद्धसुन्दरसम्भवम् ॥ ८५ ॥



अतिगुह्यं महागुह्यं शब्दगुह्यं निराकुलम् ।  
 तानासिद्धिसमुद्राणां गृहं योगमयं शुभम् ॥ ८६ ॥  
 शास्त्रजालस्य सीरं हि नानामन्त्रमयं प्रियम् ।  
 वाराणसीपुरपतेः सदामोदसुखास्पदम् ॥ ८७ ॥  
 सरस्वतीदेवतं यत् कालीषु शिखरे वृतम् ।  
 महामोक्षं द्वारमोक्षं सर्वसङ्केतशोभितम् ॥ ८८ ॥  
 वाञ्छाकल्पद्रुमं तन्त्रं शिवसंस्कारसंस्कृतम् ।  
 अप्रकाश्यं क्रियासारं सहस्रस्तुतिराजितम् ॥ ८९ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम सहस्रनाममङ्गलम् ।  
 नामाद्रव्यसाधनादि-विष्टताञ्जनरञ्जितम् ॥ ९० ॥  
 कालीप्रत्यक्षकथनं कालीषोढादिसंपुटम् ।  
 महाचमत्कारकरं स्थितिसंहारपालकम् ॥ ९१ ॥  
 अष्टादशप्रकारश्च षोढायाः सौख्यमुक्तये ॥  
 ये जानन्ति महाकाल ! यामलं कलिपावनम् ॥ ९२ ॥  
 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं करे तस्य न संशयः ।  
 तत्प्रकारमहं वक्ष्ये निगमागममङ्गलम् ॥ ९३ ॥  
 यस्माद्द्रो भवेज्ज्ञानी नानातन्त्रार्थपारगः ।  
 यामिनौविहितं कर्म कुलतन्त्राभिसाधनम् ॥ ९४ ॥  
 महावीरहितं यस्मात् पञ्चतत्त्वस्वरूपकम् ।  
 लङ्घनं नास्ति मे नाथ ! अस्मिन् तन्त्रे सुगोपनम् ॥ ९५ ॥  
 ततो यामलमाख्यातं चन्द्रशेखर ! शङ्कर ! ।  
 रुद्राच्च साधनोत्कृष्टं शतयागफलप्रदम् ॥ ९६ ॥  
 मनःसन्तोषविपुलं यामलं परिकीर्तितम् ।  
 वटुकादिभैरवाणां ब्राह्मीदेव्याश्च साधनम् ॥ ९७ ॥  
 जाम्बूनदलताकोटि-हेमदासाधनं यतः ।  
 मनसासाधनं यत्र लङ्कालक्ष्मीप्रसाधनम् ॥ ९८ ॥

देवतानाञ्च कवच नानाध्यानव्रतं मद्भत् ।  
 अन्तर्यागविधानान कलिकालफलानि च ॥ ९९ ॥  
 भ्रान्तिर्यत्र प्रभाकारं प्रास्वित्तविमर्षणम् ।  
 पटलं त्रिंशता व्याप्तं ये पठन्ति निरन्तरम् ॥ १०० ॥  
 अवश्यं सिद्धिमाप्नोति यत् यदिच्छन्ति भूतले ।  
 कर्मणा मनसा वाचा मद्वातन्त्रस्य साधनम् ॥ १०१ ॥  
 करोति कमलानाथ ! करपद्मनिषेवितम् ।  
 ज्ञात्वा सर्वधरं तन्त्रं सम्पूर्णं लोकमण्डले ॥ १०२ ॥  
 प्राप्नोति साधकः सिद्धिं मासादेव न संशयः ।  
 नानाचक्रस्य माहात्म्यं नानाङ्गमण्डलावृतम् ॥ १०३ ॥  
 सर्वज्ञसिद्धिशतकं खण्डकालीकुलालयम् ।  
 तरुणादित्यसङ्काशं वनमालाविभूषितम् ॥ १०४ ॥  
 दैवतं परमं हंसं कालकूटाशिनं प्रभुम् ।  
 आदौ ध्यात्वा पूजयित्वा नमस्कुर्यात् कुलेश्वरम् ॥ १०५ ॥  
 प्रथमारुणसङ्काशं रत्नालङ्कारभूषितम् ।  
 वरदं वारुणीमत्तं परहंसं नमाम्यहम् ॥ १०६ ॥

भैरव उवाच ।—

यदि न पठ्यते तन्त्रं यामलं सर्वशङ्करम् ।  
 तदा केन प्रकारेण साधकः सिद्धिभाग् भवेत् ॥ १०७ ॥  
 केचिच्च बुद्धिहीनाश्च मेधाहीनाश्च ये जनाः ।  
 मन्दभाग्याश्च धूर्त्ताश्च मूढाः सर्वापदावृताः ॥ १०८ ॥  
 प्राप्नुवन्ति कथं सिद्धिं दया जाता कथं वद ।  
 तेषु मूर्खेषु हीनेषु शास्त्रार्थवर्जितेषु च ॥ १०९ ॥  
 ज्ञानं भवति केनैव निर्मलं द्वैतवर्जितम् ।  
 तत्रकारं वद स्नेहात् लोकानां पुण्यद्वये ॥ ११० ॥

## दिव्यादिभाव-प्रशंसा ।

भैरव्यवाच ।—

कर्मसूत्रं यच्छिनत्ति प्रत्यहं तनुसंस्थितः ।  
 स पश्यति जगन्नार्थं मम श्रीचरणाखुजम् ॥ १११ ॥  
 विश्वमावेशसंस्कारभिन्नबुद्धक्रियान्विताः ।  
 अतो मां न हि जानन्ति नानाकार्योक्तटावृताः ॥ ११२ ॥  
 तेषां शरीरं गृह्णाति कान्दूतो भयानकः ।  
 यः करोति महायोगं त्यागसन्नरासधर्मवान् ॥ ११३ ॥  
 मन्दभाग्यः पशोर्योनिं प्राप्नोति मां विहाय हि ।  
 मयि भावं यः करोति दुर्लभो जनवल्लभः ॥ ११४ ॥  
 भावेन लभ्यते सर्वं भावेन देवदर्शनम् ।  
 भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भाववत्स्वनम् ॥ ११५ ॥  
 भावञ्च सर्वशास्त्राणां गूढं सर्वेन्द्रियस्थितम् ।  
 सर्वेषां मूलभूतञ्च देवोभावं यदा लभेत् ॥ ११६ ॥  
 तदैव सर्वसिद्धिश्च तदा ध्यानदृढो भवेत् ॥ ११७ ॥  
 अकलङ्को निराहारी निवासवृत्तमानसः ।  
 नित्यस्नानादिपूजाङ्गो भावो भावं यदा लभेत् ॥ ११८ ॥  
 क्रियादत्तो महाशक्तानिपुणोऽपि जितेन्द्रियः ।  
 सर्वशास्त्रनिगूढार्थवेत्ता न्यासविवर्जितः ॥ ११९ ॥  
 तेषां हस्तगतं भावं वद भावं यथा तनौ ।  
 भावात् परतरं नास्ति येनानुग्रहवान् भवेत् ॥ १२० ॥  
 भावादनुग्रहप्राप्तिरनुग्रहान्महासुखी ।  
 सुखात् पुण्यप्रभावः स्यात् पुण्यादच्युतदर्शनम् ।  
 यदा क्तस्य दर्शनाम्बोजदर्शनमङ्गलम् ॥ १२१ ॥  
 योगी भूत्वा सूक्ष्मपदं योगिनामप्यदर्शनम् ।  
 पश्यत्येव महाविद्या-पादान्भोरुहपावनम् ॥ १२२ ॥

गुरुणां परहंसानां वाक्यं त्रैलोक्यपावनम् ।  
 श्रुत्वा साध(न)कःसिद्धयर्थं दोगी योगमवाप्नुयात् ॥ १२३ ॥  
 पञ्चरे शुकसारी च पतगाः पन्नियोनयः ।  
 गृह्णाति साधकः स्वर्गात् मन्नाम विमलं महत् ॥ १२४ ॥  
 यावद् ज्ञानस्य सच्चारं तावत् कालं कुलेश्वर ! ।  
 साधकानाञ्च साधूनां निकटस्थो भवेन्नरः ॥ १२५ ॥  
 विद्याभ्यासी न पतति यदि बुद्धिपरो भवेत् ।  
 न हि चेज्जन्मव्याख्यार्थं नानाशास्त्रार्थभाषणम् ॥ १२६ ॥  
 सुरज्ञानं विना किञ्चित् न हि सिध्यति भूतले ।  
 मन्त्रं श्रीकायसिद्धिश्च कथं भवति भैरव ! ॥ १२७ ॥  
 सांख्यज्ञानं वेदभाषा-विधिज्ञानं तथा समम् ।  
 शक्तिं विना यथाशक्तं सुरज्ञानं विना हि सः ॥ १२८ ॥  
 अहिताचारसम्पत्तिर्दरिद्रस्य गृहे यथा ।  
 साधकस्य गृहे शक्तिज्ञानाचारविवेचना ॥ १२९ ॥  
 जायते यदि सायुज्य-पदनाशाय केवलम् ॥ १३० ॥  
 यद्यज्ञानविशिष्टा सा स्वशक्तिः शिवकामिनी ।  
 तदा न कुर्यात् ग्रहणं शक्तिमाधनमेव च ॥ १३१ ॥  
 यदि कुर्यादसंस्कारात् संसर्गं साधकोत्तमः ।  
 असंस्कृत्यादिदोषेण सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ १३२ ॥  
 शक्तिप्रधानं भावानां त्रयाणां साधकस्य च ।  
 दिव्यवीरपशूनाञ्च भावत्रयमुद्राहृतम् ॥ १३३ ॥  
 पशुभावे ज्ञानसिद्धिः पश्वाचारनिरूपणम् ।  
 वीरभावे क्रियासिद्धिः साक्षाद्गुहो न संशयः ॥ १३४ ॥  
 दिव्यभावे वीरभावे विभिन्नमेकभावतः ।  
 अण्डः पूर्वं सर्वगतं दिव्यभावस्य लक्षणम् ॥ १३५ ॥  
 दिव्यभावे देवताया दर्शनं परिकीर्तितम् ।

वीरभावे मन्दसिद्धिरद्वैतचारलक्षणम् ॥ १३६ ॥  
 आदौ भावं पशोः प्रप्य हात्रिकर्म विवर्जयेत् ।  
 दिवसे दिवसे ज्ञानं पूजातित्यक्रियान्वितः ॥ १३७ ॥  
 पुरश्चरणवत् कार्यं शुचिभावेन सिध्यते ।  
 पशुभावं विना वीरो को वशी भवति ध्रुवम् ॥ १३८ ॥  
 इन्द्रियाणाञ्च दमनं दमनं शमनस्य च ॥ १३९ ॥  
 योगशिक्षानिविष्टाङ्गे मयि योगपरायणः ।  
 सर्वक्षणादभ्यासतः प्रभावविधिरात्रिषु ॥ १४० ॥  
 सर्वकालञ्च कर्त्तव्यं योगं सर्वसुखप्रदम् ।  
 वाञ्छाकल्पतरुं नित्यं तरुणं पातकापहम् ॥ १४१ ॥  
 साधयेत् संहितं मन्त्री पशुभावस्थितो यदि ।  
 योगभाषाविधिज्ञानं सर्वभावेषु दुर्लभम् ।  
 तथा च पशुभावेन शीघ्रं सिध्यति निश्चितम् ॥ १४२ ॥  
 गुरुणां श्रीपदाश्रजे यस्य भक्तिर्दृढा भवेत् ।  
 स भवेत् कामनात्यागी भावमात्रोपलक्षणात् ॥ १४३ ॥  
 वीरभावो महाभावो न भावं दृष्टचेतसाम् ।  
 भावं मन्दगतं सूक्ष्मं रुद्रमूर्त्या प्रसिध्यति ॥ १४४ ॥  
 श्रष्टाचारं महागूढं त्रैलोक्यमङ्गलं शुभम् ॥ १४५ ॥  
 पञ्चतत्त्वादिषुद्वयार्थं महामोहमटोद्भवम् ।  
 सर्वपीठकुलाचारं इठादानन्दसागरम् ॥ १४६ ॥  
 कारुण्यवारिधिं वीर-साधने भक्तिकेवलम् ।  
 ज्ञानो भूत्वा पशोर्भावे वीराचारं ततःपरम् ॥ १४७ ॥  
 वीराचाराद्भवेद्गुणोऽन्यथा नैव च नैव च ।  
 भावद्वयस्थितो मन्त्री दिव्यभावं विचारयेत् ॥ १४८ ॥  
 सदा शुचिर्दिव्यभावमाचरेत् सुसमाहितः ।  
 देवतायाः प्रियार्थञ्च सर्वकर्म कुलेखर ! ॥ १४९ ॥

यद् यत्तत्कलं सिद्धिर्यस्माद्दर्शयं शुभम् ।  
 देवतातुल्यभावश्च देवतायाः क्रियापरः ॥ १५० ॥  
 तद्विद्धि देवताभावं सुदिव्यभाक् प्रकीर्तितम् ।  
 सर्वेषां भाववर्गाणां शक्तिर्मूलं न संशयः ॥ १५१ ॥  
 भक्तिं केन प्रकारेण प्राप्नोति साधकोत्तमः ।  
 ज्ञात्वा देवशरीरस्य निजकाय्यानुशासनात् ॥ १५२ ॥  
 ज्ञानञ्च त्रिविधं प्रोक्तमागमसारसम्भवम् ।  
 शब्दब्रह्ममयं तद्वि ज्ञानमार्गेण पश्यति ॥ १५३ ॥  
 पाठित्वा सर्वशास्त्राणि स्वकर्मगाथनानि च ।  
 क्लेशे विवेकमालम्ब्य नित्यं ज्ञानी च साधकः ॥ १५४ ॥  
 विवेकसम्भवं ज्ञानं शिवज्ञानप्रकाशकम् ।  
 लोचनद्वयहीनञ्च बाह्यभावविवर्जितम् ॥ १५५ ॥  
 लोकानां परिनिर्मुक्तं कालाकालं विलाडनम् ।  
 नित्यज्ञानं परं ज्ञानं तं विद्धि प्राणगोचरम् ॥ १५६ ॥  
 मानुषं सफलं जन्म सर्वशास्त्रेषु गोचरम् ।  
 चतुरश्रोतिबन्धेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ॥ १५७ ॥  
 न मानुष्यं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानन्तु विद्यते ।  
 कदाचिन्नभ्यते जन्म मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥ १५८ ॥  
 सोपानौभृतमोक्षस्य मानुष्यं जन्मदुर्लभम् ।  
 मानुषेषु च शंसन्ति सिद्धयः स्युः प्रधानिकाः ॥ १५९ ॥  
 अणिमादिगुणोपेतात् तस्माद्देवो नरोत्तमः ।  
 विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न लभ्यते ॥ १६० ॥  
 तस्माच्छरीरं संरक्ष्य नित्यं ज्ञानं प्रसादय ।  
 मानुषं ज्ञाननिकरं ज्ञानात्मानं परं विदुः ॥ १६१ ॥  
 मुनयो मौनशीलाश्च मुनितन्त्रादिगोचरम् ।  
 मानुषः सर्वगामी च नित्यस्थाननिराकुलः ॥ १६२ ॥

मित्रजापं योगजापं कृत्वा पापानवारणम् ।  
 परं मोक्षमवाप्नोति मानुषो नात्र संशयः ॥ १६३ ॥  
 मयोक्तानि च तन्त्राणि मङ्गलाय पठन्ति च ।  
 पठित्वा कुरुते कर्म कृत्वा मत्सन्निधिं व्रजेत् ॥ १६४ ॥  
 मङ्गलाय तन्त्रशास्त्राणि न ज्ञात्वा साधको यदि ।  
 अन्यशास्त्राणि सखोध्य कोटिवर्षेण सिध्यति ॥ १६५ ॥  
 शक्तौ रजतविभ्रान्तिर्यथा हि जायते वर ! ।  
 तथाऽन्यदर्शनेभ्यश्च भुक्तिमुक्तिश्च काङ्क्षति ॥ १६६ ॥  
 यत्र भोगस्तत्र मोक्षो ह्ययं कुत्र न सिध्यति ।  
 मम श्रीपादुकाभोज-सेवको मोक्षभोगी सः ॥ १६७ ॥  
 बाह्यद्रष्टा प्रगृह्णाति आकाशस्थिततेजसम् ।  
 ब्रह्माण्डज्ञानद्रष्टा च देशाण्डस्थं प्रपश्यति ॥ १६८ ॥  
 घटप्रत्यक्षसमये आलोको व्यञ्जको यथा ।  
 विना घटत्वयागेन न प्रत्यक्षो यथा घटः ॥ १६९ ॥  
 इतराद्भिद्यमानेऽपि न भेदमुपगच्छति ।  
 पुरुषेषैव भेदोऽस्ति विना शक्तिं कथञ्चन ॥ १७० ॥  
 शक्तिहीनो यथा देहो निर्बली वाग्विबर्जितः ।  
 ज्ञानहीनं तथाऽऽत्मानं न पश्यति पदद्वयम् ॥ १७१ ॥  
 स्वभावं नाभिगच्छन्ति संसारज्ञानमोहिताः ।  
 नाभिपश्यन्ति सञ्ज्ञोकमज्ञानं परिभाव्य ते ॥ १७२ ॥  
 ईश्वरस्यापि दूतस्य यमराजस्य बन्धनम् ।  
 निधनं चानुगच्छन्ति दृष्ट्वा च तनुर्जं धनम् ॥ १७३ ॥  
 लोको मांससुरां पीत्वा न वेत्ति हितमात्मनः ।  
 सम्पदः स्वप्नमेव स्यात् यौवनं कुसुमोपमम् ॥ १७४ ॥  
 तडिच्चपलमायुश्च कस्याप्यज्ञानतो धृतिः ।  
 ज्ञातं जीवति मर्त्यश्च निद्रा स्यादर्षहारिणी ॥ १७५ ॥

अहं हरति कामिन्याऽऽसक्तबुद्धिः प्रतापिनौ ।  
 असदृत्तिश्च मूढानां हन्यायुषमहर्निशम् ॥ १७६ ॥  
 बाल्यरोगजरादुःखैः सर्वं तदपि निष्फलम् ।  
 स्त्रीपुत्रपितृ-मातादि-सम्बन्धः केन हेतुना ॥ १७७ ॥  
 दुःखमूलो हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः ।  
 अस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नात्र संशयः ॥ १७८ ॥  
 सुखदुःखपरित्यागी कर्मणा किं न लभ्यते ? ।  
 लोकाचारभयार्थं हि यः करोति क्रियाविधिम् ॥ १७९ ॥  
 ब्रह्मजातोऽहमखिले जपति यो निरादरः ।  
 सांसारिकसुखासक्तो ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वक्ति च ॥ १८० ॥  
 त्यजित्तं सततं धीरश्चाण्डालमिव दूरतः ।  
 गृहहारण्यसमालोके गतत्रौड़ा दिगम्बराः ।  
 चरन्ति गर्दभाद्याश्च व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ? ॥ १८१ ॥  
 ह्यणपर्णीदकाहाराः सततं वनवासिनः ।  
 हरिणादिमृगाश्वेव तापसास्ते भवन्ति किम् ? ॥ १८२ ॥  
 शीतवातातपसहा भक्ष्याभक्ष्यसमा अपि ।  
 चरन्ति शूकराद्याश्च व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ? ॥ १८३ ॥  
 आकाशे पक्षिणः सर्वे भूतप्रेतादयोऽपि च ।  
 चरन्ति रात्रिगाः सर्वे खेचराः किं महेश्वराः ? ॥ १८४ ॥  
 आजन्ममरणान्तञ्च गङ्गादितिनौस्थिताः ।  
 मण्डूकमत्स्यप्रमुखा व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ? ॥ १८५ ॥  
 एतज्ज्ञानं विविच्यान्ना यदि गच्छन्ति पण्डिताः ।  
 तथापि कर्मदोषेण न करुष्या भवन्ति हि ॥ १८६ ॥  
 कौटिल्यालससंसर्ग-वर्जिता ये भवन्ति हि ॥ १८७ ॥  
 प्राप्नुवन्ति मम स्थानं मम भक्तिपरायणाः ।  
 ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि शरीरमातिवाहिकम् ॥ १८८ ॥



निजदेहाभिशापेन नानारूपी भवेन्नरः ।  
 शरीरजेः कर्मदोषैर्याति दुष्टां गतिं नरः ॥ १८१ ॥  
 इह दुश्चरितैः केचित् केचित् पूर्वकृतैस्तथा ।  
 प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपाविपर्ययम् ॥ १८० ॥  
 गुरुपादविहीना ये ते नश्यन्ति ममाज्ञया ।  
 गुरुस्थली हतत्राणे गुरुमूलं परन्तपः ।  
 गुरोः प्रसादमात्रेण सिद्धिरेव न संशयः ॥ १८१ ॥  
 अहं गुरुरहं देवो मन्त्रार्थोऽहं न संशयः ।  
 भेदका नरकं यान्ति नानाशास्त्रार्थवर्जिताः ॥ १८२ ॥  
 सर्वासामेव विद्यानां दीक्षासूलं खलु प्रभो ! ।  
 गुरुमूलं स्वतन्त्रस्य गुरुरात्मा न संशयः ॥ १८३ ॥  
 आत्मैव ह्यात्मनो बभ्रुरात्मैव रिपुरात्मनः ।  
 आत्मना क्रियते कर्म भावसिद्धिस्तदा भवेत् ॥ १८४ ॥  
 हौनाङ्गः कपटी रोगो बह्वाशौ शीलवर्जितः ।  
 मय्युपासनमास्थाय उपविद्यां सदाभ्यसेत् ॥ १८५ ॥  
 धनं धान्यं सुतं वित्तं राज्यं ब्राह्मणभोजनम् ।  
 शुभार्थं संप्रयोक्तव्यं नान्यचिन्ता वृथा फलम् ॥ १८६ ॥  
 नित्यश्राद्धरतो मर्त्या धर्मशीलो नरोत्तमः ।  
 महीपालः प्रियाचारः पौठभ्रमणतत्परः ॥ १८७ ॥  
 पीठे पीठे महाविद्यादर्शनं यदि लभ्यते ।  
 तदा तस्य कूरे सर्वाः सिद्धयोऽव्यक्तमण्डलाः ॥ १८८ ॥  
 अकस्माज्जायते सिद्धिर्महामायाप्रसादतः ।  
 महावीरो महाधीरो दिव्यभावस्थितोऽपि वा ॥ १८९ ॥  
 अथवा पशुभावस्थो मन्त्रौ पीठे विद्यासयेत् ।  
 क्रियायाः फलदं प्रोक्तं भावत्रयमनोरमम् ॥ २०० ॥  
 तथा च युगभावेन दिव्यवीरेण भैरव ! ।

प्रपश्यान्त महावीराः पशवो हीनजातयः ॥ २०१ ॥  
 न पश्यन्ति कलियुगे शास्त्राभिभूतचेतसः ।  
 अपि वर्षसहस्रेण शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥ २०२ ॥  
 तर्काद्यनेकशास्त्राणि अल्पायुर्विघ्नकोटयः ।  
 तस्मात् सारं विजानौयात् चीरं हंसमिवाश्वसि ॥ २०३ ॥  
 कलौ च दिव्यवीराभ्यां नित्यं तद्गतचेतसः ।  
 महाभक्ताः प्रपश्यन्ति महाविद्यापरं पदम् ॥ २०४ ॥  
 साधवो मौनशोलाश्च सदा साधनतत्पराः ।  
 दिव्यवीरस्त्रभावेन पश्यन्ति मत्पदाब्जम् ॥ २०५ ॥  
 भावद्वयं ब्राह्मणानां महासत्फलकाङ्क्षणाम् ।  
 अथवा चावधूतानां भावद्वयमुदाहृतम् ॥ २०६ ॥  
 भावद्वयप्रभावेण महायोगी भवेन्नरः ।  
 मूर्खोऽपि वाक्पतिश्चेष्टो भावद्वयप्रसादतः ॥ २०७ ॥  
 ये जानन्ति महादेव ! मम तन्वार्थसाधितम् ।  
 भावद्वयं हि वर्णानां ते रुद्रा नात्र संशयः ॥ २०८ ॥  
 भावको भक्तियोगेन्द्रः सर्वभावज्ञसाधनम् ।  
 उन्मत्तजडवन्नित्यं निजतन्वार्थपारगः ॥ २०९ ॥  
 वृक्षो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका ।  
 पठन्ति तत्त्वशास्त्राणि दुर्लभा भावबोधकाः ॥ २१० ॥  
 प्रज्ञाहीनस्य पठनमन्वस्यादर्शदर्शनम् ।  
 प्रज्ञावतो धर्मशास्त्रं बन्धनायोपकल्पयते ॥ २११ ॥  
 तत्त्वमीदृगिति भवेदिति शास्त्रार्थनिश्चयः ।  
 अहं कर्त्ताऽहमात्मा च सर्वव्यापी निराकुलः ॥ २१२ ॥  
 मनसेति स्वभावश्च चिन्तयत्यपि वाक्पतिः ।  
 सौदामि[म]नीतेजसो वा सहस्रवर्षकं यदा ॥ २१३ ॥  
 प्रपश्यति महान्नानी एकचन्द्रं सहस्रकम् ।

कोटिवर्षशतेनापि यत् फलं लभते नरः ।  
 एकक्षणमङ्घ्रिजो ध्यात्वा तत्फलमश्नुते ॥ २१४ ॥  
 विचरेद् यदि सर्वत्र केवलानन्दवर्जनम् ।  
 कामरूपं महापौठं त्रिकोणाधारतेजसम् ॥ २१५ ॥  
 जलबुद्दुदशब्दान्तमनन्तमङ्गलात्मकम् ।  
 स भवेन्मम दासेन्द्रो गणेशगुहवत्प्रियः ॥ २१६ ॥  
 कङ्कालाख्यसाट्टहास-विकटाक्षोपपौठकम् ।  
 विचरेत् साधकश्रेष्ठो मत्पादाब्ज यदीच्छति ॥ २१७ ॥  
 ज्वालामुखीमहापौठं मम प्रियमतर्कवत् ।  
 यो भ्रमेन्मम तुष्ट्यर्थं स योगी भवति क्षुद्रम् ॥ २१८ ॥  
 भावद्वयाटिनिकरं ज्वालामुख्यादपौठकम् ।  
 भ्रमन्ति ये साधकेन्द्रास्ते निष्ठा नात्र संशयः ॥ २१९ ॥  
 भावात् परतरं नास्ति त्रैलोक्यसिद्धिमिच्छताम् ।  
 भावं हि परमं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम् ॥ २२० ॥  
 कोटिकन्याप्रदानेन वाराणस्यां शताटनेः ।  
 किं कुरुचेत्प्रगमने यदि भावो न लभ्यते ? ॥ २२१ ॥  
 गद्यायां आइदानेन नानापौठाटनेन किम् ? ।  
 नानाहोमक्रियाभिः किं ? यदि भावो न लभ्यते ॥ २२२ ॥  
 भावेन ज्ञानमुत्पन्नं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ।  
 आत्मना मनसा वाचा गुरावीश्वर उच्यते ॥ २२३ ॥  
 ध्यानं संयोजनं प्रोक्तं मोक्षमत्र मनोहरम् ।  
 गुरोः प्रसादमात्रेण शक्तितोषो महान् भवेत् ।  
 शक्तिचन्तोषमात्रेण मोक्षमाप्नोति साधकः ॥ २२४ ॥  
 गुरुमूलं जगत्सर्वं गुरुमूलं परन्तपः ।  
 गुरोः प्रसादमात्रेण मोक्षमाप्नोति सहस्रौ ॥ २२५ ॥  
 न लङ्घयेद् गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत्तथा ।

दिवारात्रौ गुरोराज्ञां दासवत् परिपालयेत् ॥ २२६ ॥  
 उक्तानुक्तेषु कार्येषु नापेक्षां कारयेद् बुधः ।  
 गच्छतः प्रयतो गच्छेद् गुरोराज्ञां न लङ्घयेत् ॥ २२७ ॥  
 न शृणोति गुरोर्वक्त्रं शृणुयाद्वा पराङ्मुखः ।  
 अहितं वा हितं वाऽपि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ २२८ ॥  
 आज्ञाभङ्गं गुरोर्देव ! यः करोति विबुद्धिमान् ।  
 प्रयाति नरकं घोरं शूकरत्वमवाप्नुयात् ॥ २२९ ॥  
 आज्ञाभङ्गं तथा निन्दां गुरोरप्रियवर्त्तनम् ।  
 गुरुद्रोहञ्च यः कुर्यात् तत्संसर्गं न कारयेत् ॥ २३० ॥  
 गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगमनानि च ।  
 पातकञ्च भवेत्तस्य प्रार्थाश्चत्तं न कारयेत् ॥ २३१ ॥  
 गुरुं दुष्कृत्य रिपुर्वाङ्महुरैत् परिवादतः ।  
 अरख्ये निर्जने देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥ २३२ ॥  
 पादुकां वसनं वस्त्रं शयनं भूषणानि च ।  
 दृष्ट्वा गुरुं नमस्कृत्य आत्मभोगं न कारयेत् ॥ २३३ ॥  
 सदा च पादुकामन्त्रं जिह्वामुये यस्य वर्त्तते ।  
 अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षं लभेन्नरः ॥ २३४ ॥  
 श्रीगुरोश्चरणभोजं ध्यायेच्चैव सदैव तम् ।  
 मुक्तये मुक्तये वीर ! नान्यभक्तं ततोऽधिकम् ॥ २३५ ॥  
 एकग्रामि स्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम् ।  
 एकदेशे स्थितः शिष्यो गत्वा तत्सन्निधिं सदा ॥ २३६ ॥  
 सप्तयोजनविस्तीर्णं मासैकं प्रणमेद् गुरुम् ॥ २३७ ॥  
 श्रीगुरोश्चरणभोजं यस्यां दिशि विराजते ।  
 तस्यां दिशि नमस्कुर्यात् कायेन मनसा धिया ॥ २३८ ॥  
 विद्याङ्गमासनं मन्त्रं मुद्रां तन्त्रादिकं प्रभो ! ।  
 सर्वं गुरुमुखात् कञ्चैव सफलो नान्यथा भवेत् ॥ २३९ ॥

कम्बले कोमले वाऽपि प्र(प्रा)सादे संस्थिते तथा ।  
 दीर्घकाष्ठेऽथवा पृष्ठे गुरोश्चैकासनं त्यजेत् ॥ २४० ॥  
 श्रीगुरोः पादुकामन्त्रं मूलमन्त्रं स्वपादुकाम् ।  
 शिष्याय नैव देवेश ! प्रवदेद् यस्य कस्यचित् ॥ २४१ ॥  
 यद् यदात्महितं वस्तु तद्द्रव्यं नैव वञ्चयेत् ।  
 गुरोर्लब्धा एकवर्णं तस्य तस्यापि सुव्रत ! ॥ २४२ ॥  
 भक्ष्यं वित्तानुसारेण गुरोर्दृश्य यत् कृतम् ।  
 स्वल्पैरपि महत्तुल्यं भुवनाद्यं दरिद्रताम् ।  
 सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरुभक्तिविवर्जितः ॥ २४३ ॥  
 नरकान्तमवाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम् ।  
 गुरुभक्त्या च शक्रत्वमभक्त्या शूकरो भवेत् ॥ २४४ ॥  
 गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः ।  
 गुरुपूजां विना नाथ ! कोटिपुण्यं वृथा भवेत् ॥ २४५ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने सर्वविद्यागुणाने  
 सिद्धि(ङ्)मन्त्रप्रकरणे भैरवी-भैरवसंवादे प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

## अथ द्वितीयः पटलः ।

कुलाचारविधिः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि सर्वदर्शनविद्यया ।  
 सर्वज्ञ ! परमानन्द ! दयावीज ! भयङ्कर ! ॥ १ ॥  
 शृणुष्व कमलाशम्भौ ! कुलाचारविधिं शृणु ।  
 पशूनां व्रतभङ्गादौ विधिं प्रथमतः प्रभो ! ॥ २ ॥  
 व्रतभङ्गे नित्यभङ्गे नित्यपूजादिकर्मणि ।  
 सहस्रं प्रजपेन्मन्त्री व्रतदोषोपशान्तये ॥ ३ ॥  
 नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पिढतर्पणम् ।

देवतादर्शनं पौठदर्शनं तीर्थदर्शनम् ॥ ४ ॥  
 गुरोराज्ञापालनञ्च देवतानित्यपूजनम् ।  
 पशुभावस्थितो मर्त्यो महाविद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ ५ ॥  
 पशूनां प्रथमं भावं वीरस्य वीरभावनम् ।  
 दिव्यानां दिव्यभावस्तु तिस्रो भावास्त्रयः स्मृताः ॥ ६ ॥  
 स्वकुलाचारहीनो यः साधकः स्थिरमानसः ।  
 निष्फलार्थी भवेत् क्षिप्रं कुलाचारप्रभावतः ॥ ७ ॥

भैरव उवाच ।—

केनोपायेन भगवतीचरणाम्भोजदर्शनम् ।  
 प्राप्नोति पद्मवदने ! पशुभावास्थितो नरः ॥ ८ ॥  
 तत्प्रकारं सुविस्तार्य कथ्यतां कुलकामिनि ! ।  
 यदि भक्तिर्दृढा मेऽस्ति यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ ९ ॥

महःभैरव्युवाच ।—

पशुभावः ।

प्रभाते च समुत्थाय अरुणोदयकालतः ।  
 निशाष्टदण्डपर्यन्तं पशूनां भाव ईरितः ॥ १० ॥  
 प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा पुनः शय्यास्थितः पशुः ।  
 गुरुं सञ्चिन्तयेच्छीर्षाम्भोजे सहस्रके दले ॥ ११ ॥  
 तरुणादित्यसङ्काशं तेजोविश्वं महागुरुम् ।  
 अनन्तानन्तमहि(म)मासागरं शशिशेखरम् ॥ १२ ॥  
 महाशुभ्रं भासुराङ्गं दिनेत्रं द्विभुजं विभुम् ।  
 आत्मोपलब्धिविषमं तेजसा शुक्लवाससम् ॥ १३ ॥  
 आज्ञाचक्रोर्ध्वनिकरं कारणं जगतां सुखम् ।  
 धर्मार्थकाममोक्षाङ्गं वराभयकरं विभुम् ॥ १४ ॥  
 प्रफुल्लकमलारूढं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ।  
 अन्तःप्रकाशचपलं वनमालाविभूषितम् ॥ १५ ॥

रत्नालङ्कारभूषाढ्यं देवदेवं संदा भजेत् ।  
 अन्तर्यागक्रमेणैव पद्मपुष्पैः समर्चयेत् ॥ १६ ॥  
 एकान्तभक्त्या प्रणमेदायुरारोग्यवृद्धये ।  
 अथ मध्ये जपेन्मन्त्रमाद्यन्तप्रणवेन च ॥ १७ ॥  
 मध्ये वाग्भवमायोज्यं गुरुनाम ततःपरम् ।  
 आनन्दनाथशब्दान्ते गुरुं उऽन्तं समुद्धरेत् ॥ १८ ॥  
 नमःशब्दं ततो ब्रूयात् प्रणवं सर्वसिद्धिदम् ।  
 महागुरोर्मनं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १९ ॥  
 वाक्सिद्धिर्वदनाभोजे गुरुमन्त्रप्रभावतः ।  
 शतमष्टोत्तरं नित्यं सहस्रं वा तथाऽष्टकम् ॥ २० ॥  
 प्रजप्यार्पणमाकृत्य प्राणायामत्रयञ्चरेत् ।  
 वाग्भवेन ततः कुर्यात् प्राणायामविधिं मुदा ॥ २१ ॥  
 अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।  
 तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २२ ॥  
 अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।  
 चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २३ ॥  
 देवताया दर्शनस्य कारणं करुणानिधिम् ।  
 सर्वसिद्धिप्रदातारं श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ २४ ॥  
 वराभयकरं नित्यं श्वेतपद्मनिवासिनम् ।  
 महाभयनिहन्तारं गुरुदेवं नमाम्यहम् ॥ २५ ॥  
 महाज्ञानाच्छादिताङ्गं नराकारं वरप्रदम् ।  
 चतुर्वर्गप्रदातारं स्थूलसूक्ष्मद्वयान्वितम् ॥ २६ ॥  
 सदानन्दमयं देवं नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।  
 शुद्धसत्त्वमयं सर्वं नित्यकालं कुलेश्वरम् ॥ २७ ॥  
 ब्रह्मरन्ध्रे महापद्मे तेजोविम्बे निराकुले ।  
 योगिभिर्ध्यानगम्ये च चक्रे शुक्ले विराजिते ॥ २८ ॥

सहस्रदलसङ्काशे कर्णिकामध्यमध्यके ।  
 महाशुक्लभासुरार्क-कोटिकोटिमहौजसम् ॥ २८ ॥  
 सर्वपौठस्थममलं परं हंसं परात्परम् ।  
 वेदोद्धारकरं नित्यं काम्यकर्मफलप्रदम् ॥ २९ ॥  
 सदा मनःशक्तिमायालयस्थानं पदद्वयम् ।  
 शरच्च्योत्स्नाजालमालाभिरिन्दुकोटिवन्मुखम् ॥ ३१ ॥  
 वाञ्छाऽतिरिक्तदातारं सर्वसिद्धीश्वरं गुरुम् ।  
 भजामि तन्मयो भूत्वा तं हंसमण्डलोपरि ॥ ३२ ॥  
 आत्मानं अनिराकारं साकारं ब्रह्मरूपिणम् ।  
 महाविद्यामहामन्त्र-दातारं परमेश्वरम् ।  
 सर्वसिद्धिप्रदातारं गुरुदेवं नमाम्यहम् ॥ ३३ ॥  
 कायेन मनसा वाचा ये नमन्ति निरन्तम् ।  
 अवश्यं श्रीगुरोः पादान्भोरुहे ते वसन्ति हि ॥ ३४ ॥  
 प्रभाते कोटिपुण्यञ्च प्राप्नोति साधकोत्तमः ।  
 मध्याह्ने दशलक्षञ्च सायाह्ने कोटिपुण्यदम् ॥ ३५ ॥  
 प्रातःकाले पठेत् स्तोत्रं ध्यानं वा सुसमाहितः ।  
 तदा सिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥  
 शिरसि सितपङ्कजे तरुणकोटिचन्द्रप्रभं  
 वराभयकरास्त्रुजं सकलदेवतारूपिणम् ।  
 भजामि वरदं गुरुं किरणचारुशोभाकुलं  
 प्रकाशितपदद्वयास्त्रुजमलक्तकोटिप्रभम् ॥ ३७ ॥  
 जगद्भयनिवारणं भुवनभोगमोक्षप्रदं  
 गुरोः पादयुगास्त्रुजं जयति यत्र योगे जयम् ।  
 भजामि परमं गुरुं नयनपद्ममध्यस्थितं  
 भवाब्धिभयनाशनं शमनरोगकायक्षयम् ॥ ३८ ॥  
 प्रकाशितसुपङ्कजे मृदुलप्रोङ्गशाख्ये प्रभुं



परः परगुरु भजे सकलबाह्यभोगप्रदम् ।  
 विशालनयनाम्बुजद्वयतडितप्रभामण्डलं  
 कङ्कारमणिपाटलेन्दुविन्दुविन्दुकम् ॥ ३९ ॥  
 महौजसमुमापतेर्विगतदक्षभागे हृदि  
 प्रभाकरशतोज्ज्वलं सुवमलेन्दुकोट्याननम् ।  
 भजामि परमेष्ठिनं गुरुगतिवरात्स्वनं  
 चलाचलकलेवरं प्रचपलदले हादशे ॥ ४० ॥

गुर्वाद्यञ्च शुभं मदननिदहनं हेममञ्जोरमारं  
 नानाशब्दाद्भुताह्लादितपरिजनाच्चारुवक्रं त्रिभङ्गम् ।  
 नित्यं ध्यायेत् प्रभाते अरुणशतघटाशोभनं योगिगम्यं  
 नाभौ पद्मेऽतिकान्ते दशदलमणिमे भाव्यते योगिभिर्यत् ॥ ४१ ॥  
 या माता मयदानवादि स्वभुजा निर्वाणसीमापुरे  
 स्वाधिष्ठाननिकेतने रसदले वैकुण्ठमूले तथा ।  
 जम्बोद्वारविकारसुप्रहरणी वेदप्रभा भाव्यते  
 कन्दर्पाऽर्पितशान्तियोनिजननो विष्णुप्रिया शाङ्करी ॥ ४२ ॥  
 या भाधाननकुण्डली कुलपद्योहामाभशोभाकरी  
 मूले पद्मचतुर्दले कुलवती निष्वासदेशाश्रिता ।  
 साक्षात्काङ्क्षितकल्पवृक्षलतिकासूहास(ष)यन्ती प्रिया-  
 नित्यायोगिभयापहा ।वषहरा गुर्वास्वका भाव्यते ॥ ४३ ॥  
 ऊर्ध्वाभोरुहनिःसृतामृतघटौमोदोद्वलप्लावित्वा  
 गुवंस्थाः परिपातु सूक्ष्मपथगा तेजोमयी भास्वती ।  
 सूक्ष्मासाधनगोचरामृतमयी मूलादिशीर्षाम्बुजे  
 पूर्यां चेतसि भाव्यते भुवि कदा माता सदा वामगा ॥ ४४ ॥  
 स्थितपालनयोगिन ध्यानेन पूजनन वा ।  
 यः पठत् प्रत्यहं व्याप्य स देवा न तु मानुषः ॥ ४५ ॥  
 कल्याणं धनधान्यञ्च कौर्त्तमायुर्यशःश्रियम् ।

सायाङ्गे च प्रभाते च पठेद् यदि सुबुद्धिमान् ।  
 स भवेत् साधकश्रेष्ठः कल्पद्रुमकलेवरः ॥ ४६ ॥  
 स्तवस्यास्य प्रसादेन वागीशत्वमवाप्नुयात् ।  
 पशुभावस्थिता ये तु तेऽपि सिद्धा न संशयः ॥ ४७ ॥  
 आदौ साधकदेवश्च सदाचारमतिः सदा ।  
 पशुभावस्ततो वीरः सायाङ्गे दिव्यभाववान् ॥ ४८ ॥  
 एतेषां भाववर्गाणां गुरुर्वेदान्तपारगः ॥ ५९ ॥  
 शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान् ।  
 शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दत्तः सुबुद्धिमान् ॥ ५० ॥  
 आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः ।  
 निग्रहानुग्रहे शक्तो वशी मन्त्रार्थजापकः ॥ ५१ ॥  
 नीरोगो निरहङ्कारो विकाररहितो महान् ।  
 पण्डितो वाक्पतिः श्रौमान् सदा यज्ञविधानकृत् ॥ ५२ ॥  
 गुरुरश्वरकृत् सिद्धो द्विताहितविवर्जितः ।  
 सर्वलक्षणसंयुक्तो महाजनगणादृतः ॥ ५३ ॥  
 प्राणायामादिसिद्धान्तो ज्ञानी मौनी विरागवान् ।  
 तपस्वी सत्यवादी च सदा ध्यानपरायणः ॥ ५४ ॥  
 आगमार्थविशिष्टज्ञो निजधर्मपरायणः ।  
 अव्यक्तालङ्कारचल्लस्यो भावको भद्रदानवान् ॥ ५५ ॥  
 लक्ष्मीमान् धृतिमान्नाथो गुरुरित्यभिधीयते ।  
 शिष्यस्तु तादृशो भूत्वा सद्गुरुं पर्युपाश्रयेत् ॥ ५६ ॥  
 वर्जयेच्च परानन्दरहितं रूपवर्जितम् ।  
 कुष्ठिनं क्रूरकर्मायं निर्न्दित रोगिणं गुरुम् ॥ ५७ ॥  
 अष्टप्रकारकुष्ठेन गलत्कुष्ठिनमेव च ।  
 श्लत्रिणं जनहिसार्थं सदार्थग्राहिणं तथा ॥ ५८ ॥  
 स्वर्णविक्रयिणं चौरं बुद्धिहीनं सुखर्वकम् ।

श्यावदन्तं कुलाचार-रहितं शान्तिवर्जितम् ॥ ५८ ॥  
 सकलङ्गं नेत्ररोगैः पीडितं परदारगम् ।  
 असंस्कारवक्त्रारं स्त्रीजितञ्चाधिकाङ्गकम् ॥ ६० ॥  
 कपटात्मानकं हिंसा-विशिष्टं बहुजल्पकम् ।  
 बह्वाग्निं हि क्लृपणं मिथ्यावादिनमेव च ॥ ६१ ॥  
 अशान्तं भावहीनञ्च पञ्चाचारविवर्जितम् ।  
 दोषजालैः पूरिताङ्गं पूजयेन्न गुरुं विना ॥ ६२ ॥  
 गुरौ मनुष्यबुद्धिन्तु मन्त्रेषु लिपिभावनम् ।  
 प्रतिमासु शिन्नारूपं विभाव्य रौरवं व्रजेत् ॥ ६३ ॥  
 जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयो प्रयत्नतः ।  
 गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥ ६४ ॥  
 गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।  
 शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥ ६५ ॥  
 गुरोर्हितं प्रकर्त्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।  
 अहिताचरणाद्देव ! विष्ठायां जायते क्रिमिः ॥ ६६ ॥  
 मन्त्रत्यागाद्भवेन्मृत्युगुरुत्यागाद्दरिद्रता ।  
 गुरुमन्त्रपरित्यागाद्गौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ६७ ॥  
 गुरौ सन्निहितं यस्तु पूजयेदन्यदेवताम् ।  
 प्रयाति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत् ॥ ६८ ॥  
 गुरुवद् गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु ।  
 अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव तु देवतम् ॥ ६९ ॥  
 अमार्गस्थोऽपि मार्गस्थो गुरुरेव तु देवतम् ।  
 उत्पादकब्रह्मदात्रुंगुरीयान् ब्रह्मटः पिता ॥ ७० ॥  
 तस्मान्मन्त्रेण सततं पितुरप्यधिकं गुरुम् ।  
 गुरुदेवाधीनश्चास्मि शस्त्रे मन्त्रे कुलाकुले ॥ ७१ ॥  
 नाधिकारी भवेन्नाथ ! श्रीगुरोः पदभावकः ।

गुरुमाता पिता स्वामी बान्धवः सुहृदः शिवः ॥ ७२ ॥  
 इत्याध्याय मनो नित्यं भजेत् सर्वात्मना गुरुम् ।  
 एकमेव परं ब्रह्म स्थूलशुक्लमणिप्रभम् ॥ ७३ ॥  
 सर्वकर्मनियन्तारं गुरुमात्मानमाश्रयेत् ।  
 गुरुश्च सर्वभावानां भावमेकं न संशयः ॥ ७४ ॥  
 निःसन्दिग्धं गुरोर्वाक्यं संशयात्मा विनश्यति ।  
 निःसंशयो गुरुपदे सर्वत्यागी पटं व्रजेत् ॥ ७५ ॥  
 खेचरत्वमवाप्नोति मासादेव न संशयः ।  
 सद्गुरुमाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं प्रतीक्षयेत् ॥ ७६ ॥  
 सगुणं निर्गुणं वाऽपि ज्ञात्वा मन्त्रं प्रदापयेत् ।  
 शिष्यस्य ज्ञानं सर्वं शुभाशुभविवेचनम् ॥ ७७ ॥  
 अन्यथा विप्रदोषेण सिद्धिपूजाफलं दहेत् ।  
 कामुकं कुटिलं लोकनिन्दितं सत्यवर्जितम् ॥ ७८ ॥  
 अविनीतमसामर्थ्यं प्रज्ञाहीनं विभुप्रियम् ।  
 सदा पाद(प)क्रियायुक्तं विद्याशून्यं जडात्मकम् ॥ ७९ ॥  
 कलिदोषसमूहाङ्गं वेदक्रियाविवर्जितम् ।  
 आश्रमाचारहीनञ्चाशुद्धान्तःकरणोद्यतम् ॥ ८० ॥  
 सदा अज्ञाविरहितमर्थर्थं क्रोधिनं जडम् ।  
 असच्चरित्रं विगुणं परदारतुरं सदा ॥ ८१ ॥  
 असद्बुद्धिसमूहोत्थमभक्तं दौत्यचेतसम् ।  
 नानानिन्दावृताङ्गञ्च तं शिष्यं वर्जयेद् गुरुः ॥ ८२ ॥  
 यदि न त्यजते वीर ! धनादिदानहेतुना ।  
 नारको शिष्यवत् पापी तद्विशिष्टभैवाप्रयात् ॥ ८३ ॥  
 क्षणादसिद्धः स भवेत् शिष्यासादितपातकैः ।  
 अकस्मान्नरक प्राप्य कार्यनाशाय केवलम् ॥ ८४ ॥  
 विद्यार्थं यत्नाद्विधिवत् शिष्यसंग्रहमाचरेत् ।

अन्यथा शिष्यदोषेण नरकस्थो भवेद्गुरुः ॥ ८५ ॥  
 न पत्नीं दीक्षयेद्भर्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम् ।  
 न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं नैव दीक्षयेत् ॥ ८६ ॥  
 सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं च दीक्षयेत् ।  
 शक्तित्वेन भैरवस्तु न च सा पुत्रिका भवेत् ॥ ८७ ॥  
 मन्त्रार्थी देवता ज्ञेया देवता गुरुरूपिणी ।  
 तेषां भेदो न कर्तव्यो यदौच्छेच्छुभमात्मनः ॥ ८८ ॥  
 एकग्रामे स्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम् ।  
 क्रोधमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ॥ ८९ ॥  
 अर्द्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु ।  
 एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि ॥ ९० ॥  
 दूरदेशस्थितः शिष्यो भक्त्या तस्मान्नाधिं गतः ।  
 तत्र योजनसंख्योक्त-मासेन प्रणमेद्गुरुम् ॥ ९१ ॥  
 वर्षेकेण भवेद् योग्यो विप्रो हि गुरुभावतः ।  
 वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः ।  
 चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता ॥ ९२ ॥  
 यदि भाग्यवशेनैव सिद्धमन्त्रं लभेत् प्रभो ! ।  
 महाविद्या त्रिशक्त्याश्च गृह्णीयात्तत्कुलाद् ध्रुवम् ॥ ९३ ॥  
 गुरार्विचारं सर्वत्र तातमातामहं विना ।  
 प्रमादाच्च तथाज्ञानादेभ्यो मन्त्रं समाचरन् ।  
 प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत् ॥ ९४ ॥  
 सावित्रीमन्त्रं जाप्यञ्च लक्षं जाप्यं जगत्पतेः ।  
 विष्णोर्वा प्रणवलक्षं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ ९५ ॥  
 अशक्तश्चेन्महादेव ! चायुतं प्रजपेन्मनुम् ।  
 दशसाहस्रजाप्येन सर्वकल्मषनाशिनौ ॥ ९६ ॥  
 गायत्री छन्दसां माता पापराशितुलानला ।

मम मूर्तिप्रकाशा च पशुभावविवर्जिता ॥ ९७ ॥  
फलोद्भवप्रकरणे ब्रह्मणा पठ्यते निशि ॥ ९८ ॥  
यदि भाग्यवशादेव ! सिद्धमन्त्रं गुरुं तथा ।  
तदैव तान्तु दीक्षित अष्टैश्वर्याय केवलम् ॥ ९९ ॥  
निर्वीजञ्च पितुर्मन्त्रं शैवे शाक्ते न दूष्यति ।  
ज्येष्ठपुत्राय दातव्यं कुलौनेः कुलपण्डितैः ॥ १०० ॥  
कुलयुक्ताय दान्ताय महामन्त्र कुलेश्वरम् ।  
तदैव मूलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १०१ ॥  
कनिष्ठञ्च रिपुञ्चाप सोढरं वैरिपक्षगम् ।  
मातामहञ्च पितरं यतिञ्च वनवासिनम् ॥ १०२ ॥  
अनाश्रमं कुसंसर्गं स्वकुलत्यागिनन्तथा ।  
वर्जयित्वा च शिष्यांस्तान् दीक्षाविधिमुपाचरेत् ॥ १०३ ॥  
अन्यथा तद्विरोधेन कामनाभोगनाशनम् ।  
सिद्धमन्त्रञ्च गृह्णोयाद् दुष्कुलादापि भैरव ! ॥ १०४ ॥  
यद्भवे भावने च्छन्ने रूपे रूपधरे शुभे ! ।  
तत्र दौक्षां समाकुर्वन् अष्टैश्वर्यजयं लभेत् ॥ १०५ ॥  
स्वप्ने तु नियमो नास्ति दीक्षासु गुरुशिष्ययोः ।  
स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते संस्कारेणैव शुध्यति ॥ १०६ ॥  
साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया ।  
सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता ॥ १०७ ॥  
सर्वलक्षणसम्पन्ना जापका पद्मलोचना ।  
रत्नालङ्कारसंयुक्ता वर्णा भुवनभूषिता ॥ १०८ ॥  
शान्ता कुलोना कुलजा चन्द्रास्या सर्ववृद्धिगा ।  
अनन्तगुणसम्पन्ना रुद्रत्वदायिनी प्रिया ॥ १०९ ॥  
गुरुरूपा मुक्तिदात्री शिवज्ञाननिरूपिणी ।  
गुरुयोग्या भवेत् सा हि विधवा परिवर्जिता ॥ ११० ॥

स्त्रियो दौक्षा शुभा प्रोक्ता मन्त्रश्चाष्टगुणा स्मृता ।  
 पुत्रिणी विधवा ग्राह्या केवला ऋणकारिणी ॥ १११ ॥  
 सिद्धमन्त्रं यदि भवेद् गृह्णीयाद्विधवासुखात् ।  
 केवलं सुफलं तत्र मातुरष्टगुणं ध्रुवम् ॥ ११२ ॥  
 सधवा स्वप्रवृत्त्या च ददाति यदि तन्मनुम् ।  
 ततोऽष्टगुणमाप्नोति यदि सा पुत्रिणी सती ॥ ११३ ॥  
 यदि माता स्वकं मन्त्रं ददाति स्वसुताय च ।  
 तदाऽष्टसिद्धिमाप्नोति भक्तिमार्गं न संशयः ।  
 तदैव दुर्लभं देव ! यदि मात्रा प्रदोयते ॥ ११४ ॥  
 आदौ भक्तिं ततो मुक्तिं संप्राप्य कालरूपष्टक् ।  
 सहस्रकोटिविद्यार्थं जानाति नात्र संशयः ॥ ११५ ॥  
 स्वप्ने तु माता यदि वा ददाति शुद्धमन्त्रकम् ।  
 पुनर्दीक्षां सोऽपि कृत्वा दानवत्वमवाप्नुयात् ॥ ११६ ॥  
 यदि भाग्यवशेनैव जननी दानवर्तिनी ।  
 तदा सिद्धिमवाप्नोति तत्र मन्त्रं विचारयेत् ॥ ११७ ॥  
 स्त्रीयमन्त्रोपदेशेन न कुर्याद् गुरुचिन्तनम् ॥ ११८ ॥  
 तथा श्रीलालता काली महाविद्या महामनोः ।  
 सर्वसिद्धियुतो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति ॥ ११९ ॥  
 कालीकल्पलतादेवी महाविद्यादिसाधना ।  
 गुरुचिन्ता न कर्तव्या ये जानन्ति गुरोर्वचः ॥ १२० ॥  
 यदि मन्त्रं विचार्यांशु गृह्णाति साधकोत्तमः ।  
 अनन्तकोटिपुण्यस्य द्विगुणं भवति ध्रुवम् ॥ १२१ ॥  
 विचार्य चक्रसारं मन्त्रं गृह्णाति यो नरः ।  
 वेङ्कणनगरे वासस्तेषां जन्मशतैरपि ॥ १२२ ॥  
 इति श्रुत्वा महादेवो महादेव्याः सरस्वतीम् ।  
 उवाच पुनरानन्दपुङ्गवोःशिविग्रहः ॥ १२३ ॥

ज्ञातं चक्रं षोडशच्च चक्रहस्तपुरःप्रदम् ॥  
अत्यद्भुतफलोपेतं धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥ १२४ ॥

दीक्षाविधिः ।

श्रीभैरव उवाच :—

कथयस्व महादेवि ! कुलमङ्गावपण्डिते ! ।  
यदि मे स्वकृपादृष्टिर्वर्त्तते स्नेहसागरे ॥ १२५ ॥  
त्वत्प्रमादाङ्गैरवोऽहं कालोऽहं जगदीश्वरः ।  
भुङ्क्तुमुक्तिप्रदाता च यागयोगो दिगम्बरः ॥ १२६ ॥  
इदानीं सर्वविद्यानां दीक्षार्थं चक्रमण्डलम् ।  
अकालकुलहीनञ्चाकडमञ्च कुलाकुलम् ॥ १२७ ॥  
ताराचक्रं राशिचक्रं कूर्मचक्रं तथाऽपरम् ।  
शिवचक्रं विष्णुचक्रं ब्रह्मचक्रं त्रिलक्षणम् ॥ १२८ ॥  
देवचक्रं ऋणिधनि-युक्चक्रं ततः परम् ।  
वामाचक्रं चतुष्टयं सूक्ष्मचक्रं ततो वद ॥ १२९ ॥  
तथा कथय चक्रञ्च कथय त्वं मयि प्रिये ! ।  
एतदुत्तीर्णमन्त्रञ्च ये गृह्णन्ति नरोत्तमाः ॥ १३० ॥  
तेषामसाध्यं जगति न कुत्र वर्त्तते ध्रुवम् ।  
किमन्यत् कथयामीह देवतादर्शनं लभेत् ॥ १३१ ॥  
सर्वत्रगामी स भवेत् चक्रराजप्रसादतः ॥ १३२ ॥  
सर्वचक्रविचारञ्च न जानाति द्विजोत्तमः ।  
यन्नाम्नेति तद्विचार्यं देवताप्रीतिकारकम् ॥ १३३ ॥  
ताराशुद्धिं वैष्णवानां कौष्ठशुद्धिं शिवस्य च ।  
राशिशुद्धिं त्रैपुरस्य गोपालेऽकडमः स्मृतः ॥  
अकडमो वामने च गणेशे हरचक्रतः ॥ १३४ ॥  
कौष्ठचक्रं वराहस्य महालक्ष्मणाः कुलाकुलम् ।  
नामादिचक्रे सर्वेषां भूतचक्रे तथैव च ॥ १३५ ॥



त्रैपुरं तारचक्रं च शुद्धं मन्त्रं भजेद्बुधः ।  
 वैष्णवं राशिसशुद्धं शैवञ्चाकडमे स्मृतम् ॥ १३६ ॥  
 कालिकायाश्च ताराया हरचक्रं शुभं भवेत् ।  
 चण्डिकाया भवेत् कोष्ठे गोपाले ऋक्षचक्रकम् ॥ १३७ ॥  
 हरचक्रे सर्वमन्त्रान् ऋणाधिक्येन चाश्रयात् ।  
 ऋणाधिक्ये शुभं विद्याद्वनाधिक्ये च नो विधिः ॥ १३८ ॥  
 दोषान् संशोध्य गृह्णीयान्मध्यदेशे तु साधकः ।  
 पिष्टमाहकृतं नाम त्यक्त्वा शर्मादिदेवकान् ॥ १३९ ॥  
 श्रीवर्णञ्च ततो विद्याचक्रेषु यीजयेत् क्रमात् ।  
 क्रमेण शृणु तत्सर्वं शुभाशुभफलप्रदम् ॥ १४० ॥  
 जापकानां भावुकानां शुद्धिः सिध्यति तत्क्षणात् ।  
 मन्त्रमात्रं प्रसिध्येत भक्तानामिति निश्चयः ॥ १४१ ॥  
 कुलीनं कुलजातानां ध्यानमार्गार्थगामिनाम् ।  
 महाविद्या महामन्त्रं संशुद्धमपि सिध्यति ॥ १४२ ॥  
 सिद्धमन्त्रप्रकरणे यदुक्तञ्च महेश्वर ! ।  
 तत्सर्वं यदि गृह्णाति महामन्त्रात्तमोत्तमम् ॥ १४३ ॥  
 अष्टसिद्धिप्रभावः स्यात् सायुज्यपदमाप्नुयात् ।  
 चक्रं षोडशसारञ्च सर्वेषां मन्त्रसिद्धये ॥ १४४ ॥  
 विचार्यै सर्वमन्त्रञ्च मन्त्रयागोदितं हितम् ।  
 आदौ बालाभैरवौषामकडमान्तं मया ॥ १४५ ॥  
 कुमारीललितादेव्याः कुरुकुल्वादिसाधने ।  
 श्रीचक्रं फलदं प्रोक्तं सर्वचक्रफलप्रदम् ॥ १४६ ॥  
 योगिन्यादिसाधने चताराचक्रं महत्फलम् ।  
 उन्नतभैरवोविद्याद्यादिसाधननिर्मले ॥ १४७ ॥  
 राशिचक्रं कोटिफलं नानारत्नप्रदं शुभम् ।  
 प्रत्यङ्गिरासाधने च उल्काविद्यादिसाधने ॥ १४८ ॥

शिवचक्रं महापुण्यं सर्वचक्रफलप्रदम् ।  
 कालिकाचर्विकामन्त्रे विमलाद्यादिसाधने ॥ १४८ ॥  
 सम्पत्प्रदाभैरवीणां मन्त्रग्रहणकर्मणि ।  
 विष्णुचक्रे कोटिशतं पुण्यं प्राप्नोति मानवः ॥ १५० ॥  
 छिन्नादिकश्रीविद्यायाः कृत्यादेव्याश्च साधने ।  
 नक्षत्रविद्याकामाख्या-ब्रह्माख्यादिसुसाधने ॥ १५१ ॥  
 ब्रह्मचक्रं महापुण्यं सर्वविद्याफलं लभेत् ।  
 कोटिजाप्येन यत् पुण्यं ग्रहणात्तत्फलं लभेत् ॥ १५२ ॥  
 वज्रज्वालामहाविद्या-साधने मन्त्रजापने ।  
 गृह्यकालीसाधने च कुब्जकामन्त्रसाधने ॥ १५३ ॥  
 देवचक्रं शुभं प्रोक्तं वाक्यमिद्धिप्रदायकम् ।  
 कामेश्वरी अट्टहासा-मन्त्रसाधनकर्मणि ॥ १५४ ॥  
 राक्षसीमन्दिरादेवी-मन्दिरामन्त्रसाधने ।  
 ऋषीधनीमहाचक्रं विचार्य सर्वसिद्धिदम् ॥ १५५ ॥  
 श्रोविद्याभुवनेशानौ भैरवीसाधने तथा ।  
 पृथ्वीकुलावतीवीणा-साधने वामनीमनोः ॥ १५६ ॥  
 उल्काचक्रं महापुण्यं राजत्वफलदं शुभम् ।  
 शिवादिनायिकामन्त्रे बालाचक्रं सुखप्रदम् ॥ १५७ ॥  
 फेत्कारौमन्त्रजाप्ये च उड्डोयानेश्वरीमनोः ।  
 चतुश्चक्रं शतफलं महामन्त्रफलप्रदम् ॥ १५८ ॥  
 द्राविण्यौदोघजङ्घादि-ज्वालामुख्यादिसाधने ।  
 नारसिंहोसाधने च सूक्ष्मचक्रं फलोद्भवम् ॥ १५९ ॥  
 हरिणोर्माह्निकान्या-योनीसाधनकर्मणि ।  
 वैष्णवे च तथा शैवे देवीमन्त्रे च भैरव ! ॥ १६० ॥  
 अकथं महाचक्रं विचार्य यत्पूर्वकम् ।  
 यो गृह्णाति महामन्त्रं स शिवो नात्र संशयः ॥ १६१ ॥  
 इति इन्द्रयामल उत्तरतन्त्रे महामन्त्रोद्घोषने सर्वचक्रानुष्ठाने महागुरुप्रकरणे  
 भावनिर्णये भैरवी-भैरवसंवादे द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः पटलः ।

दीक्षायां चक्रविचारः ।

भैरव्युवाच ।—

अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि कालाकालविचारकम् ।  
यदाश्रितो महावीरो दिव्यो वा पशुभाववान् ॥ १ ॥  
चक्रराजं प्रविचार्य सिद्धमन्त्रं न चालयेत् ।  
प्रबलस्य प्रचण्डस्य प्रासादस्य महामनोः ॥ २ ॥  
शक्तिहृदादिमन्त्राणां सिद्धादीन्नेव शोधयेत् ।  
वाराहार्कनृसिंहस्य सिद्धादीन्नेव शोधयेत् ॥ ३ ॥  
मालामन्त्रस्य कालस्य चन्द्रचूडस्य सन्मनोः ।  
नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादीन्नेव शोधयेत् ।  
विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥  
सूर्यमन्त्रस्य योगस्य कृत्यामन्त्रस्य शङ्कर ! ।  
शशुवोजस्य देवस्य सिद्धादीन्नेव शोधयेत् ॥ ५ ॥  
चक्रेश्वरस्य चन्द्रस्य वरुणस्य महामनोः ।  
कालीतारादिमन्त्रस्य सिद्धादीन्नेव शोधयेत् ॥ ६ ॥  
तथापि शोधयेन्मन्त्रं प्रशंसापरमेव तत् ।  
यत्र प्रशंसापरमं तत्कार्यं देवतं स्मृतम् ॥ ७ ॥  
प्रशंसा यत्र नास्त्येव तत्कार्यं नापि कारयेत् ।  
अत्यन्तफलदं मन्त्रं गृह्णीयात् कुलरक्षणात् ॥ ८ ॥  
धनिमन्त्रं न गृह्णीयादकुलाच्च तथैव च ।  
गृहीत्वा निधनं याति कोटिजाप्ये न सिध्यति ॥ ९ ॥  
मननं विघ्नविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात् ।  
यतः करोति संसिद्धिर्मन्त्र इत्युच्यते ममा ॥ १० ॥  
प्रणवाद्यं न दातव्यं मन्त्रं शूदाय सर्वथा ।  
आत्ममन्त्रं गुरोर्मन्त्रं मन्त्रञ्चाजपसंज्ञकम् ॥ ११ ॥

पितुर्मन्त्रं तथा मातुर्मन्त्रसिद्धिप्रदं शुभम् ।  
 शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ १२ ॥  
 अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।  
 न भवन्ति श्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥ १३ ॥  
 देवोदीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सङ्गतिः ।  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥ १४ ॥  
 विचारं चक्रसारस्य करणीयमवश्यकम् ।  
 अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १५ ॥  
 तस्माद्दीक्षा प्रयत्नेन सदा कार्य्या च तान्त्रिकात् ।  
 दीक्षा पूर्वादिने कुर्यात् सुविचारं प्रयत्नतः ॥ १६ ॥  
 तत्रकारं प्रयत्नेन कार्य्यं पर्वतपूजितः [पर्वपूजारतः] ।  
 आदावकडमे सिद्धिमन्त्रं सञ्चारयेद् बुधः ॥ १७ ॥  
 रेखाद्वयं पूर्वपरं मध्ये रेखाद्वयं लिखेत् ।  
 चतुष्कोणे चतुरेखा-कडमं चक्रमण्डलम् ॥ १८ ॥  
 भ्रामयित्वा महावृत्तं निर्माय वर्यमालिखेत् ।  
 अकारादिचकारान्तान् क्लीवहीनान् लिखेत्ततः ॥ १९ ॥  
 एकैकक्रमतो लेख्यान् मेषादिषु हृषान्तकान् ।  
 वामावर्त्तेन गणयेत् क्रमशो वीरवत्सभ ! ॥ २० ॥  
 तन्त्रमार्गेण गणयेन्नामादिवर्णकादिमान् ।  
 मेषादितोऽपि मीनान्तं क्रमशः शास्त्रपण्डितः ॥ २१ ॥  
 सिद्धसाध्यसुसिद्धारीन् पुनः सिद्धादयः पुनः ।  
 नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके ॥ २२ ॥  
 सुसिद्धस्त्रिसप्तके ( स्यात् ) रत्ने वेदाष्टद्वादशे रिपुः ।  
 एतत्ते कथितं देव ! अकडमादिमुत्तमम् ॥ २३ ॥  
 पद्माकारं महाचक्रं दलाष्टकसमन्वितम् ।  
 अग्नावर्णद्वयं पूर्वं द्वितीये च द्वितीयकम् ॥ २४ ॥

ढतीये कर्णयुग्मञ्च चतुर्थे नासिकाहयम् ।  
 पञ्चमे नयनं प्रोक्तं षष्ठे श्रीष्ठाधरं तथा ।  
 सप्तमे दन्तयुग्मञ्च अष्टमे षोडशस्वरम् ॥ २५ ॥  
 कवगञ्च पूर्वदले द्वितीये च चवर्गकम् ।  
 ढतीये च टवर्गञ्च चतुर्थे च तवर्गकम् ॥ २६ ॥  
 पवर्गं पञ्चमे प्रोक्तं यवान्तं षष्ठपत्रके ।  
 सप्तमे शषसान् लिख्य ल-क्षमष्टमके पदे ॥ २७ ॥  
 सुखं राज्यं धनं विद्यां यौवनायुषमेव च ।  
 विचार्य चक्रमाप्नोति पुत्रत्वञ्च स्वजीवनम् ॥ २८ ॥  
 स्वीयनामाक्षरं तत्र देवनामाक्षरं तथा ।  
 एकस्थानं युगस्थानं विरोधं द्विविधं स्मृतम् ॥ २९ ॥  
 जीवनं मरणं तत्र अकारादिसुपत्रके ।  
 लिखित्वा गणयेन्मन्त्री मरणं वर्जयेत् सदा ॥ ३० ॥  
 यत्रास्ति मरणं तत्र जीवनं नास्ति निश्चितम् ।  
 परस्परविरोधेन सिद्धमन्त्रञ्च मूलदम् ।  
 जीवने जीवनं ग्राह्यं सर्वत्र मरणं त्यजेत् ॥ ३१ ॥  
 कुलाकुलस्य भेदं हि वक्ष्यामि मन्त्रिणांमह ।  
 वायुग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशान्क्षपयः क्रमात् ॥ ३२ ॥  
 पञ्च ऋत्वाः पञ्च दीर्घां विन्दन्ताः सन्धिसम्भवा ।  
 कादयः पञ्चशः ष-क्ष-लसहान्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ३३ ॥  
 साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्यापि तदक्षरम् ।  
 यद्येकभूतदैवत्यं जानीयात् सकुलं हितम् ॥ ३४ ॥  
 भीमस्य वारुणं मित्रं आग्नेयस्यापि मारुतम् ।  
 पार्थिवानाञ्च सर्वेषां शत्रुराग्नेयमश्वसाम् ॥ ३५ ॥  
 ऐन्द्रवारुणयोः शत्रुमारुतः परिकीर्तितः ।  
 पार्थिवे वारुणं मित्रं तैजसं शत्रुरौरितः ॥ ३६ ॥

नाभसं सर्वमित्रं स्याद्विरुद्धं नैव शीलयेत् ।  
रेखाष्टकं हि पूर्वाग्रं रेखैकादश मध्यतः ॥ ३७ ॥  
दक्षिणोत्तरभागेन दक्षिणावधिमालिखेत् ।  
कुलाकुलञ्च कथितं ताराचक्रं पुनः शृणु ॥ ३८ ॥  
दक्षिणोत्तरदेशे तु रेखाचतुष्टयं लिखेत् ।  
दश रेखाः पश्चिमाग्राः कर्त्तव्या वीरवन्दित ! ॥ ३९ ॥  
अश्विन्यादिक्रमेणैव विलिखेत्तारकाः पुनः ।  
वक्ष्यमाणक्रमेणैव तन्मध्ये वर्णकान् लिखेत् ॥ ४० ॥  
युग्ममेकं तुरीयञ्च वेदमेकैकयुग्मकम् ।  
एकं युग्मं तथैकञ्च युगलं युगलं युगम् ॥ ४१ ॥  
एकं युग्मं द्वितीयञ्च चन्द्रनेत्रं विधिं विधुम् ।  
चन्द्रयुग्मं चन्द्रयुग्मं रामवेदं गृहे शुभे ॥ ४२ ॥  
वर्णाः क्रमात् स्वराश्चैव रेवत्यश्विगतावुभौ ।  
अकारद्वयमश्विन्या देवतागणसम्भवा ॥ ४३ ॥  
इकारं भरणी सत्यं कृत्स्नमुस्वरकृत्तिका ।  
राक्षसी कृत्तिका भूमौ सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ ४४ ॥  
नासिकागण्डमन्त्रञ्च रोहिणी शवरूपिणी  
श्रीष्टमध्ये सृगशिरा देवता परिकीर्त्तता ॥ ४५ ॥  
अधरान्तमार्द्रया च मानुषं सर्वलक्षणम् ।  
दन्तयुग्मं पुनर्वस्त्राच्छादितं मानुषं प्रियम् ॥ ४६ ॥  
कः पुथा देवता ज्ञेया खगाश्लेषा च राक्षसी ।  
मघा वक्षे षडन्ता च तथा च पूर्वफल्गुनी ॥ ४७ ॥  
दन्तोत्तराफल्गुनी च मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ।  
पत्रहस्ता देवगणा च ठ-चित्रा च राक्षसी ॥ ४८ ॥  
उ-स्ती देवरसनी विशाखा च न राक्षसी ।  
तान्यदानुराधया च साभिता देवनायिका ॥ ४९ ॥

य ज्येष्ठा राक्षसो ज्ञेया स मूलेन प-राक्षसी ।  
 पृष्ठाषाढा मानुषाणो वकारः क्षयमालिनी ।  
 भोत्तराषाढया मर्त्या मकारः श्रवणा मता ॥ ५० ॥  
 धनिष्ठा यश्च रेफः स्त्री-लक्ष्या शतभिषा तथा ।  
 वशपूर्वभाद्रपदा मनुजाः परिकीर्त्तिताः ॥ ५१ ॥  
 तान्युत्तरभाद्रपदा मानुषी मङ्गलोद्भवा ।  
 आनालक्षा रेवती च देवकन्या प्रकीर्त्तिता ॥ ५२ ॥  
 स्वजाती परमा प्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु ।  
 रक्षोमानुषयोर्नाशो वैरं दानवदेवयोः ॥ ५३ ॥  
 जन्म सम्पत् विपत् क्षेमः प्रत्यरिः साधको बधः ।  
 मित्र परममित्रञ्च गणयेच्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥  
 वर्जयेज्जन्मनक्षत्रं द्वितीयं पञ्चमसकम् ।  
 षडष्टनवभद्राणि युगञ्च युग्मकं तथा ॥ ५५ ॥  
 यदौह निजनक्षत्रं न जानाति द्विजोत्तमः ।  
 नामाद्यक्षरमन्भूतं स्वतारमविगोचकम् ॥ ५६ ॥  
 विनोय गणयेन्मन्त्रो शुभाशुभविचारवान् ।  
 प्रादक्षिण्येन गणयेत् साधकाद्यक्षरात् सुधीः ॥ ५७ ॥  
 इत्येतत् कथितं नाथ ! ममात्मा पुरुषेश्वर ! ।  
 कुलाकुलमनन्ताख्य ताराचक्रं मनोर्गुणम् ॥ ५८ ॥  
 नारामन्त्रं प्रदीपाभं रत्नभाण्डस्थितामृतम् ।  
 एतद्विचारे महतीं सिद्धिमाप्नोति मानवः ॥ ५९ ॥  
 राशिचक्रं प्रवक्ष्यामि सिद्धिलक्षणमुत्तमम् ।  
 क्रमेण देया युगला रेखा पूर्वापरोद्गमा ॥ ६० ॥  
 तन्मध्यतो द्वयं हृद्याद्रेखाग्निदक्षिणे ततः ।  
 अग्निनैर्ऋतिवायवोयशःक्रमेण रेखयेत् ॥ ६१ ॥  
 विलखेन्मेषराश्यादि-मीनान्तं सर्ववर्णकान् ।

कन्यागृहगतान् शादि-वर्णानालिख्य यत्नतः ॥ ६२ ॥  
 गणयेत् साधकश्रेष्ठो लग्नाद्यानव्ययान्तकान् ।  
 स्वराटिवेटकोष्ठानामनुकूलान् भजेन्नन् ॥ ६३ ॥  
 राशीनां शुद्धता ज्ञेया त्यजेत् शत्रुं मृतिं व्ययम् ।  
 स्वराशर्मन्त्रराश्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः ॥ ६४ ॥  
 साध्याद्यक्षरराश्यन्तं गणयेत् साधकाक्षरात् ।  
 एकं वा पञ्च नवमं बान्धवं परिकीर्तितम् ॥ ६५ ॥  
 द्विषद्दशमसंस्था च सेवकाः परिकीर्तिताः ।  
 रामरुद्राश्च भुनयः पोषकाः परिकीर्तिताः ॥ ६६ ॥  
 सूर्याष्टवेदयुक्तास्तु घातकाः सर्वदोषदाः ॥ ६७ ॥  
 शक्त्यादौ तु महादेव ! कुलचूडामणिर्यतिः ।  
 वर्जयेत् षष्ठगेहञ्च अष्टमं द्वादशं तथा ॥ ६८ ॥  
 लग्नं धनं भ्रातृबन्धु-पुत्रशत्रुकलत्रकाः ।  
 मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः ॥ ६९ ॥  
 नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं दिशेत् ।  
 वैष्णवे तु महामात्रा-स्थाने बन्धुः प्रकीर्तितः ॥ ७० ॥  
 कूर्मचक्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभफलात्मकम् ।  
 यज्ज्ञात्वा सर्वशास्त्राणि जानाति पण्डितोत्तमः ॥ ७१ ॥  
 अभेद्यभेदकं चक्रं शृणुष्वानुरपूर्वकम् ।  
 कूर्माकारं महाचक्रं चतुष्पादसमावृतम् ॥ ७२ ॥  
 मुखे स्वरा दक्षपादे कवर्गं वामपादके ।  
 चवर्गं कीर्तितं पश्चादधःपादे टवर्गकम् ॥ ७३ ॥  
 तटधस्तु तवर्गं स्यादुदरे च पवर्गकम् ।  
 यवान्तं हृदये प्रोक्तं सहान्तं पृष्ठमध्यके ॥ ७४ ॥  
 लाङ्गूले श्क्रवीजञ्च क्षकारं लिङ्गमध्यके ।  
 लिखित्वा गणयेन्नन्ती चक्रं कलिमलापहम् ॥ ७५ ॥



स्वरलाभं कवर्गं श्रीश्ववर्गं च विवेकदम् ।  
 टवर्गं राजपदवीं तवर्गं धनवान् भवेत् ॥ ७६ ॥  
 लदरे सर्वनाशः स्याद्दृढये बहुदुःखदम् ।  
 पृष्ठे च सर्वसन्तोषं लाङ्गूले मरणं ध्रुवम् ॥ ७७ ॥  
 वैभवं पृष्ठदेशे तु दुःखञ्च वामपादके ।  
 विरुद्धद्वयलाभे तु न कुर्याच्चक्रचिन्तनम् ॥ ७८ ॥  
 विरुद्धैके धर्मनाशो गतदोषे च मारणम् ।  
 यत्र देवाक्षरञ्चास्ति तत्र चेन्निजवर्णकम् ।  
 विरुद्धञ्चेत्यजेत् शत्रु-मध्यमन्त्रं विचारयेत् ॥ ७९ ॥  
 पृथक्स्थाने यदि भवेद्वर्णमाला महेश्वर ! ।  
 यदि तस्मैख्यभावः स्यात् सौख्यं नापि विवर्जयेत् ॥ ८० ॥  
 विभिन्नगेहे दोषयेत् शुभमन्त्रञ्च संत्यजेत् ।  
 इति ते कथितं देव ! दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ ८१ ॥  
 यः शोधयेच्चरेद्वर्णं मन्त्रमालां महेश्वर ! ।  
 यदि शुध्यति चक्रे तत् मन्त्रसिद्धिप्रदं शुभम् ॥ ८२ ॥

भैरव्युवाच ।—

शिवचक्रम् ।

शिवचक्रं प्रवक्ष्यामि महाकालकुलेश्वर ! ।  
 अवश्यं सिद्धिमाप्नोति शिवचक्रप्रभावतः ॥ ८३ ॥  
 षट्कोणमध्यदेशे तु चतुरस्रं लिखेद् बुधः ।  
 तन्मध्ये विलिखेच्चारु चतुरस्रं सवर्णकम् ॥ ८४ ॥  
 मस्तकस्थत्रिकोणे तु शिवसंस्थानमन्त्रकम् ।  
 दक्षिणावर्त्तमानेन गणयेत् सर्वमन्त्रकम् ॥ ८५ ॥  
 विष्णुस्थाने स्वमन्त्रञ्च द्वितीयं च त्रिकोणके ।  
 त्रिकोणे च तृतीये च ब्रह्मसंस्थानमन्त्रकम् ॥ ८६ ॥  
 शक्तिमन्त्रादिसंस्थानं त्रिकोणाधोमुखे तथा ।

नायिकामन्त्रसंस्थानं त्रिकोणाधोमुखे तथा ॥ ८७ ॥  
 नायिकामन्त्रसंस्थानं तदेव दुर्लभं शुभम् ।  
 तद्रूढं चक्रकोणे च भूतसंस्थानमन्त्रकम् ॥ ८८ ॥  
 शिवाधो यत्तमन्त्रस्य संस्थानमतिदुर्लभम् ।  
 विष्णुब्रह्मसन्धिदेशे महाविद्यापदं ध्रुवम् ॥ ८९ ॥  
 स्वरस्थानं तथा वर्ण-स्थानं शृणु महाप्रभो ! ।  
 अमा[आ]वर्षद्वयं शैवे कवर्गञ्च सविन्दुकम् ॥ ९० ॥  
 विष्णौ नेत्रं चवर्गञ्च टवर्गं ब्रह्मणि श्रुतम् ।  
 तवर्गं नामिकाशक्तौ सर्वमन्त्रार्थचेतनम् ॥ ९१ ॥  
 नायिकायां पवर्गञ्च न युगं परिकीर्तितम् ।  
 भूते यवान्तं विजिखेढोष्ठाधरममन्वितम् ॥ ९२ ॥  
 प्रणवं यत्तयन्त्रे च शकारं परिकीर्तितम् ।  
 अक्षोदन्तं पिशाचे च प्रयुक्तं विन्दुभूषितम् ॥ ९३ ॥  
 शिरो वीजं देवमन्त्रे सकारञ्च सविन्दुकम् ।  
 महाविद्यादिसंस्थाने लक्षवर्णं प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥  
 इति ते कथितं शम्भो ! शृणु वर्णाङ्गवर्त्तनम् ।  
 शिवे एकविंशतिश्च द्वाविंशद्विष्णुकोणके ॥  
 ब्रह्मणि षोडशाद्यञ्च शक्तिकूटे युगाष्टकम् ॥ ९५ ॥  
 नायिकायां वज्रबाणं भूतेश ! शुद्धिरेव च ॥ ९६ ॥  
 यत्ने च चन्द्रवेदस्य पिशाचेऽष्टवसुः स्मृतः ॥ ९७ ॥  
 सर्वदेवे बाणवेदं कृत्यायां षष्ठषष्ठकम् ।  
 मध्ये षष्ठं हुताशञ्च महाविद्यागृहे शुभे ॥ ९८ ॥  
 साधकस्य च साध्यस्यैकाक्षरं साध्यमन्दिरे ।  
 साधकाङ्गमूर्द्धदेशे साध्याङ्गं गणयेद् बुधः ॥ ९९ ॥  
 भुञ्जुगमं शिरःप्रोक्तं विष्णौ वामाष्टकं तथा ।  
 ऋषिचन्द्रं विधौ प्रोक्तं शक्तौ रामाष्टकं तथा ॥ १०० ॥

नायिकायां वेदचाणं भूतेऽर्वनवमं तथा ।  
 यत्ने युग्मं चतुर्थञ्च पिशाचे वज्रकाष्टकम् ॥ १०१ ॥  
 शक्ती वशङ्कती ज्ञेयी कृत्यायां मुनिषष्ठकम् ।  
 अनामाक्षरदेहस्थमक्षरं द्विगुणं स्मृतम् ॥ १०२ ॥  
 साध्याङ्गेन योजयित्वा पूरयेत् षष्ठपञ्चमेः ।  
 तद् गेहे ग्राहयेद् यत्नात् देवताद्यक्षरं यथा ॥ १०३ ॥  
 एकशेषस्थितं वर्णं कुर्यान्नापि विवेचनम् ।  
 शुद्धं तद्वि विजानीयाद्विचारमन्यतोऽपि च ॥ १०४ ॥  
 षष्ठाङ्गेन च वेदाङ्गं तथाच देववर्णकम् ।  
 पश्चात् कृत्वा तदङ्गञ्च हरेद्रामेण वल्लभ ! ॥  
 यदि साध्याङ्गविस्तीर्णं तथा नैव शुभं भवेत् ॥ १०५ ॥  
 साधकाङ्गञ्च विस्तीर्णं यदि स्याज्जायते गृहे ।  
 तदा सर्वकुलेशः स्याद्द्रुद्रश्रवणमंशयः ॥ १०६ ॥  
 द्विगुणं देवतावर्णं साधकाङ्गेन योजयेत् ।  
 वर्णसंख्याङ्गमालिख्य गणयेत् साधकोत्तमः ॥ १०७ ॥  
 रसबाणेन सम्पूर्य्यं संहरेत् रससंख्यया ।  
 आत्माङ्गमिश्रितं पश्चाद् यदि किञ्चिन्न तिष्ठति ॥ १०८ ॥  
 स्त्रीयाभिधानकाङ्गस्य द्विगुणञ्चापि योजयेत् ।  
 पश्चादनलमंख्याभिर्हरेत् सौख्यार्थिसुक्तये ॥ १०९ ॥  
 अङ्गं बहुतरं ग्राह्यं साधकस्य सुखावहम् ।  
 न ग्राह्यं साध्यविस्तीर्णमतिशास्त्रार्थनिश्चयम् ॥  
 विचारादस्य चक्रस्य राजत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ११० ॥  
 समानाङ्गेन गृह्णीयाद् गुण्याङ्गं वर्जयेदिह ।  
 अवश्यं चक्रमेवं हि गोपनीयं सुरासुरैः ॥ १११ ॥  
 विष्णुचक्रम् ।  
 विष्णुचक्रं प्रवक्ष्यामि चक्राकारं सुगोपनम् ।

सर्वसिद्धिप्रदं शुद्धं चक्रं कृत्वा फलप्रदम् ॥ ११२ ॥  
 शृणु नाथ ! महाविष्णोः स्थानमङ्गलदायकम् ।  
 लक्ष्मोप्रियमङ्गमयं नवकोणं महाप्रभु(भ)म् ॥ ११३ ॥  
 तदूर्ध्वं च तमालिख्य तदूर्ध्वंऽष्टग्रहं शुभम् ।  
 चतुष्कोणाकारगृहं सन्धौ शून्याष्टकं लिखेत् ॥ ११४ ॥  
 तदूर्ध्वं च तमालिख्य चक्रमेतद्वनेश्वर ! ।  
 पूर्वं महेन्द्राभरणमूर्ध्वदेशोल्लसत्करम् ॥ ११५ ॥  
 सुनिरामखचन्द्राद्यमङ्गं सर्वसमृद्धिदम् ।  
 दक्षिणे वङ्गिभरणं रसवेदस्वयुग्मकम् ॥ ११६ ॥  
 तदधो रामचक्रञ्च सप्तपटसु च रामकम् ।  
 तदधो निःकृते स्वर्गे युगाङ्गशून्यदेवकम् ॥ ११७ ॥  
 केवलाधो जलेशस्य मन्दिरं सुमनोहरम् ।  
 रामेषु शून्यवाणाढ्यं तदेव वायुमन्दिरम् ॥ ११८ ॥  
 भुजहस्तस्वरसाढ्यं चक्रेदमीश्वरात्मकम् ।  
 नवकोणं मध्यदेशे पञ्चाङ्गभागमालिखेत् ॥ ११९ ॥  
 तन्मध्ये रचयेद्वर्णं पञ्चगैहे त्रिकोणके ।  
 इन्द्राधो विलिखेद्दीरो वर्णमाद्यञ्च सप्तकम् ॥ १२० ॥  
 भागे दक्षिणकोणेषु ऋकारादङ्कं लिखेत् ।  
 ककारादि टकारान्तं तदधो विलिखेद् बुधः ॥ १२१ ॥  
 तद्वामे ठादिमान्तञ्च वर्णलक्षणकारणम् ।  
 तदूर्ध्वं मादिवर्णञ्च चक्रञ्च गणयेत्ततः ॥ १२२ ॥  
 पूर्वकोणपतिः शक्रो द्वितीयेऽथो यमानलौ ।  
 निःकृतिर्वरुणश्चैव तृतीयमन्दिरेश्वरम् ॥ १२३ ॥  
 चतुर्थाधिपतिर्वायुः कुबेरो नाथ ! इत्यपि ।  
 पद्मिगेहस्याधिपतिरीशो विश्वविदांवरः ॥  
 पञ्चकोणे प्रतिष्ठान्तं पञ्चभूताशयस्थिताः ॥ १२४ ॥

प्राणे सिद्धिमवाप्नोति चापाने व्याधिपीडनम् ।  
 समाने सर्वसम्पत्तिक्रदाने निर्धनं भवेत् ॥  
 व्याने च ईश्वरप्राप्तिरेतस्मिन् लक्षणं शुभम् ॥ १२५ ॥  
 पूर्वगेहे महामन्त्रं मन्त्रत्यागं करोति यः ।  
 स तावत् साधकश्रेष्ठो विष्णुमार्गेण शङ्कर ! ॥ १२६ ॥  
 विशिषं शृणु यत्नेन सावधानावधारय ।  
 सप्ताक्षरं त्र्यक्षरञ्च दशमाक्षरमेव च ॥ १२७ ॥  
 पूर्वगेहे यदि भवेदाद्याक्षरसमन्वितम् ।  
 तदा भवति सिद्धिश्च सर्वमेवमप्रकारकम् ॥ १२८ ॥  
 षष्ठाक्षरं वेदवर्णं विंशत्यर्णं महामनुम् ।  
 आन्नायाद्याक्षरं व्याप्तं सफलं गणयेद्बुधः ॥ १२९ ॥  
 तथास्मिन् यमगेहे च मन्त्रं सप्ताक्षरं शुभम् ।  
 षष्ठाक्षरञ्च गणयेत्त्रिंशदक्षरमेव च ॥ १३० ॥  
 आद्याक्षरसमायुक्तं साध्यसाधकयोरपि ।  
 एकस्यापि च लाभे च मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ॥  
 मन्त्राक्षरादिलाभञ्च अवश्यं गणयेद्विद्वि ॥ १३१ ॥  
 नेर्कृते च जलेशस्य द्वाक्षरञ्च नवाक्षरम् ।  
 शून्यदेवाक्षरं नाद्य ! गणनीयं विचक्षणैः ॥ १३२ ॥  
 तथाऽत्र अक्षरं मन्त्रं पञ्चा(र्ण)क्षमनुना तथा ।  
 पञ्चाशदक्षरं मन्त्रं मन्दिरे गणयेत् शुभम् ॥ १३३ ॥  
 वायुकोणे कुबेरस्य मन्दिरे गणयेत्तथा ।  
 द्वाविंशत्यक्षरं मन्त्रं शून्यषष्ठमनुन्तथा ॥ १३४ ॥  
 पञ्चाक्षरं तारकायाः शिवे ! पञ्चाक्षरं तथा ।  
 सुशस्त(सप्त)मन्त्रग्रहणे सफलं परिकीर्तितम् ॥ १३५ ॥  
 ईशानपञ्चकोणे च सफलञ्च नवाक्षरम् ।  
 दृष्टाक्षरं हि विद्याया गणनाया हितं सुधीः ॥

एतदुक्तञ्च गणयेद्विरुद्धं नैव शीलयेत् ॥ १३६ ॥

प्राणमित्तं समानञ्च समानो व्यानवान्भवः ।

एतत् स्थितञ्च गृह्णीयाद्दोषभाक् स भवेत् क्वचित् ॥ १३७ ॥

एकदैव प्रिये प्रीतिरेकगेहे तथा प्रियम् ।

गृह्णीत्वा विष्णुपदवीं प्राप्नोति मानवः क्षणात् ॥ १३८ ॥

यदि चक्रं न विचार्यं रिपुमन्त्रं सदाऽभ्यसेत् ।

निजायुषा क्लृप्त्येव मूको भवति निश्चितम् ॥ १३९ ॥

विचार्यं यदि यत्नेन सर्वचक्रे प्रियं हितम् ।

महामन्त्रं महादेव ! लघु सिध्यति भूतले ॥ १४० ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सर्वचक्रानुष्ठाने सिद्धमन्त्रप्रकरणे

भावनिर्यये भैरव-भैरवीसंवादे तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

## अथ चतुर्थः पटलः ।

भैरव्युवाच ।—

अथ वक्ष्यामि चक्रान्यत् शृणु भैरव ! सादरम् ।

येन हीना न सिध्यन्ति महाविद्यावरप्रदाः ॥ १ ॥

ब्रह्मचक्रम् ।

तव चक्रं ब्रह्मणा च ब्रह्मचक्रमुदाहृतम् ।

यस्य ज्ञानात् स्वयं ब्रह्मा स्वबलेन भवं सृजेत् ॥ २ ॥

अकालमृत्युहरणं परं ब्रह्मपदं व्रजेत् ॥ ३ ॥

चतुष्कोणे चतुष्कोणं तन्मध्ये च चतुश्चतुः ।

मध्यगेहं वेष्टयित्वा इष्टं मन्दिरमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अष्टकोणे महादेव ! षोडशस्वरमालिखेत् ।

अष्टकोणं वेष्टयित्वा वृत्तयुग्मं लिखेत् सुधीः ॥ ५ ॥

मध्यगेहे चतुष्कोणे कादिखान्तञ्च वर्णकम् ।

दक्षिणावर्त्तयोगेन विलिखेत् साधकोत्तमः ॥ ६ ॥

तदूर्ध्वं स्वर्गहे चाङ्गं विलिख्य गणयेत् सुधीः ।  
 चतुर्गंहस्योर्ध्वदेशे युग्मगेहे क्रमास्त्रिखेत् ॥ ७ ॥  
 साध्यस्य साधकस्यापि मेषादिकन्यकान्तकम् ।  
 अथो लिखेत्तुलाद्यन्तमिति राश्यादिकं शुभम् ॥ ८ ॥  
 ततो लिखेद्देहदत्ते युग्मगेहे महेश्वर ! ।  
 तारकानाशिनी ताराद्यन्तान् दक्षिणतो लिखेत् ॥ ९ ॥  
 वर्णक्रमेण विलिखेद्देहमन्दिरमण्डले ।  
 ऊर्ध्वधः क्रमशो लेख्यमङ्गतारं सुरेश्वर ! ॥  
 ततो हि गणयेन्मन्त्री योजयित्वा क्रमेण तु ॥ १० ॥  
 सुखं राज्यं धनं वृद्धिं कलहं कालदर्शनम् ।  
 सिद्धिं ऋद्धिमष्टकोणे विदित्वा च शुभाशुभम् ॥ ११ ॥  
 गणयेद्राशिनक्षत्रं मनुं चाहं विवर्जयेत् ।  
 सुखे सुखमवाप्नोति राजे राज्यमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥  
 वृषे वृषो मिथुनञ्च कर्कटः सिंह एव च ।  
 कन्यका देवता ज्ञेया नक्षत्राणि पुनः शृणु ॥ १३ ॥  
 ऊर्ध्वयुग्मगृहस्यापि दक्षवामे च भागके ।  
 नक्षत्राणि सन्ति यानि तानि शृणु महाप्रभो ! ॥ १४ ॥  
 अश्विनी च मृगशिराऽश्लेषा हस्ताऽनुराधिका ।  
 उत्तराषाढिकाऽऽर्द्रा वा पूर्वभाद्रपदा तथा ॥ १५ ॥  
 दक्षाग्रहस्तितास्ताराः स्पष्टौभूताश्च देवताः ।  
 एतासामधिपास्तेषां राशयो ग्रहरूपिणः ॥ १६ ॥  
 कर्कटकेशरिकन्या-देवताः परिकौर्त्तिताः ।  
 एतेषाञ्चापि वर्णानामधिपाश्चेति राशयः ॥ १७ ॥  
 खकारस्य ककारस्य जकारस्य ढकारपः ।  
 दकारस्य फकारस्य यकारस्य सकारपः ॥  
 नकारस्यापि पतयो ज्ञेयाश्च क्रमशः प्रभो ! ॥ १८ ॥

संशृणु रोहिणी पुष्या तथा चोत्तरफल्गुनी ।  
 विशाखा च तथा ज्ञेया पूर्वाषाढा च तारका ॥ १९ ॥  
 तथा शतभिषा तारा वाममन्दिरपर्वगाः ।  
 एतासामधिपा एते राशयो ग्रहरूपिणः ॥ २० ॥  
 भेषो वृषो मिथुनश्च ईश्वराः परिकीर्त्तिताः ।  
 एतन्नेहस्थितं वर्णमेते रक्षन्ति नित्यशः ॥ २१ ॥  
 ककारस्य नकारस्य ऋकारस्य उकारपः ।  
 अकारस्य पकारस्य मकारस्य वकारपः ॥ २२ ॥  
 हकारस्याधिपतये ऋद्धिमोक्षफलप्रदाः ।  
 दक्षिणाधो गृहस्यापि देवता इति राशयः ॥ २३ ॥  
 तुला च वृश्चिकश्चैव धनुश्चैव ग्रहेश्वरः ।  
 एतेषां तारकाणाञ्च पतयो गदिता मया ॥ २४ ॥  
 भरण्यार्द्रा मघा चित्रा ज्येष्ठा प्रणववल्गभाः ।  
 तथोत्तरभाद्रपदा वल्गभा राशयो मताः ॥ २५ ॥  
 अथ गेहस्थित वर्णं शृणु नाथ ! भयापह ! ।  
 यकारस्य दकारस्य टकारस्य नकारपः ॥ २६ ॥  
 धकारस्य वकारस्य चकारस्य षकारपः ।  
 क्षकारपणका एते राशयः परिकीर्त्तिताः ॥ २७ ॥  
 धनवृद्धिप्रदा नित्या नित्यस्थाननिवासिनः ।  
 वामाधो मन्दिरस्यापि वल्गभा इति राशयः ॥ २८ ॥  
 मकराधस्तु कोष्ठेषु मौनो राशिफलस्थिताः ।  
 एतांति भानि रक्षन्ति शृणु पाशासिधारक ! ॥ २९ ॥  
 पुनर्वसुः कृत्तिका च तथाभं पूर्वफल्गुनी ।  
 स्वाती मूला धनिष्ठा च रेवती वामगेहगाः ॥ ३० ॥  
 एतासामधिपा एते जलस्था ग्रहदेवताः ।  
 एतान् वर्णान् प्ररक्षन्ति गृहस्था नव राशयः ॥ ३१ ॥



घकारस्य जकारस्य टकारस्य तकारपः ।  
 नकारस्य भकारस्य लकारस्य सकारपः ॥ ३२ ॥  
 कलहादिमहादोष-कालदर्शनकारकाः ।  
 राशयो लोकहा नाथ ! तस्मात्तान् परिवर्जयेत् ॥ ३३ ॥  
 यद्येकदेवता गीहं विभिन्नञ्च सुशोभनम् ।  
 चतुःस्थानं युगस्थानं सर्वत्रापि निषेधकम् ॥ ३४ ॥  
 एकगीहस्थितं मन्त्रं बहुसौख्यप्रदायकम् ।  
 नाम्न आद्यक्षरं नीत्वा राशिनक्षत्रविस्मृती ॥ ३५ ॥  
 सभावं साधकश्रेष्ठः कलहे कलहं भवेत् ।  
 रिपुश्चेन्मूलनाशः स्यात् कलहोऽपि सुरेश्वर ! ॥ ३६ ॥  
 नेत्रयुग्मं स्वरं पाति सिंहो हि कन्यकां तथा ।  
 कर्णयुग्मं तुला पाति संयुगं वृश्चिको धनुः ॥ ३७ ॥  
 च-युगं मकरं पाति कुम्भो मौनश्च पाति हि ।  
 श्रोत्रञ्च पाति च तथा अधरं मेष एव च ॥ ३८ ॥  
 दन्तयुग्मं वृषः पाति मिथुनः शेषगोऽक्षरः ।  
 यस्य ये ये राशयः स्युस्तस्य तत्तच्छुभं स्मृतम् ॥ ३९ ॥  
 एकराशिः शुभं नित्यं टटाति च मनोरथम् ।  
 अन्यत्र दुःखदं प्रोक्तं साधकः सिद्धिभाग् भवेत् ॥ ४० ॥  
 भिन्नराशी वर्जनीयं कलहं कालदर्शनम् ॥ ४१ ॥  
 श्रूयतां शैलजानाथ ! चक्रं श्रोत्रिदशात्मकम् ।  
 पूर्वपश्चिमभेदेन षट् च रेखाः समालिखेत् ॥ ४२ ॥  
 वामादिदक्षिणान्तश्च रेखा दश सदा लिखेत् ॥ ४३ ॥  
 पञ्चगेहे पुरकाङ्कं सर्वाधो द्वारकाङ्ककम् ।  
 तन्मध्ये रचयेदक्षं देवताग्रहसंयुतम् ॥  
 पुरकाङ्कं मध्यगेहे सप्तर्षियुक्तमालिखेत् ॥ ४४ ॥  
 तद्दक्षिणे द्वादशश्च तद्दक्षेण रसं तथा ।

तद्दत्ते अष्टदशकं तद्दत्ते षोडशस्य तम् ॥ ४३ ॥  
 पुरकाङ्कं ततो लेख्यं इन्द्राद्यङ्गञ्च दक्षतः ।  
 इन्द्रगेहे च शतकं विधिविद्याफलप्रदम् ॥  
 धर्मगेहे शून्यसप्त-युगलं विलिखेद्बुधः ॥ ४६ ॥  
 अनन्तमन्दिरे नाथ ! शून्यावष्टवसुस्ततः ।  
 कालीगृहे शून्यवेद-वामाद्यां विलिखेत्ततः ॥ ४७ ॥  
 धूमावतीमन्दिरे च शून्यखेषुनिशापतिः ।  
 इन्द्राधो दक्षतो लेख्या अङ्गाश्चन्द्राधिदेवताः ॥  
 शून्याष्टचन्द्रयुक्तञ्च सर्वत्र देवता लिखेत् ॥ ४८ ॥  
 तथाश्विनौकुमारौ च शून्यानलयुगायुगौ ।  
 तत्पश्चात् पूर्वगेहञ्च सहस्रार्कसमन्वितम् ॥ ४९ ॥  
 तारणीमन्दिरस्याङ्कं शून्यवेदं तथैव च ।  
 रसनामुखीगेहस्थं शून्याष्टचन्द्रसंयुतम् ॥ ५० ॥  
 एतच्चन्द्रगृहस्याधो वादी गेहं मनोरमम् ।  
 रन्ध्रवेदात्मकं गेहं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥  
 राहुगेहं महापापं शून्यशून्यमुनिप्रियम् ।  
 पश्चादेकत्र हस्तञ्च खशून्ययुगलात्मकम् ॥ ५२ ॥  
 षोडशीमन्दिरे शून्यमष्टचन्द्रसमन्वितम् ।  
 मातङ्गीमन्दिरे शून्य-रुद्रचन्द्रसमन्वितम् ॥ ५३ ॥  
 वायोरधो वरुणस्य गृहं सप्तशशिप्रियम् ।  
 तरुणीगेहमध्ये च शून्याष्टकसमन्वितम् ॥ ५४ ॥  
 बुधगेहस्थिताङ्गञ्च शून्यचन्द्रयुगात्मकम् ।  
 भुवनेशीमन्दिरस्थं शून्याष्टकशशिप्रियम् ॥ ५५ ॥  
 वरुणाधः कुबेरस्य गृहस्थं षट् च युगमकम् ।  
 आनन्दभैरवीगेहे दशकं परिकीर्तितम् ॥ ५६ ॥  
 धरणीगृहमध्ये च शून्ययुग्मेन्दुसंयुतम् ।

भैरवीगृहमध्यस्थं शून्यं युगलचन्द्रकम् ॥ ५७ ॥  
 राशिगृहस्थं शून्यर्षि-चन्द्रमण्डलसंयुतम् ।  
 कुबेराधः स्वकं चक्र-स्थिताङ्गं सर्वासिद्धिदम् ॥ ५८ ॥  
 ईश्वरस्य गृहस्थञ्च सप्तशून्ययुगात्मकम् ।  
 तिरस्कारिण्या गेहस्थं सहस्राङ्गसमन्वितम् ॥ ५९ ॥  
 किङ्किणीमन्दिरं पश्चादष्टचन्द्रसमन्वितम् ।  
 किन्नमस्तागृहं पश्चाच्छून्याष्टचन्द्रमण्डलम् ॥ ६० ॥  
 वागीश्वरीगृहं पश्चात् सप्तभूचन्द्रमण्डलम् ।  
 महाफलप्रदातारं धर्मी रक्षति तं पुनः ॥ ६१ ॥  
 ईश्वरस्य अधोगेहे वटुकस्य गृहं ततः ।  
 शून्याष्टमाद्य स्वगृहं धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥ ६२ ॥  
 तत्पश्चात् डाकिनौगेहं स्वशून्यमुनिसंयुतम् ।  
 हान्ति साधकसौख्यं हि क्षणादेव न संशयः ॥ ६३ ॥  
 स्वगृहे स्त्रियमन्त्रस्य फलदं परिकीर्तितम् ।  
 भौमादेवीगृहं पश्चात् स्वसप्तचन्द्रमण्डलम् ॥ ६४ ॥  
 भयदं सर्वदेशे तु वर्जयेत् गृहान्तरम् ।  
 लक्षवर्णं लिखेत् शेष-गृहे हे पण्डितोत्तमः ॥ ६५ ॥  
 इन्द्रगेहावाधं धीरो वकारादिकवर्णकम् ।  
 क्षकारान्तं लिखेत्तत्र गणयेत् साधकस्ततः ॥  
 पूरकाङ्कमूर्द्धदेशे हारकाङ्कमघो लिखेत् ॥ ६६ ॥  
 निजनामाक्षरं यत्र तत्कोष्ठाङ्गं महेश्वर ! ।  
 नीत्वा च पूजयेद्दिहान् स्वस्वगेहोर्द्धदेशगैः ॥ ६७ ॥  
 आजास्ततो हरेर्नाथ ! अथोर्द्धहाष्टशोधकम् ।  
 विस्तारश्चेवताङ्गस्तदङ्गः शुभदः स्मृतः ॥ ६८ ॥  
 अत्याङ्गः शुभदः प्रोक्तः साधकस्य सुखावहः ।  
 एकाक्षरे महासौख्यं तत्रापि गणयेद्वचः ॥ ६९ ॥

धोराङ्कः शून्यगामी च देवताङ्कस्तथा विभो ! ।  
 तदा नैव शुभं विद्यादशुभाय प्रकल्प्यते ॥ ७० ॥  
 एके धनमवाप्नोति द्वितीये राजवल्लभः ।  
 तृतीये जाप्यसिद्धिः स्याच्चतुर्थे मरणं ध्रुवम् ॥ ७१ ॥  
 पञ्चमे पञ्चमानः स्यात् षष्ठे दुःखोत्कटानि च ।  
 शैवानां शाक्तवर्णानामित्यङ्कः परिकीर्तितः ॥ ७२ ॥  
 वैष्णवानां निषेधे च पञ्चमाङ्को निषेधकः ॥ ७३ ॥  
 यासां यासां देवतानां हिंसा तिष्ठति चेतसि ।  
 तन्मन्त्रग्रहणादेवाष्टैश्वर्यं तुच्छतो भवेत् ॥ ७४ ॥  
 यद्देवस्याश्रिता ये तु तद् गृहाङ्कं हरन्ति च ।  
 ऊङ्गाङ्केन पूरयित्वा अधोऽङ्केन हरेत् सदा ॥ ७५ ॥

ऋणिधनिचक्रम् ।—

ऋणिधनिमहाचक्रं वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।  
 दर्शनादेव कोष्ठस्य जानाति पूवजन्मगम् ॥ ७६ ॥  
 देवं बहुतराङ्गेषु ज्ञात्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।  
 निजसेव्यां महाविद्यां गृहीत्वा मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥  
 कोष्ठशुद्धञ्च मन्त्रञ्च ये गृह्णन्ति द्विजोत्तमाः ।  
 तेषां दुःखानि नश्यन्ति ममाज्ञा बलवत्तरा ॥ ७८ ॥  
 कोष्ठशुद्धं महामन्त्रं फलदं रुद्रभैरव ! ।  
 न हातव्यं महामन्त्रं सद्गुरुप्रियदर्शनात् ॥ ७९ ॥  
 तत्र कोष्ठं न विचार्यं चेज्जानाति विचार्यकम् ।  
 महाविद्यामहामन्त्रे विचार्यं कोटिपुण्यभाक् ॥ ८० ॥  
 अविचारे चोक्तफलं ददाति कामसुन्दरी ।  
 कोष्ठान्येकादशान्येव वेदेन पूरितानि च ॥ ८१ ॥  
 अकारादिहकारान्तं लिखेत् कोष्ठेषु तत्त्ववित् ।  
 अथमं पञ्चकोष्ठेषु क्लृप्तदीर्घक्रमेषु तु ॥

द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र विचारे खलु साधकः ॥ ८२ ॥  
 शेषेष्वेकैकशो वर्णान् क्रमतस्तु लिखेत् सुधीः ।  
 अमा [आ] वर्णद्वयस्यार्द्धावधिस्तु क्रमशोऽङ्कम् ॥ ८३ ॥  
 आद्यमन्दिरमध्ये तु षष्ठाङ्गं विलिखेद्बुधः ।  
 द्वितीये षष्ठचिह्नञ्च तृतीये च गृहे तथा ॥ ८४ ॥  
 चतुर्थे गगनाङ्कञ्च क्रमे चक्रं यथा तथा ।  
 षष्ठचापे चतुर्थञ्च सप्तमे च चतुर्थकम् ॥ ८५ ॥  
 अष्टमे गगनाङ्कञ्च नवमे दशमे तथा ।  
 मेषमन्दिरमध्ये तु त्रयाङ्गं विलिखेत्ततः ॥ ८६ ॥  
 एतेनाथ साध्यवर्णाः कथिताः क्रमशो ध्रुवम् ।  
 कथयामि साधकार्णं सकलार्थनिरूपणम् ॥ ८७ ॥  
 आद्यगेहे द्वितीयञ्च द्वितीये च तृतीयकम् ।  
 तृतीये पञ्चमं प्रोक्तं गगनं वेदपञ्चके ॥ ८८ ॥  
 षष्ठे युगलमेवं हि सप्तमे चन्द्रमण्डलम् ।  
 अष्टमे गगनं प्रोक्तं नवमे च चतुर्थकम् ॥ ८९ ॥  
 वेदञ्च दशमे प्रोक्तं चन्द्रमेकादशे तथा ।  
 साधकार्णास्तस्य ते ते वर्णमण्डलमध्यगाः ॥ ९० ॥  
 माध्यवर्णान् महादेव ! स्वरव्यञ्जनभेदकान् ।  
 एवं हि सर्वमन्त्रार्णानष्टादशैः प्रपूरयेत् ॥ ९१ ॥  
 एकीकृत्य हरेदष्ट-संख्याभिः क्षणवत्समम् ! ।  
 यस्यापहस्थितं वर्णं तन्नेतव्यं मनो शुभे ॥ ९२ ॥  
 साधकाभिधानवर्णान् स्वरव्यञ्जनभेदकान् ।  
 पृथक् पृथक् संस्थितांश्च व्यक्तं शृणु पुनः पुनः ॥ ९३ ॥  
 द्वितीयाद्यङ्कचन्द्रन्ते संपूर्वास्त्रभिवाहरेत् ।  
 मन्त्रो यस्त्वधिकाङ्कः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत् सुधीः ॥ ९४ ॥  
 समेऽपि च जपेन्मन्त्रं न जपेत् ऋणाधिके ।

शून्ये मृत्युं विजानीयात्तस्माच्छून्यं विवर्जयेत् ॥ ९५ ॥  
 द्वितीयाद्यङ्गजालञ्च वैष्णवे सुखदं स्मृतम् ।  
 द्वितीयाद्यङ्गजालञ्च तथा वै परिकीर्तितम् ॥ ९६ ॥  
 इन्द्राद्यङ्गं तथा नाथ ! सौरे शाक्ते शुभप्रदम् ।  
 तथा दिक्संख्यकाङ्गञ्च साधकस्य शुभप्रदम् ॥ ९७ ॥  
 तदङ्गं शृणु यत्नेन पूर्ववत् सकलं स्मृतम् ।  
 स्थलञ्चैव विभिन्नाङ्गमूर्धाधश्च क्रमेण तु ॥  
 साध्याङ्गान् साधकाङ्गांश्च पूरयेद् ग्रहसंख्यया ॥ ९८ ॥  
 गुणिते तु हृतेऽष्टाभिर्यच्छेषं जायते स्फुटम् ।  
 तदङ्गं कथयाम्यत्र एकादशगृहस्थितम् ॥ ९९ ॥  
 इन्द्रतारास्वर्गरवि-तिथिषड्वेददाहनाः ।  
 अष्टवसुनवाङ्गस्थाः साधारणगुणिता इति ॥ १०० ॥  
 दिग्भूगिरिश्रुतिगज-वङ्गिपर्वतपञ्चमाः ।  
 वेदषष्टिनलाङ्गञ्च गणयेत् साधकाक्षरान् ॥ १०१ ॥  
 नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।  
 तत् संख्याञ्च त्रिधा कृत्वा सप्तभिः संहरेद्बुधः ॥ १०२ ॥  
 अधिकञ्च ऋणं प्रोक्तं तच्छेषं धनमुच्यते ।  
 अथवाऽन्यप्रकारञ्च कृत्वा मन्त्रं समाश्रयेत् ॥ १०३ ॥  
 नामाद्यक्षरमारभ्य यावत् साधकवर्णकम् ।  
 तावत् संख्यं सप्तगुणं कृत्वा वामे हरेद्बुधः ॥ १०४ ॥  
 श्रौविद्येतरविद्यानां गणना परिकीर्तिता ।  
 अथवाऽन्यप्रकारञ्च सकलान् साधकाक्षरान् ॥ १०५ ॥  
 स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विगुणीकृत्य साधकः ।  
 साध्ययुक्तं ततः कृत्वा स्वरव्यञ्जनभेदकम् ॥ १०६ ॥  
 अष्टाभिः संहरेदङ्गं शृणु सहारविग्रहम् ।  
 पूर्वचारक्रमं सम्यक् सर्वत्रापि शुभाशुभम् ॥ १०७ ॥

अस्य विचारमात्रेण सिद्धिः सर्वार्थसाधिका ।

पूर्वजन्माराधिता या तां प्राप्नोति हि देवताम् ॥ १०८ ॥

श्रीभैरव्युवाच ।

मन्त्रदोषादिनिर्णयः ।—

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सावधानवधारय ।

उक्त्वा चक्रं सर्वसारं मन्त्रदोषादिनिर्णयम् ॥ १०९ ॥

मत्स्याकारमूर्द्धमुखं सर्वमन्त्रादिविग्रहम् ।

स्कन्धदेशावधिर्नाथ ! भू-भू-पर्वतमेव च ॥ ११० ॥

एकाक्षरादिमन्त्रादि-डाटशान्ताक्षरात्मकम् ।

विलिखेत् पृष्ठदेशे तु शुभाशुभविशुद्धये ॥ १११ ॥

त्रयोदशाक्षरान् काऽथ एकविंशाक्षरान्तकम् ।

नेतव्यं साधकैर्मन्त्रं पृष्ठस्थमुदरस्थकम् ॥ ११२ ॥

तथा श्रीशुभदं प्रोक्तं कण्ठादिपुच्छकान्तकम् ।

द्वाविंशादिचतुस्त्रिंशदक्षरान्तमन्त्रं शुभम् ॥ ११३ ॥

तण्डस्थं चापि गृह्णीयान्मुत्रस्थञ्च तथा भ्रुवम् ।

शीर्षस्थञ्चापि गृह्णीयात्तदक्षरं शृणु प्रभो ! ॥ ११४ ॥

पञ्चत्रिंशादिद्विचतुर्द्वाविंशदन्तमेव च ।

मस्तकस्थं शुभं प्रोक्तं मुत्रवर्णान् शृणु प्रभो ! ॥ ११५ ॥

त्रिचत्वारिंशदक्षादि एकपञ्चाशदन्तकम् ।

मुत्रस्थमन्त्रमशुभं न गृह्णीयात् कटाक्षन ॥ ११६ ॥

पृष्ठस्थं शृणु यत्नेन निरर्थकममाश्रयम् ।

त्रयगा तस्य पीताभिर्देवता कुप्यतेऽनिशम् ॥ ११७ ॥

द्विपञ्चाशदक्षरादि एकषष्टितमान्तकान् ।

वर्णान् पुच्छस्थितानेतान् नेत्रस्थान् शृणु वल्लभ ! ॥ ११८ ॥

द्विषष्टितमवर्णादि-चतुःषष्ट्यक्षरान्तकान् ।

अङ्गं लोचनसंस्थञ्च ततोऽन्यं रसनास्थितम् ॥

तत्सर्वं शुभदं प्रोक्तमेतदन्यतमं स्मृतम् ॥ ११९ ॥

वैष्णवानाञ्च शैवानां शाक्तानां मन्त्रजापने ।

ततोऽन्यं देवभक्तान्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ १२० ॥

रामचक्रम् ।—

अथ वक्ष्ये महादेव ! चक्रसारं सुदुर्लभम् ।

रामचक्रं महाविद्या-सर्वमन्दिरमेव च ॥ १२१ ॥

सर्वसिद्धिप्रदं मन्त्रं निजनामस्थमाश्रयेत् ।

तदेव सिद्धिमाप्नोति सत्यं सत्यं महेश्वर ! ॥

तत्प्रकारं शृणु क्रोधभैरव ! प्रियवल्लभ ! ॥ १२२ ॥

नवाङ्कान् प्रलिखेद्विद्वान् वामदक्षिणभागतः ।

तन्मध्ये क्रमशो दद्यात्तथा सप्तदशाङ्ककान् ॥ १२३ ॥

दक्षिणादिक्रमेणैव मुक्तविद्याः समालिखेत् ।

अकारादिक्रमकारान्तं सर्वस्मिन् मन्दिरे लिखेत् ॥ १२४ ॥

बालादिदेवताः सर्वा भ्रामर्यन्ताश्च देवताः ।

अस्याकाशविधे गेहे सान्तनित्यं फलप्रदम् ॥ १२५ ॥

पुनर्विलोममार्गेण आदिचान्तार्थमन्दिरे ।

रक्तदन्तादिश्रीविद्या-मन्त्रान्तं विलिखेद् बुधः ॥ १२६ ॥

क्षकाराद्यनुलोमेन क्षकारान्तं लिखेत्ततः ।

पुनस्तच्छेषविद्याश्च शेषगेहे लिखेत् सटा ॥ १२७ ॥

कायशोधनमुख्यादि-शैलवासिनिमन्त्रकम् ।

पञ्चविंशतिगेहेस्थं गणयेत् साधकस्ततः ॥ १२८ ॥

गृहस्थमङ्गं वक्ष्यामि शृणुयोगीश्वल्लभ ! ।

बालागृहादिशेषान्तं मुनिहस्तविधौ गृहे ॥ १२९ ॥

क्रमेण शृणु तत्सर्वं सावधानावधारय ।

दक्षिणावर्तयोगेन गणयेत् क्रमशो बुधः ॥ १३० ॥

वसुसप्तपञ्चमेषु वङ्गिवेदानलास्तथा ।



मुनिषष्ठाद्यवैदाश्च सप्तैषुमुनयस्तथा ॥ १३१ ॥  
 पञ्चवेदेषुवसवो वेदेषुवङ्गयस्तथा ।  
 वङ्गिवेदाश्च संप्रोक्ता आकाशं तदनन्तरम् ॥ १३२ ॥  
 आकाशानन्तरे गेहे अनलं परिकीर्तितम् ।  
 तत्पश्चात् सर्वगेहेषु सर्वाङ्गं दत्ततः शृणु ॥ १३३ ॥  
 वङ्गिवङ्गिवेदवाङ्ग-वेदवङ्गय एव च ।  
 श्रवणाक्षिवेदबाण-वेदेषुसुपकास्तथा ॥ १३४ ॥  
 षष्ठाष्टसप्तमाः प्रोक्ता वङ्गाग्नीषुमुनिस्तथा ।  
 मुनौषुबाणवेदाश्च मुन्यग्निवङ्गयस्तथा ॥ १३५ ॥  
 वाङ्गिवेदबाणसप्त अष्टाङ्गवेदबाणकाः ।  
 पञ्चसप्तानलाग्निश्च वङ्गीषुबाणबाणकाः ॥ १३६ ॥  
 बाणवेदकान्तवेद-कान्तश्रुतिचतुर्थकाः ।  
 बार्गिषुमुनिषष्ठाश्च सप्तैषुरामवेदकाः ॥ १३७ ॥  
 वेदसप्ताष्टवसवो नवाष्टमकसप्तमाः ।  
 वङ्गाग्निवेदबाणाश्च वस्त्रष्टानलवेदकाः ॥ १३८ ॥  
 सप्ताष्टमामसंप्रोक्ता गृहाङ्काः परिकीर्तिताः ।  
 येषां मनसि या विद्या सदा तिष्ठति शङ्कर ! ॥ १३९ ॥  
 तामाश्रित्य जपेद्विद्वान् तदा सिध्यति निश्चितम् ।  
 स्वनाम देवतानाम पूरयेत् षोडशाङ्गकैः ॥ १४० ॥  
 हरेन्निजगृहस्थेन चाङ्गेन साधकोत्तमः ।  
 क्लृप्तशेषं बहुतरं शुभं देवस्य निश्चितम् ॥ १४१ ॥  
 अल्पाङ्गं साधकस्यापि सदैव्यमेव न संशयः ।  
 उक्तक्रमेण गणयेत् साधकं स्थिरमानसः ॥ १४२ ॥  
 महाविद्यानायिकादि-यच्चभूतादिसाधने ।  
 संप्रोक्तं चक्रसारञ्च सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥  
 ततश्चक्रविचारेण सिद्धिमाप्नोति साधकः ॥ १४३ ॥

चतुश्चक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व पार्वतीपते ! ।  
 वामदक्षिणयोगेन रेखापञ्चकमालिखेत् ॥ १४४ ॥  
 पूर्वपश्चिमभेदेन रेखाः पञ्च समालिखेत् ।  
 चतुष्कोष्ठे दक्षभागे चतुष्कोष्ठे च मन्त्रवित् ॥ १४५ ॥  
 तदधश्च चतुष्कोष्ठे तद्वामस्थे चतुर्गृहे ।  
 प्रलिखेत् क्रमशश्चाद्ये चतुर्मन्दिरमध्यके ॥ १४६ ॥  
 शीघ्रञ्च शीतलं जप्तं सिद्धिञ्चापि ततः परम् ।  
 अकारञ्च उकारञ्च लृप्तीकारं ततः परम् ॥ १४७ ॥  
 ऊर्ध्वस्थमिति वर्णन्तु शीतलस्थं शृणु प्रभो !  
 अकारञ्च ऊकारञ्च (लृ लृ) सौकारञ्च ततः परम् ॥ १४८ ॥  
 तदधो जपगेहस्थं वर्णं शृणु महाप्रभो ! ।  
 इकारञ्च ऋकारञ्च एकारञ्च ततः परम् ॥ १४९ ॥  
 सिद्धिगेहस्थितं वर्णं शृणु सर्वसुखप्रदम् ।  
 तद्दक्षिणचतुर्गेहे स्थिता न च वदामि तान् ॥ १५० ॥  
 आह्लादञ्चाप्रत्ययञ्च मुखञ्च सिद्धमित्यपि ।  
 एतत्कुलस्थं न् सर्वान्तान् शुभाशुभफलप्रदान् ॥ १५१ ॥  
 ककारञ्च ऋकारञ्च ऋकारञ्च जकारकम् ।  
 आह्लादस्त्वमिति प्रोक्तं प्राप्तिमात्रेण सिद्धिदम् ॥ १५२ ॥  
 प्रत्ययस्थं गकारञ्च घकारं टठमित्यपि ।  
 मुखस्थं हि ङकारञ्च चकारं डढमित्यपि ॥ १५३ ॥  
 शुद्धस्थञ्च उकारञ्च जकारं णतमित्यपि ॥ १५४ ॥  
 तदधःस्थं चतुर्गेहं लौकिकं सात्त्विकं तथा ।  
 मानसिकं राजसिकं चतुर्गेहस्थितं त्विमम् ॥ १५५ ॥  
 लौकिकस्थं थकारञ्च दावं पञ्चमकारकम् ।  
 सात्त्विकस्थं धकारञ्च लकारञ्च यकारकम् ॥ १५६ ॥  
 मानसिकञ्च शृणु भो ! पकारं फवमित्यपि ।

शृणु राजसिकत्वञ्च भकारं वनमित्यपि ॥ १५६ ॥  
 तन्नामस्थं चतुर्गेहं शृणु पञ्चानन ! प्रभो ! ।  
 सुप्तं क्षिप्तञ्च लिप्तञ्च दुष्टमन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १५७ ॥  
 ऊर्ध्वगेहेस्थितान् वर्ण-मन्त्रान् गृह्णाति यो नरः ।  
 वर्जयित्वा सुप्तमन्त्रं क्षिप्तं लिप्तञ्च दुष्टकम् ॥ १५८ ॥  
 ऐहिके सिद्धिमाप्नोति परे मुक्तिमवाप्नुयात् ।  
 यद्वि भाग्यवशात् सुप्तादिषु गेहेषु लभ्यते ॥ १५९ ॥  
 तदा मन्त्रं शोधयेद्द्वै सुप्तस्तम्भितकौनितैः ।  
 वर्द्धितैर्दोषजालस्थरशुभं भूतशुद्धगे ॥ १६० ॥  
 भूतलिप्या पुटीकृत्य जप्त्वा सिद्धिं ततो लभेत् ।  
 नतुवा वर्जयेद् गेहं चतुष्कं वर्णवेष्टितम् ॥ १६१ ॥  
 सुप्तगेहस्थितं वर्णं शृणु पञ्चानन ! प्रभो ! ।  
 वकारञ्च लकारञ्च ततोऽन्यद् गृह्णंस्थितम् ॥ १६२ ॥  
 शकारञ्च लकारञ्च क्षिप्तगेहस्थितं हयम् ।  
 धकारञ्च क्षकारञ्च लिप्तगेहस्थितं हयम् ॥ १६३ ॥  
 इष्टगेहस्थितं नाथ ! शकारं गगने तथा ।  
 निर्जं सीभाग्ययुक्तं यत्तन्मन्त्रं तदुपाश्रयेत् ॥ १६४ ॥

सूक्ष्मचक्रम् ।—

सूक्ष्मचक्रं प्रवक्ष्यामि द्विताहितफलप्रदम् ।  
 एतदुक्ताक्षरं शम्भो ! गृहीत्वा जपमाचरेत् ॥ १६५ ॥  
 वामदक्षिणमारभ्य सप्त रेखाः समालिखेत् ।  
 भित्त्वा तदङ्कान् मन्त्रौ च रेखाचतुष्टयं लिखेत् ॥ १६६ ॥  
 दक्षिणाटिकमेतैव बह्वं मन्दिरमध्यके ।  
 मन्त्राक्षराणि विलिखेदङ्काचारेण साधकः ॥ १६७ ॥  
 तदङ्कं शृणु यत्नेन नराणां भुक्तिमुक्तिदम् ।  
 प्रथमे मान्दरे नाथ ! भुजाङ्कं विलिखेत्ततः ॥ १६८ ॥

विष्णुमन्त्रादिगेहे च वेदाङ्गं विलिखेद्बुधः ।  
 तत्पश्चादष्टमाङ्गञ्च भुजाधः षष्ठमेव च ॥ १६८ ॥  
 तद् गेहं शङ्करस्यापि तत्पश्चाद् दशमं गृहे ।  
 तत्पश्चाद्वादशाङ्गञ्च नायिकास्थानमेव च ॥ १७० ॥  
 षष्ठाधो युगलाङ्गञ्च तत्पश्चादष्टमं तथा ।  
 युगलाधो गृहे चापि चतुर्दशाक्षरं तथा ॥ १७१ ॥  
 तद्दक्षिणे सूर्यगेहं चतुर्दशाक्षरान्वितम् ।  
 तत्पश्चात् षोडशाङ्गञ्च पुनरङ्गं लिखेत्ततः ॥ १७२ ॥  
 तद्दक्षिणे वेदवर्णं तत्पश्चादष्टमाक्षरम् ।  
 ब्रह्ममन्त्रमेवन्तत् षोडशाधः पुनः शृणु ॥ १७३ ॥  
 अष्टमाङ्गं ततो युग्ममष्टादशाक्षरं ततः ।  
 प्रथमस्थं द्वितीयस्थं गृह्णीयात् शुभदं स्मृतम् ॥ १७४ ॥  
 तृतीयस्थं महापापं सर्वमन्त्रेषु कीर्तितम् ।  
 द्वितीये प्रथमं दुःखं द्वितीयं सर्वभाग्यदम् ॥ १७५ ॥  
 तृतीयञ्च तथा नाथ ! गृह्णीयान्नजसिद्धये ।  
 तृतीये प्रथमं भद्रं द्वितीये दुःखदायकम् ॥ १७६ ॥  
 तृतीयञ्च तथा प्रोक्तं अष्टाक्षरगृहं भयम् ।  
 चतुर्दशाक्षरं भद्रं सूर्यमन्त्रं द्वितीयकम् ॥ १७७ ॥  
 तृतीयस्थं षोडशाङ्गं महाकल्याणदायकम् ।  
 अष्टमूर्तिः षोडशाङ्गे चतुर्थे शत्रुमारणम् ॥ १७८ ॥  
 तृतायगृहमध्यस्थं ब्रह्मकल्याणदायकम् ।  
 वस्त्रक्षरं सर्वशेष-गृहे मध्यस्थमेव च ॥ १७९ ॥  
 अष्टमञ्च महाभद्रं क्षमं विवृत्तभयप्रदम् ।  
 अष्टादशाङ्गं शुभदं शेषगे हतये तथा ॥ १८० ॥  
 येषां यदक्षराणाञ्च मन्त्रचेतसि वर्तते ।  
 एतत् शुभाशुभं ज्ञात्वा मन्त्रवर्णं तदाभ्यसेत् ॥ १८१ ॥

विष्णुशम्भुस्थितं मन्त्रं नायिकास्थं शिवस्थकम् ।  
 सूर्यस्थं ब्रह्मसंस्थञ्च गृह्णीयात् शक्त एव न ॥ १८२ ॥  
 वैष्णवो विष्णुमन्त्राणां शैवः शिवमुपाश्रयेत् ।  
 नायिकामन्त्रजापो च नायिकार्थं सदाऽभ्यसेत् ॥ १८३ ॥  
 सूर्यमन्त्रविचारार्थं सूर्यमन्त्रं समाश्रयेत् ।  
 एकस्थं युगलं स्थानं तृतीयस्थानमेव च ॥ १८४ ॥  
 ज्ञात्वा मन्त्रं प्रगृह्णीयादन्यथा चाशुभं भवेत् ।  
 एतदन्यतमं मन्त्रं दिव्यवैरेषु गीयते ॥ १८५ ॥  
 ततश्चक्रं पशोरुक्तं सर्वसिद्धिप्रदं ध्रुवम् ।  
 एतच्चक्रप्रभावेण पशुर्वीरोपमः स्मृतः ॥  
 सर्वसिद्धियुतो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति ॥ १८६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे मन्त्रान्तोद्घोषने सर्वचक्रागुह्याने सिद्धमन्त्रप्रकरणे  
 भावनिर्णये भैरवी-भैरवसंवादे चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

### अथ पञ्चमः पटलः ।

भैरव्युवाच ।—

महाकथहचक्रार्थं सर्वचक्रोत्तमोत्तमम् ।  
 यस्य विचारमात्रेण कामरूपी भवेन्नरः ॥ १ ॥  
 मन्त्रसंस्कारः ।—  
 ततः प्रकारं वीराणां नाथ ! त्वं क्रमशः शृणु ।  
 चतुरः प्रलिखेद्वर्णांश्चतुःकोष्ठसमन्वितम् ॥ २ ॥  
 चतुःकोष्ठे चतुःकोष्ठे चतुश्चतुर्गृहान्वितम् ।  
 मन्दिरं षोडशप्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥  
 चतुरस्रं लिखेत्कोष्ठं चतुःकोष्ठसमन्वितम् ।  
 पुनश्चतुष्कं तत्रापि लिखेद्भीमान् क्रमेण तु ॥ ४ ॥  
 सर्वेषु गृहमध्येषु प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ।  
 अकारादिचकारान्तं लिखित्वा गणयेत्ततः ॥ ५ ॥

चन्द्रमग्निं रुद्रवर्णं नवमं युगलं तथा ।  
 वेदमर्कं दशरसं वसुं षोडशमेव च ॥ ६ ॥  
 चतुर्दशभौतिकञ्च सप्तपञ्चदशेति च ।  
 वङ्गोन्दुकोष्ठगं वर्णं साङ्गताङ्गैर्वयोदितम् ॥ ७ ॥  
 एतदङ्कस्थितं वर्णं गणयेत्तदनन्तरम् ।  
 नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ॥ ८ ॥  
 चतुर्भिः कोष्ठैरेकैकमिति कोष्ठचतुष्टयम् ।  
 पुनः कोष्ठगकोष्ठेषु सव्यतो नाम्न आदितः ॥ ९ ॥  
 सिद्धः साध्यः सुमिद्धोऽरिः क्रमशो गणयेत् सुधीः ।  
 सिद्धः मिध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः ॥ १० ॥  
 सुमिद्धो ग्रहणाज्जानी शतुर्हन्ति स्वमायुषम् ।  
 सिद्धार्थो बान्धवः प्रोक्तः साध्यः सेवक उच्यते ॥ ११ ॥  
 सिद्धकोष्ठस्थिता वर्णा बान्धवाः सर्वकामदाः ।  
 जपेन बहुसिद्धिः स्यात् सेवकोऽधिकसेवया ॥ १२ ॥  
 पुष्पाति पेषकोऽभीष्टो घातको नाशयेद् ध्रुवम् ।  
 मिद्धः सिद्धो यथोक्तेन द्विगुणः सिद्धसाधकः ॥ १३ ॥  
 मिद्धः सुसिद्धोऽर्द्धजपात् मिद्धारिर्हन्ति बान्धवान् ।  
 साध्यसिद्धो द्विगुणकः साध्यसाध्यो निरर्थकः ॥ १४ ॥  
 सुसिद्धो द्विगुणजपात् साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान् ।  
 सुसिद्धसिद्धोऽर्द्धजपात्साध्यो द्विगुणाधिकात् ॥ १५ ॥  
 तत्सुमिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धारिः स्वगोत्रहा ।  
 अरिसिद्धः सुतान् हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाः ॥ १६ ॥  
 तत् सुमिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदारिर्हन्ति गोत्रजान् ।  
 यदि वैरिमनोर्हस्त-स्थितः स्यात् साधको भुवि ॥ १७ ॥  
 तदन्ते रक्षणार्थं द्वि कुर्व्यादेवं क्रियादिकम् ।  
 तत्रकावं महात्रीर ! शृणुष्व गिरिजापते ! ॥ १८ ॥

वटपत्रे लिखित्वारि-मन्त्रं स्रोतसि निक्षिपेत् ।  
 एवं मन्त्रविमुक्तः स्यान्ममाज्ञावशहेतुना ॥ १८ ॥  
 पुनः प्रकारं विप्रस्तु गवां क्षीरे मुदान्वितः ।  
 द्रोणमिते जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसमन्वितम् ॥ २० ॥  
 पीत्वा क्षीरं मनोमध्ये ध्यात्वा मन्त्रं समुच्चरन् ।  
 सन्त्यजन्नीरमध्ये तु वैरिमन्त्रप्रमुक्तये ॥ २१ ॥  
 पुनः प्रकारं वक्ष्यामि त्रिरात्रमेकवासरम् ।  
 उपोष्य विधिनानेन पूजां कृत्वा शनौ कुजे ॥ २२ ॥  
 सहस्रं वा शतं वाऽपि अष्टोत्तरसमन्वितम् ।  
 जपित्वा सन्त्यजेन्मन्त्रं क्षीरसागरमण्डले ॥ २३ ॥  
 अथवा तद्गुरोः स्थाने चान्यस्थाने च वा पुनः ।  
 विचार्य मन्त्रवर्णञ्च गृहीत्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥ २४ ॥  
 स्वप्ने यदि महामन्त्रं प्राप्नोति साधकोत्तमः ।  
 तदा सिद्धिमवाप्नोति सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ॥ २५ ॥  
 तन्मन्त्रं कौलिके नाथ ! गुरौ यत्नेन संग्रहौ ।  
 यदा भवति सिद्धिः स्यात्तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ २६ ॥  
 अरिं वा देवदेवेश ! यदि विश्राहयेन्नतुम् ।  
 अन्यमन्त्रं विचार्यैव विष्णोश्चैव शिवस्य च ॥ २७ ॥  
 शक्तिमन्त्रं यदि रिपुं तदा त्वेवंप्रकारकम् ।  
 आदावन्ते च मध्ये च श्रीं वीषट् स्वाहयाऽन्वितम् ॥ २८ ॥  
 कृत्वा जप्त्वा महसिद्धिं कामरूपस्थितामिव ।  
 प्राप्नोति नात्र सन्देहो ममाज्ञा गिरिजापते ! ॥ २९ ॥  
 शृणु चक्रफलं नाथ ! विचाराचारमङ्गलम् ।  
 प्रासादञ्च महामन्त्रं सद्गुरोर्मुखपङ्कजात् ॥ ३० ॥  
 लभ्यते यदि भाग्येन सिद्धिरेव न संशयः ।  
 तदभावे सिद्धमन्त्रं दृष्टादृष्टफलोन्मुखम् ॥ ३१ ॥

महाचमत्कारकरं हृदयोक्तासवर्द्धनम् ।  
स्वप्ने वा सद्गुरोः स्थाने प्राप्तिमात्रेण मुक्तिदम् ॥ ३२ ॥  
तन्मंत्रं वर्जयित्वा च घोराश्वकाररीरवे ।  
वसन्ति सर्वकालञ्च ममाज्ञावशभागिनः ॥ ३३ ॥  
तत्रैव चक्रसारादि-विचारं व्यर्थभाषणम् ।  
अरिमन्त्र महापुण्यं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ ३४ ॥  
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्महाविद्याश्रयी भवेत् ।  
स्वप्ने कोटिकुलोत्पन्नैः पुण्यकोटिफलैरपि ॥  
प्राप्नोति साधको मन्त्रं भुक्तये मुक्तये ध्रुवम् ॥ ३५ ॥  
ततो मन्त्रो न विचार्य्यो विचार्य्य मरणं भवेत् ।  
किन्तु चक्रविचारञ्च यदि स्वप्ने चमत्कृतम् ॥ ३६ ॥  
एतेषां चक्रवर्णानां विचारादष्टसिद्धिदम् ।  
आयुर्मुक्तिं धनं योग-सिद्धिं ऋद्धिं सुखं शुभम् ॥ ३७ ॥  
धर्मदेहपवित्रञ्च अकाले मृत्युनाशनम् ।  
वाञ्छाफलप्रदं गौरी-चरणाम्भोजदर्शनम् ॥ ३८ ॥  
भुक्तिं मुक्तिं हरस्थानं प्राप्नोति नात्र संशयः ।  
एषां चक्रादिकालञ्च क्रमशो गणितं फलम् ॥ ३९ ॥  
यदि सर्वविचारञ्च करोति साधकोत्तमः ।  
तदा सर्वफलं नित्यं प्राप्नोति नात्र संशयः ॥ ४० ॥  
महाप्रभावमेकञ्च विचारात्कथं भवेत् ध्रुवम् ।  
अकस्मात् सिद्धिम प्रीति चक्रराजविचारतः ॥ ४१ ॥  
सर्वे देवाः प्रशंसन्ति चक्रमन्त्राश्रितं जलम् ।  
वाक्यसिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं प्राणायामादिसिद्धिभाक् ॥ ४२ ॥  
सर्वेषां प्रणसेद्गुमौ विचरेत् साधको बली ।  
इति ते कथितं नाथ ! चक्रं षोडशमङ्गलम् ॥ ४३ ॥



चक्राणां लोकनादेव सायुज्यपदमाप्नुयात् ।

अतो विचारं सर्वत्र सर्वचक्रादिमङ्गलम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सर्वचक्रानुष्ठाने सिद्धमन्त्रप्रकरणे  
भैरवी-भैरवसंवादे मन्त्रादिदोषानर्णयो नाम पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

### अथ षष्ठः पटलः ।

भैरव उवाच ।—

अथ भावं वद श्रीदे ! दिव्यवीरपशुकृमात् ।

पशूनां परमाश्चर्य्य-भावं श्रोतुं समुत्सुकः ॥ १ ॥

इच्छाम्याह्लादजलधौ स्थितोऽहं जगदौश्वरि ! ।

यदि भाग्यवशादाज्ञा-सारं चिन्तय सिद्धये ॥ २ ॥

महाभैरव्युवाच ।—

पशुभावः ।—

पशुनाथ ! वीरनाथ ! दिव्यनाथ ! कृपानिधे !

प्रकाशहृदयोन्नास ! चन्द्रगेश्वर ! तत शृणु ॥ ३ ॥

कालीकल्पलताकारां तपस्याइयसङ्गतिम् ।

पशुभावस्थितां नाथ ! देवानां शृणु विस्तरात् ॥ ४ ॥

दुर्गापूजां शिवपूजां यः करोति पशूत्तमः ।

अवश्यं हि यः करोति स पशूत्तमः स्मृतः ॥ ५ ॥

केवलं शिवपूजाञ्च करोति यदि साधकः ।

पशूनां मध्यमः श्रीमान् शिवया सह चोत्तमः ।

केवलं वैष्णवो धीरो पशूनां मध्यमः स्मृतः ॥ ६ ॥

भूतानां देवतानाञ्च सेवां कुर्वन्ति सर्वदा ।

पशूनां मध्यमाः प्रोक्ता नरकस्था न संशयः ॥ ७ ॥

त्वत्सेवां मम सेवाञ्च विष्णुब्रह्मादिसेवनम् ।

कृत्वान्यसर्वभूतानां नायिकानां महाप्रभो ! ॥ ८ ॥

यच्चिणोनां भूतिनीनां ततः सेवा शुभप्रदा ।

यः पशुर्ब्रह्मकृष्णादि-सेवां कुर्वन्ति सर्वदा ॥ ८ ॥  
 तथा श्रौतारकब्रह्म-सेवाहये नरोत्तमाः ।  
 तेषामसाध्या भूतादि-देवताः सर्वकामदाः ॥ १० ॥  
 वर्जयेत् पशुमार्गेण विष्णुसेवापरो जनः ।  
 प्रवक्तव्यञ्च पटले तेषां तेषां ततस्ततः ॥  
 विधिना विधिना नाथ ! क्रमशः शृणु वक्तव्यम् ! ॥ ११ ॥  
 सुषुम्नासाधनम् ।—

अथ प्रातः समुत्थाय पशुरुत्तमपण्डितः ।  
 गुरुणां चरणान्भोज-मङ्गलं शीर्षपङ्कजे ॥ १२ ॥  
 विभाव्य पुनरेवं हि श्रीपादं भावयेद् यदि ।  
 पूजयित्वा च वीरं वै उपहारैर्न मे स्तवैः ॥ १३ ॥  
 त्रैलोक्यं तेजसा व्याप्तं मण्डलस्थं महोत्सवाम् ।  
 तडित्कोटिप्रभादीप्तिं चन्द्रकीटिसुश्रीतलाम् ॥ १४ ॥  
 सार्धैत्रिवलयकारां स्वयम्भूनिङ्गवेष्टिताम् ।  
 उत्थापयेन्महादेवीं महारक्ता मनोन्मनीम् ॥ १५ ॥  
 श्वाभोच्छ्वासत्वद्ग्रावृत्तिं हाटशाङ्गुलरूपिणीम् ।  
 योगिनीं खेचरीं वायु-रूपां मूलाब्जस्थिताम् ॥ १६ ॥  
 चतुर्वर्णस्वरूपान्तां वकारादिषसान्तकाम् ।  
 कोटिकोटिसहस्रार्क-किरणां कुलमोहिनीम् ॥ १७ ॥  
 महामोक्षपथप्रान्त-वान्तरान्तरगामिनीम् ।  
 त्रैलोक्यरक्षितां वाक्य-वेदतां शम्भुरूपिणीम् ॥ १८ ॥  
 महाबुद्धिप्रदां देवीं सहस्रदलगामिनीम् ।  
 महासूक्ष्मपथे तेजोमयीं सृत्युस्वरूपिणीम् ॥ १९ ॥  
 कालरूपां सर्वरूपां सर्वत्र सर्वचिन्मयीम् ।  
 ध्यात्वा पुनः पुनः शीर्षे सुधाब्धौ विनिवेष्टिताम् ॥  
 सुधापानं कारयित्वा पुनः स्थाने समानयेत् ॥ २० ॥

समानयनकाले तु सुषुम्नः मध्यमध्येके ।  
 अमृतगामिप्लवं कृत्वा पुनः स्थानेषु पूजयेत् ॥ २१ ॥  
 कूर्द्धोद्यमनकाले तु महतेजोमयीं स्मरेत् ।  
 प्रतिप्रयाणकाले तु सुधाधाराभिर्गात्रुताम् ॥ २२ ॥  
 महाकुलकुण्डलिनीमृतानन्दविग्रहाम् ।  
 ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सर्वनिह्वीख्यो भवेत् ॥ २३ ॥  
 तस्मिन् स्थाने महःदेवीं विभास्य किरणोज्ज्वलाम् ।  
 अमृतानन्दमूर्त्तिं तां पूजयित्वा शुभां मुदा ॥ २४ ॥  
 मानसोच्चारणेन मायां वा कामवैजकम् ।  
 पञ्चाशद्वर्णमालाभिर्जह्वं नुनोपशस्तथा ॥ २५ ॥  
 त्रिलोमित पुनर्जह्वं सर्वत्र कुमुदं स्तवम् ।  
 पाठित्वा सिद्धिमाप्नोति तत्स्तोत्रं शृणु भैरव ! ॥ २६ ॥

कुण्डलिनीस्तवः ।—

जन्मोद्धारनिराक्षणीड तरुणी वेदादिवीजादिमा  
 नित्यं चित्तस भाव्यते भुवि कदा सदाक्यसञ्चारिणी ।  
 मां सा तु प्रियटामभावकपटं सङ्घातये शोधरे !  
 धात्रि ! त्वं स्वयमदितेवनितादानातिदीनं पशुम् ॥२७॥  
 रक्ताभासूतचन्द्रिका निमिमयी सर्पाकृतिर्निर्दिता  
 जाग्रत्कृष्णसमाश्रिता भगवतो त्वं मां समालोकय ।  
 मां मोहन्त्यकुगन्धटोषजडितं वेदादिकार्थान्वितं  
 स्खलान्यामलचन्द्रकोटिकिरणे नित्यं शरीरं कुरु ॥२८॥  
 सिद्धार्थी निजदोषवित स्थलगतिर्व्याधीयते विद्यया  
 कुण्डल्या कुलमार्गमुक्ता नगरीमायाकुमाग श्रिया ।  
 यद्येवं भजति प्रभातसमये मध्याह्नकालेऽथवा  
 नित्यं यः कुलकुण्डलीजपपदाशोज स सिद्धो भवेत् ॥२९॥  
 दायुःकाशचतुर्दलेऽतिविमले वाक्छाफलान्यासके

नित्यं सम्प्रति नित्यदेहघटिता साङ्केतिता भाविता ।  
 विद्या कुण्डलमानिनी स्रजननी माया क्रिया भाव्यते  
 यैस्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्स्तोत्रकैः शम्भुभिः ॥ ३० ॥  
 वाताशङ्कविमोहिनीति बलवच्छायापटोद्गामिनी  
 संसारार्दमहासुखप्रहनने ! तत्र स्थिता योगिनी ।  
 सर्वग्रन्थिविभेदिनी स्वभुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा  
 ब्रह्मज्ञानविनोदिनी कुलकुटीराघातनी भाव्यते ॥ ३१ ॥  
 वन्दे शुकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः साङ्गैः स्वयम्भुप्रियां  
 प्रावेष्ट्याम्बरचित्तमध्यचपला बालाबलानिष्कला ।  
 या देवी परिभाति वेदवदना सम्भावनी तापिनी  
 इष्टानां शिरसि स्वयम्भूवनिता सम्भावयामि क्रियाम् ॥ ३२ ॥  
 वाणीकोटिसृष्टङ्गनाटमदनान्त्रिणिकोटिध्वनिः  
 प्राणेशो प्रियताममूलकमनोह्लासैकपूर्णानना ।  
 आषाढोद्भवमेघराजजनितध्वान्ताननास्थायिनी  
 माता सा परिपातु सूक्ष्मपथगे ! मां योगिनां शङ्करी ॥ ३३ ॥  
 त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सङ्गसा वैकुण्ठकैलासयो-  
 रानन्दैकविलासिनीं शशिशतानन्दाननां कारणाम् ।  
 मातः शुकुलकुण्डली प्रियकले ! कालो कलाहीपने !  
 तत्स्थानं प्रणमामि भद्रवनिते ! मामुद्धर त्वं पथे ॥ ३४ ॥  
 कुण्डलीशक्तिमार्गस्थं स्तोत्राष्टकमहाफलम् ।  
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय स योगी भवति ध्रुवम् ॥ ३५ ॥  
 क्षणादेव हि पाठेन कविनाथो भवेद्विह ।  
 पवित्रौ कुण्डली योगी ब्राह्मणी नो भवेन्महान् ॥ ३६ ॥  
 इति तं कथितं नाथ ! कुण्डलीकोमलं स्तवम् ॥ ३७ ॥  
 एतत् स्तोत्रप्रसादेन देवेषु गुरुगीर्षान् ।  
 सर्वे देवाः सिद्धियुता अस्याः स्तोत्रप्रसादतः ॥ ३८ ॥

द्विपरार्द्धं चिरञ्छौवी ब्रह्मा सर्वसुरेश्वरः ।  
 त्वष्टापि मम निकटे स्थितो भगवतीपतिः ॥ ३९ ॥  
 मां विद्धि परमां शक्तिं स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणीम् ।  
 सर्वप्रकाशकरणीं विन्ध्यपर्वतवासिनीम् ॥ ४० ॥  
 हिमालयसुतां सिद्धां सिद्धमन्त्रस्वरूपिणीम् ।  
 वेदान्तशक्तितन्त्रस्थां कुलतन्त्रार्थगामिनीम् ॥ ४१ ॥  
 रुद्रयामलमध्यस्थां स्थितिस्थापकभावनाम् ।  
 पञ्चमुद्रास्वरूपाञ्च शक्तियामलमालिनीम् ॥ ४२ ॥  
 रत्नमालावलाकाढ्यां चन्द्रसूर्यप्रकाशिनीम् ।  
 सर्वभूतमहानुद्धिं दैत्यदर्पापहारिणीम् ॥ ४३ ॥  
 स्थित्युत्पत्तिलयकरीं करुणासागरस्थिताम् ।  
 महामोहनिवासाढ्यां दामोदरशरीरगाम् ॥ ४४ ॥  
 कृत्रचामररत्नाढ्यमहाशूलकरां पराम् ।  
 ज्ञानदां बद्धिदां विद्या-रत्नमालाकलापदाम् ॥ ४५ ॥  
 सर्वतेजःस्वरूपां मामनन्तकोटिविग्रहाम् ।  
 दरिद्रधनदां लक्ष्मीं नारायणमनोरमाम् ॥ ४६ ॥

पशुभावप्रशंसा ।—

सदा भावय शम्भो त्वं योगनायकपण्डितः ।  
 पुनर्भावं पशोरेव शृणुष्वानुरपूर्वकम् ॥ ४७ ॥  
 अकस्मात् सिद्धिमाप्नोति पशुर्नारायणोपमः ।  
 वैकुण्ठनगरे याति चतुर्भुजकलेवरः ॥ ४८ ॥  
 शङ्खचक्रगदापद्म-हस्तो गरुडवाहनः ।  
 महाधर्मीस्वरूपोऽसौ महाविद्यापसादतः ॥ ४९ ॥  
 पशुभावं महाभावं भावानां सिद्धिदं पुनः ।  
 आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चात् कुर्यादवश्यकम् ॥ ५० ॥  
 वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम् ।

तत्पश्चादतिमौन्दर्यं दिव्यभार्वं महाफलम् ॥ ५१ ॥  
 फनाकाङ्क्षी मोक्षगश्च सर्वभूतहिते रतः ।  
 विद्याकाङ्क्षी धनाकाङ्क्षी रत्नाकाङ्क्षी च यो नरः ॥ ५२ ॥  
 कुर्याद् भावत्रयं दिव्यं भावसाधनमुत्तमम् ।  
 भावेन लभते वाद्यं धनं रत्नं महाफलम् ॥ ५३ ॥  
 कोटिगोदानतः कोटि-शालग्रामप्रदानतः ।  
 वाराणस्यां कोटिलिङ्गे पूजनेन च यत् फलम् ॥  
 तत्फलं लभते मर्त्यां क्षणादेव न संशयः ॥ ५४ ॥  
 आदौ दशदण्डे तु पशुभावमथापि वा ।  
 मध्याह्नदशदण्डे तु वीरभावमुदाहृतम् ॥  
 सायाह्नदशदण्डे तु दिव्यभावं शुभप्रदम् ॥ ५५ ॥  
 अथवा पशुभावस्थो यजेदृष्टादिदेवताम् ।  
 जन्मावधि यजेन्नन्वी महासिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥  
 सर्वेषां गुरुरूपः स्यादेश्वर्यञ्च दिने दिने ।  
 यदि गुरुस्वभावः स्यात्तदा मधुमतीं लभेत् ॥ ५७ ॥  
 यद्वि विवेकी नो याति महावननिवासवान् ।  
 ब्रह्मचर्यव्रतस्थो वा अथवा स्वपुरे वसन् ॥ ५८ ॥  
 पीठब्राह्मणमात्रेण महाघोटाश्रमेण च ।  
 पशुभावस्थितो मन्त्रो निहविद्यामवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥  
 यदि पूर्वापरस्थाञ्च महाकीर्तिकदेवताम् ।  
 कुलमार्गास्थितो मन्त्रो सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ॥ ६० ॥  
 यदि विद्याः प्रसीदन्ति वीरभाव तदा लभेत् ।  
 वीरभावप्रसाटेन दिव्यभावमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥  
 दिव्यभावं वीरभावं ये गृह्णन्ति नरोत्तमाः ।  
 वाञ्छाकल्पद्रुमलता-पतयस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥  
 आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः ।

भूत्वा वसेन्नहापौठं सदाज्ञानी भवेद् यतिः ॥ ६३ ॥  
 किमन्येन फलेनापि यदि भावादिकं लभेत् ।  
 भावग्रहणमात्रेण मम ज्ञानी भवेन्नरः ॥ ६४ ॥  
 वाक्यसिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं वाणी हृदयगामिनी ।  
 नारायणं परित्यज्य लक्ष्मीस्तिष्ठति मन्दिरे ॥ ६५ ॥  
 मम पूर्णतमा दृष्टिस्तस्य देहे न संशयः ।  
 अवश्यं सिद्धिमाप्नोति सत्यं सत्यं सदाशिव ! ॥ ६६ ॥

महाभैरव उवाच ।—

सुचित्तन्तु महादेवि ! कथयस्नानुकम्पया ।  
 सर्वतन्त्रेषु विद्यासु भावसङ्केतमेव हि ॥ ६७ ॥  
 तथापि शक्तितन्त्रेषु विशेषात् सर्वसिद्धिदम् ।  
 भावविद्याविधिं विद्ये ! विस्तार्य भावसाधनम् ॥ ६८ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

भावविद्याविधिः ।—

भावस्तु त्रिविधो देव ! दिव्यवीरपशुक्रमात् ।  
 गुरुरस्य त्रिधा चात्र तथैव मन्त्रदेवताः ॥ ६९ ॥  
 दिव्यभावो महादेव ! श्रेयसां सर्वसिद्धिदः ।  
 द्वितीयो मध्यमः प्रोक्तस्तृतीयः सर्वानन्दितः ॥ ७० ॥  
 बहुजपात्तथा होमात् कायक्लेशादिविस्तरेः ।  
 न भावेन विना देवि ! तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः ॥ ७१ ॥  
 किं वीरसाधनेनैव मोक्षविद्याकुलेन किम् ? ।  
 किं पीठपूजनेनैव किं कन्याभोजनादिभिः ॥ ७२ ॥  
 स्वधोषिणीतिदानेन किं परेषां तथैव च ।  
 किं जितेन्द्रियभावेन किं कुलाचारकर्माणां ॥ ७३ ॥  
 यदि भावो विशुद्धार्थो न स्यात् कुलपरायणः ।  
 भावेन लभते सुक्तिर्भावेन कुलवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥

भावेन गोत्रवृद्धिः स्याद्भावेन कुलबोधनम् ।

किं तथा पूजनेनैव यदि भावो न जायते ॥ ७५ ॥

केन वा पूज्यते विद्या केन वा पूज्यते मनुः ।

फललाभश्च देवेश ! भवद्भावात् प्रजायते ॥ ७६ ॥

यतन्मन्त्रस्य कथने शङ्कते मम मानसम् ।

त्रिलोकं सञ्चयेत् प्रायः सर्वरत्नसमागमः ।

नावौच्य निर्जनं कुर्यात् कथं तत् कथयामि ते ॥ ७७ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

त्वत्प्रसादान्महादेवि ! विद्यास्त्रप्रप्रबोधिनि ! ।

सर्वपञ्चप्रपञ्चानां दीक्षा देया महेश्वरि ! ॥ ७८ ॥

यद्दुयतो देवि ! सर्वेषां भूतानां स्वापकारणम् ।

करोमि कथय त्वं मां भावमार्गोत्तमोत्तमम् ॥ ७९ ॥

महाभैरव्युवाच ।—

कुमारीलक्षणम् ।—

प्रथमं दिव्यभावन्तु कौलिके शृणु यत्नतः ।

सर्वदेवार्चितां विद्यां तेज पुञ्जप्रपूरिताम् ॥ ८० ॥

तेजोमयीं जगत्सर्वां विभाष्य मूर्त्तिकल्पनाम् ।

तत्तन्मूर्त्तिमये रूपैः स्नेहशून्येन वा पुनः ॥ ८१ ॥

आत्मानं तन्मयं कृत्वा सर्वभावं तथैव च ।

तत्सर्वां योषितं ध्यात्वा पूजयेद् यतमानसः ॥ ८२ ॥

अशेषकुलसम्पन्नां नानाजातिसमुद्भवाम् ।

नानादेशोद्भवां वाऽपि सद्गुणालयसंयुताम् ॥ ८३ ॥

द्वितीयवत्सरादूर्ध्वं यावत् स्यादष्टमाब्दकम् ।

तावज्जन्मा पूजयित्वा कन्यां सुन्दरमोहिनीम् ॥

दिव्यभावस्थितः साक्षात्तन्त्रमन्त्रफलं लभेत् ॥ ८४ ॥

कुमारीपूजनादेव कुमारीभोजनादिभिः ।

एकद्वित्रयादिवीजानां फलदानात् संशयः ॥ ८५ ॥



ताभ्यः पुष्पफलं दत्त्वा अनुलेपादिकं तथा ।  
 बालप्रियञ्च नेवेद्यं दत्त्वा तद्भावभावितः ॥ ८६ ॥  
 मुदा तदङ्गमाख्यानां बालभावविचेष्टितः ॥ ८६ ॥  
 जातिप्रियकथाऽऽलाप-क्रीडाकौतूहलान्वितः ।  
 यथार्थं तत्प्रियं तत्र कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ८७ ॥  
 कन्या सर्वसमृद्धिः स्यात् कन्या सर्वपरन्तपः ।  
 होमं मन्त्रार्चनं नित्य-क्रियां कौलिकसत्क्रियाम् ॥ ८८ ॥  
 नानाफलं महाधर्मं कुमारीपूजनं विना ।  
 तत्तदर्थफलं नाथ ! प्राप्नोति साधकोत्तमः ॥ ८९ ॥  
 फलं कोटिगुणं वीरः कुमारीपूजया लभेत् ॥ ९० ॥  
 कुसुमाञ्जलिपूर्णञ्च कन्यायां कुलपण्डितः ।  
 ददाति यदि तत्पुष्पं कोटिमरुप्रदो भवेत् ॥ ९१ ॥  
 तज्ज्ञानजं महापुण्यं क्षणादेव समालभेत् ।  
 कुमारौ भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥ ९२ ॥  
 एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती ।  
 त्रिवर्षा च त्रिधा मूर्त्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ॥ ९३ ॥  
 सूर्य्यगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा चैव रोहिणी ।  
 सप्तभिर्मालिनौ साक्षादष्टवर्षा च कुजिका ॥ ९४ ॥  
 नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता ।  
 एकादशे च रुद्राणौ द्वादशेऽन्दे तु भैरवी ॥ ९५ ॥  
 त्रयोदशे महालक्ष्मौर्द्विसप्तपौठनायिका ।  
 चैत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका मता ॥ ९६ ॥  
 एवंक्रमेण सपूज्य यावत् पुष्पं न विद्यते ।  
 प्रतिपदादिपूर्णान्तं वृद्धिमेदेन पूजयेत् ॥ ९७ ॥  
 महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके ।  
 महानवम्यां देवेश ! कुमारीञ्च प्रपूजयेत् ॥ ९८ ॥

तस्मात् षोडशपर्यन्तं युवतीति प्रचक्षते ।  
 तत्र भावप्रकाशः स्यात् स भावः परमो मतः ॥  
 रक्षितव्यं प्रयत्नेन रक्षितास्ताः प्रकाशयेत् ॥ ८८ ॥  
 महापूजादिकं कृत्वा वस्त्रालङ्कारभोजनैः ।  
 पूजयेन्मन्दभाग्योऽपि लभते जयमङ्गलम् ॥ १०० ॥  
 अन्येषां कथने नाथ ! प्रयोजनमहाफलम् ॥ १०१ ॥  
 विधिना पूजयेद् यस्तु दिव्यवौरपशुस्थितः ।  
 भावत्रये महासौख्यं दिव्ये सत्कर्म सत्फलम् ॥ १०२ ॥

इति श्रीब्रह्मयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीद्वीपने कुमार्युपचर्याविन्यासे सिद्धकल्पप्रकरणे  
 भावनिरर्णये भैरव-भैरवीसंवादे षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

### अथ सप्तमः पटलः ।

कुमारीपूजा ।—

अथ पूजां प्रवक्ष्यामि कुमार्याश्चातिदुर्लभाम् ।  
 व्याधिवर्गविह्वोनानां शीघ्रं मिध्यति भूतले ॥ १ ॥  
 तत्रकारं महादेव ! वीराणामधिपाधिप ! ।  
 पूजास्थानं महापीठं देवालयमथापि वा ॥ २ ॥  
 सुन्दरीं परमानन्द-वर्द्धनीं जयदायिनीम् ।  
 कलारात्रिस्त्ररूपां श्रीं गौरीं रक्ताङ्गरागिणीम् ॥ ३ ॥  
 कन्यां देवकुलोद्भूतां राक्षसीं वा नरोत्तमाम् ।  
 नटीकन्यां ह्योनकन्यां तथा कापालिकन्यकाम् ॥ ४ ॥  
 रजकस्यापि कन्याञ्च तथा नापितकन्यकाम् ।  
 गोपालकन्यकाञ्चैव ब्राह्मणस्यापि कन्यकाम् ॥ ५ ॥  
 शूद्रकन्यां वैद्यकन्यां वणिक्कन्यामथापि वा ।  
 चण्डालकन्यकां वाऽपि यत्र कुत्राश्रमे स्थिताम् ॥ ६ ॥

सुहृद्गंस्य कन्याञ्च समानीय प्रयत्नतः ।  
 पूजयेत् परमानन्दैरात्मध्यानपरायणः ॥ ७ ॥  
 क्रमशः शृणु देवेन्द्र ! वरहस्तनिषेवित ! ।  
 परमानन्दसौन्दर्य-कारणानन्दविग्रह ! ॥ ८ ॥  
 मम पूजां यः करोति प्रत्यहं शुद्धभक्तितः ।  
 तस्यावश्यं कुमारीणां पूजनं भोजनं वरम् ॥  
 तेजोरूपं विधोश्वाग्नेः सर्वभावे प्रशस्यते ॥ ९ ॥  
 तत्पूजनात्तदालापाङ्गीजनादपि तत् शुभम् ।  
 मम प्रीतिर्भवेत् साक्षाद्देवता गुप्तिसंस्थिता ॥ १० ॥  
 बालभैरवदेवस्य कामिनौ वटुकस्य च ।  
 मत्पुत्रस्य सर्वलोक-पूजितस्य महीजसः ॥ ११ ॥  
 पूजाभिर्विधिर्द्रव्यैः कुमारी देवपूजिता ।  
 कुमारी कन्यका प्रोक्ता सर्वज्ञा जगदीश्वरी ॥ १२ ॥  
 पूजार्थं सर्वलोकस्य समानीय सुरेश्वर ! ।  
 पूजयन्ति महादेवीं गुप्तभावनिवासिनीम् ॥ १३ ॥  
 सदा भोजनवाञ्छार्घ्यामान्या सन्तुष्टहासिनी ।  
 वृथा न रीति सा देवी कुमारी देवनायिका ॥ १४ ॥  
 सरस्वतीस्वरूपा च पूज्यते सर्वनायकैः ।  
 शिवभक्तैर्विष्णुभक्तैस्तथाऽन्यदेवपूजितैः ॥ १५ ॥  
 सर्वलोकैः पूजिता सा चावश्यं पूज्यते बुधैः ।  
 भक्तः कुमार्याः सततं पूजया लभते श्रियम् ॥ १६ ॥  
 पूजया धनमाप्नोति पूजया लभते महीम् ।  
 पूजया लभते लक्ष्मीं सरस्वतीं महीजसाम् ॥  
 महायिद्या प्रसीदन्ति सर्वे देवा न संशयः ॥ १७ ॥  
 बालभैरवब्रह्मेन्द्रा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।  
 ब्रह्माश्च देववर्गाश्च वैष्णवा विष्णुरुपिणः ॥ १८ ॥

अवतारा हिभुजाश्च विष्णवो मनुशोभिताः ।  
 अन्ये दिक्पालदेवाश्च चराचरगुरुस्तथा ॥ १९ ॥  
 नामविद्यायुताः सर्वे दानवाः कटशालिनः ।  
 अपवर्गस्थिता ये ये ते ते तुष्टा न संशयः ॥ २० ॥  
 यद्यहं तुष्टिरूपा हि अन्यलोके च का कथा ।  
 कुमारीपूजनं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ २१ ॥  
 महाशान्तिर्भवेत् क्षिप्रं सर्वपुण्यफलप्रदम् ।  
 तत्तन्मन्त्रसमुल्लेखात् क्षणात् पुण्यायुतं लभेत् ॥ २२ ॥  
 मन्त्रेण पुष्टितं कृत्वा जप्त्वा सिद्धौश्वरो भवेत् ॥ २३ ॥  
 यद्यत् प्रकारमुच्चार्य्य वदामि सुरसुन्दर ! ।  
 तत्तत् कार्यमवश्यञ्च भिन्नबुद्धिं न कारयेत् ॥ २४ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

अथ बीजप्रभेदञ्च वद शङ्करपूजिते ! ।  
 यदि मे स्नेहपुञ्जीऽस्ति मत्कुलार्थप्रवेशनि ! ॥  
 वदस्व परमानन्दभैरवि ! प्राणवक्त्रमे ! ॥ २५ ॥

श्रीआनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणु नाथ ! कुलार्थं मे कुमारीपूजने मनुम् ।  
 महामन्त्रं महामन्त्रं सिद्धमन्त्रं न संशयः ॥ २६ ॥  
 एतन्मन्त्रप्रसादेन जोवन्मुक्तो भवेत् सुधीः ।  
 अन्ते देवौपटं याति सत्यमानन्दभैरव ! ॥ २७ ॥  
 ऐहिके सुखसम्पत्तिर्मधुमत्याः प्रसादकम् ।  
 अवश्यं प्राप्नुयान्मर्त्यो विश्वासं कुरु शङ्कर ! ॥ २८ ॥  
 वाम्भवेन पुनः क्षोभं मायाबीजे गुणाष्टकम् ।  
 प्रिया बीजे । अयो लाभो मायाबीजे रिपुक्षयः ॥ २९ ॥  
 भैरवेण तु बीजेन खेचरत्वं सुरादिभिः ।  
 कुमारिका ह्यहं नाथ ! सदा त्वं हि कुमारकः ॥ ३० ॥

अष्टोत्तरशतं वाऽपि एकं वा परिपूजयेत् ।  
 पूजिताः प्रतिपद्यन्ते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥ ३१ ॥  
 कुमारी योगिनी साक्षात् कुमारी परदेवता ।  
 असुरा अष्टनागाश्च ये ये दुष्टग्रहा अपि ॥ ३२ ॥  
 भूतवेतालगन्धर्वा डाकिनीयक्षराक्षसाः ।  
 ये चान्ये देवताः सर्वा भूर्भुवःस्वश्च भैरवाः ॥ ३३ ॥  
 पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ ३४ ॥  
 ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ।  
 निधियुक्तां कुमारीन्तु पूजयेच्चैव भैरव ॥ ३५ ॥  
 पादार्घ्यञ्च तथा धूपं कुङ्कुमं चन्दनं शुभम् ।  
 भक्तिभावेन संपूज्य कुमारीभ्यो निवेदयेत् ॥ ३६ ॥  
 प्रदक्षिणत्रयं कुर्यादादौ मध्ये तथाऽन्ततः ।  
 पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतस्वर्णमौक्तिकैः ॥ ३७ ॥  
 दक्षिणां विधिवद्वत्वा कुमारीभ्यः क्रमेण तु ।  
 विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ३८ ॥  
 यावच्च पुण्यकाले तु कथ्यादानं प्रकल्पयेत् ।  
 भुक्तिमुक्तिफलं तस्य सौभाग्यं सर्वसम्पदः ॥  
 रुद्रलोके वशेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः ॥ ३९ ॥  
 तीर्थकोटिसहस्राणि अश्वमेधशतानि च ।  
 तत्फलं लभते सद्यो यस्तु कन्यां विवाहयेत् ॥ ४० ॥  
 वालुका सागरे ज्ञेया तावदब्दसहस्रकम् ।  
 एकैकं कुलमुद्गत्य रुद्रलोके महौयते ॥ ४१ ॥  
 तत्तद्विष्टदेवतानां प्रीतये तुष्टये सुधौः ।  
 कन्यादानं समाहृत्य मुक्तिमाप्नोति भैरव ! ॥ ४२ ॥  
 तत्तद्वर्षीयकन्यायास्तत्तद्बुद्ध्या च साधकः ।

विभाव्य शिवरूपत्वं सम्प्रदानीयकालके ॥ ४३ ॥  
 पूर्णरूपं शिवं ज्ञात्वा वरं सर्वाङ्गसुन्दरम् ।  
 तिजोमयं यशः कान्तं बालभैरवरूपिणम् ॥ ४४ ॥  
 वटुकेशं महादेवं वरयेत् साधकाग्रणीः ।  
 बालरूपं भैरवञ्च त्रैलोक्यसुन्दरीं वराम् ॥ ४५ ॥  
 नानाऽलङ्कारनम्राङ्गीं भङ्गविद्याप्रकाशिनीम् ।  
 चारुहास्यां महानन्द-हृदयां शुभदां शुभाम् ॥ ४६ ॥  
 ध्यात्वा द्वादशपत्राजे पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।  
 सम्प्रदाने समानीय तत्तन्मन्त्रेण दापयेत् ॥ ४७ ॥  
 एतत् श्रुत्वा महावीरो बलरूपी निरञ्जनः ।  
 पुनर्जिज्ञासयामास परमानन्दभैरवीम् ॥ ४८ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

कुमारीकुलतत्त्वार्थं मन्त्रार्थं जपनक्रमम् ।  
 धलमानप्रकारञ्च भोजनादिक्रमं तथा ॥ ४९ ॥  
 होमादिप्रक्रियां तस्याः स्तोत्रं प्रत्येकमेव हि ।  
 कवचञ्च कुमारीणां वदस्व क्रमशः प्रिये ! ॥ ५० ॥  
 येन क्रमेण सा विद्या कुमारीपरदेवता ।  
 निर्जने साधकस्याग्रे महावाक्यं स्वयं वदेत् ॥ ५१ ॥  
 बालिका चारुनयना केन हेतोः प्रसौदति ।  
 तत्प्रकारं वद स्नेहादानन्दभैरवप्रिये ! ॥ ५२ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणु शम्भो ! प्रवक्ष्यामि कुमारीकुलमन्त्रकान् ।  
 येन विज्ञानमात्रेण धरणीशो नरोत्तमः ॥ ५३ ॥  
 सर्वेषां गुरुरूपः स्यात् कुमारीयजनेन च ।  
 एकवर्षा वरा सन्ध्या द्विकानां मनुवृत्तमम् ॥ ५४ ॥  
 षोडशाच्छान्तरूपाणां मन्त्रं शृणु महाप्रभो ! ।

क्रमादिकञ्च सर्वेषां चैतन्यसिद्धिसत्क्रियाम् ॥ ५५ ॥  
 आनीय सुन्दरीं नारीं कुमारीं वरनायिकाम् ।  
 रत्नालङ्कारसंयुक्तां शङ्खवस्त्रादिशोभिताम् ॥ ५६ ॥  
 वाग्भवेन जलं नाथ ! त्वन्नान्ना परिदापयेत् ।  
 देवीबुद्ध्या सदा ध्यात्वा पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ ५७ ॥  
 मायावीजेन त्वन्नान्ना पाद्यं दद्यात्तथा प्रभो ! ।  
 लक्ष्मीवीजेन चार्घ्यन्तु कुर्याद्बीजेन चन्दनम् ॥ ५८ ॥  
 मायावीजेन पुष्पाणि कुमार्ण्यं दापयेत् सुधीः ।  
 सदाशिवेन मन्त्रेण धूपदीपौ महोत्तमौ ॥ ५९ ॥  
 दत्त्वा षडङ्गमन्त्रेण पूजयेद्देवनायक ।  
 तत्प्रकारं महादेव ! शृणुष्वानन्दरूपष्टकम् ॥ ६० ॥  
 महातेजोमयं शुभ्रं हृदयं हस्तदक्षिणैः ।  
 विभाव्य प्रपठेद्दीमान् तन्मन्त्रं शृणु शङ्करम् ॥ ६१ ॥  
 आदौ वाग्भवमुच्चार्य मायां लक्ष्मीन्तु कूर्चकम् ।  
 प्रेतबीजं ततो ब्रूयात् सविसर्गन्दुविन्दुकम् ॥ ६२ ॥  
 कुन्तशब्दं समुच्चार्य कुमारिके ततो वटेत् ।  
 हृदयाय नमः प्रोच्य ततः शिरसि भावयेत् ॥ ६३ ॥  
 शुक्लवर्णं सर्वमयं बीजमुच्चार्य संन्यसेत् ।  
 हकारं वाग्भवाद्यञ्च वकारं वाग्भवार्थकम् ॥ ६४ ॥  
 मायां लक्ष्मीं वाग्भवञ्च द्विठान्ते शिरसे पटम् ।  
 वङ्गिजायावधिर्मन्त्री न्यसेत् शिरसि साधकः ॥ ६५ ॥  
 शिखामध्ये क्लृणावर्णं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।  
 विभाव्य संन्यसेन्मन्त्री कुमारीकुलसिद्धये ॥ ६६ ॥  
 आदौ प्रणवमुद्धृत्य तदन्ते वङ्गिसुन्दरी ।  
 शिखायै च समुद्धृत्य वषट्कारं ततो वटेत् ॥ ६७ ॥  
 ततः कवचमध्ये च बलवन्तं सुतेजसम् ।

प्रथमारुणसङ्काशं ध्यात्वा चारुकलेवरम् ॥ ६८ ॥  
 वाग्भवञ्च समुच्चार्य कुलशब्दं ततो वदेत् ।  
 बागोश्वरौपटं पश्चात् कवचाय ततो वदेत् ॥ ६९ ॥  
 तारकब्रह्मशब्दञ्च कवचन्यासजालकम् ।  
 ततो नेत्रत्रये ध्यात्वा महावीजं महाप्रभम् ॥ ७० ॥  
 रक्तवर्णं कोटिकोटि-जवामण्डलमण्डितम् ।  
 विराजितं कोटिपुण्यार्जिततेजसि भास्करे ॥ ७१ ॥  
 वाग्भवञ्च समुच्चार्य कुलेश्वरि ! पदं ततः ।  
 नेत्रत्रयाय शब्दान्ते वीषट् लोचनमन्त्रकम् ॥ ७२ ॥  
 ततः साधकमन्त्रौ च वामहस्ततले तथा ।  
 मध्यमा-तर्जनीभ्याञ्च तालद्वयमुपाचरेत् ॥ ७३ ॥  
 तन्मन्त्रं कोटिसूर्योग्र-ज्योत्स्नाजालसमप्रभम् ।  
 महाकाशोद्भवं शब्द-महोग्रपरिपौडनम् ॥ ७४ ॥  
 मायावीजं तथास्त्राय-पदमुद्धृत्य यत्नतः ।  
 पान्तठान्तं समुद्धृत्य महामन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ ७५ ॥  
 ततस्तस्या हृत्त्रिलये ध्यात्वा च परिवारकान् ।  
 पूजयेद् यत्नतो मन्त्री मीषजाऽमृतधारया ॥ ७६ ॥  
 तर्पयेत् पूजयेद्भक्त्या भैरवं बालभैरवम् ।  
 देवताभिः पूजयित्वा परिवारान् क्रमेण वै ॥ ७७ ॥  
 ततो वाग्भवमुच्चार्य सिद्धजायायशब्दतः ।  
 पूर्वं पदं समुच्चार्य वक्त्राय नम ईरितः ॥ ७८ ॥  
 ततो वाग्भवमुच्चार्य जायायशब्दमुद्धरेत् ।  
 उत्तरं वक्त्रमुद्धृत्य चतुर्थ्यन्तं नमः पदम् ॥ ७९ ॥  
 ततो वाग्भवमायाश्री-वौजमुच्चार्य यत्नतः ।  
 कुञ्जिके पश्चिमान्ते च वक्त्राय नमः इत्यपि ॥ ८० ॥  
 ततो वाग्भवमुच्चार्य कालिके पदमुच्चरेत् ।



दक्षवक्त्राय शब्दान्ते नानामन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ ८१ ॥  
 एतन्मन्त्राक्षरान्नाथ ! समुच्चार्य्यं कुलेश्वर ! ।  
 पूजयित्वा क्रमेणैव भास्करं परिपूजयेत् ॥ ८२ ॥  
 चन्द्रं दिक्पालदेवञ्च सन्ध्यादीन् परिपूजयेत् ॥ ८३ ॥  
 वीरभद्रां महाकालीं कौलिनीं कुलगामिनीम् ।  
 अष्टादशभुजां कालीं चतुर्वर्गां प्रपूजयेत् ॥ ८४ ॥  
 नैवेद्याहोन् समानीय नानाभोज्यादिसंयुतान् ।  
 दुग्धं घनाहृतं क्षीरं पक्वान्नं पक्कसत्फलम् ॥ ८५ ॥  
 यद् यत् कालोपयोग्यञ्च सर्वकामधुमिश्रितम् ।  
 पञ्चतत्त्वं कुलद्रव्यं निजकल्याणवर्द्धनम् ॥ ८६ ॥  
 नानाद्रव्यञ्च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधितम् ।  
 कुमारीभ्यो निवेद्यैवं नानासौरभशांभितम् ॥ ८७ ॥  
 शीतलं जलमानीय दद्यात्ताभ्यो महासुधीः ।  
 ततो हि तं महामन्त्रं कुमार्याश्चातिदुर्लभम् ॥ ८८ ॥  
 अथवा स्वीयमूलञ्च जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ८९ ॥  
 समर्प्य प्राणवायूनां धारयेत् कारयेत् स्वयम् ।  
 अष्टाङ्गादिप्रणामञ्च कुर्वन् स्तोत्रं पठन् दिशेत् ॥ ९० ॥  
 "नमामि कुलकामिनीं परमभाग्यसन्दायिनीम् ।  
 कुमाररतिचातुरीं सकलसिद्धिमानन्दिनीम् ॥ ९१ ॥  
 प्रवालगुटिकासृजां रजतरागवस्त्रान्विताम् ।  
 हिरण्यतुलभूषणां भुवनवाक् कुमारीं भजे" ॥ ९२ ॥  
 इति मन्त्रेण संन्यस्य तारिणीं परिपूजयेत् ।  
 शिवं गणेशं संपूज्य प्रणमेत् साधकोत्तमः ॥ ९३ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने कुमार्युपचर्यां विद्यासे सिद्धमन्त्रप्रश्नरत्ने  
 दिव्यभावनिर्णये भैरव-भैरवोसंवादे सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

## अथ अष्टमः पटलः ।

कुमारी-जपहोमौ ।—

अथ वक्ष्ये महादेव ! कुमार्यां जपहोमकम् ।  
लक्षसंख्यं जपं कृत्वा मायां वा वाग्भवं रमाम् ॥ १ ॥  
कालौवोजं वाऽपि नाथ ! मायां वा कामवौजकम् ।  
सदाशिवेन पुटितं विन्दुचन्द्रविभूषितम् ॥ २ ॥  
अथवा प्रणवेनाऽपि पुटितं त्रिदशेश्वर ! ।  
जपित्वा मूलमन्त्रञ्च लक्षसंख्याविधानतः ॥ ३ ॥  
तद्दशांशं महाहोमं घृताक्तविल्वपत्रकैः ।  
अथवा श्वेतपुष्पैश्च कुन्दपुष्पैर्महाफलम् ॥ ४ ॥  
एवं क्रमेण जुहुयात् करवोरप्रसूनकैः ।  
घृताक्तैः केवलैर्वाऽपि चन्दनाऽगुरुमिश्रितैः ॥ ५ ॥  
हविष्याशौ दिवाभागे रात्रौ पूजापरो भवेत् ।  
निजपूजावशेषैस्तु कुलद्रव्यैः प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥  
दिवा संख्यं जपेत्तत्र परमानन्दरूपघृक् ।  
जपान्ते जुहुयान्मन्त्रो मदुक्तद्रव्यसंयुतैः ॥ ७ ॥  
ततः प्राणात्मकं वायुं मोक्षयित्वा पुनः पुनः ।  
प्राणायामत्रयं कृत्वा चाष्टाङ्गे प्रणमेन्मुदा ॥ ८ ॥  
प्रणामसमये नाथ ! इदं स्तोत्रं पठेद् यतिः ।  
कवचञ्च तथा पाठ्यं कुमारीणामथापि वा ॥ ९ ॥  
निजदेव्या महास्तोत्रं पठेद्भि कवचं तथा ।  
कुमारीणां महादेव ! सहस्रनाम साष्टकम् ॥ १० ॥  
पठित्वा सिद्धिमाप्नोति पठित्वा साधकोत्तमः ।  
अग्रे संस्थाप्य ताः सर्वा रत्नकोटिसुशीतलाः ॥ ११ ॥  
ततः स्तोत्रं पठेद्द्वौमान् समाहितमना बली ।  
महाविद्याऽऽचाररतो महाभावोल्बणोऽपि वा ॥ १२ ॥

एवं क्रमेण प्रपठेत् भक्तिभावपरायणः ।

महाविद्या महासेवा भक्तिश्रद्धाऽऽप्नुतार्पिता ॥

महाज्ञानो भवेत् क्षिप्रं वाञ्छासिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

कुमारीस्तवः ।—

देवेन्द्रादय इन्दुकोटिकिरणां वाराणसीवासिनीं  
 विद्यां वाग्भवकामिनीं त्रिनयनां नृक्षक्रियाकाभिनौम् ।  
 चण्डोद्योगनिहन्तनीं त्रिजगतां धात्रीं कुमारीं वरां  
 मूलाभोरुहवासिनीं शशिमूर्खीं सम्पूजयन्ति श्रिये ॥ १४ ॥  
 भाव्यां देवगणैः शिवैन्द्रयतिभिर्मोक्षार्थिभिर्बालिकां  
 सन्ध्यां नित्यगुणोदयां द्विजगणश्रेष्ठोदयां सारुणाम् ।  
 शुक्लाभां परमेश्वरीं शुभकरीं भद्रां विशालाननां  
 गायत्रीगणमातरं दिनगतिं कृष्णाञ्च वृद्धां भजेत् ॥ १५ ॥  
 बालां बालकपूजितां गणभृतां विद्यावतां मोक्षदां  
 धात्रीं शुक्लसरस्वतीं नववरां वाश्यादिना चण्डिकाम् ।  
 स्वाधिष्ठानहरिप्रियां प्रियकरीं वेदान्तविद्याप्रदां  
 नित्यं मोक्षहिताय योगवपुषा चैतन्यरूपी भवेत् ॥ १६ ॥  
 नानारत्नसमूहनिर्मितगृहे पूज्यां सुरैर्बालिकां  
 वन्दे नन्दनकानने मनसिजे सिद्धान्तवैजानने ! ।  
 अर्थं देहि निरर्थकाय वपुषे हित्वा कुमारीकलां  
 मर्त्यां पातु कुमारिके ! त्रिविधमृत्याकाशतजोमयीम् ॥ १७ ॥  
 हालास्ये ! हि सकालिकां कुलपथोल्लासैकवीजोद्भवां  
 मांसासोदकरालिनीं हि भजतां कामातिरिक्तप्रदाम् ।  
 बालोऽहं वटुकेश्वरस्य चरणाभोजाश्रितोऽहं सदा  
 हित्वा बालकुमारिकोरसि सदा शुद्धाम्बुरुहे भजे ॥ १८ ॥  
 सूर्याह्लादवलाकिनीं कलिमहापापासितां पापदां

वन्देऽमूं भुवि सूर्यगां भयहरां तेजोमयीं बालिकाम् ।  
 वन्देऽहं कमले ! सदा रविदले बालेन्द्रविद्यां सतीं  
 साक्षात् सिद्धिकरीं कुमारी ! विमलेऽन्वासाद्य रूपेश्वरि ॥ १९ ॥  
 नित्यं स्त्रीकुलकामिनीं कुलवतीं स्योनामुमामम्बिकां  
 नानायोगनिवासिनीं सुरमणीं नित्यां तपस्याऽन्विताम् ।  
 वेदान्तार्थविशेषदेशवसनाभाषाविशेषस्थितां  
 वन्दे पर्वतराजराजतनयां कालप्रिये त्वामहम् ॥ २० ॥  
 कौमारीं कुलकामिनीं रिपुगणक्षोभाग्विसन्दाहिनीं  
 रक्तान्तानयनां शुभां परममार्गमुक्तिसञ्ज्ञाप्रदाम् ।  
 भार्यां भागवतीं मतिं भवभङ्गामोदपञ्चाननां  
 पञ्चास्यप्रियकामिनीं भयहरां सर्पादिहारां भजे ॥ २१ ॥  
 चन्द्रास्यां चरणहयास्वजमहाशोभाविनोदीं नदीं  
 मोहादिक्षयकारिणीं वरकरां श्रीकुलिकां सुन्दरीम् ।  
 ये नित्यं परिपूजयन्ति सहस्रा राजेन्द्रचूडामणिं  
 सम्यक्तिं धनमायुषं जनयतो व्याप्यैश्वरत्वं जगुः ॥ २२ ॥  
 योगीशं भुवनेश्वरं प्रियकरं श्रीकालसन्दर्भया  
 शोभासागरशामिनं हरभवं वाञ्छाफलोद्दीपनम् ।  
 लोकानामघनाशनाय शिवया श्रीसंज्ञया विद्यया  
 धर्मप्राणमदैवतं प्रणमतां कल्पद्रुमं भावयेत् ॥ २३ ॥  
 विद्यां तामपराजितां मदनभावामोदमत्ताननां  
 हृत्पद्मस्थितपादुकां कुलकुलां कात्यायनीं भैरवीम् ।  
 ये ये पुण्यधियो भजन्ति परमानन्दाश्रिमध्ये सुदा  
 सर्वाच्छादिततेजसा भयकरीं मोक्षाय सत्कीर्तये ॥ २४ ॥  
 ऋद्राणीं प्रणमामि पद्मवदनां कोट्यर्कतेजोमयीं  
 नानालङ्कृतभूषणां कुलभुजामानन्दसन्दायिनीम् ।

श्रीमायाकमलाऽन्वितां हृदिगतां सन्तानवोजक्रियाम् ॥२५॥

नमामि वरभैरवीं क्षितितनयकालाननां

मृणालकुसुमारुणां भुवनोदधिसंशोधनीम् ।

जगद्गयहरां सर्तीं हरति या च योगेश्वरी

महापदसहस्रकं सकलभोगटान्तामहम् ॥ २६ ॥

साम्राज्यं प्रददाति याचितवती विद्यामहालक्षणा

साक्षादष्टसृष्टिदातरि महालक्ष्म्योः कुलक्षोभहा ।

स्वाधिष्ठानसुपङ्कजे विवसतां विष्णोरनन्तप्रिये !

वन्दे राजपदप्रदां शुभकरीं कौलेश्वरीं कौलिकौम् ॥ २७ ॥

पौठानामधिपाय ताञ्च सुवहां विद्यां शुभां नायिकां

सर्वालङ्करणान्वितां त्रिजगतां क्षोभापहां वारुणीम् ।

वन्दे पौठगनायिकां त्रिभुवनच्छायाभिराच्छादितां

सर्वेषां हितकारिणीं जयवतामानन्दरूपेश्वरीम् ॥ २८ ॥

क्षेत्रज्ञां मदविह्वलां कुलवतीं सिद्धिप्रियां प्रेयसीं

शम्भोः श्रीवटुकेश्वरस्य महतामानन्दसञ्चारिणीम् ॥२९ ॥

\* \* \* \*

साक्षादापरमोद्गमां कमलमध्यसम्भाविनीं

शिरो दशशते दलेऽमृतमहाब्धिधाराधराम् ।

निजमनःक्षोभापहां साकिनीं वाक्यार्थ-

प्रकटामहं रजताभां वन्दे महाभैरवीम् ॥ ३० ॥

प्रणामफलदायिनीं सकलवाञ्छवश्यां

गुणां नमामि परमार्थिकां विषयसंहारिणीम् ।

सम्पूर्णविधुवन्मुखीं कमलमध्यसम्भाविनीं

शिरो दशशते दलेऽमृतमहाब्धिधाराधराम् ॥ ३१ ॥

साक्षादहं त्रिभुवनामृतपूर्णदेहां

सख्यादिदेविकमलां कुलपण्डितेन्द्राम् ।

तन्मे भजे दशशते दलमध्यमध्ये  
 कौलेश्वरो सकलदिव्यजनाश्रयां ताम् ॥ ३२ ॥  
 विश्वेश्वरो स्वरकुले वरबालिके त्वां  
 सिद्धामले प्रतिदिनं प्रणमामि भक्त्या ।  
 भक्तिं धनं जयपदं यदि देहि दास्यं  
 तस्मिन् महामधुमतीं लघुगेहभाष्याम् ॥ ३३ ॥  
 एतत्स्तोत्रप्रसादेन कवितावाक्पतिर्भवेत् ।  
 महासिद्धीश्वरो दिव्यो वीरभावपरायणः ॥ ३४ ॥  
 सर्वत्र जयमाप्नोति स हि स्याद्देववत्तमः ।  
 वाचामीशो भवेत् क्षिप्रं कामरूपी भवेन्नरः ॥ ३५ ॥  
 पशुरेव महावीरो दिव्यो भवति निश्चितम् ।  
 क्रमशो ह्यष्टसिद्धिः स्यात् वाग्मी भवति निश्चितम् ॥ ३६ ॥  
 सर्वविद्याः प्रसीदन्ति तुष्टाः सर्वे दिगीश्वराः ।  
 बह्विः शीतलतां याति जलस्तम्भं स कारयेत् ॥ ३७ ॥  
 शूनवान् पुत्रवान् राजा इहकाले भवेन्नरः ।  
 परे च याति वैकुण्ठे कैलासे शिवसन्निधौ ॥ ३८ ॥  
 मुक्तिरेव महादेव ! यो नित्यं सर्वदा पठेत् ।  
 महाविद्यापदाभोजं स हि पश्यति निश्चितम् ॥ ३९ ॥

कुमारीतर्पणम् ।—

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि कुमारीतर्पणादिकम् ।  
 यासां तर्पणमात्रेण कुलसिद्धिर्भवेत् ध्रुवम् ॥ ४० ॥  
 कुलबालां मूलपद्म-स्थितां कामविहारिणीम् ।  
 शतधा मूलमन्त्रेण तर्पयामि तव प्रिये ॥ ४१ ॥  
 मूलाधारमहातेजोजटामण्डलमण्डिताम् ।  
 सङ्ख्या-देवीं तर्पयामि कामबीजेन मे श्रमे ॥ ४२ ॥  
 मूलपङ्कजयोगीश ! कुमारीं श्रीसरस्वतीम् ।

तर्पयामि कुलद्रव्यैस्तव सन्तोषहेतुना ॥ ४३ ॥  
 चक्रं मूलाधारपद्मे त्रिमूर्तिबालनायिकाम् ।  
 सर्वकल्याणदां देवीं तर्पयामि परामृतैः ॥ ४४ ॥  
 स्वाधिष्ठानमहापद्म-षड्दलान्तःप्रकाशिनीम् ।  
 श्रौवीजेन तर्पयामि भोगमोक्षाय केवलम् ॥ ४५ ॥  
 स्वाधिष्ठानकुलोक्ता स-विष्णुसङ्केतगामिनीम् ।  
 कालिकां निजवीजेन तर्पयामि कुलामृतैः ॥ ४६ ॥  
 स्वाधिष्ठानाख्यपद्मस्थां महातेजोमयीं शिवाम् ।  
 सूर्य्यां शीर्षमधुना तर्पयामि कुलेश्वरीम् ॥ ४७ ॥  
 मङ्गलपूजाजमध्ये तु मनोहरकलेवराम् ।  
 उमादेवीं तर्पयामि मायावीजेन पार्वतीम् ॥ ४८ ॥  
 मणिपूराभोजमध्ये तैलोक्यपरिपूजिताम् ।  
 मालिनीं न च चित्तस्थ सुबुद्धिं तर्पयाम्यहम् ॥ ४९ ॥  
 मणिपूरस्थितां रौद्रीं परमानन्दवर्द्धिनीम् ।  
 आकाशगामिनीं देवीं कुञ्जिकां तर्पयाम्यहम् ॥ ५० ॥  
 तर्पयामि महादेवीं महासाधनतत्पराम् ।  
 योगिनीं कालसन्दर्भां तर्पयामि कुलाननाम् ॥ ५१ ॥  
 शक्तिमन्त्रप्रदां रौद्रीं लोलजिह्वासमाकुलाम् ।  
 अपराजितां महादेवीं तर्पयामि कुलेश्वरीम् ॥ ५२ ॥  
 महाकौलप्रियां सिद्धां रुद्रलोकसुखप्रदाम् ।  
 रुद्राणीं रौद्रकिरणां तर्पयामि बधूप्रियाम् ॥ ५३ ॥  
 षोडशस्वरसंसिद्धिं महारौरवनाशिनीम् ।  
 महामन्द्यपानचित्तां भैरवीं तर्पयाम्यहम् ॥ ५४ ॥  
 तलोक्यवरदां देवीं श्रीजीजमनयाऽऽवृताम् ।  
 महालक्ष्मीं भवैश्वर्य्य-दायिनीं तर्पयाम्यहम् ॥ ५५ ॥  
 लोकानां हितकर्त्रीञ्च हितहितजनप्रियाम् ।

तर्पयामि रमाबीजां पीठाद्यां पीठनायिकाम् ॥ ५६ ॥

जयन्तीं वेदवेदाङ्ग-मातरं सूर्यमातरम् ।

तर्पयामि सुधाभिश्च क्षेत्रज्ञां माययाऽऽवृताम् ॥ ५७ ॥

तर्पयामि कुलानन्द-परगां परमाननाम् ।

तर्पयाम्यम्बिकां देवीं मायालक्ष्मीहृदि स्थिताम् ॥ ५८ ॥

सर्वासां चरणद्वयास्त्रुजतनुं चैतन्यविद्यावतीं

सौख्यार्थं ऋभषोऽशस्त्रयुतां श्रीषाड्गीमङ्गुलाम् ।

आनन्दार्णवपद्मरागखचिते सिंहासने शोभिते

नित्यं शतं परितर्पयामि सबलं श्वेताजमध्यानने ! ॥ ५९ ॥

ये नित्यं प्रपठन्ति चारुं सफलं स्तोत्रार्घ्यसन्तर्पणं

विद्यादाननिदानमोक्षपरमां मायामयं यान्ति ते ।

नश्यन्ति क्षितिमण्डलेष्वरिगणाः सर्वा विपत्कारकाः

राजानं वशयन्ति योगसकलं नित्या भवन्ति क्षणात् ॥ ६० ॥

तर्पयाम्येकमोक्षाख्यं पठन्ति यदि मानुषाः ।

अष्टैश्वर्ययुतो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति ॥ ६१ ॥

महायोगी भवेन्नाथ ! मासादभ्यासतः प्रभो ! ।

त्रैलोक्यं क्षीभयेत् क्षिप्रं वाञ्छाफलमवाप्नुयात् ॥

भूमध्ये राजराजेशो लभते वरैर्मङ्गलम् ॥ ६२ ॥

शत्रुनाशे तथोच्चोटे बन्धने व्याधिसङ्कटे ।

चातुरङ्गे तथा घारे भये दूरस्य प्रेषणे ॥

महायुद्धे नरेन्द्राणां पठित्वा सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥

यः पठेदेकभावेन सन्तर्पणफलं लभेत् ।

पूजायाः फलमाप्नोति कुमारीस्तोत्रपाठतः ॥ ६४ ॥

यो न कुर्यात् कुमार्यर्चनं स्तोत्रञ्च नित्यमङ्गलम् ।

स भवेत् पाशवः कल्पो मृत्युस्तस्य पदे पदे ॥ ६५ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने कुमार्युपचर्याविलासे सिद्धसन्तप्रकरणे

दिव्यभावनिर्यये भैरव-भैरवी संवादे अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥



## अथ नवमः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कुमारीकवचम् ।—

अथातः संप्रवक्ष्यामि कुमारीकवचं शुभम् ।  
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥  
पठनाद्वारणाल्लोका महासिद्धाः प्रभाकराः ।  
शक्रो देवाधिपः श्रीमान् देवे गुरुर्बृहस्पतिः ॥ २ ॥  
सद्यस्त्वैजोमयो वङ्गिर्धर्मराजो भयानकः ।  
वरुणो देवपूज्यो हि जलानामधिपः स्वयम् ॥ ३ ॥  
सर्वहर्ता महावायुः कुबेरः कुञ्जरेश्वरः ।  
धराधिपः प्रियः शम्भोः सर्वे देवा दिगीश्वराः ॥ ४ ॥  
न मेरुः प्रभुरेकायाः सर्वेशो निर्मलो हयोः ।  
एतत्कवचपाठेन सर्वस्वपो धनाधिपः ॥ ५ ॥  
प्रणवी मे शिरः पातु माया सन्दायिका सती ।  
ललाटोर्ध्वं महामाया पस्तु मे श्रीसरस्वती ॥ ६ ॥  
कामाख्या वटुकेशानी त्रिमूर्तिर्भालमेव मे ।  
चामुण्डा वीजरूपा च वदनं कालिका मम ॥ ७ ॥  
पातु मां सूर्यगा नित्यं तथा नेत्रहयं मम ।  
कर्णयुग्मं कामबीजं स्वरूपं मा तपस्विनी ॥ ८ ॥  
रसनार्थं तथा पातु वाग्देवी मालिनी मम ।  
डामरस्था कामरूपा दन्तार्थं कुम्भिका मम ॥ ९ ॥  
देवी प्रणवरूपाऽसौ पातु नित्यं शिवा मम ।  
श्रीष्ठाधरं शक्तिबीजात्मिका स्वाहास्वरूपिणी ॥ १० ॥  
पायान्मे कालसन्दर्भा पञ्चरश्मिस्वरूपिणी ।  
गलदेशं महारौद्री पातु मे चापराजिता ॥ ११ ॥

क्षीं वीजं मे तथा कण्ठं रुद्राणी स्वाहयाऽन्विता ।  
 हृदयं भेरवी विद्या पातु षोडश सुखराः ॥ १२ ॥  
 द्वौ बाहू पातु सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रधानिका ।  
 सर्वमन्त्रस्वरूपा मे चोदरं पीठनायिका ॥ १३ ॥  
 पार्श्वयुग्मं तथा पातु कुमारी वाग्भवात्मिका ।  
 केशोरी कटिदेशं मे मायाबीजस्वरूपिणी ॥ १४ ॥  
 जङ्घायुग्मं जयन्ती मे योगिनी कुलुकायुता ।  
 सर्वाङ्गमम्बिका देवी पातु मन्त्रार्थगामिनी ॥ १५ ॥  
 केशाग्रं कमला देवी नासाग्रं विन्ध्यवासिनी ।  
 चिवुकं चण्डिका देवी कुमारी पातु मे सदा ॥ १६ ॥  
 हृदयं ललिता देवी लिङ्गं गुह्यं सदाऽवतु ।  
 श्मशाने चाम्बिका देवी गङ्गागर्भं च वैष्णवी ॥ १७ ॥  
 शून्यागारे पञ्चमुद्रा मन्त्रयन्त्रप्रकाशिनौ ।  
 चतुष्पथे तथा पातु मामेव वज्रधारिणी ॥ १८ ॥  
 शवासनगता चण्डा मुण्डमालाविभूषिता ।  
 पातु मामेकलिङ्गं च ईश्वरी शक्तिरूपिणी ॥ १९ ॥  
 वने पातु महाबाला बह्वारण्ये रणप्रिया ।  
 महाजले तडागे च शत्रुमध्ये सरस्वती ॥ २० ॥  
 महाऽऽकाशपथे पृथ्वी पातु मां शीतला सदा ।  
 रणमध्ये राजलक्ष्मीः कुमारी कुलकामिनी ॥ २१ ॥  
 अर्द्धनारीश्वरा पातु मम पादतलं मही ।  
 नवलक्ष्ममहाविद्या कुमारीरूपधारिणी ॥ २२ ॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला ।  
 पातु मां वरदा वाणी वटुकेश्वरकामिनी ॥ २३ ॥  
 इति ते कथितं नाथ ! कवचं परमाद्भुतम् ।  
 कुमार्याः कुलदायिन्याः पञ्चतत्त्वार्थपारग ! २४ ॥

यो जपेत् पञ्चतत्त्वेन स्तोत्रेण कवचेन च ।  
 आकाशगामिनो सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः ॥ २५ ॥  
 वज्रदेही भवेत् क्षिप्रं कवचस्य प्रपाठतः ।  
 सर्पसिद्धीश्वरो योगी ज्ञानी भवति यः पठेत् ॥ २६ ॥  
 विषाटे व्यवहारे च सङ्ग्रामे कुलमण्डले ।  
 महापथे श्मशाने च योगसिद्धो भवेत् स च ॥ २७ ॥  
 पठित्वा जयमाप्नोति सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ।  
 वशौकरणकवचं सर्वत्र जयदं शुभम् ॥ २८ ॥  
 पुण्यव्रती पठेन्नित्यं मतिशीमान् भवेद् ध्रुवम् ।  
 सिद्धविद्या कुमारी च ददाति सिद्धिमुत्तमाम् ॥ २९ ॥  
 पठेद् यः शृणुयाद्वाऽपि स भवेत् कल्पपादपः ।  
 भुक्तिमुक्तिं तुष्टिपुष्टि-राजलक्ष्मीसुसम्पदम् ॥ ३० ॥  
 प्राप्नोति साधकश्चेष्टो धारयित्वा जपेद् यदि ।  
 असाध्यं साधयेद्विद्वान् पठित्वा कवचं शुभम् ॥ ३१ ॥  
 धनिनाञ्च महासौख्यं धर्मार्थकाममोक्षदम् ।  
 यो वशौ दिवसे नित्यं कुमारीं पूजयेन्निशि ॥ ३२ ॥  
 उपचारविशेषेण त्रैलोक्यं वैशमानयेत् ।  
 पल्लेनाऽऽसवेनापि मत्स्येन रुद्रया सह ॥ ३३ ॥  
 नानाक्षोभभवान्येव गन्धद्रव्याणि साधकः ।  
 अन्नेन स्वर्णरजताऽलङ्कारेण सुचेतकैः ॥ ३४ ॥  
 पूजयित्वा जपित्वा च तर्पयित्वा वराननाम् ।  
 यज्ञदानतपस्याभिः प्रयोगेण महेश्वर ! ॥ ३५ ॥  
 सु(शु)त्वा कुमारीकवचं यः पठेदेकभावतः ।  
 तस्य सिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं राजराजेश्वरो भवेत् ॥ ३६ ॥  
 वाञ्छार्थफलमाप्नोति यद् यन्मनसि वर्तते ।  
 भूर्जपत्रे लिखित्वा च कवचं धारयेद् यदि ॥ ३७ ॥

शनिमङ्गलवारि च नवस्यामष्टमीदिने ।  
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ ३८ ॥  
लिखित्वा धारयेद्विद्वान् उत्तराभिमुखो भवन् ।  
महापातकयुक्तो हि मुक्तः स्यात् सर्वपातकैः ॥ ३९ ॥  
योषिद्वामभुजे धृत्वा सर्वकल्याणमालभेत् ।  
बहुपुत्रान्विता कान्ता सर्वसम्पत्तिसंयुता ॥ ४० ॥  
तथा श्रीपुरुषश्रेष्ठो दक्षिणे धारयेद् भुजे ।  
ऐहिके दिव्यदेहः स्यात् पञ्चाननसमः प्रभुः ॥ ४१ ॥  
शिवलोके परे याति वायुवेगो निरामयः ।  
सूर्यमण्डलमाभेद्य परं लोकमवाप्नुयात् ॥ ४२ ॥  
लोकानामतिसौख्यदं भयहरं श्रीपादभक्तिप्रदं  
मोक्षार्थं कवचं शुभं प्रपठतामानन्दसिन्धुद्रवम् ।  
पार्थानां कलिकालघोरकलुषध्वंसैकहेतुं जयं  
ये नाम प्रपठन्ति धर्ममतुलं ते यान्ति मोक्षं क्षणात् ॥ ४३ ॥  
। श्रीब्रह्मसंहिता उच्यते नृणां महासन्तोषीपने कुमार्युपचर्यां विन्यासे कुमारिकवचोत्सारे  
विद्वान्मन्त्रप्रणयणे दिव्यभावनिर्णये भैरव-भैरवीषवादे नवमः पटलः ॥८॥

### अथ दशमः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

वद कान्ते ! सदानन्द-स्वरूपानन्दवक्त्रमे !  
कुमार्यां देवतायाश्च परमानन्दवर्द्धनम् ॥ १ ॥  
अष्टोत्तरसहस्राख्यं नाम मङ्गलमद्भुतम् ।  
यदि मे वक्तंते विद्ये यदि स्नेहकणामला ॥ २ ॥  
तदा वदस्व कौमारी-कृतकर्मफलप्रदम् ।  
महास्तोत्रं कोटि कोटि कन्यादानफलं लभेत् ॥ ३ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कुमार्याः सहस्रनामानि ।—

महापुण्यप्रदं नाथ ! शृणु सर्वेश्वर ! प्रिय ! ।  
 अष्टोत्तरसहस्राख्यं कुमार्याः परमाहुतम् ॥ ४ ॥  
 पठित्वा धारयित्वा वा नरो मुच्येत सङ्कटात् ।  
 सर्वत्र दुर्लभं धन्यं धन्यलोकनिषेवितम् ॥ ५ ॥  
 अणिमाद्यष्टसर्वाङ्ग-सर्वानन्दकरं परम् ।  
 मायामन्त्रनिरस्ताङ्गं मन्त्रसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥ ६ ॥  
 न पूजा न जपः स्नानं पुरश्चर्याविधिश्च न ।  
 अस्मात् सिद्धिमवाप्नोति सहस्रनामपाठतः ॥ ७ ॥  
 सर्वयज्ञफलं नाथ ! प्राप्नोति साधकः क्षणात् ।  
 मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रास्वरूपकम् ॥ ८ ॥  
 कोटिवर्षशतेनापि फलं वक्तुं न शक्यते ।  
 तथाऽपि वक्तुमिच्छामि हिताय जगतां प्रभो ! ॥ ९ ॥

अथ श्रीकुमार्याः अष्टोत्तरसहस्रनामकवचस्य वटुकभैरव-  
 ऋषिरनुष्टुप् छन्दः कुमारौ देवता सर्वमन्त्रसिद्धिसम्बन्धये  
 विनियोगः ।

“श्रीं कुमारी कौशिकी काली कुरुकुला कुलेश्वरी ।

कनकाभा काञ्चनाभा कमला कालकामिनी ॥ १० ॥

कपालिनी कालरूपा कौमारी कुलबालिका ।

कान्ता कुमारकान्ता च कारणा करिगामिनी ॥ ११ ॥

कन्धकान्ता कौलकान्ता कृतकर्मफलप्रदा ।

कार्याकार्यप्रवरक्षा कंसहन्त्री कुरुक्षया ॥ १२ ॥

क्षणकान्ता कालरात्रिः कर्णेषुधारिणीकरा ।

कामडा कपिला काला कालिका कुरुकामिनी ॥ १३ ॥

कुरुक्षेत्रप्रिया कौला कुन्ती कामातुरातुरा ।

कलञ्जभक्षा कैकेयी काकपुच्छध्वजा कला ॥ १४ ॥  
 कमला कामलक्ष्मीश्च कमलाननकामिनी ।  
 कामधेनुस्वरूपा च कामहा कामवर्द्धिनी ॥ १५ ॥  
 कामदा कामपूज्या च कामातीता कलावती ।  
 कौमारी कारणाढ्या च कौशोरी कुशलाकुला ॥ १६ ॥  
 कम्बुग्रीवा क्षणनिभा कामराजप्रियावतिः ।  
 कङ्कणाऽलङ्कृता कङ्का केवला काकिनी किरा ॥ १७ ॥  
 किरातिनी काकभक्षा करालवदना क्लृप्ता ।  
 केशिनी केशिहा केशा केशीष्टा च कविप्रिया ॥ १८ ॥  
 कविनाथस्वरूपा च कटुवाणी कटुस्थिता ।  
 कोटरा कोटराक्षी च कटनाटकवासिनी ॥ १९ ॥  
 कटकस्या काष्ठसंस्था कन्दर्पा केतकीप्रिया ।  
 केत्तिप्रिया कम्बलस्या कालदैत्यविनाशिनी ॥ २० ॥  
 केतकीपुष्पशोभाढ्या कर्पूरपूर्णजिह्विका ।  
 कर्पूरकरकाकोला कौलासगिरिवासिनी ॥ २१ ॥  
 कुशासनस्था कादम्बा कुञ्जरेणी कुलानना ।  
 खर्वा खड्गधरा खड्ग-खिलहा खलुवर्द्धिदा ॥ २२ ॥  
 खञ्जना खररूपा च खारास्त्वत्तिसप्तमध्यगा ।  
 खेलना खेटककरा खरवाक्या खरोत्कटा ॥ २३ ॥  
 खद्योतचञ्चला खेला खद्योता खगवाहिनी ।  
 खेटकस्या खला खस्या खेचरी खेचरप्रिया ॥ २४ ॥  
 खचरा खचरप्रेमा खलाढ्या खचराननी ।  
 खेचरेणी खरोत्रा च खेचरप्रियभाषिणी ॥ २५ ॥  
 खर्जूरासवसंवर्त्ता खर्जूरफलभोगिनी ।  
 खातमध्यस्थिता खाता खाताम्बुपरिपूजनी ॥ २६ ॥  
 ख्यातिः खातजलानन्दा खुलना खञ्जनामतिः ।

खल्वा खरतरा खारी खारोद्देगनिक्कन्तनी ॥ २७ ॥  
 गगनस्था च भीता च गभौरनादिनी गया ।  
 गङ्गा गभौरा गौरी च गणनाद्यप्रिया गतिः ॥ २८ ॥  
 गुरुभक्ता ग्लानिहीना गेहिनी गोपनी गिरा ।  
 गोगणस्था गाणपत्या गिरिजा गिरिपूजिता ॥ २९ ॥  
 गिरिकान्ता गणस्था च गिरिकन्या गणेश्वरी ।  
 गाधिराजसुता ग्रीवा गुर्वी गुर्वश्वशाङ्करी ॥ ३० ॥  
 गन्धर्वयामिनो गीता गायत्री गुणदा गुणा ।  
 गुगुलुस्था गुरोः पूज्या गीतानन्दप्रकाशिनी ॥ ३१ ॥  
 गयासुरप्रिया गेहा गवाक्षजालमध्यगा ।  
 गुरुकन्या गुरोः पत्नी गहना गुरुनागिनी ॥ ३२ ॥  
 गुल्फवायुस्थिता गुल्फा गर्दभा गर्दभप्रिया ।  
 गुह्या गुह्यगणस्था च गरिमा गौरिका गुदा ॥ ३३ ॥  
 गुटोद्गुह्यस्था च गलिता गणिका गोलका गणा ।  
 गान्धर्वी गाननगरी गन्धर्वगणपूजिता ॥ ३४ ॥  
 गौरनादा घोरमुखी घोरा घर्मनिवारिणी ।  
 घनदा घनवर्णा च घनवाहनवाहना ॥ ३५ ॥  
 घर्घरध्वनिचपला घोटा घटपटौघटी ।  
 घटिता घटना घोना घनरूपा घनेश्वरी ॥ ३६ ॥  
 घुष्यातीता घर्घरा च घोराननविमोहिनी ।  
 घोरनेत्रा घनरुचा घोरभैरवकन्यका ॥ ३७ ॥  
 घाता घातकहा घात्या ब्राणा ब्राणे गवायवी ।  
 घोरान्धकारसंस्था च घसना घस्तरा घरा ॥ ३८ ॥  
 घोटकस्था घोटका च घोटकेश्वरवाहना ।  
 घननीलमणिश्यामा घर्घरेश्वरकामिनी ॥ ३९ ॥  
 ङकारकूटसम्पन्ना ङकारचक्रगामिनी ।

डकारौ डसया चैव डीपनीता डकारिणी ॥ ४० ॥

चन्द्रमण्डलमध्यस्था चतुरा चारुहासिनी ।

चारुचन्द्रमुखी चैव चलाङ्गसुगतिप्रिया ॥ ४१ ॥

चञ्चला चपला चण्डी चेकिताना चर्कस्थिता ।

चलिता चालना चार्वी चारुभ्रमरनादिनी ॥ ४२ ॥

चोहरा चन्द्रनिलया चैन्द्री चक्रपुरास्थिता ।

चक्रकीला चक्ररूपा चक्रस्था चक्रसिद्धिदा ॥ ४३ ॥

चक्रिणी चक्रहस्ता च चक्रनाथकुलप्रिया ।

चक्राभेद्या चक्रकुला चक्रमण्डलशोभिता ॥ ४४ ॥

चक्रेश्वरप्रिया चेला चेलाजिनकुशोत्तरा ।

चतुर्वेदस्थिता चण्डा चन्द्रकोटिसुशीतला ॥ ४५ ॥

चतुर्गुणा चन्द्रवर्णा चातुरी चतुरप्रिया ।

चक्षुःस्था चक्षुर्वसतिश्चलका चलनप्रिया ॥ ४६ ॥

चार्वङ्गी चन्द्रनिलया चलदम्बुजलोचना ।

चर्चरीशा चारुमुखी चारुदन्ता चरास्थिता ॥ ४७ ॥

चसकस्थासवा चेता चेतःस्था चैत्रपूजिता ।

चान्दुषी चन्द्रमलिनी चन्द्रहासमणिप्रभा ॥ ४८ ॥

छत्रस्था छत्ररूपा च चत्रच्छायावनस्थिता ।

छजन्ना छेश्वरा छाया छायाछिन्नशवा छला ॥ ४९ ॥

छत्राचरणशोभाव्या छत्राणा छत्रधारिणी ।

छिन्नातीता छिन्नमस्ता छिन्नकेशा छलोद्भवा ॥ ५० ॥

छलहा छलदा छाला छन्ना छन्नजनप्रिया ।

छला छला-छन्भवती छन्दःसम्बन्धिवासिनी ॥ ५१ ॥

छद्मगन्धा छदा छन्ना छद्मवेशा छकारिका ।

छागलारक्तभक्षा च छागलामोदरक्तपा ॥ ५२ ॥

छगलण्डेशकन्या च छगलण्डकुमारिका ।



छविका कुरिककरा कुरिकारिविनाशिनी ॥ ५३ ॥  
 छिन्ननाश छिन्नहासा छोललोला छलोदरौ ।  
 छलोहेगा छागरीज-माला छाङ्गवरप्रदा ॥ ५४ ॥  
 जटिला जठरश्रीदा जरा जन्नप्रिया जया ।  
 जन्त्रस्था जीवजा जीवा जयदा जीवयोगदा ॥ ५५ ॥  
 जयिनी जामलस्था च जामलोद्भवनायिका ।  
 जामलप्रियकन्या च जामलेशी जवाप्रिया ॥ ५६ ॥  
 जवाकोटिसमप्रस्था जवापुष्पप्रिया जना ।  
 जलस्था जागरिमया जरातीता जलस्थिता ॥ ५७ ॥  
 जीवहा जीवकन्या च जनार्दनकुमारिका ।  
 जतुका जलपूज्या च जगन्नाथादिकामिनौ ॥ ५८ ॥  
 जीर्णाङ्गी जीर्णहीना च जीमूतात्यन्तशोभिता ।  
 जामदा जमदा जृम्भा जृम्भणान्तादिधारिणौ ॥ ५९ ॥  
 जयन्या जारजप्रीता जगदानन्दवर्द्धिनी ।  
 जमलार्जुनदर्शनी जमलार्जुनमाञ्छिनी ॥ ६० ॥  
 जयत्रिजगदानन्दा जामलोक्ताससिद्धिदा ।  
 जपमाला जाप्यसिद्धिर्जपयज्ञप्रकाशिनी ॥ ६१ ॥  
 जाम्ब(म्बु)वती जाम्ब(म्बु)वतः-कान्यका जलजा जपा ।  
 जवाहन्वी जगद्बुद्धिर्जगत्कर्त्री जगद्गतिः ॥ ६२ ॥  
 जवनी जीवनी जाया जगन्माता जनेश्वरी ।  
 भज्जना भङ्गमध्यस्था भणत्कारस्वरूपिणी ॥ ६३ ॥  
 भणत्-भणद्बुद्धिरूपा भनना भल्वरीश्वरी ।  
 भटिताम्बा भरा भज्जा भर्भराधरकन्यका ॥ ६४ ॥  
 भणत्कारौ भना भन्ना भकारमालयाऽऽवृता ।  
 भङ्गारी भर्भरी भल्ली भल्वेश्वरनिवासिनी ॥ ६५ ॥  
 झकारौ झकाराती च जकारवीजमाशिनी ।

जनमोऽन्ता जकारान्ता जकारपरमेश्वरौ ॥ ६६ ॥  
 ज्ञान्तवीजपुत्रकरा जेकनेत्रैककामिनौ ।  
 जेकनेत्रा जलरूपा जहारा जहरीतकी ॥ ६७ ॥  
 दुण्टुनो टङ्कहस्ता च टान्तवर्गा टलावती ।  
 टपलाटालवालाख्या टङ्कारध्वनिरुपिणो ॥ ६८ ॥  
 टलाती टाक्षरातीता टिल्कारादिकुमारिका ।  
 टा(ट)ङ्कास्त्रधारिणी टाना टसोटार्णलभाषिणी ॥ ६९ ॥  
 टङ्कारीनिधना टाका टकाटकावमोहिनी ।  
 टङ्कारधरनामाहा टिवीखिचरनदिनी ॥ ७० ॥  
 ठठङ्कारी ठाठरूपा ठकारवीजकारणा ।  
 डमरुप्रियवाद्या च डामरस्था डरीजिका ॥ ७१ ॥  
 डान्तवर्गा डमरुका डरस्था डोरडामरा ।  
 डगराहा डलातीता डदारुकेश्वरौ डुता ॥ ७२ ॥  
 ढाईनारीश्वरा ढामा ढङ्कारी ढलना ढला ।  
 ढकस्था ढेश्वरसुता ढेमनाभावढोनना ॥ ७३ ॥  
 णोमाकान्तेश्वरौ णान्त-वर्गस्था णतुनावती ।  
 णनोमालङ्ककल्याणी णाक्षवीणाक्षवीजिका ॥ ७४ ॥  
 तुलसी तन्तुसूक्ष्मस्था तारव्या तैलगन्धिका ।  
 तपस्था तापससुता तारिणी तरुणौ तला ॥ ७५ ॥  
 तन्त्रस्था तारकब्रह्म-स्वरूपा तन्तुमध्यगा ।  
 तालभक्षत्रिधामूर्तिस्तारका तैलभाक्षका ॥ ७६ ॥  
 तारोभ्रा तालमाला च तकरा तिन्लिङ्गप्रिया ।  
 तपसा तालसन्दर्भा तर्जयन्तीकुमारिका ॥ ७७ ॥  
 त्रीकाचारा तलोङ्गेगा तक्षका तक्षकप्रिया ।  
 तक्षकाऽलङ्कृता तोषा तावद्रूपा तर्लाप्रिया ॥ ७८ ॥  
 तलास्त्रधारिणी तापा तपसं-क्षत्रदायिनी ।

तत्त्वत्वप्रहरालीता तलारिगणनाशिनो ॥ ७८ ॥  
 तुला तौली तोलका च तलस्था तलपालिका ।  
 तक्षणातमबुद्धिस्था तप्ताप्रधारिणी तपा ॥ ८० ॥  
 तन्त्रप्रकाशकरणी तन्त्रार्थदायिनी तथा ।  
 तुप्रारकिरणाङ्गी च त्रिचतुर्धा त्विप्राऽन्विता ॥ ८१ ॥  
 तैलमार्गाभिस्तुता च तन्त्रसिद्धिफलप्रदा ।  
 ताम्रपर्णा ताम्रकेशा ताम्रपात्रप्रिया तमा ॥ ८२ ॥  
 तमोगुणप्रिया तोला तच्चकारिनिवारिणी ।  
 तोषयुक्ता तमायाची तमघोदेष्वरप्रिया ॥ ८३ ॥  
 तुलना तुल्यरुचिरा तुल्यबुद्धिस्त्रिधा मतिः ।  
 तन्त्रभक्षा तालबिद्धिस्त्रिस्तस्यास्तत्रगामिनी ॥ ८४ ॥  
 तलय तैलभा ताली तन्त्रगोपनतत्परा ।  
 तन्त्रमन्त्रप्रकाशा च त्रशरैणुस्त्ररूपिणी ॥ ८५ ॥  
 त्रिंशदर्शप्रिया तुष्टा तुष्टिस्तुष्टजनप्रिया ।  
 थाकारकूटदण्डीशा थदण्डीशप्रियाऽथवा ॥ ८६ ॥  
 थकाराक्षररूढाङ्गी थान्तवर्गार्थकारिका ।  
 थान्ता थमीश्वरी थार्का थकारवीजमालिनी ॥ ८७ ॥  
 दक्षदामप्रिया दोषा दोषजालवनाश्रिता ।  
 दशा दशनघोरा च देवौदासप्रिया दया ॥ ८८ ॥  
 दैत्यहन्त्रीपरा दैत्या दैत्यानां-मर्दिनी दिशा ।  
 दन्ता दान्तप्रिया दामा दामन्ता दीर्घकेशिका ॥ ८९ ॥  
 दशनारक्तवर्णा च दरीगृहनिवासिनी ।  
 देवमाता दुर्लभा च दीर्घाङ्गी दासकन्यका ॥ ९० ॥  
 दशनश्री दीर्घनेत्रा दीर्घनासा च दोषहा ।  
 दमयन्ती दलस्था च द्वेष्यहन्त्री दशाश्रिता ॥ ९१ ॥  
 द्वेषिषि(क्कि)का द्विशिगता दशनास्त्रविनाश्रिनी ।

दारिद्र्यहा दरिद्रस्था दरिद्रधनदायिनी ॥ ६२ ॥  
 दन्तुरो देशभाषा च देशस्था देशनायिका ।  
 द्वेषरूपा द्वेषहन्त्री द्वेषारिर्गणैर्मोहिनी ॥ ६३ ॥  
 दामोदरस्थाननादा दलानां-बलदायिनी ।  
 दिग्दर्शनस्थानदर्श-दर्शनप्रियवादिनी ॥ ६४ ॥  
 दामोदरप्रिया दन्ता दामोदरकलेवरा ।  
 द्राविणो द्रावणो दक्षा दक्षकन्या दला दृढा ॥ ६५ ॥  
 दृढासना दासशक्तिर्द्वन्द्वयुद्धप्रकाशिनी ।  
 दधिप्रिया दधिस्था च दधिमङ्गलकारिणी ॥ ६६ ॥  
 दर्पहा दर्पदाहप्रा दर्भपुण्यप्रिया दधिः ।  
 दर्भस्था द्रुपदेसुता द्रौपदी द्रुपदप्रिया ॥ ६७ ॥  
 धर्मचिन्ता धनाध्यक्षा धनेश्वरवरप्रदा ।  
 धनहा धनदा धन्वी धनुहस्ता धनुःप्रिया ॥ ६८ ॥  
 धरणी धैर्यरूपा च धनस्था धनमोहिनी ।  
 धीरा धीरप्रिया धारा धाराधारणतत्परा ॥ ६९ ॥  
 धान्यदा धान्यबीजा च धर्माधर्मस्वरूपिणी ।  
 धाराधरस्था धन्या च धर्मपुञ्जनिवासिनी ॥ १०० ॥  
 धनाढ्यप्रियकन्या च धन्यलोकनिषेविता ।  
 धर्मार्थकाममोक्षाङ्गी धर्मार्थकाममोक्षदा ॥ १०१ ॥  
 धरारधा धुरीणा च धवला धवलासुखी ।  
 धरा च धामरूपा च ध्रुवा ध्रुव्या ध्रुवप्रिया ॥ १०२ ॥  
 धनेशी धारणाख्या च धर्मनिन्दाविनाशिनी ।  
 धर्मतेजोमयी धर्म्या धैर्याग्रभर्गमोहिनी ॥ १०३ ॥  
 धारणा धौतवसना धुस्तूरफलभोगिनी ।  
 नारायणी नरेन्द्रस्था नारायणकलेवरा ॥ १०४ ॥  
 नरनारायणप्रीता धर्मनिन्दकमोहिनी !

निन्दा नाप्रितकन्या च नयनस्था नरप्रिया ॥ १०५ ॥  
 नास्त्री नामप्रिया नारा नारायणसुता नरा ।  
 नवीननायकप्रीता नव्या नवफलप्रिया ॥ १०६ ॥  
 नवीनकुसुमप्रीता नवीनानां-ध्वजा नुता ।  
 नारी निम्नस्थिता निन्दा नन्दिनी नन्दकारिका ॥ १०७ ॥  
 नवपुष्पमहाप्रीता नवपुष्पसुगन्धिका ।  
 नन्दनस्था नन्दकन्या नन्दमोक्षप्रदायिनी ॥ १०८ ॥  
 नमिता नमभेदा च नाम्नात्तवतमोहिनी ।  
 नवबुद्धिप्रियानेका नाकस्था नाककन्यका ॥ १०९ ॥  
 निन्दाहीना नवोज्जामा नाकस्थानप्रदायिनी ।  
 निम्नचक्षु स्थिता निम्बा नानचेत्तनिवासिनी ॥ ११० ॥  
 नाश्यातीता नौलवर्णा नौलवर्णभरस्त्रतौ ।  
 नभस्था नायकप्रीता नायकप्रियकामिनी ॥ १११ ॥  
 नैव(क)वर्णा निराहारा निरौहाणां-रजःप्रिया ।  
 निम्ननाभिप्रभाकारा नरेन्द्रहस्तपूजिता ॥ ११२ ॥  
 नलस्थिता नलप्रीता नलराजकुमारिका ।  
 परेश्वरौ परानन्दा परापरविभेदिका ॥ ११३ ॥  
 परमा परचक्रस्था पार्वती पर्वतप्रिया ।  
 पारमेशी पर्वनाम्ना पुष्पमाल्यप्रिया परा ॥ ११४ ॥  
 परा प्रिया प्रीतिदात्री प्रीतिः प्रथमकामिनी ।  
 प्रथमा प्रमथप्रीता पुष्पगन्धप्रिया पुरा ॥ ११५ ॥  
 पीष्टीणनरता पीना पीनस्तनसुशोभना ।  
 घरमानरता पुंसां-पाशहस्ता पशुप्रिया ॥ ११६ ॥  
 पल्लानन्दरमिका पलालधूमरूपिणी ।  
 पलाशपुष्पमङ्गला पलाशपुष्पमालिनी ॥ ११७ ॥  
 प्रेमभूता पद्ममुखी पद्मरागसुमानिनौ ।

पद्ममाला पापहरा पतिप्रेमःवलासिनौ ॥ ११८ ॥  
 पञ्चाननमनोहारी पञ्चवक्त्रप्रकाशिनौ ।  
 फलमूलाशना फालौ फलदा फाल्गुनप्रिया ॥ ११९ ॥  
 फलनाथप्रिया फल्वी फल्बकन्या फलोन्मुखी ।  
 फेत्कारीतन्त्रमुष्या च फेत्कारगणपूजिता ॥ १२० ॥  
 फेरवी फेरवसुता फलभोगोद्भवा फला ।  
 फलप्रिया फलासक्ता फाल्गुनानन्ददायिनी ॥ १२१ ॥  
 फालभोगोत्तरा फेला फुल्लाम्बोजनिवासिनी ।  
 विस(ष)भक्ता बुधसुता बुंकारी बुधरप्रदा ॥ १२२ ॥  
 भारती भरतश्रीदा भवपत्नी भवत्मजा ।  
 भवानी भाविनी भौमा भिषक्भाष्यांतुरिस्थिता ॥ १२३ ॥  
 भूर्भुवःस्वःस्वरूपा च भूशार्त्ता भिकनादिनी ।  
 भौतीभङ्गप्रिया भङ्गा भङ्गहा भङ्गहारिणी ॥ १२४ ॥  
 भर्त्ता भगवती भाग्या भगौरथनमस्कृता ।  
 भगमाला भूतनाथेश्वरी भार्गवपूजिता ॥ १२५ ॥  
 भृगुवंशा भौतिहरा भूमिर्भुजङ्गहारिणी ।  
 भालचन्द्राभल्वबाला भविभूतिविभूतिदा ॥ १२६ ॥  
 मकरस्था मत्तगतिर्मदमत्ता मदप्रिया ।  
 मदिराष्टादशभुजा मदिरा मत्तगामिनौ ॥  
 मदिरासिद्धिदा मध्या मदान्तगतिरिद्धिदा ॥ १२७ ॥  
 मीनभक्ता मीनरूपा मुद्रामुद्रप्रिया गतिः ।  
 मुषला मुक्तिदा मूर्त्ता मूकीकरणतत्परा ॥ १२८ ॥  
 मूषार्त्ता मृगवृणा च मेघभक्षणतत्परा ।  
 मैथुनानन्दसिद्धिश्च मैथुनानलसिद्धिदा ॥ १२९ ॥  
 महाकक्षीमैरवी च महेंद्रपीठनायिका ।  
 मनःस्था माधवी मुख्या महादेवमनोरमा ॥ १३० ॥

यशोदा याचना यास्या(स्या) यमराजप्रिया यमा ।  
 यशोराशिविभूषाङ्गी यतिप्रेमकलावती ॥ १३१ ॥  
 रमणी रामपत्नी च रिपुहा रीतिमध्यगा ।  
 रुद्राणी रूपदा रूपा रूपसुन्दरधारिणी ॥ १३२ ॥  
 रेतःस्था रेतसःप्रीता रेतःस्थाननिवासिनी ।  
 रेन्द्रादेवसुता रेदा रिपुवर्गान्तकप्रिया ॥ १३३ ॥  
 रोमावलीन्द्रजननी रोमकूपजगत्पतिः ।  
 रौप्यवर्णा रौद्रवर्णा रौप्याऽलङ्कारभूषणा ॥  
 रङ्गणा रङ्गरागस्था रणवर्द्धिकुलेश्वरी ॥ १३४ ॥  
 लक्ष्मीः लाङ्गलहस्ता च लाङ्गलीकुलकामिनी ।  
 लिपिरूपा लीढपादा लतातन्तुस्वरूपिणी ॥ १३५ ॥  
 लिम्पती लेलिहा लीला लोमशप्रियासिद्धिदा ।  
 लौकिकी लौकिकीसिद्धिलङ्कानाथकुमारिका ॥  
 लक्षणा लक्ष्मीहीना च लप्रिया लार्णमध्यगा ॥ १३६ ॥  
 वृहो वृहस्पतिवाचा वाचस्पतिवरप्रदा ।  
 विबुधा वीषडास्या च वंशीवदनपूजिता ॥  
 वासुदेवगृहस्था च वासुदेव वीरपूजिता ॥ १३७ ॥  
 वेदाचारी वेद्यपरा वासवक्त्रस्थिता विभा ।  
 वज्रकान्ता वक्रगतिर्वटरोवशवर्दिनी ॥  
 विवसा वसना वेशा विवस्त्रकुलकन्यका ॥ १३८ ॥  
 वातस्था वातरूपा च वेत्रमध्यनिवासिनी ।  
 श्मशानभूमिमध्यस्था श्मशानसाधनप्रिया ॥  
 शवस्था शवसिद्धार्था शववक्षसि-शोभिता ॥ १३९ ॥  
 शरणागतपाल्या च शिवकन्या शिवप्रिया ।  
 षट्चक्रभेदिनी षोढा-न्यासजालदृढानना ॥  
 सन्ध्या सरस्वती सुन्ध्या सूर्यगा सारदा सती ॥ १४० ॥

हरिप्रया हराहारा लावण्यस्था क्षमा क्षुधा ।  
 चेतज्ञा सिद्धिदात्री च अम्बिका अपराजिता ॥ १४१ ॥  
 आद्या इन्द्रप्रिया ईशा उमा ऊढा ऋतुप्रिया ।  
 सुतुण्डा स्वरवीजान्ता हरिवेशादिसिद्धिदा ॥ १४२ ॥  
 एकादशीव्रतस्था च ऐन्द्री ओषधिसिद्धिदा ।  
 औपकारी अंशरूपा अस्त्रवीजप्रकाशिनी ॥ १४३ ॥  
 इत्येतत् कामुकीनाथ ! कुमारीणां सुमङ्गलम् ।  
 त्रैलोक्यफलदं नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १४४ ॥  
 महास्तीत्रं धर्मसारं धनधान्यसुतप्रदम् ।  
 सर्वविद्याफलोद्भासं भक्तिमान् यः पठेत् सुधीः ॥ १४५ ॥  
 स सर्वदा दिवारात्रौ भवेद्धि सुक्तिमार्गगः ।  
 सर्वत्र जयमाप्नोति बीराणां वल्लभो भवेत् ॥ १४६ ॥  
 सर्वं देवा वशं यान्ति वशीभूताश्च मानवाः ।  
 ब्रह्माण्डे ये च संशान्ति ते तुष्टा नात्र संशयः ॥ १४७ ॥  
 वसन्ति ये च भूलोके देवतुल्यपराक्रमाः ।  
 ते सर्वे भृत्यतुल्याश्च सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ॥ १४८ ॥  
 अकस्मात् सिद्धिमाप्नोति ह्येतेन यजनेन च ।  
 जाप्येन कवचाद्येन महास्तीत्रार्थपाठतः ॥ १४९ ॥  
 विना यज्ञैर्विना दानैर्विना जप्यैर्लभेत् फलम् ।  
 यः पठेत् स्तोत्रकं नाम चाष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १५० ॥  
 तस्य शान्तिर्भवेत् क्षिप्रं कन्यास्तोत्रं पठेत्ततः ।  
 वारत्रयप्रपाठेन राजानं वशमानयेत् ॥ १५१ ॥  
 वारैकं पठितो मन्त्री धर्मार्थकाममोक्षभाक् ।  
 त्रिदिनं प्रपठेद्दिवान् यदि पुत्रं सामच्छति ॥ १५२ ॥  
 वारत्रयक्रमेणैव वारैकक्रमतोऽपि वा ।  
 पठित्वा धनरत्नानामधिपः सर्ववित्तगः ॥ १५३ ॥



त्रिजगन्मोहयेन्मन्त्रो वत्सरार्धप्रपाठनः ।  
 वत्सरं व्याप्य यदि वा भक्तिभावेन यः पठेत् ॥ १५४ ॥  
 चिरजीवी खेचरत्वं प्राप्य योगी भवेन्नरः ।  
 महाऽऽहवस्थितं वर्णं पश्यति स्थिरमानसः ॥ १५५ ॥  
 महिलामण्डले स्थित्वा शक्तियुक्तः पठेत् सुधोः ।  
 स भवेत् साधकश्रेष्ठः क्षीरो कल्पद्रुमो भवेत् ॥ १५६ ॥  
 सर्वदा यः पठेन्नाथ ! भावोद्गतकलेवरः ।  
 दर्शनात् स्तम्भनं कर्तुं क्षमो भवति साधकः ॥ १५७ ॥  
 जलादिस्तम्भने शक्तो वज्रस्तम्भादिसिद्धिभाक् ।  
 वायुवेगी महावाग्मी वेदज्ञो भवति ध्रुवम् ॥ १५८ ॥  
 काविनाथो महाविव्यो बन्धकः पण्डितो भवेत् ।  
 सर्वदेशाधिपो भूत्वा देवपुत्रः स्वयं भवेत् ॥ १५९ ॥  
 कान्तिं श्रियं यशो बुद्धिं प्राप्नोति बलवान् यतिः ।  
 अष्टसिद्धियुतो नाथ ! यः पठेदर्थसिद्धये ॥ १६० ॥  
 उटजेऽरण्यमध्ये च पर्वते घोरकानने ।  
 कान्तारे प्रेतभूमौ च शरोपरि महारणे ॥ १६१ ॥  
 ग्रामभङ्गे गृहे वाऽपि शून्यागारे नदीतटे ।  
 गङ्गागर्भे महापीठे यांनिपीठे गुरोर्गृहे ॥ १६२ ॥  
 धामक्षेत्रे देवगृहे कन्यागारे कुलालये ।  
 प्रान्तरे गोष्ठमध्ये वा राजादिभयक्षीनके ॥ १६३ ॥  
 निर्भयादिस्व(प्र)देशेषु शिवलिङ्गालयेऽथवा ।  
 भूगर्त्ते चैकलिङ्गे वा ग्राम्यदेशे शिवाकुले ॥ १६४ ॥  
 अश्वत्थमूले विन्धे वा कुलवृक्षसमौपगे ।  
 अन्येषु सिद्धदेशेषु कुलरूपस्य साधकः ॥ १६५ ॥  
 दिव्यो वा वीरभावस्थो यद्वा कन्याः कुलाकुली ।  
 कुलद्रव्यैश्च विविधैः सिद्धिद्रव्यैश्च साधकः ॥ १६६ ॥

मांसाभवेन जुहुयान्मटाक्तकरसेन च ।  
 हुतशेषं कुलद्रव्यं ताभ्यो दद्यात् सुमिद्वये ॥ १६७ ॥  
 तामामुच्छिष्टमानीय जुहुयादक्लपङ्कजे ।  
 घृणालज्जाविनिर्मुक्तः साधकः स्थिरमानसः ॥ १६८ ॥  
 पिबेन्मांसरसं मन्त्रौ मटानन्दो महाबली ।  
 महामांसाष्टकं ताभ्यो मटिराकुम्भपूरितम् ॥ १६९ ॥  
 तारो माया रमावाङ्मजायामन्त्रं पठन् सुधीः ।  
 नैवेद्यविधिदानेन पठित्वा स्तोत्रमङ्गलम् ॥ १७० ॥  
 स्वयं प्रसादं भुक्त्वा हि सर्वविद्याऽविपो भवेत् ।  
 शूकरस्योष्ट्रमासेन पौनमीनेन सुद्रया ॥ १७१ ॥  
 महाऽऽभवघटेनापि दत्त्वा पठन्ति यो नरः ।  
 ध्रुवं स सर्वगामी स्याद्विना होमिन पूजया ॥ १७२ ॥  
 रुद्ररूपी भवेन्नित्यं महाकालात्मको भवेत् ।  
 सर्वपुण्यफलं नाथ ! कुलात् प्राप्नोति साधकः ॥ १७३ ॥  
 क्षीराब्धिरत्नकोषेशो विपद्गामो च योगिराट् ।  
 भक्त्या नाथ ! दयासिन्धुर्निष्कामत्वं लभेद् ध्रुवम् ॥ १७४ ॥  
 महाशत्रुपातने च महाशत्रुभयार्दिते ।  
 वारैकपाठमात्रेण शत्रूणां बधमानयेत् ॥ १७५ ॥  
 शत्रून् संहारयेत् त्तिप्रमन्थकारं यथा रविः ।  
 उच्चाटने मारणे च भवेद्धारतरे निशि(पे) ॥ १७६ ॥  
 पठनाद्धारणान्मन्त्र्यो देवो वा राक्षसादयः ।  
 प्राप्नुवन्ति भटित् शान्तिं कुमारीनामपाठतः ॥ १७७ ॥  
 पुरुषो दक्षिणे वाहौ नागी वामकरे तथा ।  
 धृत्वा पुत्रादिमम्पत्तिं लभते नात्र संशयः ॥ १७८ ॥  
 ममाज्ञया मोक्षमुपैति साधको गजान्तकं नाथ ! सहस्रनाम ।  
 पठेन्ननुष्यो याद भक्तिभावतस्तदादि सर्वत्र फलोदयं लभेत् ॥ १७९ ॥

मोक्षं सत्फलभोगिनां स्तववरं सारं परानन्दं  
 ये नित्यं हि मुदा पठन्ति विफलं सार्थञ्च चिन्ताकुलाः ।  
 ते नित्याः प्रभवन्ति कौर्तिकमले श्रीरामतुल्यी जयौ  
 कन्दर्पायुततुल्यरूपगुणवान् क्रोधेश ! रुद्रोपमः ॥ १८० ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने कुमार्युपचर्याविन्यासे सिद्धमन्त्र-  
 प्रकरणे दिव्यभावनिरणये कुमार्युष्टोत्तरसङ्ख्यनाममङ्गलाज्ञापे

भैरवी-भैरवसंवादे दशमः पटलः ॥ १० ॥

अथ एकादशः पटलः ।

भावार्थनिरणयः ।—

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथातः संप्रवक्ष्यामि दिव्यभावादिनिरणयम् ।  
 यमाश्रित्य महारुद्रो भुवनेश्वरनामधृक् ॥ १ ॥  
 यज्ज्ञात्वा कमलानाथो देवतानामधोश्वरः ।  
 चतुर्वेदाधिपो ब्रह्मा साक्षाद् ब्रह्म सनातनः ॥ २ ॥  
 वटुको मम पुत्रश्च शक्रः स्वर्गाधिदेवता ।  
 अष्टसिद्धियुताः सर्वे दिक्पीलाः खेचरादयः ॥ ३ ॥  
 तत्रकारं महादेव ! आनन्दनाथभैरव ! ।  
 सुरानन्द ! हृदानन्द ! ज्ञानानन्द ! दयामय ! ॥ ४ ॥  
 शृणु त्वं कमलानाथ ! यदि त्वं सिद्धिमिच्छसि ।  
 मम प्रियानन्दरूप ! यतो मेऽन्यतनुस्थितः ॥ ५ ॥

भावत्रितयम् ।—

त्रिविधं दिव्यभावञ्च वेदागमविवेकजम् ।  
 वेदार्थमथ संप्रोक्तं मध्यमं चागमोद्भवम् ॥ ६ ॥  
 उत्तमं सकलं प्रोक्तं विवेकोज्जाससम्भवम् ।  
 तथैव त्रिविधं भावं दिव्यवीरपशुक्रमम् ॥ ७ ॥

दिव्यं विवेकज्ञं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।  
 उत्तमं तद्विज्ञानीयादानन्दरससागरम् ॥ ८ ॥  
 मध्यमं चागमोज्ञासं वीरभावं क्रियाऽन्वितम् ।  
 वेदोद्भवफूलार्थञ्च पशुभावं हि चाधमम् ॥ ९ ॥  
 सर्वनिन्दासमव्याप्तं भावानामधमं पशोः ।  
 उत्तमे उत्तमं ज्ञानं भावसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥ १० ॥  
 मध्यमे मधुमत्याश्च यत्कुलागमसम्भवम् ।  
 अकालमृत्युहरणं भावात्तामतिदुर्लभम् ॥ ११ ॥  
 वीरभावं विना नाथ ! न सिध्यति कदाचन ।  
 अधमे अधमा व्याख्या निन्दार्थवाचकं सदा ॥ १२ ॥  
 यदि निन्दां न करोति तदा तत्फलमाप्नुयात् ।  
 पशुभावेऽपि सिद्धिः स्याद् यदि देवं सदाऽभ्यसेत् ॥ १३ ॥  
 वेदार्थचिन्तनं नित्यं वेदपाठध्वनिप्रियम् ।  
 सर्वनिन्दाविरहितं हिंसाऽऽलस्यविवर्जितम् ।  
 लोभमोहकामक्रोध-मदमात्सर्यवर्जितम् ॥ १४ ॥  
 यदि भावस्थितो मन्वी पशुभावेऽपि सिद्धिभाक् ।  
 पशुभावं महाभावं ये जानन्ति महीतले ॥ १५ ॥  
 किमुसाध्यं महादेव ! अमाभ्यासेन चास्ति तत् ।  
 अमाधीनं जगत्सर्वं अमाधीनाश्च देवताः ॥ १६ ॥  
 अमाधीनं महामन्दं अमाधीनं परन्तपः ।  
 अमाधीनं कुलाचारं पशुभावेऽपि लक्षणम् ॥ १७ ॥  
 वेदार्थज्ञानमात्रेण पशुभावं कुलप्रियम् ।  
 स्मृत्यागमपुराणानि वेदार्थविविधानि च ॥ १८ ॥  
 अभ्यस्य सर्वशास्त्राणि तत्त्वज्ञानान्तु बुद्धिमान् ।  
 पल्लवानि वधान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत् ॥ १९ ॥  
 ज्ञानी भूत्वा भावसारमाश्रयेत् साधकोत्तमः ।

वेदे वेदक्रिया कार्या मदुक्तवचनान्वितः ॥ २० ॥  
 पशूनां अमदाहीनामिति लक्षणमीरितम् ।  
 आगमार्थाक्रियाकार्या मत्कुन्नागमचैष्टया ॥ २१ ॥  
 वीराणागुडतानाञ्च मत्शरीरानुगामिनाम् ।  
 मद्येच्छाकुलतत्त्वानामिति लक्षणमीरितम् ।  
 विवेकसूत्रसंज्ञा कार्या सुदृढचेतसा ॥ २२ ॥  
 सर्वत्र समभावानां भावमात्रं हि साधनम् ।  
 सर्वत्र मत्पदाभोज-सम्भवं सचराचरम् ॥ २३ ॥  
 दृष्ट्वा यत् कुरुते कर्म चाखण्डफलसिद्धदम् ।  
 अखण्डज्ञानचित्तानामिति भाव विवेकनाम् ॥ २४ ॥  
 निर्मलानन्ददिव्यानामिति लक्षणमीरितम् ।  
 दिव्ये तु त्रिविधं भावं यो जानाति महीतले ॥ २५ ॥  
 न नश्यति महावीरः कदाचित् साधकोत्तमः ।  
 क्रमेण दिव्यभावादिमाश्रित्य साधयेत् यदि ॥ २६ ॥  
 दिव्यभावे महासिद्धिं प्राप्नोति साधकोत्तमः ।  
 दिव्यभावं त्वना नाथ ! मत्पदाभोजदर्शनम् ॥ २७ ॥  
 य इच्छति महादेव ! स मूढः साधकः कथम् ? ।  
 पशुभावं प्रथमकं द्वितीये वीरभावकम् ॥ २८ ॥  
 तृतीयं दिव्यभावञ्च दिव्यभावत्रयं क्रमात् ।  
 तत्रकारं शृणु शिव ! त्रैलोक्यपरिपालक ! ॥ २९ ॥  
 भोक्षत्रयविशेषज्ञः षड्धारस्य भेदनः ।  
 पञ्चतत्त्वार्थभावज्ञो दिव्याचाररतः सदा ॥ ३० ॥  
 स एव भवति श्रीमान् सिद्धानामादिपारगः ।  
 शिववद् विहरत् सोऽपि अष्टैश्वर्यसमान्वितः ॥ ३१ ॥  
 सर्वत्र शुचिभावेन आनन्दजनसाधनम् ।  
 प्रातःकालादिमध्याह्न-कालपर्यन्तधारणम् ॥ ३२ ॥

भोजनञ्चोक्तद्रव्येण संयमादिक्रमेण वा ।

यः साधयति स सिद्धो दिव्यभावे पशुक्रमात् ॥ ३३ ॥

दिव्यभावे वीरभावं वदामि तत् पुनः शृणु ।

मध्याह्नादिकसन्धान्तं शुचिभावेन साधनम् ॥ ३४ ॥

जपेन धारणं वाऽपि चित्तमादाय यत्नतः ।

एकान्तनिर्जने देशे सिद्धो भवति निश्चितम् ॥ ३५ ॥

तत्कालं वीरभावार्थं भावमात्रं हि साधनम् ।

भावेन लभते सिद्धिं भावादन्यत्र कुत्रचित् ॥ ३६ ॥

रात्रौ गन्धादिसम्पूर्णं-ताम्बूलपूरिताननः ।

विजयानन्दसम्पन्नो जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ३७ ॥

एक्यं चित्ते समाधाय आनन्दोद्रेकसंभ्रमः ।

यो जपेत् सकलां रात्रिं गतभीर्निर्जने गृहे ॥ ३८ ॥

स भवेत् कालिकादासो दिव्यानामुत्तमोत्तमः ।

एवं भावत्रयं ज्ञात्वा यः कर्म साधयेत्ततः ॥ ३९ ॥

अष्टैश्वर्य्ययुतो भूत्वा सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ।

भावत्रयाणां मध्ये तु भावपुष्ट्यर्थनिर्णयम् ॥ ४० ॥

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।

अकस्मात् सिद्धिमाप्नोति ज्ञात्वा सङ्कैतलाञ्छितम् ॥ ४१ ॥

यो जानाति महादेव ! तस्य सिद्धिर्न संशयः ।

द्वादशे पटले सूक्ष्म-सङ्केतार्थं वदामि तत् ॥ ४२ ॥

एकादशे च पटले शुद्धप्रश्नार्थनिर्णयम् ।

भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत् ॥ ४३ ॥

भावं विना महाकाल ! न सिद्धिर्जायते क्वचित् ।

पशुभावाश्रयाणाञ्च अरुणोदयकालतः ॥ ४४ ॥

दशदण्डाश्रितं कालं प्रश्नार्थं कीमलं प्रभो ! ।

चक्रं द्वादशराशिस्र मासद्वादशकस्य च ॥ ४५ ॥

दशदण्डे विजानीयात् भावाभावं विचक्षणः ।  
 अनुलोमविलोमेन पञ्चस्वरविभेदतः ॥ ४६ ॥  
 बाल्यकैशोरभौन्दर्यं यौवनं वृद्धसंज्ञकम् ।  
 अष्टमितं क्रमाज्ज्ञेयो विधिः पञ्चस्वरः स्वयम् ॥ ४७ ॥  
 स्वकौयनासिकाग्रस्थं पञ्चमं परिकीर्तितम् ।  
 यन्नासापुटमध्ये तु वायुर्भवति भैरव ! ॥ ४८ ॥  
 तन्नासापुटमध्ये तु भावाभावं विचारयेत् ।  
 आकाशं वायुरूपं हि तैजसं वारुणं प्रभो ! ॥ ४९ ॥  
 पार्थिवं क्रमशो ज्ञेयं बाल्यास्तादिक्रमेण तु ।  
 ब्रामोदये शुभा वामा दक्षिणे पुरुषः शुभः ॥ ५० ॥  
 वायूनां गमनं ज्ञेयं गगनावधिरिव च ।  
 केवलं मध्यदेशे तु गमनं पवनस्य च ।  
 तदाकाशं विजानीयात् बाल्यभावं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥  
 तिर्य्यग्गतिस्तु नासाग्रे वायो रुद्रयमेव च ।  
 केवलं भ्रमणं ज्ञेयं सर्वमङ्गलमेव च ॥ ५२ ॥  
 किशोरं तद्विजानीयात् वायौ तिर्य्यग्गते विभो ! ।  
 केवलोर्ध्वनासिकाग्रे वायुर्गच्छति दण्डवत् ॥ ५३ ॥  
 रुतैजसं विजानीयात्तैजसा बलवान् भवेत् ।  
 यौवनं तद्विजानीयात् कर्मसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ५४ ॥  
 यदा व्याप्य गच्छतां हि नासापुटसमाकुलम् ।  
 जलोदयं विजानीयात्तदा व्यामोहमेव च ॥ ५५ ॥  
 तद् वृद्धगतभावञ्च विलम्बोऽधिकचेष्टया ।  
 आप्नोति परमां प्रीतिं वारुणोदयनीरुजम् ॥ ५६ ॥  
 यदाधो गच्छति क्षिप्रं किञ्चिद् वृद्धमगोचरम् ।  
 यदा करोति प्रश्वासं तदा रोगोत्पन्नोदयः ॥ ५७ ॥  
 मृधिव्या उन्नतं भाग्यं रोगात्पप्रपीडितम् ।

अस्तमितं महादेव ! अनुलोमविलोमतः ॥ ५८ ॥  
 पवनो गच्छति क्षिप्रं वामदक्षिणभेदतः ।  
 वामनासापुटे याति पृथिवीजलमेव च ॥ ५९ ॥  
 सदा फलाफलं धत्ते मुदिता कुलमण्डले ।  
 तयोर्वै वायवो शक्तिः फलभोगं तदा लभेत् ॥ ६० ॥  
 यद्येवं वामभागे तु वामायाः प्रश्नकर्मणि ।  
 यदि तत्र पुमान् प्रश्नं करोति वामगामिने ॥ ६१ ॥  
 तदा रोगमवाप्नोति कर्महीनो भवेत् ध्रुवम् ।  
 यदि वायुदयो वामे दक्षिणे पुरुषः स्थितः ॥ ६२ ॥  
 तदा फलमवाप्नोति द्रव्यागमनदुर्लभः ।  
 अकस्मात् द्रव्यहानिः स्यान्ननोगतफलापहम् ॥ ६३ ॥  
 सुहृद्भङ्गविवाटञ्च भिन्नभिन्नोदयं शुभम् ।  
 केवलं वरुणस्यैव पुरुषो दक्षिणे शुभम् ॥ ६४ ॥  
 अशुभं पृथिवी दक्षे भेदोऽयं वरदुर्लभः ।  
 सद्योदयं दक्षिणे च वामे तैजस एव च ॥ ६५ ॥  
 आकाशस्य विजानीयात् शुभाशुभफलं प्रभो ! ।  
 यदि भाग्यवशादेव वायोर्मन्दा गतिर्भवेत् ॥ ६६ ॥  
 दक्षनाभामध्यदेशे तदा वामोदयं शुभम् ।  
 तदा वामे विचारञ्च वायुतेजो ह्यस्य च ॥ ६७ ॥  
 ज्ञात्वोदयं विजानीयात् मिश्रे हानिः स्वरे भयम् ।  
 एषं स्वनाम्ना वामे तु यदि गच्छति वायवौ ॥ ६८ ॥  
 तस्मिन् काले पुमान् दक्षो दक्षभागस्थसंमुखः ।  
 तदा कन्यादानफलं यथा प्राप्नोति मानवः ॥ ६९ ॥  
 तदा वायुप्रभादेन प्राप्नोति धनमुत्तमम् ।  
 देशान्तरक्षभारार्त्ता आयान्ति पुत्रसम्पदः ॥ ७० ॥  
 बाल्यादिकं भवमेवं राश्रिभेदे शुभं दिशेत् ।



तत्तच्चक्रे फलं तस्य राशिद्वादशचक्रके ॥ ७१ ॥

चक्रनामानि ।—

सूक्ष्मं फलं विजानीयात् चक्रं नाम शृणु प्रभो ! ।  
 आज्ञाचक्रं कामचक्रं फलचक्रञ्च सारदम् ॥ ७२ ॥  
 प्रश्नचक्रं भूमिचक्रं स्वर्गचक्रं ततः परम् ।  
 तुलाचक्रं राशिचक्रं षट्चक्रं त्रिगुणात्मकम् ॥ ७३ ॥  
 सारचक्रमुल्काचक्रं मृत्युचक्रं क्रमात् प्रभो ! ।  
 षट्कोणं चात्र जानीयादनुलोमविलोमतः ॥ ७४ ॥  
 सर्वचक्रे स्वरज्ञानं सर्वत्र वायुसङ्गतिः ।  
 सर्वप्रश्नादिसञ्चारं भावेन जायते यदि ॥ ७५ ॥  
 तदा तद्दण्डमानञ्च ज्ञात्वा राश्युदयं बुधः ।  
 कुर्यात् प्रश्नविचारञ्च यदि कीर्त्तिमिहेच्छति ॥ ७६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने भावप्रश्नाद्यंबोधनिर्यवे पङ्क-  
 भावविषयारे सारसङ्घेते सिद्धमन्त्रपञ्चरणे भैरवी-भैरव-  
 संवादे एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशः पटलः ।

भैरव्युवाच ।—

कामचक्रम् ।—

तन्नामसन्धिदेशस्थमष्टमाङ्गमधो लिखेत् ।  
 तदधः सन्धिदेशस्थं सप्ताङ्गं विलिखेद्बुधः ॥ १ ॥  
 तदूर्ध्वं वामकोणे च तृतीयाङ्गं लिखेत्ततः ।  
 तदूर्ध्वं कोणगेहे च युग्माङ्गं विलिखेत्तथा ॥ २ ॥  
 तद्वक्षिणे गृहे चैकमङ्गवर्णं शृणु प्रभो ! ।  
 वायुभावमन्यभावं षष्ठभावञ्च गुण्यकम् ॥ ३ ॥  
 एतन्मध्ये नास्ति वर्णं कोणाद्यञ्च सवर्णकम् ।

टतवर्गौ मूर्द्ध्नि लिख्यं शरं शून्याध एव च ॥ ४ ॥  
 वेदाङ्गस्थौ कचवर्गौ एऐकारसमन्वितौ ।  
 ढतीयाङ्गस्थितं वर्णं आदिच्चान्तं टवर्गमीम् ।  
 उपवर्गो युगान्तस्थो अकारं सावधानतः ॥ ५ ॥  
 विलिखेद्दक्षिणे तस्य गेहे चैकाङ्गमध्यके ।  
 उयुगं पतवर्गौ च अकारं युग्मशीर्षके ॥ ६ ॥  
 एतत् प्रोक्तं कामचक्रं प्रश्नकालफलप्रदम् ।  
 वामावर्त्तेन गणयेत् दशकोणस्थवर्णकान् ॥ ७ ॥  
 अनुलोमविलोमेन पञ्चस्तरादि नामतः ।  
 यस्मिन् गृहे स्त्रीयं नाम प्राप्नोति वेदपारगः ॥ ८ ॥  
 तद् गृहावधिप्रश्नार्थं गणयेद्भावसिद्धये ।  
 नवग्रह-नवस्थानं वर्णं ज्ञात्वा सुबुद्धिमान् ॥ ९ ॥  
 बाह्यभावादिकं ज्ञात्वा यत्र ग्रहास्तनुर्भवेत् ।  
 तन्नक्षत्रं समानीय वाराधिकारमानयेत् ॥ १० ॥  
 विना त्रिकोणयोगेन न षट्कोणं लिखेद् बुधः ।  
 तन्मध्ये अष्टकोणञ्च भित्त्वा देवगृहान्तरम् ॥ ११ ॥  
 तन्मध्ये चापि षट्कोणं तन्मध्ये च त्रिकोणकम् ।  
 क्रमेण विलिखेद्द्वयं दक्षिणावर्त्तयोगतः ॥ १२ ॥  
 ऊर्ध्ववामदेशभागे अ आ इ च कवर्गकम् ।  
 तद्दक्षिणे ई उयुगं चवर्गञ्च लिखेद् बुधः ॥ १३ ॥  
 दक्षपार्श्वे अधोभागे ऋयुगं ढतवर्गकम् ।  
 तदधो लृ लृ ए ऐ च एवर्गञ्च लिखेद् बुधः ॥ १४ ॥  
 तन्नामपार्श्वभागे च ओ औ य रलवान् लिखेत् ।  
 शेषगेहे लिखेत् अं अः आदिच्चान्तं हि तद् गृहे ॥ १५ ॥  
 मध्यस्तमादिकोणे च एकाङ्गं सर्वैकीं तनुम् ।  
 रुद्राग्निमूर्त्तिमतलं अग्निर्कोणे लिखेद् बुधः ॥ १६ ॥

यजमानः पशुपतिर्मूर्तिषष्ठञ्च दक्षिणे ।  
 महादेवं सोममूर्तिं नैऋते विलिखेत् सुधीः ॥ १७ ॥  
 जलमूर्तिभवं युग्मं पश्चिमे विलिखेद् बुधः ।  
 उग्रं वीरं वायुमूर्तिं वामकोणे चतुर्थकम् ॥ १८ ॥  
 भीमरूपाकाशमूर्तिं पञ्चमं चोत्तरे लिखेत् ।  
 ईशानं सूर्यमूर्तिञ्च ईशाने अष्टमं लिखेत् ॥ १९ ॥  
 अधः षट्कोणमध्ये च चाष्टकोणं लिखेत्ततः ।  
 ऊर्ध्वकोणे ग्रीष्मकालं शिशिरञ्चापि दक्षिणे ॥ २० ॥  
 वर्षाकालमधस्तस्य ससर्वमन्तकं लिखेत् ।  
 शरत्कालं पञ्चकोणे शीतकालञ्च षष्ठके ॥ २१ ॥  
 त्रिकोणाधिपतिं मध्ये वङ्गिरूपं वकारकम् ।  
 लिखित्वा गणयेन्मन्त्री वर्षवेदाङ्गवङ्गिभिः ॥ २२ ॥  
 एतच्चक्रं महासिद्धया फलचक्रं विशारदम् ।  
 अधुना कुलनाथेय ! राशिचक्रं पुनः शृणु ॥ २३ ॥  
 विना ज्ञानेन यस्यैवं प्रश्नभारो न जायते ।  
 यदि प्रश्नचक्रभावं जानाति साधकोत्तमः ।  
 तदा निजफलं ज्ञात्वा सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ॥ २४ ॥

राशिचक्रम् ।—

षट्कोणं कारयेन्मन्त्री विना त्रिकोणसाधनेः ।  
 तन्मध्ये च चतुष्कोणं तन्मध्ये शादिवर्णकान् ॥ २५ ॥  
 लिखित्वा विलिखेत्तत्र तदङ्गमध्यदेशतः ।  
 षडङ्गं दापयेन्मन्त्री दौर्घं दीर्घक्रमेण तु ॥ २६ ॥  
 तदग्रे अङ्गुष्ठं कुर्यात्तत्राङ्गान् लिखेत् सुधीः ।  
 ऊर्ध्वप्रथमगेहे च कवर्गं विलिखेद् बुधः ॥ २७ ॥  
 तदक्षिणे मन्दिरे च चवर्गं विलिखेद् बुधः ।  
 टवर्गं दक्षिणे चाधः सर्वाधस्तु तवर्गकम् ॥ २८ ॥

तन्नाममन्दिरे नाथ ! पवर्गं वर्णमङ्गलम् ।  
 तदूर्ध्वं यादिवान्तश्च दक्षिणावर्त्तयोगतः ॥ २९ ॥  
 आकारादिस्वरान् तत्र मन्दिरे विलिखेद् दुधः ।  
 यावत् स्वरस्थितिर्याति तावत्कालं विचारयेत् ॥ ३० ॥  
 मेषादिराशिसङ्गावं वर्गलेखनमानतः ।  
 अनुलोमविलोमेन विलिखेत् षष्ठमन्दिरे ॥ ३१ ॥  
 यद् यद् गेहे साध्यनाम चास्ति नाथ ! स्वरादिकम् ।  
 एकौक्त्य हरेदङ्कं वाञ्छितं प्राप्यते वरम् ॥ ३२ ॥  
 षडङ्गेन ततो नाथ ! हरेदनलसंख्यया ।  
 यदङ्कं प्राप्यते तत्र सराशिस्तत्क्षणस्य च ॥ ३३ ॥

आज्ञाचक्रफलम् ।—

आज्ञाचक्रफलं सिद्ध-विद्यानाथ ! वदामि तत् ।  
 येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ॥ ३४ ॥  
 अकस्मात् शक्तिमाप्नोति विद्यारत्नं वदामि तत् ।  
 रव्यादिसप्तवारञ्च कृते भद्रविवर्द्धनम् ॥ ३५ ॥  
 शन्यादिसप्तवारञ्च त्रेतायुं सौख्यवर्द्धनम् ।  
 गुर्वादिसप्तवारञ्च हापरे धर्मसाधनम् ॥ ३६ ॥  
 शुक्रादिवारसप्तञ्च कलौ योगफलप्रदम् ।  
 अतः शुक्रादिपर्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः ॥ ३७ ॥  
 गणयेत् सप्तवारञ्च मध्यचतुर्दले सुधीः ।  
 पूर्वादिक्रमतो वारान् गणयेद्भद्रवित्तमः ॥ ३८ ॥  
 निजवारो यत्र पत्रे समाप्तिस्तद्भवञ्च यत् ।  
 तद्भववावधिमानोय वर्णभेदं समानयेत् ॥ ३९ ॥  
 सामान्यफलमूलञ्च वदामि पत्रभेदतः ।  
 आज्ञाचक्रं शुभं मन्त्री आज्ञाचक्रं विचारयेत् ।  
 तत् फलाफलमाहात्म्यं शृणु सङ्केतपरिहित ! ॥ ४० ॥

दले पूर्वभागे अकाराध इन्दुस्फुटे वाद्यलाभं हकारान्तशब्दं  
समानार्थभावं विशिष्टार्थयोगं क्रतुक्षेमयुक्तं तथा पुत्रलाभम् ।  
दयायुक्तभूपः समाप्नोति मर्त्यं विवाहं सुवासं सुखं लोकभक्तिं  
विभाव्यं वक्रानां समाप्तौ समस्तं धनादिं सुकीर्त्तिं यशश्च त्रिवर्गम् ॥

॥ ४१ ॥

\* \* \* \*

माहेन्द्रासुतयोगराजगहनं साक्षादयमारोपणं

चित्तानां परिचञ्चलं खलु गुणाह्लादेन सामोदितम् ॥ ४२ ॥

पुत्रार्थलाभं यदि चाध एव प्रगच्छति क्रूरबहुप्रतापः ।

तथाऽपि हन्तुं न च वर्णमध्ये क्षमं स्वसिद्धिं भजते क्षमादिः ॥ ४३ ॥

रसार्थप्रश्नं कुरुते यदि ख्यान्नरो हि चाधो गृहमध्यभागे ।

स्वकीय इन्दुप्रियवद्भुवम् मनोगतं शीघ्रविवर्द्धनञ्च ॥ ४४ ॥

शत्रूणां हननं तदा कुलगतं सञ्चारवातं सदा

रोगाणां परिवर्द्धनं प्रभुपदे भक्तिं मनो ज्ञापनम् ।

आह्लाटं हृदयाखुजे सुतधनं तीर्थागमं शोकहं

शुष्कार्थं गणयेत्ततः प्रचपला वाग्देवतादर्शनम् ॥ ४५ ॥

आथर्वे पत्रमध्ये निवसति कमला कोमला वा सुदात्री

आगन्तव्यादिवार्त्तां कथयति सहसा सर्वदा मङ्गलानि ।

नित्यावश्यं प्रतापं प्रियगणसुहितं प्रेमभावाश्रयत्वं

नित्यं कान्तासुखाशोरह-विमलमधुप्रेमपानाभिलाषम् ॥ ४६ ॥

\* \* \* \*

मेषे दृष्टिसुपैति सिद्धनिवहैः कुम्भे च तेषां फलम् ।

लाभं कुञ्जरघातुकेषु रजतं चौर्येण यद् योगतः

एवं कांस्यविहारणं शतपले सूर्योदयात्तिष्ठति ॥ ४७ ॥

प्रातःकालफलाफलं कथयति श्रीकेशरी मेषगः

पश्येदेकशतं फलन्तु धनुषा व्याप्तं यदा भूतले ।

वित्तानां दरुणं तदा जलगते मित्रस्य राश्यादिकं  
दूरस्थादिकमागतां दिनमयं शत्रोर्महापौडनम् ॥ ४८ ॥  
वाञ्छावर्गकुलोदयं समुदयात् सूर्यस्य चागण्यते  
शेषे चौरकशात्रपाँलमुदितः कुम्भो महादुर्बलो ।  
दारिद्र्यस्य कथा कदा सुविषयं विद्यार्थभूषणं यो  
लाभं देशविदेशकार्यगमनं शीघ्रं धनाद्यागमम् ॥ ४९ ॥

\* \* \* \*

देवानां खलु दर्शनार्थकथनं व्यामोहसनाशनम् ॥ ५० ॥  
वारि शुक्ले शनिगतदिवसे क्रूरराहौ च सूर्ये  
नित्यं ज्ञानोदयं यन्निजपथसञ्जुषां निर्णयं तत् प्रकाशम् ।  
अष्टौ वर्गानुदयति मुद्रा प्याधिरोमामहत्त्वं  
लोकोक्तासं प्रथमखचरे चायुषि प्रश्नमात्रे ॥ ५१ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायां उत्तरतन्त्रे महात्मनोद्दीपने भावप्रशार्थवीचनिर्णये  
प्राणवक्ष्ये आज्ञापकसारसङ्गते विद्वन्मन्त्रप्रवरणे भैरवीभैरव-  
संवादे द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

## अथ त्रयीदशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

आज्ञापप्रशार्थभावञ्च वर्णविन्यासनिर्णयम् ।  
अधुनाशु सुसर्वज्ञ ! भावज्ञानपरायण ! ॥ १ ॥  
यदि मेघे स्वनक्षत्रं स्वराशिसंयुतं शुभम् ।  
ज्ञात्वा शुभादिपत्रञ्च पलमानेन साधकः ॥ २ ॥  
गणयेदाशु सारञ्च येन तत् प्रश्ननिर्णयः ।  
पूर्वं दले ककारस्य वर्णभेदं शृणु प्रभो ! ॥ ३ ॥  
मनसि सुखसमूहं प्राणसौख्यार्थचिन्ता-  
बसनगणनलाभं प्रीतिपुत्रार्थयोग्यम् ।

स्थिरपदमपि देशे दर्शनं प्राणबन्धोः

सकलकलुषहानिष्ठादिपत्रे ककारे ॥ ४ ॥

सदा नृनासिके सौख्यं सुखोत्त्वणस्य सेवनम् ।

भक्तिप्रदं सदागिवे स्वकौयगेहमत्कुलम् ॥ ५ ॥

कलाधरस्य दृष्टिभिः प्रधानलोकपूजनम् ।

हिताहितं न बाधेत विवाहके विनाशनम् ॥ ६ ॥

ऋकारे विपदां ध्वंसं धैर्यं विद्याधरोधनम् ।

व्याधिपीडां स्वजनानां पीडाप्रश्नं वदेत्तदा ॥ ७ ॥

उकारे वायुभावस्य वृथागमनमेव च ।

दारिद्र्यंहीना ये यान्ति दूरागमनं दुर्लभम् ॥ ८ ॥

खकारे द्रव्यप्रश्नञ्च शुभकार्यं गते भयम् ।

आशु धनं समाप्नोति प्राप्य निर्धनानां व्रजेत् ॥ ९ ॥

पञ्चत्वजिज्ञासनमेव सत्यं नित्यं सुखानामुदयाय चेष्टा ।

शत्रोर्विनाशाय हिताय बन्धोः पकारकूटे परचौरचेष्टा ॥ १० ॥

मारीभीततिरोधानं धनपुत्रादिवर्द्धनम् ।

मरणं गमने चौरौ नैनं लेख्यं शठे वके ॥ ११ ॥

हरिपूजा हरिध्यानं हरिपादास्त्रुजे मतिः ।

चौर्याहरणद्रव्यस्य न हानिर्जन्महार्दके ॥ १२ ॥

आकारे वैतसो हाम्मै हाशब्देन विनाशनम् ।

आगतानाञ्च हानिः स्यात् पक्षपातं गतो जयः ॥ १३ ॥

उग्रती निजगेहस्था उल्लणव्याधिपीडनम् ।

उत्साहध्वंसशून्यस्य पाठे पाण्डित्यमुल्लणम् ॥ १४ ॥

दीर्घलृकारवर्णञ्च लावण्यलोचनो नृपः ।

लज्जानष्टं क्षेमवृद्धिमिन्द्रतुल्यप्रियो भवेत् ॥ १५ ॥

दीर्घप्रणवमोहारे निराश्रयो न जीवति ।

महदाश्रयमात्रेण सर्वं चूर्णं करोति हि ॥ १६ ॥

सिंहे कामुकमेषलक्ष्मणसमये नित्याशिषं प्राप्नुयात्  
किञ्चिद्भ्राति पराक्रमी गतिमतां श्रेष्ठो भवेत् कर्मणि ।

किञ्चिद्दोषकुलापहं नरपतेरुत्साहसंवर्द्धनम्

क्रोधी नित्यपराक्रमी भवति सः शौभ्राभिलाषान्वितः ॥ १७ ॥

अथ वक्ष्ये महादेव ! वीराणामुत्तमोत्तम ।

सर्वशास्त्रार्थभावज्ञ ! तत्त्वज्ञानपरायण ! ॥ १८ ॥

दक्षिणस्थदलस्यापि वर्णभेदार्थनिर्गमम् ।

फलमत्यन्तनिष्कर्षं वाञ्छावाक्यफलप्रदम् ॥ १९ ॥

कान्ते वीजे कमलनिलयागेहभागस्थिराया

नानादेशभ्रमणभयदा नैव कुत्रापि सुस्था ।

घण्टोद्देशापहसति खलानाञ्च हानिः प्रबुद्धी

वाणी वश्या वसति वदने चक्रिणां हानयः स्युः ॥ २० ॥

चारुप्रतापं चरणे गुरुणां भक्तिदृढा स्याद् गमनेषु चारुः ।

तदा गतानां नृपतिप्रियाणां सप्रेरणं चारुफलञ्च कूटे ॥ २१ ॥

चरन्तेषु कान्तावदनारविन्दे सृष्टं पदत्वं रमणीविलासम् ।

आयुक्षयोद्देशगविनाशकारणं चाकर्षणं देशसुखं धनानाम् ॥ २२ ॥

टकारे धारणं देशे क्षयं शेषे विना सुखम् ।

विदेशस्थधनादीनां स्यादागमनमुत्तमम् ॥ २३ ॥

दकूटमघनं विना भवति विघ्नहानिः सदा

जयं स्वगृहकाभिनौकमलनेत्रकान्ता यथा ।

सुसिद्धकरमेव हि प्रबललाभभावो भवेद्

भवे जयति मानुषसप्तमल्लभप्रश्नजिज्ञासने ॥ २४ ॥

व्याख्यातं मुनिभिः फलं फलमयं कालं रिपूणां सदा

लोकानां वशकारणं कुलवरो वेदागमे पारगः ।

प्राप्नोति प्रियपुत्रकं नरपतेरुत्साहसंकारणं

कार्यं दुर्जनपीडनं भयसमूहानां विनाशं स्वकी ॥ २५ ॥



यशसि वयसि तेजो बुद्धिरेवं मकूटे  
 समयफलदभूपो नाशबुद्धिः समृद्ध्या ।  
 यजनमपि सुराणामर्थ्यमातं न भूया-  
 दतिशयधनवृद्धिः क्रोधविक्रोपकाले ॥ २६ ॥

शीतकाले धनप्राप्तिः स्पर्शगोप्यादिलाभकम् ।  
 पुत्रप्राप्तिः सुखप्राप्तिः सङ्कटे वदति ध्रुवम् ॥ २७ ॥  
 लक्ष्मीः प्रियं धनं दातुमुदिता भूमिमण्डले ।  
 जलेन जायते हानिलयं देवेन कूटके ॥ २८ ॥  
 प्रश्नाऽऽद्यक्षरमित्यादि स्वरमूलं हि यो नरः ।  
 जिज्ञासन् यदा कुर्यात्तदा स्यादुत्कटं फलम् ॥  
 शृणु तत्तत् स्वरं नाथ ! एतत् पत्रस्थमाजयम् ॥ २९ ॥

\* \* \* \*

इकारकूटमङ्गले धनादिदृष्टयान्वितः ॥ ३० ॥  
 विशेषधर्मलक्षणं धनञ्च पैत्रिकं लभेत् ।  
 गतिप्रियं सुदेवता सुसम्पदं सदा सुखम् ॥ ३१ ॥  
 तथा हि सूक्ष्मबुद्धिभिः परास्तमाकरोदरिम् ।  
 ऋकारमपरप्रियं परमभक्तसन्दर्शनम् ॥ ३२ ॥  
 विदेशगमनं न हि प्रभूतराज्यसम्पदः ।  
 दया जगज्जनप्रियं तरुणदोषसम्माननम् ॥ ३३ ॥  
 विकाररहितं सौख्यं सर्वप्रश्रयुगोदये ।  
 त्रयीजे बहुसन्तोषं कामनाफलसिद्धिदम् ॥ ३४ ॥  
 वायूनां हरणञ्चैव प्राप्नोति नृपमानसम् ।  
 असौत्येकाक्षरे वीजे वीजभूते जगत्पतिः ॥  
 प्राप्नोति कन्यादानादिफलं वस्त्रञ्च तैजसम् ॥ ३५ ॥  
 गोकन्या मकरे खगे खररता सौन्दर्यलक्ष्मीर्भवेत्  
 शेषे क्राञ्चनघुञ्चलाभमतुलं सन्तोषसारं गती ।

संसारे निजदारिकान्धजनता रत्नादिकं सञ्चयं  
सर्वं सञ्चयति प्रभो ! हितकरं प्रश्नार्थमाद्यक्षरे ॥ ३६ ॥

द्वितीयदलराहित्यं यद्वा वर्णं विचारयेत् ।

प्रश्नाद्यक्षरवर्णेषु नीत्वा च गणनं चरेत् ॥ ३७ ॥

तत्प्रकारं शृणु प्राण-वल्लभ ! प्रेमपारग ! ।

यज्ञज्ञानात् प्रश्नसिद्धिः स्यादकालफलदं नृपम् ॥

दृष्ट्वा ज्ञात्वा भावशुद्धिसुत्तमाधममध्यमम् ॥ ३८ ॥

लोकभावविधानज्ञो निजवृत्तादिकं तथा ।

सर्वं विषयरूपेण भावसारं विचारयेत् ॥ ३९ ॥

गवीजं मङ्गलं ज्ञेयं फलमत्यन्तभाग्यदम् ।

गतद्रव्यादिलाभश्च तथा लोकवशं फलम् ॥ ४० ॥

इकारकूटे कठिनं रिपूणां विद्रावणं धर्मविनाशकस्य ।

भूमिपतेर्वा-शरणं विनाशनं दिव्याङ्गनाया वररत्नलाभम् ॥ ४१ ॥

टकारे दूरगाणाञ्च दर्शनं भवति ध्रुवम् ।

उदाहं पुत्रसम्पत्तिः षष्ठमासेन लभ्यते ॥ ४२ ॥

टान्ते चौरभयं नास्ति तद् द्रव्यागमनं भवेत् ।

विधिविद्याप्रकाशेन शिवे विष्णौ च भक्तिमान् ॥ ४३ ॥

धकारकूटे धरणीपतेर्वा व्याधेर्भयं नास्ति तथा पशोश्च ।

प्रवेशमात्रेण गतौ कलापि जीवादिसम्पत्तिसुपैति लक्ष्मीम् ॥ ४४ ॥

रवौ सिद्धिः सम्यक् खलु कुलवरो धीरगमनं

वाञ्छातुल्यं विभवमतुलं राजराज्याप्रियं स्यात् ।

प्रतापं सन्त्यज्यं सकलहितगोलोकरसता

रसं सर्वं नित्यं प्रियमतिसुखं लाभविविधम् ॥ ४५ ॥

वकारे वङ्गिवीजे च जितं सर्वं चराचरम् ।

यथा जयेन सर्वत्र गमने भाग्यदं फलम् ॥ ४६ ॥

षकारमध्यमे देशे वात्तादेशादुपैति हि ।

पत्रिकागमनं क्रियं यः करोति धनं लभेत् ॥ ४७ ॥  
 अकारे सख्यभावञ्च मित्रभावं दयां लभेत् ।  
 अप्रीतिश्च भवेत्तस्य तदा प्राणभयं न च ॥ ४८ ॥  
 स्वराज्ये च भवेत् सौख्यं प्रश्रजिज्ञासकर्मणि ।  
 हसनान्ते तथा वर्षे पाचकादिह चादिमम् ॥  
 यदि स्यादुच्यते नाथ ! विपरीतफलं न च ॥ ४९ ॥  
 दीर्घं काले विषयघटना नाथ ! पादे मतिः स्यात्  
 यद्यारम्भो भवति कुशलं दीर्घजीवी नरेन्द्रः ।  
 बालापत्यं गमयति मुदा कालदेशाधिकारौ  
 लोकारण्ये सकलकलुषध्वंसहानौ मृगन्ते ॥ ५० ॥  
 सुखञ्चचार चाष्टमे महाधनेशसन्निधौ ।  
 प्रबुद्धवान् भवेन्नरः समाहितो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५१ ॥  
 विचित्रचातुरी यदा महाकुचोरगा प्रभो ! ।  
 ग्रहस्यते क्षणादपि प्रभातसूर्यदर्शनात् ॥ ५२ ॥  
 \* \* \*  
 अतीव धैर्यतां लभेत् विचित्रवाग् भवेज्जयः ॥ ५३ ॥  
 जयेन सेवितः पुरा देवैरपि हि मानुषः ।  
 न वाक्यलाभकं जगज्जनादिसेवनं लभेत् ॥ ५४ ॥  
 कुलागमं दया सुधीर्गभीरतुल्यसत्फलम् ।  
 सदा हि पुण्यसागरे गुरोः पदाम्बुजं लभेत् ॥ ५५ ॥  
 विसर्जनीयस्मये समाप्ति कोमलान्वितम् ।  
 जनागमं धनागमं विशालवेदनाऽन्वितम् ॥ ५६ ॥  
 मनोगतं कुम्भद्विदं सुखायुर्वन्धुसज्जनम् ।  
 कुलक्षपं भवे भवे लभेत् लभेत् कुबन्धनम् ॥ ५७ ॥  
 सकुलं निष्कुलं कान्तं वित्तश्रेष्ठा महर्षयः ।  
 हास्यमुखे हास्यफलं भावनायां भवेन्न हि ॥ ५८ ॥

क्रोधक्रमेणैव तदेव चक्षुषोर्विकारभावेन हरेत् समस्तम् ।  
शीर्षं करो चेत्कलिकालसंयुतं फलं हि लाभे बध एव भूषणम् ॥ ५९ ॥

शेषे वेददले च भावय करा हारावशब्दापह्ना  
दूरादागमनं भवेद्धि नियतं बालागणैरावृतम् ।  
घोरापायविसर्जनं जलगुणाह्वादेन सामोदितम्  
कूपे कूपमकारवर्गलङ्घी भासापभासारसे ॥ ६० ॥

जवर्गं जतुकं वर्णं जीवोपायचिन्तनम् ।

जराव्याधिसमाक्रान्तं जीर्णवस्त्रापहारणम् ॥ ६१ ॥

ठकारकूपे यदि चक्रवर्ती भूमण्डले स्यात् पततीति निश्चितम् ।  
अन्तःसुखं हन्ति यदादिभागे ठकारमात्रेण विभूतमो भवेत् ॥ ६२ ॥

आद्यप्रश्नाक्षरं नाथ ! भकारं तरुणाश्रयम् ।

पापान्भकारपटल-ध्वंसाय कल्पते तदा ॥ ६३ ॥

नकारमाद्ये यदि प्रश्नवाग्मी जिज्ञासमानो ध्रुवमर्थसञ्चयम् ।

आलापमात्रेण वशाः स्युरेव प्रवेशनं राजकुलेन्द्रसन्निधौ ॥ ६४ ॥

भोतो भवति देशे च भयस्थाने न दुःखभक् ।

भूषासम्पत्तिवृद्धिश्च भकारकूटमङ्गले ॥ ६५ ॥

लोकानुरागं सर्वत्र आद्यक्षरविचारतः ।

लकारस्यापि लोकेश ! भार्या दुःखं विमुञ्चति ॥ ६६ ॥

सकारे मैथुनं कान्ताकुलस्य कुलवर्द्धनम् ।

धनवृद्धिर्वैश्वर्यवृद्धिः सरस्वती कृपा भवेत् ॥ ६७ ॥

वेदपत्रे अकारस्य फलमाहात्म्यनिर्णयम् ।

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ ६८ ॥

ककारादि क्षकारान्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ।

अकारेण विना शक्तिर्जायते कुत्र न प्रभो ! ॥ ६९ ॥

अकारे ग्राह्यं तत्सर्वं, चराचरकलेवरम् ।

यद्यकारमाद्यभागे प्रश्नजिज्ञासुनं भवेत् ॥

कुफलेऽपि सत्फलानां सञ्चयं भवति ध्रुवम् ॥ ७० ॥  
 शत्रूणां वासहेतोश्च यादीनाञ्चैव सञ्चये ।  
 अन्तर्यजनविद्यासु लोकस्यागमने तथा ॥  
 निजदुःखानुतापे च अकारविधिरुच्यते ॥ ७१ ॥  
 उकारफलमाहात्म्यं शृणु प्रश्नार्थपण्डित ! ।  
 उषाकाले चौर्यप्रश्नं मङ्गलं मानसोत्तमम् ॥ ७२ ॥  
 उत्तमस्थलवासञ्च उत्कृष्टभोजनादिकम् ।  
 उत्वणा बुद्धिरुत्पत्तिरुषादेवीपदे सति ॥ ७३ ॥  
 लृकारणकुलं चक्षुः शब्दस्य वचनं भवेत् ॥ ७४ ॥  
 लोचने दर्शदं स्त्रीणां लिखनं दूरसम्भवम् ॥ ७५ ॥  
 प्राप्नोति परमां लक्ष्मीं लोकवश्याय केवलम् ।  
 अङ्गनानां सञ्चयञ्च भूमिलाभो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७६ ॥  
 ओकारे वाह्यबुद्धिः स्यात् पुत्रवृद्धिस्तथैव च ।  
 सदा सन्तोषमाप्नोति प्रणवः सर्वसिद्धिदः ॥ ७७ ॥  
 मीने कर्कटराशिवृश्चिकतुले धर्माग्निभानूदये  
 गेहे वेदविचारणे शुभफलं श्रीलाभतः सन्नतिः ।  
 विद्यावेदकथादिकं जयवतामानन्दसिन्धोः फलं  
 प्राप्नोति प्रतिपत्तिसिद्धपटवीं मर्त्यां मुदा हर्षणम् ॥ ७८ ॥  
 पत्रप्रमाणं कथितं हीनविद्याविनिर्गमम् ।  
 पुनः शृणु महाकाल ! कालकालस्य उद्भवम् ॥ ७९ ॥  
 यद् यन्मासस्य प्रथमे तथा चाङ्गोर्भकस्य च ।  
 दण्डद्वये शुभफलं प्रथमस्य महेश्वर ! ॥ ८० ॥  
 तृतीयैकदण्डमात्रं विपरीतफलप्रदम् ।  
 तत्र दण्डेषु नक्षत्रे पूर्वप्रथमपत्रके ॥  
 तत् सुतारं विजानौयात् दृष्टदोषे सुखं भवेत् ॥ ८१ ॥  
 अश्लेषाभादिचिह्नान्तं द्वितीयं दक्षिणे दले ।

तत् फलं विपरीताख्यं सफले विफलापहम् ॥  
 तत् सुतारं विजानीयात् दृष्टदोषे सुखं भवेत् ॥ ८२ ॥  
 स्वात्यादि वसुनक्षत्रं तृतीयाधोदले लिखेत् ।  
 तत् सुतारं क्रमाज्ज्ञेयं नान्यथा भावमानयेत् ॥ ८३ ॥  
 तत् फलायं कुक्षितच्च विपरीतफलस्थले ।  
 अशुभं सत्फलस्थाने कुफलेषु फलं लभेत् ॥ ८४ ॥  
 उत्तराषाढके तारादिरेवत्यन्तमेव च ।  
 तत् फलन्तु भवेत् सद्यो यदि कर्मपरो भवेत् ॥ ८५ ॥  
 अथ वक्ष्ये महादेव ! अश्विन्यादिफलं प्रभो ! ।  
 यज्जाल्वा देवताः सर्वा दिग्विदिक्षादिरक्षकाः ॥ ८६ ॥  
 तत्रकारं महापुण्यं देवदेव ! फलोद्भवम् ॥ ८७ ॥  
 द्रलोक्ये सौख्यपुञ्जं त्रिभुवनविदितां त्रैगुणाह्वयसिद्धां  
 सिद्धभ्रान्तो विशालो वरदविदन्वितां वेदनाद्रापहञ्जाम् ।  
 मन्दानां मन्दभाग्यापहगुणहलनां हीनदीनापदाहां  
 लोकानां सत्फलानां फलगतवपुषा साश्विनी सा ददौ चेत् ॥ ८८ ॥  
 एवं क्रमेण देवेश ! तारकाणां फलाफलम् ।  
 पुनः पुनः शृणु प्राण-वल्लभ ! प्रेमभावक ! ॥ ८९ ॥  
 इति श्रीब्रह्मयानले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावनिर्णये पाशवकल्पे आज्ञाचक्र-  
 सारसङ्घेते विहमन्त्रप्रकरणे भैरवीभैरवसंवादे त्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

## अथ चतुर्दशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युक्ताच्च ।—

नाक्षत्रिकक्षत्रफलम् ।—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि योगमार्गेण शङ्कर ! ।

भरण्यादिसप्तविंशान् नक्षत्रार्थं सुसत्फलम् ॥ १ ॥

तत् फलाफलमाहात्म्यं साक्षात्कारफलाफलम् ।  
 फलार्थं भरणीक्षेत्रं धर्मत्रिव्यादिनिर्णयम् ॥ २ ॥  
 धर्मचिन्ताविनिर्बोधं गमनाभावमङ्गलम् ।  
 मकारादिवर्णजालं प्राप्नोति भरणीभक्ते ॥ ३ ॥  
 कृत्तिकायाः शादिवर्णं व्याधिसङ्करसंक्षयात् ।  
 आरोग्याय धनस्यार्थं तत्र सूर्यं न चाचरेत् ॥ ४ ॥  
 या रोहिणी धनवतां धनहानयो न  
 प्राणप्रियं गणसुवह्वविह्वल्लुद्धिम् ।  
 नागादिदोषगमनं क्षितिचक्रमध्ये  
 राजश्रियं विविधसिद्धिमुपैति वृद्धिम् ॥ ५ ॥  
 मृगेन्द्रशीर्षगामिनी नरेन्द्रमन्दिरे निधिम् ।  
 ददाति पापनिर्मले जले जघन्यशून्यके ॥ ६ ॥  
 भयं विवाहकालके क्षणे सुखं शुभेक्षणा  
 स्वकीयकिल्बिषं दहेदनन्तबुद्धिबल्लयः ॥ ७ ॥  
 आर्द्रां विद्रुमरूपिणी रतिकलाकोलाहलोल्लासिनी  
 सा सत्यार्पणमेव सम्प्रकुरुते काले फलालापनम् ।  
 सौख्यं मुख्यसमृद्धिदा दरदलाभोजावृता निष्पटा  
 साधारं परिदृश्यति प्रतिदिनं शान्तं दृशान्तं दहेत् ॥ ८ ॥  
 पुनर्वसुसुतारिका तरुणरूपकृपाकृपा  
 विशिष्टफलभावना-रहितचित्तदोषापहा ।  
 धनमन्तपरिमाणं प्रचुरशोकसङ्घापहा  
 प्ररक्षति महाग्रहः परमपीडितं मानुषम् ॥ ९ ॥  
 सुध्या पीषमनाः करोति सहसा तेजस्विनां कान्तिदा  
 कान्तायाः कनकादिलाभविपदां ध्वंसेन वंशादिदा ।  
 बाधायां फलदा मृगा मृगपतेरानन्दतुल्यं श्रियं  
 कात्या पञ्चमवर्णज्ञानरक्षिता प्रातीह पुत्रं यथा ॥ १० ॥

एतद्धि पूर्वपत्रान्ते तारामङ्गलदायिकाः ।  
 प्रतिभान्ति यथा चक्रे ग्रहाणां भ्रामणे शुभे ॥ ११ ॥  
 विपरीतफलं नाथ ! प्राप्नोति पातकं बहु ।  
 पुण्यायां न भवेत् क्रूरः कर्कटस्थोऽपि भास्करः ।  
 एतासां तारकाणाञ्च राशिदेवान् शृणु प्रभो ! ॥ १२ ॥  
 मेषः सिंहो धनुश्चैव अश्विन्यादिकदेवताः ।  
 येषां राशिस्थितं वर्णं न हानिर्विषयास्पदे ॥  
 सर्वत्र जयमाप्नोति ग्रहे क्रूरेऽपि सौख्यदः ॥ १३ ॥  
 विभिन्नराशौ श्रीभिन्ना धर्मनिन्दाविवर्जितः ।  
 स्वनक्षत्रफलं ज्ञात्वा प्रश्नार्थं कोमलं वदेत् ॥ १४ ॥  
 तत्तन्नक्षत्रसुफलं कुफलं वा भवेद् यदि ।  
 तदा वर्णविचारञ्च कृत्वा प्रश्नं सदा वदेत् ॥ १५ ॥  
 अक्षमालाक्रमेणैव तद्वर्णानां विचारतः ।  
 तत्तद्वर्णविचारे तु यद् यत् सौख्यं प्रवर्त्तते ॥  
 अधिके दोषजाले तु अधिकं दुःखमेव च ॥ १६ ॥  
 बहुसौख्यं नित्यसौख्यं प्राप्नोति साधकोत्तमः ॥ १७ ॥  
 एतासां तारकाणान्तु वर्णान् गृह्णन् यथा क्रमात् ।  
 रव्यादि रविवारान्तं ताराणामधिपं शुभम् ॥  
 अशुभञ्च तथा रुद्र ! ज्ञात्वा प्रश्नार्थमावदेत् ॥ १८ ॥  
 तद्धारनिर्णयं वक्ष्ये पूर्वपङ्केरुहे दले ॥ १९ ॥  
 रवौ राज्ञ्यं बालकानां यदि प्रश्नं प्रियं फलम् ।  
 धर्मार्थं चाममेवं हि त्रयोविंशाधिके नरे ॥ २० ॥  
 संस्थितं परमानन्दं योगिनस्तत्त्वचिन्तनम् ।  
 इत्यादि रविवारस्य ब्रह्मानामशुभं भवेत् ॥ २१ ॥  
 सोमि रत्नमुपैति देवकुसुमामोदेन पूर्णं सुखं  
 बालायां नवकन्यका शुभफलं मुद्राभयार्थं लभेत् ।



कैवल्यार्थविचेष्टनं नृपवधूप्रेमाभिलाषं सदा

वाञ्छापुण्यसुखास्यदेषु विमला भक्तिश्च सोमे दिने ॥ २२ ॥

पृथ्वीपुत्रो रुधिरवदनो बालबालीविशेषो

मुख्यं कार्यं दहति सहसा साहसं वाचनायाम् ।

हन्ति प्रायो विफनघटितं शोकसन्तानसारं

मुख्यं पुण्यं घटयति सदा मङ्गले भूमिवारे ॥ २३ ॥

बुधे वारमुख्ये महाधर्मपुञ्जं समाप्नोति मर्त्यस्तथा दुर्बलश्च ।

सदा कालदोषं महाघोरदुःखं रिपूणां धनिनां महावीर्यदर्पम् ॥ २४ ॥

सुराणां देवाहै विविधधनलाभं वितरणं

प्रतापं तत्कोर्त्तिं क्रतुफलविशेषं विधिगतम् ।

जनानामानन्दं समरवशतानन्दहृदयं

प्रतिष्ठा साधर्म्यं गमयति मुदा वासनगृहे ॥ २५ ॥

मन्दारमालाचयटेहृधारौ नाकस्थले गच्छति देवनिष्ठः ।

रेः पदे भक्तिमुपैति सत्यं प्रसाधनात् शुक्रसुतारकाले ॥ २६ ॥

शनश्चरदिने भयं गुरुजनेषु दोषान्वितं

क्षितिप्रियसुतप्रियं परमभावकं श्रीमुखम् ।

\*

\*

\*

विशिष्टधनिको वदन् मरणसिद्धिर्ऋद्धिर्ऋर्कजम् ॥ २७ ॥

भजन्ति यदि मानुषाः सकलकामनावदन्

प्रभाः पुरश्चराचरणं फलमतीव दुःखास्यदम् ।

प्रचण्डकिरणं सदा विकललोकोरोगापहं

तमेव परिभावनं परिकरोति यो वा नरः ॥ २८ ॥

न लभ्यते कदाचन प्रचुरतापकारणम् ।

कलाधनफलं शृणु प्रणयवाक्यसूक्ष्माशयः ! ॥ ३१ ॥

समप्रखचराकुलं समप्रखचराफलं

फलप्रवणं हि संज्ञाफलं फलप्रवणं हि संज्ञाफलम् ।

गभीरवचनं नृपप्रियकरस्य रक्षाकरं

यदिह भजनं मुदा फलं शुभादि शम्भो ! भवेत् ॥ ३० ॥

द्वितीयदलमाहात्म्यं नक्षत्रमण्डलायुतम् ।

तत्तत्ताराफलं वक्ष्ये येन प्रश्नार्थनिर्णयः ॥ ३१ ॥

अश्लेषाबहुदुःखवादनगतं व्यामोहशोभाहतं

नाना भृङ्गनिषेवणं धनवतां हानिः पदे सम्पदे ।

भूपालैः परिवर्जनं खलजनैराच्छादितं तापितं

सन्दद्यात् क्षितिजातिकेषु नियतं कोलाहले नारके ॥ ३२ ॥

मघायां महेशि ! धनं हन्ति मध्ये

महोल्लामवृद्धिं भयं तस्य शत्रोः ।

क्षितिचीरहन्तारमत्यन्तभावं

कुकामातुराणां सदा सङ्गकारम् ॥ ३३ ॥

पूर्वफल्गुनिनक्षत्र-दूरगाणां फलं पठेत् ।

अतिधैर्यं शत्रुपक्ष-ज्ञानयो यान्ति निश्चितम् ॥ ३४ ॥

कुलमुत्तरफल्गुन्यादियातगतिरीश्वरी ।

यदि देवपरो नाथ ! तदा सर्वत्र सुन्दरम् ॥ ३५ ॥

हस्तामस्तकलज्जया शुभविलोकोऽत्र त्रये भाग्यदा

रक्ताङ्गी गतिचञ्चलामलगुणाह्लादेन दाता सदा ।

नित्यं हि प्रददाति रुक्मगतकं भक्ताय यज्ञार्थिने

नासूपाञ्जनभोजनैरतिसुखी शङ्का न काचिद् भवेत् ॥ ३६ ॥

ददाति वित्तं जगतीह चित्रा मनोरथव्याकुलतामलङ्कृता ।

कदाचिदेव्वा हि शरीरदुःखं न प्राप्नुयादीश्वरभक्तिमालभेत् ॥ ३७ ॥

अश्लेषानाथ शुक्रो विषदमपि कदा नो ददाति प्रदुःखं

दक्षे पात्रविभावना भयहरा चण्डीग्रतापापहा ।

जीवः श्रीमानमोघं धनदमपि विधिं ब्राह्मणः पीतवर्णम्

पूर्वान्ता फल्गुनीशो विधुतनुजवरो नानवर्णः सुपुत्रम् ॥ ३८ ॥

कुरुते बहुसुखवित्तं उत्तरफल्गुनीनाथो मङ्गलेन ।  
 हस्तायाः पतिश्चन्द्रो विभवमनन्तं चित्रेशो रविः ॥ ३८ ॥  
 अधःस्वातीयपत्रस्य नक्षत्राणि शृणु प्रभो ! ।  
 यासां वारविशिष्टानां प्रश्ननिष्कर्षसत्फलम् ॥ ४० ॥  
 स्वातीं रविः पाति महोद्यतेजसा विनाशकाले विपरीतबुद्धिदः ।  
 इन्दुर्विशाखां सुखदः प्रपाति कुजोऽनुराधां विपदां पराधोः ॥ ४१ ॥  
 बुधो हि पायात् सकलार्थसाधनीं  
 ज्येष्ठाञ्च मूलां सुखदः पातु जीवः ।  
 तथा धनार्थं प्रददाति शुकः  
 पूर्वान्विताषाढिकयाऽन्वितः सुखम् ॥ ४२ ॥  
 चतुर्थपत्रं वामस्थं महामङ्गलकारणम् ।  
 अथर्ववेदरूपं तत् सर्वप्रश्नकथावृतम् ॥ ४३ ॥  
 विपरीते महद्दुःखं वर्णसौख्येऽपि हानयः ॥ ४४ ॥  
 भवन्ति तारका नाथ ! शुभद्रव्यादहोदयाः ॥ ४५ ॥  
 तत्तारकाणामगुणं शुभाशुभफलप्रदम् ।  
 प्रश्नवर्णसमूहानां मतमालोक्य निर्णयम् ॥ ४६ ॥  
 शनिः पात्युत्तराषाढां हानिरूपां विपादकाम् ।  
 दुःखदारिद्र्यसंयुक्तां देवनिष्ठेन बाधते ॥ ४७ ॥  
 रविः प्रपाति श्रवणां धनादिभिः प्रधानदेवाश्रयनिर्विकल्पाम् ।  
 तथा धनिष्ठां फलदां सुधीः शुभं कुजो विपत्तिं शतभिक् गणेशः ४८  
 पूर्वभाद्रपदानाथो बुधः काञ्चनवर्द्धनः ।  
 तथा लोकं महादेवो पूर्वभाद्रपदापतिः ॥ ४९ ॥  
 बृहस्पतिः सुखोज्जासं रेवतीशस्तथा भृगुः ।  
 ददाति परमाह्लादं स्वस्वपत्रस्थराशिभिः ॥ ५० ॥  
 अभिजित्तारकं पाति शनिः श्रीमान् धनप्रदः ॥ ५१ ॥  
 फलभागं मुद्रा दातुं शनीराजा मृगान्तिके ॥ ५२ ॥

तच्चान्ते मितिके सौख्यं वदन्ति परमप्रियम् ।  
 राङ्गराजा ग्रहाः क्षत्रे अभिजित् कालवेष्टितः ॥ ५३ ॥  
 तत् कालं सूक्ष्मद्रूपं यो जानाति महीतले ।  
 सन्ध्याकालमिति ज्ञेयं शनौराहुः सुखं तयोः ॥ ५४ ॥  
 तत्सन्धिकालमेवं हि सत्त्वगुणमहोदयम् ।  
 तत् कुम्भकं विजानीयान्मदीयदेहसम्भवम् ॥ ५५ ॥  
 महासूक्ष्मक्षणं तद्वि कुण्डलीमण्डलं यथा ।  
 तस्याः प्रथमभागे च धारणाख्यः शनिः प्रभुः ॥ ५६ ॥  
 स्वयं ब्रह्मा सुदा भाति निरञ्जनकलेवरः ।  
 तस्मात् श्रेष्ठे रचनाख्यः सङ्गावारं ग्रहः शुचिः ॥ ५७ ॥  
 राहुरूपी स्वयं शम्भुः पञ्चतत्त्वविधानवित् ।  
 कालरूपी महादेवो विकटाख्यो भयङ्करः ॥ ५८ ॥  
 सर्वपापानलं हन्ति चन्द्ररूपी सुधाकरः ।  
 कृष्णवर्णः कालयमः पुण्यापुण्यनिरूपकः ॥ ५९ ॥  
 द्वयोर्मध्ये सूक्ष्मरूपा तडित्कोटिसमप्रभा ।  
 महासत्त्वाश्रिता देवी विष्णुमायाग्रहाऽऽश्रिता ॥ ६० ॥  
 अभिजित्त्तारका सूक्ष्मा सन्धिकाललया जया ।  
 कुम्भकाऽऽक्रान्तहृदया ग्रहचक्रपुरोगमा ॥ ६१ ॥  
 नक्षत्रमण्डलग्राम-मध्यस्था तिथिषोडशी ।  
 असामयी सूक्ष्मकला तरुणानन्दनिर्भरा ॥ ६२ ॥  
 अस्या आद्यभागसंस्थो ब्रह्मरूपी रजोगुणः ।  
 अस्याः श्रेष्ठा कालरूपी तमोगुणलयप्रियः ॥ ६३ ॥  
 चन्द्रो ब्रह्मा शिवः सूर्यो महामायातन्त्ररः ।  
 आत्रेयी परमाशक्तिः सुषुम्नान्तरगामिनी ॥ ६४ ॥  
 मध्यस्था ब्रह्मशिवयोर्विधिशास्त्रस्य सिद्धिदा ।  
 यैर्ज्ञायते सर्वसंस्था सर्वानन्दहृदि स्थिता ॥ ६५ ॥

तैरानन्दफलोपेतैः सत्त्वसम्भोगकारिणी ।  
 महाविष्णुर्महामाया चन्द्रतारास्वरूपिणी ॥ ६६ ॥  
 मुक्तिदा भोगदा भोग्या शम्भोराद्या महेश्वरी ।  
 अज्ञानबलता घोरा कालसंहारहंसिनौ ॥ ६७ ॥  
 मन्दवायुप्रिया यस्य कल्पनार्थे च वीरहा ।  
 सा पाति जगतां लोकान् तस्याधीनमिदं जगत् ॥ ६८ ॥  
 नाकाले म्रियते कश्चिद् यदि जानाति वायवौम् ।  
 वायवौ परमा शक्तिरिति तन्न्वार्थनिर्णयः ॥ ६९ ॥  
 सूक्ष्मागमनरूपेण सूक्ष्मसिद्धिं ददाति या ।  
 नराणां भजनार्थाय अष्टैश्वर्यजयाय च ॥  
 कथितं ब्रह्मणा पूर्वं सिद्धाय तनुजाय च ॥ ७० ॥  
 लोभमोहभयक्रोध-मदमात्सर्यकाय च ।  
 तत् क्रमात् परमा प्रीति-वर्द्धनं भूतले प्रभो ! ॥ ७१ ॥  
 आज्ञाचक्रस्य मध्ये तु वायवौ परितिष्ठति ।  
 चन्द्रसूर्याग्निरूपा सा धर्माधर्मविवर्जिता ॥  
 मनोरूपा शरीरं हि व्याप्य तिष्ठति खेचरी ॥ ७२ ॥  
 आज्ञाद्विदलमध्ये तु चतुर्दशमुदाहृतम् ।  
 वेददले वेदवर्णं वादिशान्तं महाप्रभम् ॥ ७३ ॥  
 तदग्निरूपसम्यक्त्वं ऋग्वेदादिसमन्वितम् ।  
 शृणु तत्त्वेन माहात्म्यं क्रमशः क्रमशः प्रभो ! ॥ ७४ ॥

इति श्रीशुद्धयामले उत्तरतन्त्रे भावप्रसार्थबोधनिर्णये आज्ञाचक्रसारसङ्घेते

भैरवो-भैरवसंवादे चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

## पञ्चदशः पटलः ।

वेदप्रकरणम् ।—

देवकार्यात् वेदशाखा-पञ्चवं प्रणवं परम् ।  
वदामि परमानन्द ! भैरवाङ्गाद ! मे शृणु ॥ १ ॥  
आद्यपत्रे अकारश्च ऋग्वेदं परमाक्षरम् ।  
ब्रह्माणं तं विजानीयात् आद्यवेदार्थनिर्णयम् ॥ ३ ॥  
वेदेन लभ्यते सर्वं वेदाधीनमिदं जगत् ।  
वेदमन्त्रविहीनो यः शक्तिविद्यां समभ्यसेत् ॥  
स भवेद्दि कथं योगी कौलमार्गपरायणः ? ॥ ३ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

ब्रह्मस्तोत्रं हि किं ? देवि ! ब्रह्मविद्या च कीदृशी ? ।  
ब्रह्मज्ञानी च को वा स्यात् ? को वा ब्रह्मशरीरभृक् ? ॥ ४ ॥  
तत्प्रकारं कुलानन्द-कारिणि ! प्रियकौलिनि ! ।  
वद शीघ्रं यदि स्नेह-दृष्टिश्चेन्मयि सुन्दरि ! ॥ ५ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

तदेव ब्रह्मस्तोत्रञ्च वायवीशक्तिसेवनम् ।  
सूक्ष्मरूपेण मग्ना या ब्रह्मविद्या प्रकीर्तिता ॥ ६ ॥  
सदा वायुपानरस-सूक्ष्मान्नित्यप्रसन्नधीः ।  
एकान्तभक्तिः श्रौताथे ब्रह्मविद्या प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥  
अष्टाङ्गाभ्यासनिरतः सूक्ष्मसञ्चयकृत् शुचिः ।  
सदा विवेकमत् कुर्व्यात् ब्रह्मज्ञानी प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥  
ब्रह्मानन्दहृदि श्रीमन् शक्तिं धारय वायवीम् ।  
सदा भजति यो ज्ञानी ब्रह्मज्ञानी प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥  
विजयारससारेण विना बाह्यासवेन च ।  
ब्रायव्यानन्दसंयुक्तो ब्रह्मज्ञानी प्रकीर्तितः ॥ १० ॥

सदानन्दरसे मग्नः परिपूर्णकलेवरः ।  
 आनन्दाशुजलोन्मत्तो ज्ञातो ब्रह्मशरीरधृक् ॥ ११ ॥  
 एकान्तभक्तिः श्रीनाथे जीवात्मपरमात्मनि ।  
 विवेकी विचरेदेको ज्ञातो ब्रह्मशरीरधृक् ॥ १२ ॥  
 वायवीशक्तिमाश्रित्य सदा ध्यानपरायणः ।  
 वशी ज्ञानरसाच्छन्नो ज्ञातो ब्रह्मशरीरधृक् ॥ १३ ॥  
 शक्तिः कुण्डलिनी देवी जगन्मातास्वरूपिणी ।  
 प्राप्यते यैः सदा भक्त्या मुक्तेरेवागमं फलम् ॥ १४ ॥  
 आद्यपत्ने प्रतिष्ठन्ति वणजालसमाश्रिताः ।  
 वायवीशक्तयः कान्ता ब्रह्माण्डमण्डलस्थिताः ॥ १५ ॥  
 राशिनक्षत्रतिथिभिः सर्वदा जननायिकाः ।  
 भ्रान्तिब्रह्मसिद्धये ता श्वश्रमेवमाश्रयेत् ॥ १६ ॥  
 मासेन जायते सिद्धिः खेचरी वायुशोषणी ।  
 द्विमासे वज्रदेहः स्यात् क्रमेण वर्द्धयेत् श्रमान् ॥ १७ ॥  
 द्विमासे कल्पसंयुक्तो यस्य सस्वन्धरूपतः ।  
 चैतन्या कुण्डलीशक्तिर्वायवीबलतेजसा ॥ १८ ॥  
 चैतन्या सिद्धिहेतुस्या ज्ञानमात्रं ददाति सा ।  
 ज्ञानमात्रेण मोक्षः स्याद् वायवीज्ञानमाश्रयेत् ॥ १९ ॥  
 महाबली महावाक्सी वर्द्धते च दिने दिने ।  
 आयुर्दृष्टिः सदा तस्य जरामृत्युविवर्जितः ॥ २० ॥  
 कुण्डलीकूपया नाथ ! विना किञ्चिन्न सिद्ध्यति ।  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ २१ ॥  
 ततः परः शिवो देव ! वायवी परिकल्पिता ।  
 एते षट् शङ्कराः सर्वसिद्धिदाश्चित्तसंस्थिताः ॥ २२ ॥  
 सर्वे तिष्ठन्ति पत्राग्राऽमृतधाररसाद्भुताः ।  
 अधोमुखाः सूक्ष्मरूपाः कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ २३ ॥

ब्रह्ममार्गस्थिताः सर्वे सन्ति षट्चक्रमण्डले ।  
 आज्ञया अध एवं हि चक्रं द्वादशकं स्मरेत् ॥ २४ ॥  
 गलितामृतधाराभिराप्नुतं कुण्डलीप्रियम् ।  
 आग्नेयीं कुण्डलीं मत्वा अधोधाराभितर्पणम् ॥ २५ ॥  
 प्रकुर्वन्ति परानन्द-रसिकाः षट् शिवाः सदा ।  
 चन्द्रमण्डलसञ्जाता जीवरूपधराव्ययाः ॥ २६ ॥  
 आत्मज्ञानसमासक्ता शक्तितर्पणतत्परः ।  
 द्वितीयदलरूपं हि यजुर्वेदं कुलेश्वर ! ॥ २७ ॥  
 अकस्मात् सिद्धिकरणं विष्णुना परिमौलितम् ।  
 वज्रकोटिमहाध्वान-घोरनादसमाकुलम् ॥ २८ ॥  
 हरिमौश्वरमौशानं वासुदेवं सनातनम् ।  
 मन्त्राधिष्ठाननिलयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २९ ॥  
 वाञ्छप्रतिरिक्तदातारं कृष्णं योगेश्वरं प्रभुम् ।  
 राधिका राकिणी देवी वायवीशक्तिलालितम् ॥ ३० ॥  
 महाबलं महावीरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।  
 पीताम्बरं सारभूतं यौवनामोदनाभितम् ॥ ३१ ॥  
 श्रुतिकन्यासमाक्रान्ता श्रीविद्या राधिका प्रभुम् ।  
 दैत्यदानवहन्तारं शरीरस्य सुखावहम् ॥ ३२ ॥  
 भावदं भक्तिनिलयं दयासागरचन्द्रकम् ।  
 गरुडासनमारूढं मनोरूपं जगन्मयम् ॥ ३३ ॥  
 यज्ञकर्मविधानज्ञं आज्ञाचक्रोपरि स्थितम् ।  
 अधःपरामृतरस-पानोन्मत्तकलेवरः ॥ ३४ ॥  
 साधको योगनिरतः स्वाधिष्ठानगतं तथा ।  
 तदाकारं विभाव्याशु सिद्धिमाप्नोति शङ्कर ! ३५ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

को वैष्णवो याज्ञिकः को धार्मिको वाऽपि को भुवि ? ।



को वा भवति योगी च तन्मे वद सुरेश्वरि ! ॥ ३६ ॥  
आनन्दभैरव्युवाच ।—

याज्ञिकलक्षणम् ।—

शङ्कर ! शृणु वक्ष्यामि कालनिर्गमलक्षणम् ।  
वैष्णवानां वैष्णवत्वं आज्ञाचक्रे फलाफलम् ॥ ३७ ॥  
आज्ञाचक्रं महाचक्रं यो जानाति महीतले ।  
तस्यासाध्यं त्रिभुवने किञ्चिदपि न विद्यते ॥  
सदा शुचिर्ध्याननिष्ठो मुहुर्जाप्यपरायणः ॥ ३८ ॥  
स्मृतिवेदक्रियायुक्तो विधिश्रुतिमनुप्रियः ।  
ध्यात्वा यः कुरुते कर्म वैष्णवः परिकीर्तितः ॥ ३९ ॥  
समता शत्रुमितेषु कृष्णभक्तिपरायणः ।  
योगशिखापरो नित्यं वैष्णवः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥  
यजुर्वेदाख्यरसतो वेदाचारविचारवान् ।  
सदा साधुषु संसर्गो वैष्णवः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥  
विवेकधर्मविद्यार्थी कृष्णे चित्तं निधाय च ।  
शिववत् कुरुते कर्म वैष्णवः परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥  
याज्ञिको ब्राह्मणो धीरो मनःप्रेमाभिलाषवान् ।  
वनस्थो घोरविपिने नवीनतरुशोभिते ॥ ४३ ॥  
एकाकी कुरुते योगं जीवात्मपरमात्मनोः ।  
वायुग्नी रेचकः सूर्यः पूरकश्चन्द्रमास्तथा ॥ ४४ ॥  
ज्वलाच्छिखा सूर्यरूपा न च योजनमेष च ।  
पुनः पूरकयोगश्च चन्द्रस्य तेजसा हविः ॥ ४५ ॥  
ऊर्ध्वज्वलन्मूर्धा वायवीयस्थलेऽपि च ।  
योऽग्निशं कुरुते होमं मौनी याज्ञिक उच्यते ॥ ४६ ॥  
तीव्रसूच्याग्निकिरणे आत्मचन्द्राढ्यपूरके ।  
स्थाने यः कुरुते होमं याज्ञिकः परिकीर्तितः ॥ ४७ ॥

सुरा शक्तिः शिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवः स्वयम् ।  
शक्त्यग्नी जुहुयान्मांसं याज्ञिकः परिकीर्तितः ॥ ४८ ॥  
विधिवत् कुलकुण्डे च कुलवह्नी शिवात्मकः ।  
पूर्णहोमं यः करोति याज्ञिकः परिकीर्तितः ॥ ४९ ॥  
भूमण्डले धर्मशीलो निर्जने कामवेश्मनि ।  
दृढभक्त्या बीजसारं यो जपेत् स हि धार्मिकः ॥ ५० ॥  
रत्ने लोष्ट्रसमं ज्ञानं धर्माऽधर्मं जयेऽजये ।  
कृत्वा त्यागो भवेद् यस्तु ब्रह्मज्ञानी स धार्मिकः ॥ ५१ ॥  
नित्यमीश्वरचिन्तायां गुरोराज्ञाव्यवस्थितः ।  
सुशीलो दीनबन्धुश्च धार्मिकः परिकीर्तितः ॥ ५२ ॥  
कालज्ञो विधिवेत्ता च अष्टाङ्गयोगविग्रहः ।  
पर्वते कन्दरे मौनी भक्ता योगी प्रकीर्तितः ।  
ब्रह्मज्ञानी चावधूतो कृती सिद्धो वशी शुचिः ।  
वाञ्छाविहीनो धर्मात्मा स योगी परिकीर्तितः ॥ ५४ ॥  
वाग्वादिनीकृपापात्रं षडाधारस्य भेदकः ।  
ऊर्ध्वरेताः स्त्रीविहीनः स योगी परिकीर्तितः ॥ ५५ ॥  
यजुर्वेदपुरोगामी यजुःपत्रस्थवर्णधृक् ।  
वर्णमालाचित्तजापो भावुकः स हि योगिराट् ॥ ५६ ॥  
सासद्वादशकग्रस्तं राशिद्वादशकाऽन्वितम् ।  
तिथिवारञ्च नक्षत्र-युक्तामाज्ञास्त्रुजं भजेत् ॥ ५७ ॥  
दिक्कालदेशप्रश्नार्थं वायवीशक्तिनिर्णयम् ।  
बालवृद्धाऽस्तादिदण्ड-प्रलनिश्वाससंख्यया ॥  
व्याप्तमाज्ञाचक्रसारं भजेत् परमपावनम् ॥ ५८ ॥  
चक्रे सर्वत्र सुखदं सत्यं ज्ञानिनं च प्रभो ! ।  
खलानां विपरोतञ्च निन्दकानां पदे पदे ॥ ५९ ॥  
दुःखानि प्रभवन्तीह पापिनाञ्च फलाफलम् ।

पापी पञ्चत्वमाप्नोति ज्ञानी याति परम्पदम् ॥  
 यः श्वासकालवेत्ता च स ज्ञानी परिकीर्तितः ॥ ६० ॥  
 श्वासकालं न जानाति स पापी परिकीर्तितः ॥ ६१ ॥  
 यजुर्वेदं सत्त्वगुणं सत्त्वाधिष्ठाननिर्मलम् ।  
 गुरोराज्ञाक्रमेणैव अधस्तत्त्वेन कुण्डलीम् ॥ ६२ ॥  
 महाशक्तिं समाप्नोति ऊर्द्धाधःक्रमयोगतः ।  
 यजुर्वेदमहापात्र-सत्त्वाधिष्ठानसेवया ॥ ६३ ॥  
 खलाटानृतधाराभिश्चैतन्या कुण्डली भवेत् ।  
 विभाव्य द्विदलं चक्रं होमं कुर्यादहर्निशम् ॥ ६४ ॥  
 चतुर्दलस्थपूर्णेन्दु-सुधाधारापरानृतैः ।  
 शुद्धाज्यैर्जुहुयान्मन्त्री अधस्तुष्टेन कुण्डलीम् ॥ ६५ ॥  
 भजन्ति रुद्धेन्द्रियशुद्धयोगिनं प्रचण्डरश्मिप्रगताङ्गसुन्दराः ।  
 आज्ञाम्बुजं चक्रवरं चतुर्दलं यन्मध्यदेशे शतकोटितेजसम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावनिर्णये पाशवकल्पे

आज्ञाचक्रसारसङ्घटे सिद्धमन्त्रप्रकरणे वेदप्रकरणोद्घोषे

भैरव-भैरवोसंवादे पञ्चदशः पटलः ॥ १५ ॥

## अथ षोडशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

आज्ञाचक्रसाधना ।—

शृणुष्वानन्दरुद्र ! त्वं तृतीयदललक्षणम् ।  
 सामवेदमधश्चक्रं तमोगुणनिराकुलम् ॥ १ ॥  
 वर्षाजालादिनाऽऽक्रान्तं रुद्ररूपं महेश्वरम् ।  
 लयस्थानं कामरूपं परमानन्दमन्दिरम् ॥ २ ॥  
 वाङ्निवृत्तिसुखस्थानं विभाव्य योगिराड् भवेत् ।  
 तत् स्थाने योगिनां धर्मी गुरोराज्ञाफलप्रदम् ॥ ३ ॥

तत् पदाब्जं श्रीगुरूणां भ्रूमध्ये द्विदलाम्बुजे ।  
 मुहुर्मुहुः शनैर्वायं समीरास्यदभास्वरम् ॥ ४ ॥  
 विभाव्य मनसा वाचा कर्मणा सूक्ष्मवायुना ।  
 लीनं कृत्वा सदा ध्यायेत् सदा हर्षकलेवरः ॥ ५ ॥  
 सहस्रारे यथा ध्यानं तद्द्वयानं द्विदलाम्बुजे ।  
 गुरुमात्मानमीशानं देवदेवं सनातनम् ॥  
 अकस्मात् निद्विदातारं योगेच्छाङ्गफलप्रदम् ॥ ६ ॥  
 नित्यं शब्दमयं प्रमाविषयगं नित्योपमेयं गुरुं  
 चन्द्रोल्लासतनुप्रभं शतविधुल्लासस्य पङ्केरुहम् ।  
 सर्वप्राणगतं गतिस्थमचलं ज्ञानार्थनिर्हपनं  
 रुढानास्य गुणालयं लयमयं स्वात्मोपलब्धं भजे ॥ ७ ॥  
 यदि भजेज्जगतामशनेश्वरं स्मरहरं गुरुमीश्वरमात्मनाम् ।  
 परमसुन्दरचन्द्रसमाकुलं निरतिताद्यकुलाननसञ्चयम् ॥ ८ ॥  
 प्रणमतां समतां कुरुते गुरोर्यदि भवान् विफलं परिहन्ति मे ।  
 तव पदाम्बुजमङ्गतलीलया परिभजे भवसागरपारगम् ॥ ९ ॥  
 गुरुपदं सितपङ्कजराजितं कनकनूपुरसुन्दरखञ्जरम् ।  
 रचितचित्रचारुनखेन्दुकं भुवनभावनमाश्रये ॥ १० ॥  
 सकलसप्तफलपालनकोमलं विमलशोणितपङ्कजमण्डितम् ।  
 पदतलं खलु निग्रहपालनं खचितरत्नधराचलनं भजे ॥ ११ ॥  
 सुकनकाजडितामनपङ्कजे परिभवं भवसागरसम्भवम् ।  
 यदि कृपा भवेन्मयि पासरे वटतु मा तव पादतलं भजे ॥ १२ ॥  
 परमहंसमनुं हररूपिणं सकललोकवरं गुरुमीश्वरम् ।  
 सकलदीपितचन्द्रमसः करं वरगुरोर्मुखपङ्कजमाश्रये ॥ १३ ॥  
 गुरोराज्ञाचक्रं भुवनकरणं केवलमयं  
 सकारं नादेन्दुं कुमुदहृदयाङ्गे च विमलम् ।  
 लयापाङ्गे वायो नवमधुरसामोदमिलिते

दले वेदक्षेत्रे विधुविरहिते तत्र पदके ॥ १४ ॥  
 तमोगुणसमाक्रान्ते अधोमण्डलमण्डिते ।  
 द्विविन्दुनिलये स्थाने द्विदले श्रीगुरोः पदम् ॥  
 महावह्निशिखाकारं तन्मध्ये चिन्तयेत् सुधीः ॥ १५ ॥  
 एतद् योगप्रसादेन बीजभाग् भवकूटकैः  
 चिरजीवी भवेत् क्षुद्रो वागीशत्वमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥  
 श्रीगुरोश्चरणाश्वोज-निःसृतं यत् परामृतम् ।  
 तत्परामृतधाराभिः सन्तर्प्यं कुलनायिकाम् ॥ १७ ॥  
 पुनः पुनः समाकुञ्च्य प्रबुद्धान्तां स्मरेत् सदा ।  
 पाययित्वा पररसं धारयेन्मार्कतं सुधीः ॥ १८ ॥  
 तत् परामृतधाराभिः सन्तर्प्यं कुलनायिकाम् ।  
 ततः पुनः पुनः पाच्यं सर्वपुण्यफलं वरम् ॥ १९ ॥  
 धनरत्नमहालक्ष्मीं प्राप्नोति साधकोत्तमः ।  
 सर्वत्र जयमाप्नोति युद्धे क्रोधे महाभये ॥ २० ॥  
 महायुधि स्थिरो याति सुशीलो मोक्षमाप्नुयात् ।  
 इति ते कथितं नाथ ! ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम् ॥ २१ ॥  
 आज्ञाचक्रत्रिखण्डस्य दलस्य कामरूपतः ।  
 सत्फलं समवाप्नोति विचार्य्य भावयेद् यदि ॥ २२ ॥  
 आज्ञाचक्रे त्रिखण्डे च कामरूपं महेश्वरम् ।  
 चीनाचारसमाक्रान्तं श्मशानाधिपवेष्टितम् ॥ २३ ॥  
 पलानुपलविद्दण्ड-तिथ्यादिपदपञ्चकैः ।  
 मासवत्सरादियुगैर्महाकालैः समन्वितम् ॥ २४ ॥  
 उल्काकोटिस्रमं नेत्रं तीक्ष्णदंष्ट्रं सुरेश्वरम् ।  
 कोटिकोटिनेत्रजाल-शोभिताननपङ्कजम् ॥ २५ ॥  
 चिद्रूपं सदसम्भक्ति-रूपिणं बहुरुपिणम् ।  
 ध्यात्वा त्वत्सुखेनैव कालरुद्रं परेश्वरम् ॥ २६ ॥

नासिकोर्ध्वं भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रं महाप्रभो ! ।  
विभाव्य परमं स्थानं तत् क्षणात्तन्मयो भवेत् ॥ २७ ॥  
डाकिनीं भावयेन्मन्त्री रौरवादिविनाशिनीम् ।  
कोटिसौदाम(मि)नीभासाममृतानन्दविग्रहाम् ॥ २८ ॥  
अयुतेन्दुपूर्णशीभां हेमवाराणसीस्थिताम् ।  
नानाऽलङ्कारशोभाङ्गीं नवयौवनशालिनीम् ॥ २९ ॥  
पीनस्तनीं बल्लोन्मत्तां सर्वाधारस्वरूपिणीम् ।  
दोषप्रणवजापेन तोषयन्तीं त्रिविक्रमम् ॥ ३० ॥  
मौनां मनोमयीं देवीं सर्वविद्यास्वरूपिणीम् ।  
महाकालीं महानीलां पीतवर्णां शशिप्रभाम् ॥ ३१ ॥  
त्रिपुरासुन्दरीं वामां वामकामहरां शिवाम् ।  
ध्यायेदेकासने वामे परनाथस्य पावनीम् ॥ ३२ ॥  
सर्वाधारात्मिकां शक्तिं दुर्निवार्यां दुरत्ययाम् ।  
श्वासमार्गेण वसयेत् कुलमार्गेण पण्डितः ॥ ३३ ॥  
कुलाकुलविभागेन आत्मानं नीयते परा ।  
श्वासाभ्यासं विना नाथ ! अष्टाङ्गाभ्यसनेन च ॥ ३४ ॥  
विना दमेन धैर्येण कुलमार्गो न सिध्यति ।  
तथा पूरकयोगेन रेचको नापि तिष्ठति ॥ ३५ ॥  
विना कृम्भकसत्त्वेन यथैतौ नापि तिष्ठतः ।  
तथा योगं विना नाथ ! अष्टाङ्गाभ्यसनं विना ॥ ३६ ॥  
कुलमार्गो महातत्त्वो न सिध्यति कटाचन ।  
कुलमार्गं विना मोक्षं कः प्राप्नोति महीतले ? ॥ ३७ ॥  
कुलमार्गं न जानाति योगवाक्यागूमाकुलम् ।  
स कथं पूजयेद्देवीं तस्य योगः कथं प्रभो ! ॥ ३८ ॥  
अज्ञात्वा वीरनाथानामाचारं यः करोति हि ।  
तेषां वञ्चानले योग-शिखा भवति निष्फलम् ॥ ३९ ॥

प्राणायामं महाधर्मं वेदानामप्यगोचरम् ।  
 सर्वपुण्यस्य सारं हि पापराशितुलानलम् ॥ ४० ॥  
 महापातककोटीनां तत्कोटीनाञ्च दुष्कृतम् ।  
 पूर्वजन्मार्जितं पापं नानादुष्कर्मपातकम् ॥ ४१ ॥  
 नश्यत्येव महादेव ! धन्यस्याभ्यासयोगतः ।  
 सन्ध्याकाले प्रभाते च यः करोति दिवानिशम् ॥ ४२ ॥  
 वशी षोडशसंख्याभिः प्राणायामान् पुनः पुनः ।  
 संवत्सरं वशी ध्यात्वा खेचरो योगिराड् भवेत् ॥ ४३ ॥  
 योगी भूत्वा कौलमार्गं समाश्रित्यामरो भवेत् ।  
 महाविद्यापतिर्भूत्वा विचरेत् साधकोत्तमः ॥ ४४ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महामन्त्रीह्रीपने भावनिर्णये पाशवब्रह्मे  
 शाशास्त्रसंसारसङ्घटे सिद्धमन्त्रप्रकरणे वेदभाषापरिच्छेदे भैरवीः

भैरवसंवादे षोडशः पटलः ॥ १६ ॥

### अथ सप्तदशः पटलः ।

अथर्ववेदप्रशंसा ।—

अथ वक्ष्ये महादेव ! अथर्ववेदस्तत्क्षणम् ।  
 सर्ववर्णस्य सारं हि शक्त्याचारसमन्वितम् ॥ १ ॥  
 अथर्ववेदादुत्पन्नः सामवेदस्तमोगुणः ।  
 सामवेदाद् यजुर्वेदो महासत्त्वसमुद्भवः ॥ २ ॥  
 रजोगुणमयो ब्रह्मा ऋग्वेदो यजुषि स्थितः ।  
 मृणालसूत्रसदृशी अथर्ववेदरूपिणी ॥ ३ ॥  
 अथर्वे सर्वदेवाश्च जलखेचरभूचराः ।  
 निवसन्ति कामविद्या महाविद्या महर्षयः ॥ ४ ॥

समाप्तिपत्रं शेषार्थमसीमं लोकमण्डले ।  
शक्तिचक्रसमाक्रान्तं दिव्यभावात्मकं शुभम् ॥ ९ ॥  
तत्रैव वीरभावञ्च तत्रैव पशुभावकम् ।  
सर्वभावात् परं तत्त्वं अथर्ववेदपत्रकम् ॥ ६ ॥  
द्विबिन्दुनिलयस्थानं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम् ।  
चतुर्वेदान्वितं तत्त्वं शरीरं दृढनिर्मितम् ॥ ७ ॥  
चतुर्विंशतितत्त्वानि सन्ति पात्रे मनोहरे ।  
ब्रह्मा रजोगुणाऽऽक्रान्तः पूरकेणाभिरक्षति ॥ ८ ॥  
विष्णुः सत्त्वगुणाऽऽक्रान्तः कुम्भकेः स्थिरभावनैः ।  
हरस्तमोगुणाऽऽक्रान्तो रेचकेणापि विग्रहः ॥ ९ ॥  
अथर्ववेदचक्रस्था कुण्डली परदेवता ।  
एतन्मायां पृथिव्यां हि ब्रह्माविष्णुशिवाः कृताम् ॥ १० ॥  
शरीरे देवनिलये भक्तो ज्ञात्वा प्रमुच्यति ।  
सर्वदेवमयी देवी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी ॥ ११ ॥  
सर्वमन्त्रात्मिका विद्या वेदविद्याप्रकाशिनी ।  
चैतन्या सर्वधर्मज्ञा अधर्मस्थानवासिनी ॥ १२ ॥  
अचैतन्या ज्ञानरूपा हेमचम्पकमालिनी ।  
अकलङ्का निराधारा शुद्धज्ञानमनोभवा ॥ १३ ॥  
सर्वसङ्कटहन्त्री च सा शरीरं प्रपाति हि ।  
तस्याः कार्यमिदं विश्वं तस्याः पुण्यानि सन्ति च ॥ १४ ॥  
तस्याश्चैतन्यकरणे सर्वदाऽऽकुलचेतसः ।  
महात्मानः प्रसिद्ध्यन्ति यदि कुर्वन्ति चेतनाम् ॥ १५ ॥  
तस्या ह्यनुग्रहादेव किं न सिद्ध्यति भूतले ? ।  
धन्यस्याभ्यासयोगिन चैतन्या कुण्डली भवेत् ॥ १६ ॥  
सा देवी वायवो शक्तिः परमाकाशरूपिणी ।  
तत्रिणी देवमाता च बहिर्याति दिने दिने ॥ १७ ॥



द्वादशाङ्गुलमानेन आयुः क्षरति नित्यशः ।  
 द्वादशाङ्गुलवायुश्च क्षयं कुर्यात् दिने दिने ॥ १८ ॥  
 यावद् यावद्द्विर्याति कुण्डली परदेवता ।  
 तावत्तावत् खण्डलयं भवाब्धिपापमोक्षणम् ॥ १९ ॥  
 यदा यदा न क्षरति वायवी सूक्ष्मरूपिणी ।  
 ब्राह्मचन्द्रे महादेव ! आग्नेयी सूर्यमण्डले ॥ २० ॥  
 मूलाधारे कामरूपे ज्वलन्ती चण्डिका शिखा ।  
 यदा शिरोमण्डले च सङ्घस्रदलपङ्कजे ॥ २१ ॥  
 तेजोमयी सदा याति शिवं कामेश्वरं प्रभुम् ।  
 अच्युताख्यं महादेवं तदा ज्ञानी स योगिराट् ॥ २२ ॥  
 यदि क्षरति सा देवी ब्राह्मचन्द्रे मनोन्मये ।  
 तदा योगं समाकुर्याद् यावत् शीर्षेण गच्छति ॥ २३ ॥  
 यदि शीर्षे समागम्याऽमृतपानं करोति सा ।  
 वायवी सूक्ष्मदेहस्या सूक्ष्मालयप्रिया सती ॥ २४ ॥  
 तदैव परमा सिद्धिर्भक्तिमार्गं न संशयः ।  
 चतुर्वेदज्ञानसार अथर्वः परिकीर्तितः ॥ २५ ॥  
 अथर्ववेदविद्या च देवता वायवी मता ।  
 तस्याः सेवनमालेण रुद्ररूपो भवेन्नरः ।  
 केवलं कुम्भकस्थायया एका ब्रह्मप्रकाशिनी ॥ २६ ॥

शैरव उवाच ।—

केन वा वायवीशक्ति-कृपा भवति पार्वति ! ।  
 स्थिरचेता भवेत् केन ? विवेको वा कथं भवेत् ? ॥ २७ ॥  
 मन्त्रसिद्धिर्भवेत् केन ? कायसिद्धिः कथं भवेत् ? ।  
 विस्तार्य वद चामुण्डे ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ २८ ॥

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

शृणुस्वैकमना; शम्भो ! मम प्राणकुलेस्वर ! ।

एकवाक्येन सकलं कथयामि समासतः ॥ २८ ॥

प्राणायामप्रणाली ।—

श्रद्धया परया भक्त्या मनो नियमतत्परः ।

स प्राप्नोति परा शक्तिं वायवीं सूक्ष्मगामिनीम् ॥ ३० ॥

धीरः क्षान्तो मिताहारी शान्तियुक्तो यतिर्महान् ।

सत्यवादी ब्रह्मचारी दयाधर्मसुखोदयः ॥ ३१ ॥

मनसः संयमज्ञानी दिगम्बरकलेवरः ।

सर्वत्र समबुद्धिश्च परमाणुविचारवित् ॥ ३२ ॥

वरशय्या भूमितले वायवी परमाभृता ।

य एव पिबति क्षिप्रं तत्रैव वायवी कृपा ॥ ३३ ॥

गुरुसेवापरे धीरे शुद्धसत्त्वतनुप्रभे ।

भक्ते अष्टाङ्गनिरते वायवी सुकृपा भवेत् ॥ ३४ ॥

अतिथिं भोजयेद् यस्तु न भुङ्क्ते स्वयमेव च ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो प्राप्नोति वायवीं कृपाम् ॥ ३५ ॥

अन्तरात्मा महात्मा यः कुरुते वायुधारणम् ।

देवे गुरौ सत्यबुद्धिर्वायवी सुकृपा ततः ॥ ३६ ॥

एककालो वृथा याति नैव यस्य महेश्वर ! ।

वायव्यां चित्तमाधाय तत्रानिलकृपा भवेत् ॥ ३७ ॥

विचरन्ति महौमध्ये योगिश्चिन्तानिवन्धनम् ।

प्राणायामेच्छुको यो वा वायवी सुकृपा ततः ॥ ३८ ॥

प्रीतिवत्सरमानेन पीठे पीठे वसन्ति ये ।

वायवीं प्रजपन्तीह वायवी सुकृपा ततः ॥ ३९ ॥

अल्पाहारी नीरोगश्च विजयानन्दनन्दितः ।

वायवीभजनाद् योगी वायवी सुकृपा भवेत् ॥ ४० ॥

अन्तर्यामि पीठचक्रे चित्तमाधाय यन्नतः ।

ध्याननिष्ठो धारणास्थो वायवी सुकृपा ततः ॥ ४१ ॥

पशुभावसमाक्रान्तः सदा रेतोविवाजितः ।  
 शुचिर्मेथुनहीनश्च वायवी सुकृपा ततः ॥ ४२ ॥  
 अकालेऽपि सुकालेऽपि नित्यं धारणतत्परः ।  
 योगिनामपि सङ्गी यो वायवी सुकृपा ततः ॥ ४३ ॥  
 बन्धुवान्धवहीनश्च विवेकाऽऽक्रान्तमानसः ।  
 शोकाशोके समं भावं वायवी सुकृपा ततः ॥ ४४ ॥  
 सर्वदाऽऽनन्दहृदयः कालज्ञो योगसाधनः ।  
 भौतधारणजापश्च वायवी सुकृपा ततः ॥ ४५ ॥  
 निर्जनस्थाननिरतो निषेष्टो दीनवत्सलः ।  
 बहुजल्पनशून्यश्च स्थिरचेताः प्रकीर्तितः ॥ ४६ ॥  
 हास्यसन्तोषहिंसादि-रहितः पाठपारगः ।  
 योगशिक्षासमाख्यर्थं स्थिरचेताः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥  
 कामशास्त्रकलाज्ञान-रहितः स्थिरभावनः ।  
 अत्याहारी निर्बिकल्पो स्थिरचेताः प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥  
 कलौ श्रीकालिकापीठे कामरूपे सुमन्त्रवित् ।  
 पीत्वा वायुं जपेद् यस्तु स्थिरचेताः प्रकीर्तितः ॥ ५९ ॥  
 सत्कुलागमभावज्ञो महाविद्यादिमन्त्रवित् ।  
 शुद्धभक्तियुतः शान्तः स्थिरचेताः प्रकीर्तितः ॥ ५० ॥  
 मूलाधारे कामरूपे हृदि जालन्धरे तथा ।  
 ललाटे पूर्णगिर्याख्यो उड्डीयाने तु वृद्धकः ॥ ५१ ॥  
 वाराणस्यां भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्त्यां लोचनत्रये ।  
 मायाख्ये सुखवृत्ते चान्यषड्दृष्टपुरे तथा ॥ ५२ ॥  
 अयोध्यायां नाभिदेशे कक्ष्यां काञ्चरां महेश्वर ! ।  
 पीठेषु तेषु भूलोके चित्तमाधाय यत्नतः ॥ ५३ ॥  
 उदरे पूरयेदायुं सूक्ष्मसङ्केतभाषया ।  
 प्रादगुरुफे च जङ्घायां ज्ञानुयुग्मे च मूलके ॥ ५४ ॥

चतुर्दले षड्दले च तथा दशदले शुभे ।  
 दले द्वादशके ह्यङ्के सिद्धिसिद्धान्तमङ्गले ॥ ५५ ॥  
 कण्ठे षोडशपत्रे च द्विदले पूर्णतेजसि ।  
 कैलासाख्ये ब्रह्मरन्ध्र-पटे निर्मकतेजसि ॥ ५६ ॥  
 सहस्रारि महापद्मे कोटिकोटिविधुप्रभे ।  
 चालयित्वा महावायुं कुम्भयित्वा पुनः पुनः ॥ ५७ ॥  
 पूरयित्वा रेचयित्वा लोकमुख-दिनिर्गतः ।  
 त्रीणि कोट्यर्द्धकोटीनि यानि लोमानि मानुषे ॥ ५८ ॥  
 नाडीमुखानि सर्वाणि घर्मविन्दुश्च तत्र हि ।  
 यावत्तद्विन्दुपातञ्च तावत्कालं लयं स्मृतम् ॥ ५९ ॥  
 तावत्कालं प्राणयोगात् प्रखेटाऽधमसिद्धिदम् ।  
 सूक्ष्मवायुसेवया च किञ्च सिध्यति भूतले ? ॥ ६० ॥  
 लोम्कूपे मनो दद्यात् लयस्थाने मनोरमे ।  
 स्थिरचेता भवेत् शीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ ६१ ॥  
 वायुसेवां विना नाथ ! कथं सिद्धिर्भवेद्भवे ? ।  
 स्थिरचित्तं विना नाथ ! मध्यमापि न जायते ॥ ६२ ॥  
 स्थाने स्थाने मनो दत्त्वा वायुना कुम्भकेन च ।  
 धारयेन्मारुतं मन्त्रौ कालज्ञानी दिवानिशम् ॥ ६३ ॥  
 एकान्तनिर्जने स्थित्वा स्थिरचेता भवेद् ध्रुवम् ।  
 स्थिरचित्तं विना शम्भो ! सिद्धिः स्यादुत्तमा कथम् ? ॥ ६४ ॥  
 निवार्य पीञ्चत्रिकसंज्ञकाले यत्नेन धैर्यात् यतिरीश्वरत्वम् ।  
 प्राप्नोति मासत्रयसाधनेन विषासवं भोक्तुमना समर्थः ॥ ६५ ॥  
 मासत्रयाभ्याससुसञ्चयेन स्थिरेन्द्रिय- स्यादधमपटिसिद्धिः ।  
 सा खेचरीसिद्धिरथ प्रबुद्धा चतुष्टये मासि भवेद्दि कल्पनम् ॥ ६६ ॥  
 तदाधिकारी पवनाशनोऽसौ स्थिरासनानन्दसुचेतसामसौ ।  
 प्रकल्पने सिद्धियथार्थगामिनीमुपैति शीघ्रं वरवीरभावम् ॥ ६७ ॥

सा वायवीशक्तिरनन्तरूपिणी लोमावलीनां कुहरे महासुखम् ।  
ददाति सौख्यं गतिचञ्चलं जयं स्थिराशयत्वं मतिशास्त्रकोविदाम् ॥ ६८ ॥  
षण्मासयोगासननिष्ठदेहा वायुश्चमानन्दरसाप्तविग्रहः ।

विहाय कल्पान्वितयोगभावं मृत्युगमाकालमसौ समर्थः ॥ ६९ ॥

स्थिरचेता महासिद्धिं प्राप्नोति नात्र संशयः ।

संवत्सरकृताभ्यासे महाखेचरतां व्रजेत् ॥ ७० ॥

यावन्नर्गच्छति प्रीता वायवौ शाक्तरुत्तमा ।

नासाग्रमवधायैव स्थिरचेता महामति' ॥ ७१ ॥

चण्डवेशा यदा क्षिप्रमन्तरालं न गच्छति ।

सर्वत्रगामिनो भावान् तावत्कालं विचक्षणः ॥ ७२ ॥

यदि शीर्षादूर्ध्वदेशे हाटशाङ्गुलकोपरि ।

गन्तुं समर्थो भगवान् शिवतुल्यो गणेश्वरः ॥ ७३ ॥

सर्वत्रगामी प्रभवेत् खेचरो योगिराड् बली ।

इति सिद्धिर्वत्सरे स्यात् स्थिरचिन्तेन शङ्कर ! ॥ ७४ ॥

योगी भूत्वा मनः स्थैर्यं न करोति यदा भुवि ।

कृच्छ्रेण पदमारुह्य प्रपतेन्नारकी यथा ॥ ७५ ॥

अतएव महाकाल ! स्थिरचेता भव प्रभो ! ।

तदानीं प्राप्स्यसि क्षिप्रं वायवीमष्टसिद्धिदाम् ॥ ७६ ॥

यदि सिद्धो भवेद्भूमौ वायवीसुकृपादिभिः ।

तदा शिव ! स्थिरो भूत्वा गोपयेन्मातृजारवत् ॥ ७७ ॥

यदा यदा महादेव ! योगाभ्यासं करोति यः ।

शिष्येभ्योऽपि सुतेभ्योऽपि दत्त्वा कार्यं करोति यः ॥ ७८ ॥

तदैव स ब्रह्मासिद्धिं प्राप्नोति नात्र संशयः ।

संवत्सरं चरेद्धर्मं योगमार्गं हि दुर्गमम् ॥ ७९ ॥

प्रकाशयेन्न कदापि कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।

योगयोगाङ्गवेत्तोऽसौ मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ॥ ८० ॥

न प्रकाश्यमनो योगं भुक्तिभुक्तिफलाय च ।  
 नित्यं सुखं महाधर्मं प्राप्नोति वत्सराट् वह्निः ॥ ८१ ॥  
 आत्मसुखं नित्यसुखं मन्त्रं यन्त्र तथागमम् ।  
 प्रकाशयेन्न कदाऽपि कुलमार्गं कुलेश्वर ! ॥ ८२ ॥  
 यद्येवं कुरुतेऽधर्मं तदा मरणमाप्नुयात् ।  
 योगभ्रष्टो विधानज्ञो जडो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥  
 येन मृत्युवशी याति तत्कार्यं नापि दर्शयेत् ॥ ८४ ॥  
 दत्तात्रेयो यथा योगी शुक्रो नारद एव च ।  
 कृतं येन सिद्धमन्त्रं वर्णं जालं कुलार्णवम् ॥  
 एतेन लोकनाथेन योगमार्गपरिण च ॥ ८५ ॥  
 तथा मङ्गलकार्येण ध्यानेन साधकोत्तमः ।  
 उत्तमां सिद्धिमाप्नोति वत्सराट् योगशासनात् ॥ ८६ ॥  
 आदौ वै ब्रह्मणो ध्यानं पूरकाऽष्टाङ्गलक्षणैः ।  
 कुर्यात् सकलसिद्धयर्थमम्बिकापूजनेन च ॥ ८७ ॥  
 ऋग्वेदं चेतसि ध्यात्वा मूलाधारे चतुर्दले ।  
 वायुना चन्द्ररूपेण धारयेन्मार्कतं सुधीः ॥ ८८ ॥  
 अथर्वान्निर्गतं सर्वं ऋग्वेदादिचराचरम् ।  
 तेन पूर्णचन्द्रमसा जीविनाद्यामृतेन च ॥  
 जुहुयादेकभावेन कुण्डलो सूर्यगामिने ॥ ८९ ॥  
 कुम्भकं कारयेन्मन्त्री यजुर्वेदपुरःसरम् ।  
 सर्वसत्त्वाधिष्ठितं तत् सर्वविज्ञानमुत्तमम् ॥ ९० ॥  
 वायव्याः पूर्णसंस्थानं योगिनामभिधायकम् ॥ ९१ ॥  
 पुनः पुनः कुम्भयित्वा सत्त्वनिर्मलनेत्रिणि ।  
 महाप्रलयसारज्ञो भवतीति न संशयः ॥ ९२ ॥  
 रिचकं शम्भुना व्याप्तं तमोगुणमनोलयम् ।  
 सर्वमृत्यु कुलज्ञानं व्यासधर्मफलफलैः ॥ ९३ ॥

पुनः पुनः क्षीभनिष्ठो रैचकेन प्रवर्तते ।  
 रैचकेन लयं याति रैचनेन परं पदम् ॥ ९४ ॥  
 प्राप्नोति साधकश्रेष्ठो रैचकेनापि सिद्धिभाक् ।  
 रैचकं वङ्गिरूपञ्च कोटिवङ्गशिखोज्ज्वलम् ॥ ९५ ॥  
 द्वादशाङ्गुलमध्यस्थं ध्यात्वा राज्ये लयं दिशेत् ।  
 चन्द्रव्याप्तं सर्वलोकं सर्वपुण्यममुद्भवम् ॥ ९६ ॥  
 रैचकाग्निस्तिष्ठतीह वायुसख्यो महाबली ।  
 तत् शशाङ्कजीवरूपं पीत्वा जीवति वायवी ॥ ९७ ॥  
 आग्नेयीं दहते क्षिप्रं एष होमः परो मतः ।  
 एतत् कार्यं यः करोति सं न मृत्युवशो भवेत् ॥ ९८ ॥  
 एतयोः सन्धिकालञ्च कुम्भकं सत्त्वमाधनम् ।  
 तदेव भावकालञ्च परमस्थानमेव च ॥ ९९ ॥  
 महाकुम्भकलाकृत्ये स्थिरं स्थित्वा च कुम्भके ।  
 अथर्वगामिनीं देवीं भावयेदमरो महान् ॥ १०० ॥  
 अनन्तभावनं शम्भोरशेषसृष्टिशोभितम् ।  
 अथर्वं भावयेन्मन्त्री शक्तिचक्रक्रमेण तु ॥ १०१ ॥  
 आज्ञाचक्रे वेददले चतुर्दलसुमन्दिरे ।  
 अथर्वयोगिनीं ध्यायेत् समाधिस्थेन चेतसा ॥ १०२ ॥  
 तत्राच्युताख्यं जगताभीश्वरं शीर्षपङ्कजे ।  
 प्रपश्यन्ति जगन्नाथं नित्यमुख्यसुखोदयम् ॥ १०३ ॥  
 आज्ञाचक्रे शोधनं हि चाथर्वपरिकीर्तितम् ।  
 ज्योतिश्चक्रञ्च तन्मध्ये योगमार्गोल्लसद्विलम् ॥ १०४ ॥  
 प्रपश्यति महाज्ञानो सूक्ष्मदृश्या यथाब्जम् ।  
 कालेन सिद्धिमाप्नोति ब्रह्मज्ञानो च साधकः ॥ १०५ ॥  
 ततो भजेत् कौलमार्गं ततो विद्यां प्रपश्यति ।  
 महाविद्यां कोटिसूर्य-ज्वालामालासमाकुलाम् ॥ १०६ ॥

एतत्त्वं विना नाथ ! न पश्यति कदाचन ॥ १०७ ॥

वशिष्ठस्य तपस्याप्रसङ्गः ।—

वशिष्ठो ब्रह्मपुत्रोऽपि चिरकालं सुसाधनम् ।

चकार निर्जने देशे कच्छेण तपसा वशी ॥ १०८ ॥

वत्सरं शतसहस्रं व्याप्य योगादिसाधनम् ।

तथाऽपि साक्षाद्द्विज्ञानं न बभूव महीतले ॥ १०९ ॥

ततो जगाम क्रुद्धोऽसौ तातस्य निकटे प्रभुः ।

सर्वं तत् कथयामास स्त्रीयाचारक्रमं प्रभो ! ॥

अन्यमन्त्रं देहि नाथ ! एषा विद्या न सिद्धिदा ॥ ११० ॥

अन्यथा सुदृढं श्रापं तवाग्रे प्रददामि हि ।

ततस्तां वारयामास एवं न कुरु भो सुत ! ॥ १११ ॥

पुनस्तां भज भावेन योगमार्गेण पण्डित ।

ततः सा वरदा भूत्वा ह्यागमिष्यति तेऽग्रतः ॥ ११२ ॥

सा देवी परमा शक्तिः सर्वसङ्कटतारिणी ।

कोटिसूर्यप्रभा नीला चन्द्रकोटिसुशीतला ॥ ११३ ॥

शिवविद्युत्क्षताकोटि-सदृशी कालकामिनौ ।

सा पाति जगतां लोकान् तस्याः कर्म चराचरम् ॥ ११४ ॥

भज पुत्र ! स्थिरोऽनन्तां कथं सुप्तः सुशिक्षितः ? ।

एकान्तचेतसा नित्यं भज पुत्र ! दयानिधे ! ॥

तुस्या दर्शनमेवं हि अवश्यं समवाप्स्यसि ॥ ११५ ॥

एतत् श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रणम्य च पुनः पुनः ।

जगाम च तपः कर्तुं ततो वेदान्तवित् शुचिः ॥

सहस्रवत्सरं सम्यक् जजाप परमं जपम् ॥ ११६ ॥

देवी तुष्टा(श्रीदेशेऽपि) न बभूव ततः क्रोधपरो मुनिः ।

व्याकुलात्मा महाविद्यां वशिष्ठः शम्भुमुद्यतः ॥ ११७ ॥

भयङ्करं महाश्रापं प्रदातुञ्च सुदारुणम् ।



क्रुद्धस्य च वशिष्ठस्य मुनेरग्रे कुलेश्वरी ॥ ११८ ॥  
 आजगाम महाविद्या योगिनामभयप्रदा ।  
 अकारणमरे विप्र ! शपो दत्तः सुदारुणः ॥ ११९ ॥  
 मम सेवां न जानासि मत्कुलागमचिन्तनम् ।  
 कथं योगाभ्यासवशात् मत्पादाश्वोजदर्शनम् ? ॥ १२० ॥  
 प्राप्नोषि मानुषो भूत्वा मम ध्यानं हि दुःखदम् ।  
 यः कुलार्थी सिद्धमन्त्री भवेदाचारनिर्मलः ॥  
 प्राप्नोति साधनं पुण्यं वेदानामप्यगोचरम् ॥ १२१ ॥  
 बौद्धदेशेऽथत्वेदे महाचीने सदा व्रज ॥ १२२ ॥  
 तत्र गत्वा महाभावं विलोक्य मत्पदाम्बुजम् ।  
 मत्कुलज्ञो महर्षे ! त्वं महासिद्धो भविष्यसि ॥ १२३ ॥  
 एतद्वाक्यं कथित्वा सा वायव्याकाशवाहिनी ।  
 निराकाराभवत् शीघ्रं स्वतः साकाशवाहिनी ॥ १२४ ॥

वशिष्ठस्य महाचीने गमनम् ।—

ततो मुनिवरः श्रुत्वा महाविद्यासरस्वतीम् ।  
 जगाम चीनभूमौ च यत्र बुद्धः प्रतिष्ठति ॥ १२५ ॥  
 पुनः पुनः प्रणम्यासी वशिष्ठः क्षितिमण्डले ।  
 रक्ष रक्ष महादेव ! बुद्धरूपधराव्यय ! ॥ १२६ ॥  
 अतिदौर्नं वशिष्ठं मां सदा व्याकुलचेतसम् ।  
 ब्रह्मपुत्रं महादेवी-साधनायागतं हृत्तु ॥ १२७ ॥  
 सिद्धिमार्गं न जानामि वेदमार्गपरो ह्यहम् ।  
 तत्राचारं समालोक्य प्रश्ना हि सन्ति मे हृदि ॥ १२८ ॥  
 तन्नाशय मम क्षिप्रं दुर्बुद्धिं वेदगामिनीम् ।  
 वेदवहिष्कृतं कर्म सदा ते चालये प्रभो ! ॥ १२९ ॥  
 कथमेतत् प्रकारश्च ? मद्यं मांसं तथाऽङ्गनाम् ।  
 सर्वे दिग्म्बराः सिद्धा रक्षपानीयता वराः ॥ १३० ॥

सुहृर्मुहुः प्रपिबन्ति रमयन्ति वराङ्गनाम् ।  
सदा मांसासवैः पूर्णा मत्ता रक्तविलाचनाः ॥ १३१ ॥  
निग्रहानुग्रहे शक्ताः पूर्णान्तःकरणोद्यताः ।  
शेटव्यागोचराः सर्वे मद्यस्त्रीसिवने रताः ॥ १३२ ॥  
इत्युवाच महायोगी दृष्ट्वा वेदबहिष्कृतम् ।  
प्राञ्जलिविनयाविष्टो वद चैतत् कुलं प्रभो ! ॥ १३३ ॥  
मनःप्रवृत्तिरेतेषां कथं भवति पावन ! ।  
कथं वा जायते सिद्धिर्वेदकार्यं विना प्रभो ! ॥ १३४ ॥  
महाचीनाचारः ।—

बुद्ध उवाच ।—

वशिष्ठ ! शृणु वक्ष्यामि कुलमार्गमनुत्तमम् ।  
येन विज्ञानमात्रेण रुद्ररूपी भवेत् क्षणात् ॥ १३५ ॥  
संचेपेण सर्वसारं कुलसिद्धार्थमागमम् ।  
आदौ शुचिर्भवेद्दौरो विवेकाऽऽक्रान्तमानसः ॥ १३६ ॥  
पशुभावस्थिरचेताः पशुसङ्गविवर्जितः ।  
एकाकी निर्जने स्थित्वा कामक्रोधादिवर्जितः ॥ १३७ ॥  
दमयोगाऽभ्यासरतो योगेश्चो दृढव्रतः ।  
वेदमार्गाऽऽश्रयो नित्यं वेदार्थनिपुणो महान् ॥ १३८ ॥  
एवं क्रमेण धर्मात्मा शीलौदार्यगुणान्वितः ।  
धारयेन्मारुतं नित्यं श्वासमार्गं मनोलयम् ॥ १३९ ॥  
एवमभ्यासयोगेन वशी योगो दिने दिने ।  
शनैः शनैः क्रमाभ्यासाद्देहे स्वेदोद्भवोऽधमः ॥ १४० ॥  
मध्यमः कल्पसंयुक्तो भूमित्यागः पर्यु मतः ।  
प्राणायामेन सिद्धिः स्यान्नरो योगेश्वरो भवेत् ॥ १४१ ॥  
योगी भूत्वा कुम्भकज्ञो मौनी भक्तो दिवानिशम् ।  
शिवे कृष्णे ब्रह्मपदे एकान्तभक्तिसंयुतः ॥ १४२ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवा एते वायुगतिचञ्चलाः ।  
 एवं विभाव्य मनसा कर्मणा वचसा शुचिः ॥ १४३ ॥  
 शक्तौ चित्तं समाधाय चिद्रूपायां स्थिराग्रयः ।  
 ततो महावीरभावं कृतमार्गमहोदयम् ॥ १४४ ॥  
 शक्तिचक्रं सत्त्वचक्रं वैष्णवं नवविग्रहम् ।  
 समाश्रित्य भजेन्मन्त्री कुलकात्यायनीं पराम् ॥ १४५ ॥  
 प्रत्यक्षदेवतां श्रौदां चण्डीहेगनिक्कन्तनीम् ।  
 चिद्रूपां ज्ञाननिलयां चैतन्यानन्दविग्रहाम् ॥ १४६ ॥  
 कोटिसौदाम(मि)नीभासा सर्वतत्त्वस्वरूपिणोम् ।  
 अष्टादशभुजां रौद्रीं शिववासाऽचलप्रियाम् ॥ १४७ ॥  
 आश्रित्य प्रजपेन्मन्त्रं कुलमार्गाश्रयी नरः ।  
 कुलमार्गात् परं मार्गं को जानाति जगत्त्रये ? ॥ १४८ ॥  
 एतन्मार्गप्रसादेन ब्रह्मा स्रष्टा स्वयं महान् ।  
 विष्णुश्च पालने शक्तौ निर्मलः सत्त्वरूपधृक् ॥ १४९ ॥  
 सर्वसेव्यो महापूज्यो यजुर्वेदाधिपो महान् ।  
 हरः संहारकर्ता च विवेशो मन्तमानसः ॥ १५० ॥  
 सर्वः समान्तकः क्रोधी क्रोधराजो महाबलौ ।  
 वीरभावप्रसादेन दिक्पाला रुद्ररूपिणः ॥ १५१ ॥  
 वीराधीनमिदं विश्वं कुलाधीनञ्च वीरकम् ।  
 अतः कुलं समाश्रित्य सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥ १५२ ॥  
 मासेनाकर्षणं सिद्धिर्द्दिमासे वाक्पतिर्भवेत् ।  
 मासत्रयेण संयोगाज्जायते सुरवल्गवः ॥ १५३ ॥  
 एवं चतुष्टये मासि भवेद्दिक्पालगोचरः ।  
 पञ्चमे पञ्चवाणः स्यात् षष्ठे रुद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ १५४ ॥  
 एतदाचारसारं हि सर्वेषामप्यगोचरम् ।  
 एतन्मार्गं कौलमार्गं कौलमार्गात् परं न हि ॥ १५५ ॥

योगिनां दृढचित्तानां भक्तानामेकमासतः ।  
कार्यसिद्धिर्भवेन्नारो-कुलमार्गप्रसादतः ॥ १५६ ॥  
पूर्णयोगी भवेद्विप्रः सत्र्यासाऽभ्यासयोगतः ।  
शक्तिं विना शिवोऽशक्तः किमन्ये जडबुद्धयः ॥ १५७ ॥  
इत्युक्त्वा बुद्धरूपी च कारयामास साधनम् ।  
कुरु विप्र ! महाशक्ति-सेवनं मद्यसाधनम् ॥ १५८ ॥  
महाविद्यापदाभोज-दर्शनं समवाप्स्यसि ।  
एतत् श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं स्मृत्वा देवीं सरस्वतीम् ॥ १५९ ॥  
मदिरासाधनं कर्तुं जगाम कुलमण्डले ।  
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं सुद्रामैष्टुनमेव च ॥ १६० ॥  
पुनः पुनः साधयित्वा पूर्णयोगो बभूव सः ।  
योगमार्गं कौलमार्गमेकाचारक्रमं तथा ॥ १६१ ॥  
योगी भूत्वा कुलं ध्यात्वा सर्वसिद्धीश्वरोऽभवत् ।  
सन्धिकालं कुलपथे योगिन जाडितं सदा ॥ १६२ ॥  
भगसंयोगमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।  
एतद् योग विजानीयाज्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ १६३ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायां उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावप्रशार्यनिर्णये पाशवकल्पे  
आज्ञाचक्रसारनिर्णये सिद्धसन्तप्रकरणे प्रतुर्वेदोक्तासे भैरवीभैरवसंवादे

अष्टादशः पटलः ॥ १७ ॥

## अथ अष्टादशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कामचक्ररचना ।—

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि असाध्यसाधनं परम् ।

कामचक्रस्य वर्णना त्र्यर्थात् पूर्णानुष्ठयम् ॥ १ ॥

आञ्जाचक्रमध्यभागे नाडोकोटिरसान्विता ।  
 तन्मध्ये भावयेन्मन्त्रो कामचक्रं मनोरमम् ॥ २ ॥  
 कामचक्रे च पूर्वोक्त-वर्णमालोक्य साधकः ।  
 न्यासमन्त्रे पुटौक्त्य जपित्वा योगिराड् भवेत् ॥ ३ ॥  
 एकमन्दिरमध्यस्थो मन्त्रमाश्रित्य यत्नतः ।  
 निजनामाक्षरं तत्र तत्कोष्ठमनुमाश्रयेत् ॥ ४ ॥  
 एतेषां कोष्ठसंस्थानां वर्गाणां हि फलाफलम् ।  
 वद कान्ते ! रहस्यं मे कामचक्रफलोद्भवम् ॥ ५ ॥  
 कामचक्रं कालरूपं ततो वाराणसीपुरम् ।  
 तत्र सर्वपीठचक्रं चक्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ ६ ॥  
 एतच्चक्रप्रसादेन ते पादःस्त्रुजदर्शनम् ।  
 प्राप्नोति साधकान् सत्यं सर्वं जानाति साधकः ॥ ७ ॥  
 कामनाफलसिद्धयर्थं मन्त्रार्थादिविचारणाम् ।  
 बुद्धिमांस्तद्गतां कृत्वा गृह्णीयान्मन्त्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥  
 शृणु वर्णफलं नाथ ! असाध्यप्रश्ननिर्णयम् ।  
 वर्गाणाञ्च नाथ ! राशि-भेदेन संशृणु प्रभो ! ॥ ९ ॥  
 बाल्यादिषु स्थितान् वर्गान् आश्रयेत् साधकोत्तमः ।  
 वर्जयेद्गुरुभावञ्च तथाऽस्तमितमेव च ॥ १० ॥  
 आश्रयेत् राशिभेदेन बाल्यकैशोरयौवनम् ।  
 अथवाऽन्यं वर्गभेदं विचारे वामयोगतः ॥ ११ ॥  
 मन्त्राणाञ्चापि गणयेत् प्रश्नकर्मणि दक्षिणात् ।  
 मध्यकोणावधि नाथ ! गणनीयं विचक्षणैः ॥ १२ ॥  
 ऊर्ध्वदक्षिणयोगिन गणयेत् प्रश्नकर्मणि ।  
 वामयोगिन गणयेत् मन्त्रार्दोना विचारणे ॥ १३ ॥  
 शृणु तद्गर्गवर्गाणां फलमत्यन्तसुन्दरम् ।  
 वदासि परमानन्द-रसविन्धुमधुव्रत ! ॥ १४ ॥

कवर्गं कामाख्याभवनमणिपीठे त्रिजगतां  
 धरित्री सा धरौ वसति सततं सिद्धश्रवके ।  
 हुताशेषाकाशे जलदतनुराकाशजननी  
 गभीरा सङ्गाभा करहरकरा घोरमुखरा ॥ १५ ॥  
 अभ्यासयोगात् कलिकालपावनीं कुलानन्दरूपां रमेशीं महेशीम् ।  
 महारसोक्ताससुक्कलोचनां कामेश्वरीं कूर्मपदां भजेज्जयो ॥ १६ ॥  
 कालागुरोक्तमसिद्धसेविता मनोहरा खेचरसारशाखिनी ।  
 उक्ता सप्तधा भवदीपवृत्तिस्तेजश्छटाकोमललीनदेहा ॥ १७ ॥  
 खड्गामुधाखर्परधारिणी सा चण्डोद्गमा वायुपथस्थखेचरी ।  
 विद्याभयाखञ्जनलोचनामतिः क्षितिक्षये खेचरवर्गधारिणी ॥ १८ ॥  
 खारीविहारीखलखेलनेन खेरीखरोन्मत्तगतिप्रिया खमा ।  
 रूपोदपादा खलसंस्थिता सदा प्रपाति विद्याबलविक्रमस्थिता ॥ १९ ॥

\* \* \*

व्यापारनिद्रागहनार्थचिन्ता खरप्रभाखरभौर्यंटा यदा ॥ २० ॥  
 गायत्री गणनायिका मतिगतिग्लानिघ्नभूताश्रया  
 गीता गोकुलकामिनी गुरुतरा गार्हाग्निजेया यदा ।  
 गोरूपा गयुता गया गुणवती गाथापथस्थायिनौ  
 कुर्वन्तौ प्रतिपालनं त्रिजगतां गायत्रिकां तां भजे ॥ २१ ॥  
 वायोर्धर्मकरानन्द-मोहिनी घर्घरा घना ।  
 निद्रया घ्राणघटना नीलग्रोटकवाहिनी ॥ २२ ॥

\* \* \*

बिन्दुस्था विषभोजनानलकथा बीजभ्रमादप्रिया  
 पञ्चाख्या अनुनासिका सुखमयी देवप्रिया, षण्मुखी ॥ २३ ॥

\* \* \*

कृत्वा विचित्रवसनाचरणोज्ज्वलं  
 विधाय च स्थास्यसि देहि चञ्चले ! ॥ २४ ॥

इति वर्णं चवर्गस्य महापातकनाशनम् ।  
 कामचक्रे स्थितं यद् तत् प्रश्ने मन्त्रगृहे तथा ॥ २५ ॥  
 चवर्गफलमत्यन्त-निष्कर्षं सूक्ष्मभावनम् ।  
 धिया सर्वाक्षरश्रेणीं भावयन्ति पुनः पुनः ॥ २६ ॥  
 सर्वं जनासि शम्भो ! त्वं परं किं कथयामि ते ? ।  
 तथाऽपि वर्गमाह्वयं कामचक्रस्थनिर्मलम् ॥ २७ ॥  
 यो जानाति कामचक्रं यमो न हन्ति तं जनम् ।  
 तत् प्रकारं भावयुक्तं भावनाज्ञाननिर्मलम् ॥ २८ ॥  
 यज्ज्ञात्वा कामरूपस्था मूलाधारनिवासिनः ।  
 देवताः पार्थिवाः सर्वे योगिनः परमेष्ठिनः ॥ २९ ॥  
 न जानन्ति बालका ये तेषां योगादिसिद्धये ।  
 कामचक्रं कामरूपं कामनाफलसिद्धिदम् ॥ ३० ॥  
 तन्मन्त्रग्रहणादेव साक्षादीशा भवेन्नरः ।  
 श्रुतिशास्त्राणि सर्वाणि करे तस्य न संशयः ॥ ३१ ॥  
 योगशिक्षादिकं सर्वं जानाति कामचक्रतः ।  
 कामचक्रप्रसादेन कामरूपी भवेद् ध्रुवम् ॥ ३२ ॥  
 तद्वर्णस्थं तदन्तःस्थं दशकोणस्थमेव च ।  
 अष्टदलस्थं तत्रापि विचार्य साधकोत्तमः ॥ ३३ ॥  
 अनुलोमविलोमेन शास्त्रस्यानुक्रमेण च ।  
 ब्राह्म्यं केशोरमुक्त्वासं वृद्धिः सिद्धिश्च यौवने ॥ ३४ ॥  
 वृद्धो वृद्धत्वमाप्नोति अस्ते च निधनं भवेत् ।  
 नवग्रहास्तत्र मध्ये पञ्चप्राणाश्च सन्ति वै ॥ ३५ ॥  
 अनुलोमाविलोमेन गणयेद्दशकोणके ।  
 दशकोणे सर्वसिद्धिरष्टसिद्धिश्च तन्त्रके ॥ ३६ ॥  
 अष्टपत्रे प्रशंसन्ति अधोऽनन्तमधो गृहे ।  
 ज्ञात्वाऽपि शब्दगृहे च मन्त्रवर्णांश्च तान् शृणु ॥ ३७ ॥

समाश्रित्य जपेद्वियां सूरयः क्रमरूपिणीम् ।

ऋस्रदेवीं ऋस्रबुद्धिं ददाति साधकाय च ॥ ३८ ॥

यदि क्रोधतरा विद्या भक्षयेत् साधकं लघु ।

अतः समवयोरूपा देवता ह्यष्टसिद्धिदा ॥ ३९ ॥

देवो भूत्वा भजेद्देवं तदा मोक्षं समाप्नुयात् ।

यदि वर्षं न जानाति कौलपुत्रोऽप्यधो व्रजेत् ॥ ४० ॥

ङ्गाकिनी तं भक्षयन्ति दीक्षां न्वार्षहीनकम् ।

ततो वर्षविचारञ्च प्रवक्ष्यामि समासतः ॥ ४१ ॥

चापान् धृत्वा नरेन्द्रस्तमपि च मनुजं पालयन्तीह लोके  
सर्वं चिन्ताविघातं प्रचुरभवभयं भास्करो हन्ति शोकान् ।

चातुर्थ्या चक्रपाणेः पदमपि पठनं सन्ददाति द्रुमादे-  
र्योगोद्दयोगी गुरुगतमनसा साधको यस्तु योगम् ॥ ४२ ॥

कृत्राशाक्रमले स्थिता स्थितिलये वाञ्छाफलश्रीधरा

क्षायामण्डपमध्यगस्थलगता कृत्राटवी तेजसा ।

त्रैलोक्यं परिपातु पाशुपतिभिः क्षेत्राधिपैः श्रीधरैः

प्राणप्रेमेविहारिणी भगवती कृत्रेण तं साधकम् ॥ ४३ ॥

जातिख्यातिरनुत्तमां प्रभवती प्रीता यमाख्या मता

जीवानामतिदुःखराशिहननादेकाद्यसञ्चारिणी ।

वञ्जी जीवनमध्यगा गतिमती विद्या जया यामिनी

जाताजातनिवारिणी जनमनःसंहारचिन्तावनु ॥ ४४ ॥

भ्रं भक्त्वाद्दं विवाद्दं भ्रंति भ्रंभरा भ्रंरया वीजभङ्गा

गङ्गा हन्ति हता शुभाधसुनखी कैवल्यमुक्तप्रदा ।

कृत्वा रक्षति साधकं वरभक्षणकारिण सूक्ष्मनिंला

कामक्रोधविनाशिनी शंशिसुखी भङ्गारशब्दप्रिया ॥ ४५ ॥

जकारवीजामलभावसारे शस्यस्य पुञ्ज प्रतिहन्ति योगिनी ।

स्वर्गायुधा सा रसपानमत्ता संहारनिद्राकुलसाधुदुःखहा ॥ ४६ ॥



\* \* \*

चन्द्रातपस्त्रिगुणसुकान्तविग्रहा टङ्गास्त्रवज्जास्त्रयुता रिपुङ्गरा ॥४७॥  
 टिं टिं महामन्त्रजपेन भिद्धिदा हन्ति श्रियं कापुरुषस्य पानकम् ।  
 विशालनेत्रा यति चास्त्राङ्गी ठं ठं स्ववीजं परिपाति ठाकुरौ ॥४८॥

\* \* \*

मनोगतं दुःखसमूहमुर्वशी रत्नाकरा शत्रुकुलं निहन्ति ।

डामरा जगतामाद्या डं डं डिं डीं स्वरूपिणी ॥ ४९ ॥

कामचक्रे सुखं दत्त्वा सारयेवं तनोति सा ।

ढं ढं बीजात्मिका विद्या रत्नमन्दिरसंस्थिता ।

ढकारी पाशहस्ता च साधकं पाति सुन्दरी ॥ ५० ॥

णं णं णिं णीं जपति सुजनो जीवनीमध्यसंस्था

अष्टैश्वर्यं प्रभवति हृदि क्षीभपुञ्जापहाय ।

वाराणस्यां सकलभयहा सन्ददातीह लक्ष्मीं -

सूक्ष्मात्यन्तानलपरमुखी कालजालं निहन्ति ॥ ५१ ॥

तारारूपा त्रिनयनकुटिला तारकाव्या निहन्ती

तन्त्रश्रेणी तरुवरकलात्राणहेतोरतीता ।

तालचेत्रा तडिदिवकला कोटिसूर्यप्रकाशा

तोकादीनां वहनतरणी तारकं पाति भक्तम् ॥ ५२ ॥

स्थितिक्रमेणैव विमुक्तिदायिनी मनोहरा नौरजनेत्रकीमला ।

स्थिता थकाराक्षरमालिनी स्थला प्रपाति मुख्यं वरसाधकं शिवा ५३

दात्री दरिद्रातिनिक्षुष्टदुःखहा दान्ताप्रया दैत्यविदारिणी दहा ।

दलस्थलस्था दयिता जगत्पते-र्दयां ददाति द्रवदेवदारा ॥ ५४ ॥

धात्री धराधारण्णत्परा धनी धनप्रदा धर्मगतिर्धारिणी ।

दधार धीरं धनबीजमालिनी ध्यानस्थिता धर्मनिरूपणाय ॥५५॥

नन्दस्य प्रतिपालनाय जगतामानन्दपुञ्जोदया

योगिन्धो नयनाम्बुजोज्ज्वलशिखाशोभा प्रभा नाक्षरा ।

नीता नावपथस्थितामतिमतीं याः पालयन्तीह ताः

पातु श्रीखरतेजसा खलु यथा कालक्रमात् साधकम् ॥५६॥

प्रीता प्रेमविलासिनी वरपथज्ञानाश्रया पालनात्

पूज्या पायसपापरा परपदा पीताम्बरा पोषणा ।

प्रीढा पुत्रवती पुराणकथनां पायात् पुरा पावनी

या कामेश्वरपावनं परजनं श्रीसाधकं पाति सा ॥ ५७ ॥

स्ततफणिवरमान्ना फेरवौ फेररूपा

फणधरमुखफुल्लाभोजवाक्यामृताब्धी ।

निरवधिहरकरुहे वाक्यरूपा फलस्था

फलगतफणिचूडा पाति फुल्लारविन्दे ॥ ५८ ॥

वज्रास्थ्यां वशकारणां यदि जपेत् श्रीपादसंसेवनात्

बालां वेदविनिर्गतां भगवतीं श्रीरामदेवैर्हृताम् ॥ ५९ ॥

\*

\*

\*

वश्या तस्य कराश्वजे वसति सा वीरा मनःस्था वसा

वक्त्राश्वोरुहकोमले भगवती भूमौशभाराश्वजे ।

मातामन्दिरमालिनी मतिमतामानन्दमालामला

मिथ्यामैथुनमोहिनी मनसि सा मित्रामहम्मेलनी ॥ ६० ॥

\*

\*

\*

मानी तं वदते महेश्वरमहित्वं तस्य वक्तःस्थले

स्थित्वा स्य मरणं निहन्ति सहसा मौनावलम्बो भवेत् ॥६१॥

यतिप्रिया या प्रतिघाति योगिनी यामास्थिता योगमुखासदा यथा ।

योनस्थले सा यतिसाधकं यशो-यात्रासदा पाति यमादिकं दहेत् ॥६२

रत्नस्था रतिराजिता रणमुखे राज्ञः प्रिया रीतिहा

रुक्मालङ्कृतरङ्गिणी रसवती रागापहा रोगहा ।

राजेन्द्रं रजनीरथे प्रकुपिता राधाऽमृता पाति तं

स्वाहारूपमनोरमा सुरमणी रामा रकाराक्षरी ॥ ६३ ॥

लक्ष्मीर्जाङ्गलिलक्षणा सुललना लोलानलावालया  
 मूलामूलनिरामतां सबलणाकुल्लाशलीलाकुला ।  
 लोलाकोलकुलाननानलमूलीलग्नालधूराकुला  
 कौलाकार्काकुललोचना लय करी लीलालयं पाति माम् ॥ ६४ ॥  
 विषासवस्थानरणस्थवासना वश्या वदन्ती सकला वसार्थम् ।  
 सा पाति वीरं यदि तां भजेद्दशी त्रिसावनं ते निवसन्ति वारुणाम् ॥ ६५ ॥  
 शीतां शयी शोकविशेषनायिनीं भजेत् सुमीनां स भवेद्द्विवाकरः ।  
 शिवां शचीं शीचशुभां शवप्रियां शवस्थितां शीतलदेशशोभिताम् ॥ ६६ ॥  
 षट्चक्रे षट्पदाघाटी षडङ्गस्था षडानना ।  
 षट्चक्रे सिद्धिदा पाति साधकं षोडशी मुदा ॥ ६७ ॥  
 सा मानुष्मारस इति सुजनं समलोकस्थलाद्या  
 सारा साक्षात् सुखसमरसोज्ज्वलसाह्लादसाभ्या ।  
 साकारास्याम्बुजमधुगिरा पूयन्ति महार्थं  
 देवा सौरा सुरमति निवहा सामवेदान्तरस्था ॥ ६८ ॥  
 इठात्कारिण साहारा हरति प्राणहं जनम् ।  
 निहारिणं न सा हन्ति हिरण्यहारमालिनी ॥ ६९ ॥  
 आलोका लक्षजप्रदा लालाक्षराङ्गलोमशा ।  
 आलम्बोत्वान सा लोपा पाति तं यो भजेत्तु ॥ ७० ॥  
 क्षयं क्षिणो याति सुहृत्समावनं विहाय मन्वी क्षयरोगहारिणी ।  
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मान्यतमं विविन्त्येत् क्षोभादिकं पक्षकलाक्षयन्ती ॥ ७१ ॥  
 षोडशस्वभेदेन फलं शृणु महाप्रभो ! ।  
 संचेपेण प्रवक्तव्यमुत्कृष्टफलकाङ्क्षिणाम् ॥ ७२ ॥  
 श्लोकत्रयेण तैस्त्रयं फलमत्यन्तसाधनम् ।  
 ये कुर्वन्ति महादेव ! कामचक्रोत्सवं यथा ॥ ७३ ॥  
 आद्यष्टस्वरमङ्गलं जपति यः श्रीनाथवक्त्रास्वजात्  
 प्राप्य श्रीधरनायकः क्षितितले सिद्धो भवेत्तत्क्षणात् ।

राजाराजकुलेखरो जयपर्ये दौपोज्ज्वलामालया  
सर्पास्यात् परमां कलां जयति सः कामानलं तद्रचेत् ॥ ७४  
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ।

शेषाष्टस्वरपावनो प्रियतमानन्देन मन्दोदरी  
मन्त्रं हन्ति मदानना त्रिजगतां साध्योत्तमानां सुखम् ।  
दत्त्वा पालयति प्रभा प्रलयके कौटिल्यविव्यापहा  
त्यक्त्वा यः क्षितिपालनं निजजपध्यानाकुलामङ्गलम् ॥ ७५ ॥  
लृ लृ एं ऐ औ औं अं अः ।

इति वर्षफलं ज्ञात्वा यो गृह्णाति मनूत्तमम् ।  
स भवेत् कुलयोगार्थी सिद्धजनो महीतले ॥ ७६ ॥  
वर्गे वर्गे फलं नाथ शृणु वक्ष्यामि अङ्गुतम् ।  
प्रश्नादीनाञ्च कथनं येन जानाति साधकः ॥ ७७ ॥  
कवर्गे कामसम्पत्तं श्रिया व्याप्तं सुमन्दिरम् ।  
प्राप्नोति कामचक्रार्थं राशिनक्षत्रसम्मतम् ॥ ७८ ॥  
चवर्गे दीर्घजीवो स्यात् दृढसम्पदमेव च ।  
वृत्तिं प्राप्नोति गमनादनुद्देश्यशरीरिणः ॥ ७९ ॥  
समाचारं समाप्नोति गमने सर्वमुत्तमम् ।  
टवर्गे सम्भवे नाथ महदुच्चाटनादिकम् ॥ ८० ॥  
पुत्राणामपि वृद्धिः स्यात्तवर्गे धनलाभकम् ।  
पवर्गे मरणं नाथ ! यादित्त्वान्ते महागुणी ॥ ८१ ॥  
कामचक्रे फलं नाथ ! राशिदण्डेन योजयेत् ।  
निजगैहस्थितं राशिं ज्ञात्वा हि दिनदण्डतः ।  
गणयित्वा शुभं ज्ञानो अनुलोमविलोमतः ॥ ८२ ॥  
घटस्थं सप्तकं मन्थि-कालस्थं पार्श्वके शुभम् ।  
शुभमन्त्रं गृहीत्वा तु सिद्धिमाप्नोति साधकः ॥ ८३ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितासुतस्मृतौ सहायकान्ताद्वापने भावप्रश्नार्थनिर्णये पाशवकल्पे  
कामचक्रसारसङ्घटे विद्वन्मन्त्रप्रकरणे चतुर्वेदोज्जासि भैरवी-भैरव-

## अथ एकोनविंशः पटलः ।

षट्चक्रभेदः ।—

इदन्तु शृणु वक्ष्यामि सर्वतन्त्रार्थगोपनम् ।  
तत्सर्वं प्रश्नचक्रे च षडाधारस्य भेदनम् ॥ १ ॥  
कालचक्रफलं तत्र निर्विकल्पादिसाधनम् ।  
प्रश्नचक्रं कामरूपं चैतन्यं सर्वदा मनोः ॥ २ ॥  
षण्णन्दिरे षट् कलापं कैवल्यसाधनादिकम् ।  
नानाभोगं योगसिद्धिं हित्वा यो यन्तु संजपेत् ॥  
स भवेद्देवताद्रोही कोटिकल्पे न सिध्यति ॥ ३ ॥  
हृदि यस्य महाभक्तिः प्रतिभाति महोदया ।  
क्षणादेव हि सिद्धिः स्यात् किं जपैर्मन्त्रसाधनैः ? ॥ ४ ॥  
अतो भक्तिं सदा कुर्याद्देवताभावसिद्धये ॥ ५ ॥

भैरव उवाच ।—

एतच्चक्रप्रसादेन को वा किं सिद्धिमाप्नुयात् ? ।  
एतस्य भावनादेव किं फलं भावनं शुभम् ॥ ६ ॥  
को वा प्रश्नादिकथने क्षमो भवति सुन्दरि ! ।  
तत्प्रकारं विधानेन वद मे फलसिद्धये ॥ ७ ॥

शानन्दभैरव्युवाच ।—

यः करोति पूर्णहोमं पुत्रार्थं योगसिद्धये ।  
कुण्डलीक्रमयोगेन पुनः पुनः क्रमेण च ॥ ८ ॥  
एतच्चक्रार्थभावज्ञः स एव नात्र संशयः ।  
यः करोति सदा नाथ ! वायुनिर्गमलक्षणम् ॥ ९ ॥  
जडैः संस्थाप्य विधिवत् भावनां कुरुते नरः ।  
स एव सिद्धिमाप्नोति सिद्धिमार्गो न संशयः ॥ १० ॥  
फलमेतद्भावनाथं कामक्रोधादिवर्जितः ।  
भावनाफलसिद्धयर्थं वायुसंयोगचक्रमात् ॥ ११ ॥

लेपयित्वा शोधयित्वा मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।  
 धर्माधर्मविरोधेन सूक्ष्मवायुक्रमेण च ॥ १२ ॥  
 प्राप्नोति महतीं सिद्धिमेतच्चक्रस्य तत्फलम् ।  
 फलञ्च द्विविधं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मपदस्थितम् ॥ १३ ॥  
 स्थूलं त्यक्त्वा महासूक्ष्मे मनो याति यदा यदा ।  
 तदा हि महती मिद्धिरमरस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥ १४ ॥  
 एकवारं भावयेद् यः सिद्धचक्रस्य वर्णकान् ।  
 तस्यैव भावसिद्धिः स्याद् भावेन किं न सिध्यति ? ॥ १५ ॥  
 महद्भावं विना नाथ ! कः सिद्धिफलकग्रही ? ।  
 योगभ्रष्टः स्थूलफले परजन्तानि सिद्धिभाक् ॥ १६ ॥  
 अतिके सिद्धिमाप्नोति सूक्ष्मफलक्रमेण तु ।  
 यो जानाति सूक्ष्मफलं स योगी भवति ध्रुवम् ॥ १७ ॥  
 स एव प्रश्नकथने योग्यो भवति साधकः ।  
 यः सूक्ष्मफलभोक्ता स्यात् क्रियागोपनतत्परः ॥ १८ ॥  
 निरन्तरं प्रश्नचक्रं भ्राज्जाचक्रोपरि स्थितम् ।  
 विभाव्य कालसिद्धिः स्यात् सर्वज्ञो वेदपारगः ॥ १९ ॥  
 कालज्ञानी च सर्वज्ञ इति तत्त्वार्थनिर्णयः ।  
 प्रश्नचक्रस्थितं वर्णं सूक्ष्मकालफलावहम् ॥ २० ॥  
 मनोरूपं दण्डभेदं सर्वस्यापि सवर्गकम् ।  
 मनसो भ्रम एव हि काल एको न संशयः ॥ २१ ॥  
 श्रुत्यवशं कराल्येव कालज्ञानी स यांगिराट् ।  
 कालेन लीयते सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ २२ ॥  
 कालाधीनमिदं विश्वं तस्मात् कालवशं नयेत् ।  
 तत्कालं सूक्ष्मनिलयं दुर्भाष्य प्रश्नकं शृणु ॥ २३ ॥  
 मिथं तुलाराशिमनुत्तमं सदा वैशाखमासे फलसिद्धिकारणम् ।  
 कवर्गमाव्याप्य सुरान् य एव विभावयेत् स क्षितिनाथ अभवेत् २४ ॥

आज्ञाचक्रोपरि ध्यात्वा सर्वचक्रं महाप्रभो ! ।  
 एकक्षणेन सिद्धिः स्यात् परभावेन हेतुना ॥ २५ ॥  
 सिद्धेश्चक्रचैतन्यं यो जानाति महीतले ।  
 वाक्सिद्धिर्जायते मासाहिवारात्रिश्रेण च ॥ २६ ॥  
 वर्णमालासमाक्रान्तं राशिनक्षत्रसंयुतम् ।  
 ग्रहचक्रं भावयित्वा सर्वं जयति साधकः ॥ २७ ॥  
 चवर्गं च वरासिद्धिः संक्लेशो वृद्धिकारणम् ।  
 द्विमाससाधनादेव सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ॥ २८ ॥  
 योगिनी खेचरी विद्या आयाति निकटे सताम् ।  
 ग्रहचक्रप्रसादेन जीवन्मुक्तसु साधकः ॥ २९ ॥  
 यदि कर्म करोत्यैव एकान्तचित्तनिर्मलः ।  
 तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि वर्त्तते ॥ ३० ॥  
 ग्रहचक्रप्रसादेन सर्वे वै योगिनो भुवि ।  
 यदि योगी भवेद्भूमौ तदा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥  
 विना योगसाधनेन कः सिद्धो भूमिमण्डले ? ।  
 साधनेन विना सिद्धिः कस्य भक्तस्य जायते ? ॥ ३२ ॥  
 भक्तानां निकटे सर्वे प्रतिष्ठन्ति महर्षयः ।  
 अतो भक्तिं सदा कुर्यात् सर्वधर्मान् विहाय च ॥ ३३ ॥  
 तत्कालं भक्तिमाप्नोति ग्रहचक्रप्रसादतः ।  
 तत्प्रकारं महाधर्मं को वक्तुं क्षम एव हि ? ॥ ३४ ॥  
 किञ्चित्तद्भावसारञ्च ग्रहचक्रं ददाभ्यहम् ।  
 चवर्गभावनादेव भक्तिं प्राप्नोति साधकः ॥ ३५ ॥  
 समाधाय परं देवं आज्ञाचक्रोपरि प्रभो ! ।  
 विभाव्य नित्यभावं हि प्राप्नोति तत्फलादपि ॥ ३६ ॥  
 आनन्दानुष्णिपुलके देहावेशो मनोलयम् ।  
 सर्वकर्मसु संख्यागी यः करोति स योगिराट् ॥ ३७ ॥

ट्वर्गे वासनासिद्धिः संसाररहितो भवेत् ।  
 बलवान् सर्वविज्ञानी त्रिमासे खेचरो भवेत् ॥  
 खेचरीमेलनं तस्य पारं प्राप्नोति चक्रतः ॥ ३८ ॥  
 ट्वर्गं व्याप्य तिष्ठन्ति मिथुनः कुम्भयोनयः ।  
 स्वनक्षत्रस्त्रयोगश्च विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ ३९ ॥  
 द्वातुर्मासि पूर्णयोगी त्वर्गसाधनादपि ।  
 वेतालादिमहासिद्धिं सिन्धुसिद्धिं समाप्नुयात् ॥ ४० ॥  
 त्वर्गं व्याप्य तिष्ठन्ति मकारावुच्चकर्कटः ।  
 चिरजीवी भवेदीश इन्दुतुल्यप्रियो भवेत् ॥ ४१ ॥  
 तिष्ठेत् प्रलयपर्यन्तं महाप्रलयरूपवान् ।  
 क्त्वा कालवशं मन्त्री महाबायोर्महालयम् ॥ ४२ ॥  
 महाचन्द्रसूर्यमध्ये वाङ्मण्डलमध्यगे ।  
 वाग्देवता तस्य साक्षाद्भवतीति न संशयः ॥ ४३ ॥  
 पवर्गं व्याप्य तिष्ठन्ति धनुः सिंहस्तु चित्कलाः ।  
 विभाव्य परमस्थानं न नश्यति महानिलम् ॥ ४४ ॥  
 त्रैलोक्यमष्टवर्गं च षट्चक्रं चक्षुषेक्षणात् ।  
 यदि वान्त ब्रह्मरूपं सर्वतीर्थपदाश्रयम् ॥ ४५ ॥  
 महामहागुणाक्रान्तं सत्त्वनिर्मलचक्षुषा ।  
 कन्यावृश्चिकराशिभ्यां ब्रह्ममागं विलोकयेत् ॥ ४६ ॥  
 षष्ठमासेऽनलसिद्धिः स्यात् महाकीलं भवेत् ध्रुवम् ।  
 मौनी एवान्तभक्तः स्यात् श्रोपादाश्रोजदर्शनम् ॥ ४७ ॥  
 प्राप्नोति साधकश्चेष्टः सायुज्यपदवीं लभेत् ।  
 त्रयं मध्ये प्रगच्छन्ति योशिनस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४८ ॥  
 शादिक्षान्ते चतुष्कोणे सर्वयोगाश्रये पदे ।  
 विभाव्य याभि शीघ्र सः श्रीदेवौलोकमण्डले ॥  
 महाकालो भवेद्दोमान् प्रश्नचक्रस्य भावकैः ॥ ४९ ॥

इति श्रीरुद्रवामले सत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावप्रशाश्वेतीश्वरिण्ये पाशवकल्पे

मन्त्रचक्रसारसङ्घटे विडमन्त्रप्रकरणे चतुर्वेदोद्घोषे भैरवी-भैरवसंवादे

एकोनविंशः पटलः ॥ १६ ॥



## अथ विंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

आज्ञाचक्रान्तर्गतचक्राणि ।—

अथ वक्ष्ये महादेव ! सिद्धमन्त्रविचारणम् ।  
जपित्वा भावयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥ १ ॥  
फलचक्रे सर्वमन्त्रं सर्वसारं तनुप्रियम् ।  
क्रियायोगाद्भवेत् सिद्धिर्वायवीशक्तिसेवनात् ॥ २ ॥  
वज्रवीजं त्रिकोणस्थं षट्कोणं तद्वह्निः प्रभो ! ।  
षट्कोणे षड्मनुं ध्यात्वा प्रणमासाद्रुद्ररूपिणम् ॥ ३ ॥  
अष्टकोणे स्थितान् वर्णान् अङ्गभेदेन मण्डितान् ।  
अङ्गसंख्या क्रमेणैव ज्ञात्वा तद्वह्निरेव च ॥ ४ ॥  
तत्संख्या सुगतान् वर्णान् विभाव्य खेचरो भवेत् ।  
विना एकोनयोगेन षट्कोणं तत्र वर्णकान् ॥ ५ ॥  
आज्ञाचक्रमध्यदेशे कामचक्रं मनोरमम् ।  
कामचक्रं मध्यदेशे महासूक्ष्मफलोदयम् ॥ ६ ॥  
प्रश्नचक्रं षट्पटार्यं षट्चक्रफलसाधनम् ।  
प्रश्नचक्रे फलचक्रं योगाष्टाङ्गफलप्रदम् ॥ ७ ॥  
फलचक्रस्थोर्ध्वभागे वर्णमालाक्रमेण तु ।  
तद्वर्णान् मौनजापेन फलसारं समाप्नुयात् ॥ ८ ॥  
फलचक्रप्रसादेन तत्त्वचिन्तापरो यतिः ।  
स्थित्वा भूमध्यकुहरे सदा भावयतीश्वरम् ॥ ९ ॥  
भाद्रज्ञानी भवेत् शीघ्रं मूढोऽपि भावनावशात् ।  
आदौ सूक्ष्मफलं वक्ष्ये वर्णभेदेन शङ्कर ! ॥ १० ॥  
वज्रवीजसूक्ष्मफलं साक्षात् प्रत्यक्षकारणम् ॥ ११ ॥  
वज्रिर्भाति निरन्तरं त्रिजगतां नाशाय रक्षा करो  
त्रीजः सर्वजलाचलस्थदहनं श्रीकालिकाविग्रहः ।

सर्वव्यापक ईश्वरः क्षयति यः कामान् मनः पक्षवं  
 भ्यात्वा तं समरूपवाङ् परशिव-ज्ञानी भवेत्तत्क्षणात् ॥ १२ ॥  
 त्रिकोणस्थ वाङ्गवीजं विषविद्याप्रकाशकम् ।  
 अकस्मात् सिद्धिदातारं यो भजेत् स भवेत् सुखी ॥ १३ ॥  
 षट्कोणस्थवर्णमन्त्रान् शृणुष्वानन्दभैरव ! ।  
 यज्ञज्ञात्वा देवताः सर्वा दिग्दिक्षु प्रपालकाः ॥ १४ ॥  
 अद्भुतं कमनीयार्थं सङ्केतशुद्धिर्लाञ्छितम् ।  
 वाङ्गवीजस्योर्द्ध्वदेशे चन्द्रवीजमनुत्तमम् ॥  
 तत्र यो भावयेन्मन्त्री स सिद्धो नात्र संशयः ॥ १५ ॥  
 द्विषोर्वी यत् सूक्ष्मं विमलकमलं कान्तकिरणं  
 सदा जीवस्थान प्रलयनिलयं वायुजाडितम् ।  
 ततो वामे सूर्यं सकलाविफलं धर्मनिकरं  
 महाबुद्धिस्थानं भजति सुजनो भावविधिना ॥ १६ ॥  
 तदधः कोणगेहे च वीजं पञ्चस्वरान्वितम् ।  
 भावकल्पलतासारं सकारादिकुलाक्षरम् ॥ १७ ॥  
 त्वतुःपञ्चाशदङ्कस्थं वायुवीजमधस्तातः ।  
 विभाव्य वायवी सिद्धिमवाप्नोति नराधिपः ॥ १८ ॥  
 तदङ्कदक्षिणे नाथ ! भवानीवीजमण्डलम् ।  
 युग्मस्वरसमाक्रान्तं विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ १९ ॥  
 तद्दक्षिणोर्द्ध्वकोणे च सोऽहं वीजमनुत्तमम् ।  
 विभाव्य जगतामीश-दर्शनं प्राप्नुयान्नरः ॥ २० ॥  
 तदूर्ध्वं परमं वीजं साक्षात्कारफलप्रदम् ।  
 मासैकभावनादेव देवीलोकं गतिर्भवेत् ॥ २१ ॥  
 तदूर्ध्वकोणगेहे च रुक्मिणी-वीजमण्डितम् ।  
 साधनादेव सिद्धिः स्यात् लक्ष्मीनाथो भवेदिह ॥ २२ ॥  
 अङ्कक्रमेण सर्वत्र ज्ञेयं स्वरविधानकम् ।

येन तेन स्वरैणापि वेष्टितं फलवीजकम् ॥  
 फलत्येव महादेव ! वायुसिद्धादिकारणम् ॥ २३ ॥  
 अष्टकोणं ततो नाथ ! षट्कोणे यानि सन्ति वै ।  
 तद्बीजानि सत्कुलानि ध्यात्वा वाक्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २४ ॥  
 रेफोर्द्धं कामनावीजं भावकल्पद्रुमाकरम् ।  
 सर्वत्र तेजसा व्याप्तं विभाव्य योगिनीपतिः ॥ २५ ॥  
 तदधः शीतलावीजं वामभागक्रमेण तु ।  
 विभाव्य परमानन्द-रसे मग्नो महासुखी ॥ २६ ॥  
 तदधः कालवीजञ्च कामनाफलसिद्धिदम् ।  
 यो भजेत् परमानन्दो नित्यज्ञानी च वायुना ॥ २७ ॥  
 तदग्रे वेदकोणे च वरुणं वीजमुत्तमम् ।  
 विभाव्य भावको भूत्वा चिरजीवी भवेत् ध्रुवम् ॥ २८ ॥  
 तदूर्ध्वं पञ्चमे कोणे वज्रवीजं वकारकम् ।  
 अष्टसिद्धिकरं साक्षाद् भजतां शीघ्रसिद्धिदम् ॥ २९ ॥  
 षट्कोणे च तदूर्ध्वं च सुरवीजं महाफलम् ।  
 हृदि यो भावयेन्नन्ती तस्य सिद्धिः प्रतिष्ठिता ॥ ३० ॥  
 अष्टकोणस्योर्ध्वदेशे वर्णमालाविधिं शृणु ।  
 येन चिन्तनमात्रेण सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ ३१ ॥  
 ओ औ षवर्गमेवं हि यो नित्यं भजतेऽनिशम् ।  
 तस्य सिद्धिः क्षणादेव वायवीरूपभावेनात् ॥ ३२ ॥  
 चन्द्रबीजस्योर्ध्वदेशे विभाति पूर्णतेजसा ॥ ३३ ॥  
 लृ ए ऐ तवर्गमेव तद्दक्षिणविधानतः ।  
 तेजोमयी वाग्नुशक्तिर्ददाति सर्वमङ्गलम् ॥ ३४ ॥  
 टवर्गं भावयेन्नन्ती ऋ ऋ लृ स्वरसंयुतम् ।  
 अष्टैश्वर्यप्रदं नित्यं कमलासनसिद्धिदम् ॥ ३५ ॥  
 तदधो भावयेद् यस्तु स भवेत् कल्पपादपः ।

भवानौवीजरूपस्य अधो गेहे विभावयेत् ॥ ३६ ॥  
 ई उ-युग्मं चवर्गञ्च भावयित्वाऽमरो भवेत् ।  
 अ आ इ संयुतो नाथ ! कवर्गः कुंरुते जयम् ॥ ३७ ॥  
 भावयेत् परया भक्त्या सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ।  
 इत्येतत् कथितं नाथ ! फलचक्रञ्च सारदम् ॥ ३८ ॥  
 एतच्चक्रभावनाभिर्महाविद्यापतिर्भवेत् ।  
 कामरूपे महापीठे लिङ्गपीठे प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥  
 आज्ञाचक्रं चतुश्चक्रं भावयित्वाऽमरो भवेत् ।  
 महायोगी हिरण्याक्षो मासैकभावनावशात् ॥ ४० ॥  
 सप्तद्वीपेश्वरो भूत्वा अन्ते विष्णुर्वभूव सः ।  
 स्थिरचेताः स योगी स्यादिति तन्त्रार्थनिश्चयः ॥ ४१ ॥  
 एतानि चक्रसाराणि आज्ञाचक्रस्थितानि च ।  
 विभव्य परमानन्दैरात्मसिद्धिर्भवेद् भुवम् ॥  
 सूक्ष्मवायुप्रसादेन चिरजीवो भवेदिह ॥ ४२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीद्वीपने भावप्रसार्थनिर्णये पाशवकल्पे  
 फलचक्रसारसङ्घेते सिद्धमन्त्रप्रकरणे चतुर्वेदीज्ञासे भैरवी-भैरवसंवादे  
 विंशः पटलः ॥ २० ॥

### अथ एकविंशः पटलः ।

श्रीभैरव उवाच ।—

वीरभावस्य माहात्म्यम् ।—

वद कान्ते ! रहस्यं मे येन सिद्धो भवेन्नरैः ।  
 तत् प्रकारं विशेषेण देवानामतिदुर्लभम् ॥ १ ॥  
 वीरभावस्य माहात्म्यमकस्मात् सिद्धिदायकम् ।  
 कर्तुणादृष्टिरानन्दो यदि चेदस्ति सुन्दरि ! ॥ २ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

परमानन्दसारज्ञ ! योगज्ञ ! क्षेत्रपारग ! ।  
 रहस्यं शृणु मे नाथ ! महाकालस्य भावग ! ॥ ३ ॥  
 योगमार्गानुसारेण वीरभावं श्रयेत कः ? ।  
 आनन्दोद्रेकपुञ्जे तत् शक्तिवेदार्थनिर्णयम् ॥ ४ ॥  
 वेदाधीनं महायोगं योगाधीना च कुण्डलौ ।  
 कुण्डल्यधीनं चित्तन्तु चित्ताधीनं चराचरम् ॥ ५ ॥  
 मनसः सिद्धिमात्रेण शक्तिसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।  
 यदा शक्तिर्वशीभूता त्रैलोक्यञ्च तदा वशम् ॥ ६ ॥  
 अमरः स भवेदेव सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ।  
 सहस्रश्लोकयोगेन वीरयोगार्थनिर्णयम् ॥ ७ ॥  
 षट्कैकादशे क्षेम-योगेन योगमण्डलम् ।  
 षट्चक्रबोधनी विद्या सहस्रदलपङ्कजम् ॥ ८ ॥  
 कौलासाख्यं सूक्ष्मपथं ब्रह्मज्ञानाय योगिनाम् ।  
 कथयामि महावीर ! क्रमशः क्रमशः शृणु ॥ ९ ॥  
 वीराणामुत्तमानाञ्च भ्रष्टानां प्रहिताय च ।  
 साक्षात् सिद्धिकरं यद् यत् तत्सर्वं प्रवटामि ते ॥ १० ॥  
 योगमार्गक्रमेणैव स सिद्धिफलमिच्छति ।  
 स एव भवति क्षिप्रं ब्रह्ममार्गं न संशयः ॥ ११ ॥  
 ब्रह्मविद्यास्वरूपेण जपहोमार्चनादिकम् ।  
 कुरुते फलसिद्धैव स ब्रह्मज्ञानवान् शुचिः ॥ १२ ॥  
 षट्चक्रभेदेन प्रीतिर्यस्य साधनचेतसः ।  
 संसारे वा वने वाऽपि स सिद्धो भवति ध्रुवम् ॥ १३ ॥  
 षट्चक्रार्थं स जानाति यो भजेदम्बिकापदम् ।  
 तस्य पापं क्षयं याति सप्तजन्मसु सिद्धिभाक् ॥ १४ ॥  
 ज्ञात्वा षट्चक्रमेदञ्च यः कर्म कुरुतेऽनिशम् ।

संवत्सराद्भवेत् सिद्धिरिति तन्कार्यनिर्णयः ॥ १५ ॥  
 प्रखेदनाशमाप्नोति मासत्रयनिषेवणात् ।  
 अष्टमासात् कल्पनाशो वत्सरात् खेचरी गतिः ॥ १६ ॥  
 प्रखेदमधमं प्रोक्तं कल्पनं मध्यमं स्मृतम् ।  
 भूमेरुत्यापनं नाथ ! खेचरत्वं महासुखम् ॥ १७ ॥  
 द्वात्रिंशद्दिन्दुभेदश्च मूलाधारावधिस्थितम् ।  
 मेरुदण्डाश्रितं देशं कृत्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ १८ ॥  
 सुषुम्ना बाह्यदेशे च यद् यद्दिन्दुपदं प्रभो ! ।  
 क्रमशः क्रमशो भित्त्वा खेचरो भवति ध्रुवम् ॥ १९ ॥  
 अल्पकार्यं मनो दत्त्वा ध्यानज्ञानविवर्जितः ।  
 जन्मन्तः स भवेदेव शास्त्राणां योगिराट् भवेत् ॥ २० ॥  
 हिमकुन्देन्दुधवलां बालां शक्तिं महोज्ज्वलाम् ।  
 कालीकालफलानन्दां मूले ध्यात्वा भवेद्दशी ॥ २१ ॥  
 मूलपद्मं महाज्ञानी ध्यात्वा चारुचतुर्दले ।  
 कपिलाकोटिदानस्य फलं प्राप्नोति योगिराट् ॥ २२ ॥  
 मूलपद्मे कोटिचन्द्र-कलायुक्तं सरक्तकम् ।  
 गणं सुधारसामोद-वदनाञ्जसमाकुलम् ॥ २३ ॥  
 निर्मलं कोटिवीरोग्र-तेजसं ब्रह्मरूपिणम् ।  
 वामपार्श्वे कुण्डलिन्या विभाव्य शीतलो भवेत् ॥ २४ ॥  
 ततः श्रीजटिलं वीरं तदाकारं तदुद्भवम् ।  
 ललाटवङ्गिजं देव्या नाथं भजति योगिराट् ॥ २५ ॥  
 तत्तत्पद्मपूर्वदले सिन्धुवारणविग्रहम् ।  
 बकारं कोटिचपला मानं भजति योगिराट् ॥ २६ ॥  
 तत्पार्श्वे शोणितदले भूमिचक्रं मनोरमम् ।  
 यथा ध्यानं कुण्डलिन्या आज्ञाचक्रे तथाऽत्र च ॥ २७ ॥  
 भूमिचक्रकमं नाथ ! शृणु शङ्कर ! योगिनाम् ।

यत् ध्यात्वा सिद्धिमाप्नोति सिद्धिदं यद् गृहं भजेत् ॥ २८ ॥  
 यद् गृहं त्रिकलागेहमेकतस्थं महाप्रभम् ।  
 यो ध्यायेद् योगिनीं देव ! वीजकं सिद्धिदायकम् ॥ २९ ॥  
 वकारं दक्षिणे गेहे हेममालिनमञ्जनम् ।  
 डाकिनीबीजसंयुक्तं ब्रह्मबीजं विभावयेत् ॥ ३० ॥  
 वकारं वामपार्श्वे च योगिनां योगसाधनम् ।  
 सदाशिव रमाबीज विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ ३१ ॥  
 वं वीजं वारुणाध्यक्षं हिमकुन्देन्दुनिर्मलम् ।  
 तद्विष्योर्जन्मसंस्थानं सत्त्वं द्रवमुपाश्रयेत् ॥ ३२ ॥  
 तदूर्ध्वपूर्वगेहे च लं वीजमिन्द्रपूजितम् ।  
 विद्युलतामेष्वर्धे विभाव्य योगिनां पतिः ॥ ३३ ॥  
 इन्द्रबीजं दक्षपार्श्वे श्रीबीजविन्दुलाञ्छितम् ।  
 स्थिरविद्युलतारूपमिन्द्राण्याः साधु भावयेत् ॥ ३४ ॥  
 तदामपार्श्वभागे च प्रणवं ब्रह्मसेवितम् ।  
 विभाव्य कोटिमिहिरं योगिराड् भवति ध्रुवम् ॥ ३५ ॥  
 वं वीजाधो मन्दिरे श्री-विद्यया वीरतेजसम् ।  
 कोटीसूर्यप्रभाकारं विभाव्य सर्वगो भवेत् ॥ ३६ ॥  
 निजदेव्या वामभागे ह्यधः कनकमन्दिरे ।  
 श्रीगुरो रमणं वीजं ध्यात्वा वाग्भवमीश्वरम् ॥ ३७ ॥  
 निजदेव्या दक्षपार्श्वे दीर्घप्रणवतेजसम् ।  
 कोटिसूर्यप्रभारूपं ध्यात्वा योगी भवेद् यतिः ॥ ३८ ॥  
 निजदेवीं तत्र पद्मे मनःसदाक्ययोगकैः ।  
 यथा ध्यानं तथै मीनं ध्यानं कुर्यात् जगत्पतिः ॥ ३९ ॥  
 ब्रह्मणः पूरकेषुैव महायोगक्रमेण तु ।  
 सूक्ष्मवायून्मनापि भूमिचक्रे जपञ्चरेत् ॥ ४० ॥  
 चतुष्कोणं धरायास्तु नवभूमिगृहान्वितम् ।

अष्टगेहं विभाव्यादौ विश्वमूलं यजेद् यतिः ॥ ४१ ॥  
 धरावीजं पाण्डुवर्णं शक्रेण परिपूजितम् ।  
 विभाव्य कुण्डलीतत्त्वं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४२ ॥  
 राजमन्त्रं तत्र नाके श्वेतकुञ्जरवाहनम् ।  
 चतुर्वाहुं देवराजं विद्यापुञ्जं भयक्षयम् ॥ ४३ ॥  
 डाकिन्या मन्दिरे कान्तं ब्रह्माणं षडसहस्रम् ।  
 नवीनार्कं चतुर्वाहुं चतुर्वक्त्रं भजेद्वशी ॥ ४४ ॥  
 ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं सिन्दूरामृतभास्करम् ।  
 परमाभीष्टमस्तुलं विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ ४५ ॥  
 विद्युल्लतावदुज्ज्वलां श्रीदेवडाकिनीं सुराट् ।  
 अभीक्ष्णं रक्तनयनां षडस्र्यां भावयेद्वशी ॥ ४६ ॥  
 हंसोर्ध्वं कमलावीजं सर्वालङ्कारभूषितम् ।  
 महालक्ष्मीस्वरूपं यत्तद्भजन्ति महर्षयः ॥ ४७ ॥  
 इन्द्रपृथ्वीवीजवामे प्रणवं ब्रह्मसेवितम् ।  
 प्राणायामसिद्धिदं यत्तद् भजन्ति महर्षयः ॥ ४८ ॥  
 तदधः प्राणनिलयं प्रेतवीजं शशिप्रभम् ।  
 विभाव्य शिवतुल्यः स्याद् भूमिचक्रे सदाशिवः ॥ ४९ ॥  
 तदधो वाग्भवं ध्यायेत् कोटिसौदाम(मि)नीप्रभम् ।  
 गुरुवीजं भूमिचक्रे महाविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ५० ॥  
 दक्षिणे मध्यगेहे च श्रीविद्यानिर्मलं पदम् ।  
 विभाव्य मानसे ध्याने सिद्धो भवति साधकः ॥ ५१ ॥  
 तदक्षिणे शेषगेहे प्रणवान्तं मनूत्तमम् ।  
 सर्वाधारं ब्रह्मविष्णु-शिवदुर्गापदं भजेत् ॥ ५२ ॥  
 एतत् श्रीभूमिचक्रार्थं सर्वचैतन्यकारकम् ।  
 भूलाधारपूर्वदले वकारं व्याप्य तिष्ठति ॥ ५३ ॥  
 भूमिचक्रमण्डले तु वकारस्थं स्मरेद् यदि ।



ब्रह्माण्डमण्डलेशः स्यादण्डं व्याप्यैकपत्रकम् ॥ ५४ ॥  
 तदेकपत्रं पद्मस्य शोणितं निर्मलद्युतिम् ।  
 तन्मध्यान्ते भूमिचक्रे मध्ये षं भावयेदशी ॥ ५५ ॥  
 एतच्चक्रप्रसादेन वरुणो मदिरापतिः ।  
 अमृतानन्दहृदयः सर्वेश्वर्यान्वितो भवेत् ॥ ५६ ॥  
 द्वितीये दक्षिणे पत्रे वान्तवौजं महाप्रभम् ।  
 मनो विधाय योगीन्द्रो ध्यायेद् योगार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥  
 तत्र ध्यायेत् स्वर्गचक्रं स्वर्गशोभासमाकुलम् ।  
 विभाव्य स्वर्गनाथः स्याद्देवेन्द्रमहसा भुवि ॥ ५८ ॥  
 पञ्चकोणं विभाव्यापि पञ्चकोणं विभाति यत् ।  
 तन्मध्ये वृत्तयुगलं तत्र षट्कोणगं भजेत् ॥ ५९ ॥  
 एतत् स्वर्गाख्यचक्रन्तु प्रपूरद्वयमध्यके ।  
 दक्षिणोत्तरपत्रस्थे विभाव्य वान्तमीश्वरम् ॥ ६० ॥  
 षट्कोणान्तर्गतं वान्तं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।  
 तमाश्रित्य सुराः सर्वे दशकोणे वसन्ति ते ॥ ६१ ॥  
 पूर्वकोणे महेन्द्रश्च सर्वदेवसमास्थितम् ।  
 इन्द्राणीसहितं ध्यात्वा योगीन्द्रो भवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥  
 तद्दक्षिणे रक्तकोणे वज्रं स्वाहाऽन्वितं स्मरेत् ।  
 कोटिकालानलसमं परिवारगणान्वितम् ॥ ६३ ॥  
 दक्षिणे कालरूपी च क्षयशक्तियुतः प्रभुः ।  
 परिवारान्वितं ध्यात्वा तं मृत्युवशमानयेत् ॥ ६४ ॥  
 नैऋतं विद्युदाकार-सुप्रभं मदनप्रियम् ।  
 शक्तियुक्तं सुरानन्दौ विभाव्य योगिनीपतिः ॥ ६५ ॥  
 तदधो वरुणं ध्यात्वा सुशक्तिपरिलालिताम् ।  
 जलानामधिपं सत्त्वं नित्यसत्त्वाश्रयी भवेत् ॥ ६६ ॥  
 तद्वामे मरुतः कोणं मरुत्तणविभाकरम् ।

वायुस्थानं लयस्थानं वायुव्याप्तं भजेत् सुधीः ॥ ६७ ॥  
तत् पश्चात् धननाथञ्च मत्तं शक्तिसमन्वितम् ।  
परिवारगणानन्दं विभाव्य स्यात् कुलेश्वरः ॥  
तत्पश्चात् परमं स्थानमीशं शक्तिसमन्वितम् ॥ ६८ ॥  
परिवारान्वितं ध्यात्वा कामरूपी भवेद् यतिः ।  
तत्पश्चात् कोणगेहे च चन्द्रसूर्याग्नितेजसम् ॥ ६९ ॥  
एकरूपमूर्ध्वसंस्थं ब्रह्माणं भावयेद् यतिः ।  
इन्द्रवामकोणगेहे अनन्तं वाङ्मरुपिणम् ॥ ७० ॥  
अनन्तसहितं ध्यात्वा अनन्तसदृशो भवेत् ।  
एतत् स्वश्चक्रमध्ये तु वृत्तयुग्मं महाप्रभम् ॥ ७१ ॥  
सर्वदा वाङ्मना व्याप्तं ज्वलदग्निं विभावयेत् ।  
वृत्तमध्ये च षट्कोणं कोणे कोणे रिपुचयम् ॥ ७२ ॥  
लोभमोहादिषट्कञ्च हरेत् षट्कोणसंस्थितम् ।  
लोभं दूरत इन्द्राग्नि-मोहं हरति टण्डलम् ॥ ७३ ॥  
कामं नैऋतवरुणौ क्रोधं वायुञ्च योगिनाम् ।  
मदच्चरैरर्क्षश्च ब्राह्मणान्तो हि योगिनाम् ॥ ७४ ॥  
मात्सर्यात् संहरत्येव मासत्रयनिषेवणात् ।  
षट्कोणमध्यदेशस्थं वान्तवीजं शशिप्रभम् ॥ ७५ ॥  
स्वर्णालङ्कारजडितं भावयेद् योगसिद्धये ।  
सदा व्याप्तं कुण्डलिन्या पालितं मण्डितं सुधीः ॥ ७६ ॥  
तैले यथा दीपपुञ्जं भवेत् विभाव्य योगिराट् ।  
स्वयम्भूलिङ्गं तत्रैव विभाव्य चन्द्रमण्डलम् ॥ ७७ ॥  
आप्तुं कारयेन्मन्त्री कुण्डलीसहितं वशी ।  
एवं क्रमेण सिद्धिः स्यात् कुण्डल्या च कुलेन च ॥ ७८ ॥  
सदाऽभ्यासी महायोगी संस्थाप्य वायवीं ततः ।  
वायव्याभ्यासमात्रेण एतच्चक्राश्रयेण च ॥ ७९ ॥

सूकोऽपि वाक्पतिभूयात् फलभागी दिने दिने ।  
 द्वितीयदलमाहात्म्यं योगिज्ञानीदयं परम् ॥ ८० ॥  
 भावसिद्धिर्भवेत्तस्य यो भजेटात्मचिन्तनम् ।  
 दलमध्ये तुलाचक्रं चतुष्कोणे गृह्याणि च ॥ ८१ ॥  
 द्वात्रिंशद्दिन्दुरुपाणि शान्तिग्रन्थिविभेदने ।  
 तुलाचक्रस्य नाडीभिर्द्वात्रिंशद् ग्रन्थिभेदनम् ॥ ८२ ॥  
 गलदेशावधिध्यानं मेरुमध्ये प्रकारयेत् ।  
 द्वात्रिंशद् ग्रन्थिगेहस्य मध्यवृत्तत्रयं शुभम् ॥ ८३ ॥  
 तन्मध्ये च त्रिकोणे च षं मूर्धन्यं भजेदृशी ।  
 तत्र गेहे विभाव्यानि वर्णजालफलानि च ॥ ८४ ॥  
 दक्षिणावर्त्तयोगेन विभाव्य वाक्पतिर्भवेत् ।  
 अकारमाद्यगेहे च अनुभावं द्वितीयके ॥ ८५ ॥  
 विसर्गन्तु तृतीये च यो भजेत् स भवेदृशी ।  
 एतदन्यमन्दिरेषु कादिहान्तं विभावयेत् ॥  
 वादिशान्तं वर्जयित्वा सविन्दुं स भवेदृशी ॥ ८६ ॥  
 आज्ञाचक्रे यथा नाम फलं प्राप्नोति साधकः ॥ ८७ ॥  
 वर्णानां मूलपद्मे तु तत्फलं हि तुलागृहे ।  
 भजेन्मध्ये सकारस्य त्रिवृत्तस्थत्रिकोणके ॥ ८८ ॥  
 ज्वालामालासंहस्राब्धं स्वर्णालङ्कृतमाश्रयेत् ।  
 प्रत्येकवर्णपुटितं तुलाचक्रं च मौनवान् ॥ ८९ ॥  
 मौनं जपं यः करोति षकारं व्याप्य योगिराट् ।  
 एतद् योगप्रसादेन चैतन्या कुण्डली भवेत् ॥ ९० ॥  
 वाक्सिद्धिश्च भवेत्तस्य तापत्रयविनाशिनी ।  
 सिद्धमन्त्रस्य वर्णानां जपमात्रेण शङ्कर ! ॥ ९१ ॥  
 तुलाचक्रान्तरस्थानं विभाव्य मन्त्रसिद्धिभाक् ।  
 एतच्चक्रं विना नाथ ! कुण्डली नापि सिध्यति ॥ ९२ ॥

तावज्ज्ञानं विना कुत्र योगी भवति भारते ।  
 अथान्यदलमाहात्म्यं शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ८३ ॥  
 योगसञ्चारसारं यत् कुण्डलीशक्तिसाधनम् ।  
 शक्तिबीजं बिन्दुयुक्तं अष्टकोणस्थानिर्मलम् ॥ ८४ ॥  
 विद्युत्पुञ्जं स्वर्णमाला-वेष्टितं भावयेद् यतिः ।  
 चतुष्कोणं विभाव्यापि चतुष्कोणं मनोहरम् ॥ ८५ ॥  
 तन्मध्ये च चतुष्कोणं सवीजं भावयेत्ततः ।  
 कोटिसूर्यसमां देवीं कुण्डलीं देवमातरम् ॥ ८६ ॥  
 यावद्भिर्यावतीं ध्यात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।  
 यदि वारिचक्रमध्ये ध्यानं कुर्वन्ति मानुषाः ॥ ८७ ॥  
 अमरा सत्त्वयोगस्थाः षट्चक्रफलभोगिनः ।  
 तच्चतुष्के समा व्याप्य वारि व्याप्तं सुनिर्मलम् ॥ ८८ ॥  
 वामावर्त्तस्थितं ध्यायेत् सप्तखण्डं महावली ।  
 सप्तहत्तोपरि ध्यायेत् दलषोडशपङ्कजम् ॥  
 दले दले महातीर्थं सिद्धो भवति निश्चितम् ॥ ८९ ॥  
 तीर्थमालावृतं नाथ ! दलं षोडशशोभितम् ।  
 तदेकपत्रमध्ये तु भाति विद्युत्तटाऽन्वितम् ॥ ९० ॥  
 पूर्वादौ दक्षिणे पातु तीर्थमालाफलं शृणु ।  
 येषां दर्शनमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥ ९०१ ॥  
 गङ्गा गोदावरी देवी गया गुह्या महाफला ।  
 यमुना कोटीफलदा बुद्धिदा च सरस्वती ॥ ९०२ ॥  
 मणिद्वीपं श्वेतद्वीपं पञ्चतीर्थं महाफलम् ।  
 श्वेतगङ्गा महापुण्या तलगङ्गा महाफला ॥ ९०३ ॥  
 स्वर्गगङ्गा महाक्षेत्रं पुष्करं तीर्थपावनम् ।  
 कावेरी सिन्धुपुण्या च नर्मदा शुभदा सदा ॥ ९०४ ॥  
 अष्टकोणे अष्टसिद्धिं वारिपूर्णां फलोदयाम् ।

सप्तकोणे सप्तसिन्धून् पूर्वादी भावयेद् यतिः ॥ १०५ ॥  
 लवणेक्षुसुरार्सार्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।  
 सकारं व्याप्य तिष्ठन्तं महासत्त्वं स्मरेद् यतिः ॥ १०६ ॥  
 मध्ये चतुष्के शक्तिञ्च कोटिसौदाम(मि)नीतनुम् ।  
 विभाव्य वारिचक्रे तु कोटिविद्यापतिर्भवेत् ॥ १०७ ॥  
 शक्तिबीजं वामभागे आद्या प्रकृतिसुन्दरौ ।  
 विभात कामनाशाय योगिनी मां सताङ्गतिः ॥ १०८ ॥  
 शक्तिबीजं दक्षिणे च पुङ्गलापुंशिवात्मकम् ।  
 रूपाढ्यं ध्यानगम्यञ्च यो भजेदौशसिद्धये ॥ १०९ ॥  
 शक्तिबीजस्योर्ध्वभागे पूर्णचन्द्रमनोहरम् ।  
 भजन्ति साधवः सर्वे धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ११० ॥  
 शक्तिबीजतले गेहे श्रीसूर्यं कालवद् द्विजम् ।  
 भक्तकोटीसमं ध्यात्वा वाञ्छाऽतिरिक्तमाप्नुयात् ॥ १११ ॥  
 वारिचक्रप्रसादेन चिरजीवी भवेन्नरः ।  
 भूमौ महाकालरूपी मूलाधारे चतुर्दले ॥ ११२ ॥  
 चतुर्दलशेषदेशे वारिचक्रं सषान्तकम् ।  
 कोटिसौदाम(मि)नीभासं विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ ११३ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावप्रशान्तिनिर्णये पाशव-  
 कल्पे मूलमन्त्रोद्घोषे भूमिषक्त-लर्गचक्र-तुषाचक्र वारिचक्रसारसङ्घेते  
 सिद्धमन्त्रप्रकरणे भैरवी-भैरवसवादे एकविंशः पटलः ॥ २१ ॥

## अथ द्वाविंशः पटलः ।

भैरव्युवाच ।—

षट्चक्रनिरूपणम् ।—

शृणु शम्भो ! प्रवक्ष्यामि षट्चक्रस्य फलोदयम् ।

यज्ज्ञात्वा योगिनः सर्वे चिरं तिष्ठान्त भूतले ॥ १ ॥

योगधारणा ।—

मूलाधार-महापद्मं चतुर्दलसुशोभितम् ।  
वादि सान्तं स्वर्णवर्षं शक्तिब्रह्मपदं भजेत् ॥ २ ॥  
क्षित्यप्तेजोमरुत्व्योम-मण्डलं षट्सु पङ्कजे ।  
क्रमेण भावयेन्मन्त्री मूलविद्याप्रसिद्धये ॥ ३ ॥  
मूलपद्मोर्द्ध्वदेशे च स्वाधिष्ठानं महाप्रभम् ।  
षड्दले राकिणीविष्णु कर्णिकायां स्मरेद् यतिः ॥ ४ ॥  
षड्दले वादिलान्तञ्च वर्णं ध्यात्वा सुराधिपः ।  
कन्दर्पवायुना व्याप्तं लिङ्गमूले भजेद् यतिः ॥ ५ ॥  
तदूर्ध्वं नाभिमूले च मणिकोटीसमप्रभम् ।  
दशदलं योगधर्मं डादिफार्णान्तगं भजेत् ॥ ६ ॥  
लाकिनीसहितं रुद्रं ध्यायेद् योगादिसिद्धये ।  
महामोक्षपदं दृष्ट्वा जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥  
बभ्रुकपुष्पसङ्काशं दलद्वादश-शोभितम् ।  
कादिठान्तार्णसहितमीश्वरं काकिनीं भजेत् ॥ ८ ॥  
तदूर्ध्वं षोडशोक्तास-दले साक्षात् सदाशिवम् ।  
महादेवं साकिनीगं कण्ठे ध्यात्वा शिवो भवेत् ॥ ९ ॥  
विशुद्धाख्यं महापुण्यं धर्मार्थकाममोक्षदम् ।  
धूम्रं धूमाकरं विद्युत्पुञ्जं भजति योगिराट् ॥ १० ॥  
अज्ञानामात्मजं शुभ्रं हिमकुन्देन्दुमन्दिरम् ।  
हंसस्थानं बिन्दुपदं द्विदलं भ्रूपदे भजेत् ॥ ११ ॥  
लक्षवर्णद्वयाढ्यं यद्विन्दुयुक्तं मनोलयम् ।  
तयोः स्त्रीपुं प्रकृत्याख्यं कोटिचन्द्रोज्ज्वलं भजेत् ॥ १२ ॥  
कण्ठे षोडशपत्रे च षोडशस्वरवेष्टितम् ।  
अकारादि विसर्गान्तं विभाव्य कुण्डलीं नयेत् ॥ १३ ॥  
आज्ञाचक्रे समानीय कोटिचन्द्रसमोदयात् ।

कण्ठाधारां कुण्डलिनीं जीवन्मुक्तो भवेदिह ॥ १४ ॥  
 यदि श्वासं न त्यजति बाह्यचन्द्रमसि प्रभो ! ।  
 भ्रूमध्ये चन्द्रनिकरे त्यक्तो योगी भवेदिह ॥ १५ ॥  
 सूक्ष्मवायुं हनेनैव त्यजेद्वायुं मुहुर्मुहुः ।  
 सहस्राऽराऽऽगतं मूले मूलं तत्रैवमानयेत् ॥ १६ ॥  
 चन्द्रः सूर्यं लयं याति सूर्यश्चन्द्रमसि प्रभो ! ।  
 यो बाह्येनानयेत् शब्दं तस्य बिन्दुचयो भवेत् ॥ १७ ॥  
 यावद्बाह्ये चन्द्रमसि मनो याति रविप्लुते ।  
 अन्तर्गते चन्द्रसूर्यं न तस्य दुरितं तनौ ॥ १८ ॥  
 केवलं सूक्ष्मवायुस्थं वायवीशक्तिलालितम् ।  
 मानसं यः करोतीति तस्य योगादिवर्द्धनम् ॥ १९ ॥  
 प्राप्ते यज्ञोपवीते यः श्रीधरो ब्राह्मणोत्तमः ।  
 योगाभ्यासं तदा कुर्यात् स भावो योगिवक्त्रभः ॥ २० ॥  
 यावत्कालं स्थितं बिन्दुं बाल्यभावे यथा यथा ।  
 तथा तथा योगमार्गं बिन्दुपातान्परिष्यति ॥ २१ ॥  
 तथापि यदि मासं वा पक्षं वा दशभिर्दिनम् ।  
 यदि तिष्ठति बिन्दुग्रे साक्षादभ्यासतो जयी ॥ २२ ॥  
 कामानलमहापीडा-विशिष्टः पुरुषो यदा ।  
 तत्कामादिसंहरणे विना योगेन कः क्षमः ? ॥ २३ ॥

योगभ्रंशकारणम् ।—

समसंसर्गगूढेन कामो भवति निश्चितम् ।  
 तत्कामात् क्रोध उत्पन्नो महाशत्रुविनाशकृत् ॥ २४ ॥  
 क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।  
 स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद्दिनाशनम् ॥ २५ ॥

योगग्रहणकालः ।—

अतः सङ्घट्टिमावार्थं मूलादिब्रह्ममण्डले ।

ध्यात्वा श्रीनाथपादाब्जं सिद्धो भवति साधकः ॥ २६ ॥  
 ईश्वरस्य कृपाचिह्नादादौ शान्तिर्भवेद् भुवि ।  
 शान्तिभिर्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥  
 शान्तिविद्याप्रतिष्ठां च निवृत्तिरिति ताः स्मृताः ।  
 चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ॥ २८ ॥  
 इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः ।  
 पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखम् ॥ २९ ॥  
 शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका ।  
 पठन्ति मम तन्त्राणि दुर्लभा भावबोधकाः ॥ ३० ॥  
 यज्ञोपवीतकाले च पशुभावाश्रयो भवेत् ।  
 कुतस्तावद्दीराचारो यावद् योगो न सिध्यति ॥ ३१ ॥  
 आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा योगसाधनम् ।  
 तस्यैव जायते सिद्धिरिष्टा पादाश्वजे मतिः ॥ ३२ ॥  
 देवगुरौ महाभक्तिर्यस्य नित्यं विवर्द्धते ।  
 संवत्सरात्तस्य सिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥ ३३ ॥  
 वेदागमपुराणानां सारमालोक्य यत्नतः ।  
 मनः संस्थापयेदिष्ट-पादाश्वोरुहमण्डले ॥ ३४ ॥  
 चेतसि चेत्रकमले षट्चक्रे योगनिर्मले ।  
 मनो निधाय मौनो यः स भवेद् योगिवल्लभः ॥ ३५ ॥  
 मनः करोति कर्माणि मनो लिप्यति पातके ।  
 मनःसंयमनी भूत्वा पापपुण्यैर्न लिप्यते ॥ ३६ ॥  
 भैरवो उवाच ।—  
 वद कान्ते । रहस्यं मे येन सिद्धो भवेन्नरः ।  
 तत्रकारं विशेषेण योगिनामप्यगोचरम् ॥ ३७ ॥  
 यत्रैव गोपयेद् यद् यद् न निन्देन्न निरीक्षयेत् ।  
 धूजयेद्वावयेच्चैव वर्जयेन्न जुगुप्सयेत् ॥ ३८ ॥



क्रमेण वद तत्त्वञ्च यदि स्नेहोऽस्ति योगिनि ! ।

अज्ञात्वा पीठतत्त्वञ्च योगी मोहाश्रितो भवेत् ॥ ३९ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

त्रैलोक्ययोगयोग्योऽसि षट्चक्रमेदने रतः ।

त्वमेव परमानन्द ! सत्त्वाधिष्ठाननिर्मल ! ॥ ४० ॥

वीरसाधना-विधिनिषेधः ।—

संघातयेन्महावीर ! एतान् दोषान् महाभयान् ।

कामक्रोधलोभमोह-मदमात्सर्यसंज्ञकान् ॥ ४१ ॥

संघातयेन्महावीरो विकारं चिन्तयेद्भवम् ।

निद्रा लज्जा दौर्मनस्यं दशकालानलः प्रभो ! ॥ ४२ ॥

संगोपयेन्महावीरो महामन्त्रं कुलक्रियाम् ।

मुद्राच्चसूत्रतन्त्रार्थं योगिनीवीरसङ्गमम् ॥ ४३ ॥

अत्याचारं भैरवाणां योगिनीनाञ्च साधनम् ।

नाड्यौग्रथनमानञ्च गोपयेन्मातृजारवत् ॥ ४४ ॥

न निन्देत् प्राणनिधने देवतां गुरुमीश्वरम् ।

सुरां विद्यां महाक्षेत्रं पीठं योगादिकारणम् ॥ ४५ ॥

योगिनीं जडसुन्मत्तं जन्मकर्मकुलप्रियाम् ।

प्रयोगधर्मकर्तारं न निन्देत् प्राणसंस्थितौ ॥ ४६ ॥

ज्येष्ठभ्रातृवधूञ्चैव बौद्धाचारञ्च योगिनम् ।

कर्माशुभशुभञ्चैव महावीरो न निन्दयेत् ॥ ४७ ॥

निरीक्षयेन्न कदाऽपि कन्यायोनिं दिने रतिम् ।

पशुक्रीडां विवसनां कामिनीं प्रकटस्तनीम् ॥ ४८ ॥

विग्रहं द्यूतपापार्थं क्लीवं विष्ठादिकं शुचौ ।

अविचारमारणञ्च अप्रमत्तस्य नेक्षयेत् ॥ ४९ ॥

पूजयेत् परया भक्त्या देवतां गुरुमीश्वरम् ।

शक्तिसाध्यमात्मरूपं स्थूलसूक्ष्मं प्रयत्नतः ॥ ५० ॥

अतिथिं मातरं सिद्धं पितरं योगिनं तथा ।  
 पूजयेत् परया भक्त्या सिद्धमन्त्रसुसिद्धये ॥ ५१ ॥  
 भावयेदेकचित्तेन साधूक्तं योगसाधनम् ।  
 गुरोर्वाक्योपदेशञ्च स्वधर्मं तीर्थदेवताम् ॥ ५२ ॥  
 कुलाचारं वीरतन्त्रमात्मानं परमेष्ठिनम् ।  
 भावयेद्द्विधिविद्याञ्च तन्त्रसिद्धार्थनिर्णयम् ॥ ५३ ॥  
 वर्जयेत् साधकश्रेष्ठो ह्यगस्यागमनादिकम् ।  
 धूर्तसङ्गं वञ्चकञ्च प्रलापमनृताशुभम् ॥ ५४ ॥  
 वर्जयेत् पापगोष्ठीञ्च ह्यालस्यं बहुजल्पनम् ।  
 अवेदकर्मसञ्चारं गोसरं ब्राह्मणस्य च ॥  
 जुगुप्सयेन्न कदापि विष्णुमूर्त्तं क्लेशोत्थितम् ॥ ५५ ॥  
 ह्रीनाङ्गीपिशितं नाथ ! कपालहरणादिकम् ।  
 सुरां गोपालनञ्चैव निजपापं रिपोर्भयम् ॥ ५६ ॥  
 वज्र्यान्घेतानि सर्वाणि यदि सिद्धिमिहेच्छति ।  
 समयाचारमेवेदं योगिनां वीरभाविनाम् ॥ ५७ ॥  
 गुर्वान्नया यः करोति जीवन्मुक्तो भवेद् भुवि ।  
 वृथा धर्मं वृथा चर्यं वृथा दीक्षां वृथा तपः ॥ ५८ ॥  
 वृथा सुकृतमाख्येति गुर्वान्नालङ्घनं नृणाम् ।  
 ब्राह्मणक्षत्रियादीनामादौ योगादिसाधनम् ॥ ५९ ॥  
 पश्चात् कुलक्रिया नाथ ! योगविद्याप्रसिद्धये ।  
 विना भावेन वीरेण पूर्णयोगी कुतो भवेत् ? ॥ ६० ॥  
 आदौ कुर्यात् पशुभावं पश्चात् कुलविचारणम् ।  
 मम तन्त्रे महादेव ! केवलं सारनिर्णयम् ॥ ६१ ॥  
 अकस्मात् भक्तिसिद्धयर्थं कुलाचारञ्च योगिनाम् ।  
 ब्राह्मणानां कुलाचारं केवलं ज्ञानसिद्धये ॥ ६२ ॥  
 ज्ञानेन जायते योगी योगादमरविग्रहः ।

भूत्वा योगी कुलीनश्च योगाभ्यासमहर्निशम् ॥ ६३ ॥  
 षट्चक्रं भूतनित्यं भावयेद्भावसिद्धये ।  
 मूलपद्मस्योर्ध्वदेशे लिङ्गमूले महाशुचिः ॥ ६४ ॥  
 स्वाधिष्ठाने महापद्मं सभ्रुणं वायुना यजेत् ।  
 एतत् षड्दलवर्णानां भावनां हि करोति यः ॥  
 तस्य साक्षाद्भवेद्दिष्णू राकिणीसहितः प्रभो ! ॥ ६५ ॥  
 स्वाधिष्ठानषड्दलस्य कर्णिकामध्यमण्डले ।  
 दलाष्टकं भावयित्वा नागयुक्तं स ईश्वरः ॥ ६६ ॥  
 अष्टनागा अष्टदले प्रतिभान्ति यथारुणाः ।  
 जलस्योपरि पद्मे च ध्यायेत्तन्नागसुप्रभान् ॥ ६७ ॥  
 अनन्तं वासुकिं पद्मं महापद्मञ्च तत्त्वकम् ।  
 कुलीरं कर्कटं शङ्खं दक्षिणादौ दले भजेत् ॥ ६८ ॥  
 अष्टदलोपरि ध्यायेत् कर्णिकावृत्तयुग्मकम् ॥ ६९ ॥  
 तदूर्ध्वे षड्दलं वादि-लान्तयुक्तं सविन्दुकम् ।  
 पूर्वादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्त्तवायुना ॥ ७० ॥  
 पुनः पुनः कुम्भयित्वा ध्यायेत् षड्वर्णवायवीम् ।  
 केशरं युगलं ध्यायेत् फणाईमाकृतिं मुदा ॥ ७१ ॥  
 अष्टदले षड्दले च विभाव्य योगिराड् भवेत् ॥ ७२ ॥  
 अष्टदलस्योर्ध्वदेशे वृत्तयुग्मं मनोहरम् ।  
 तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् षड्दले वा दिनान्तकम् ॥ ७३ ॥  
 दलाष्टकाधो ध्यायेद् यो वृत्तयुग्मं मनोहरम् ।  
 वृत्ताधो मण्डलाकारं स्वबीजं व्याप्य तिष्ठति ॥ ७४ ॥  
 वृत्तलग्नं समाख्यातं वां-बीजं विद्युदाकरम् ।  
 कोटिसूर्यसमाभासं विभाव्य योगिनां पतिः ॥ ७५ ॥  
 यान्तवोजकलानान्तु अधः षट्कोणमण्डलम् ।  
 षट्कोणे दक्षिणादौ च भावयेद् यादिलान्तकम् ॥ ७६ ॥

तत् षट्कोणमध्यदेशे षट्कोणं धूम्रतेजसम् ।  
 तत् कोणे दक्षिणादी च द्रव्यादि षट्कमाश्रयेत् ॥ ७७ ॥  
 द्रव्यं गुणास्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।  
 समवायं क्रमेणैव षट्कोणेषु विभावयेत् ॥  
 पूर्वादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्त्तवायुना ॥ ७८ ॥  
 सर्वत्र भावयेन्मन्त्री कुम्भयित्वा पुनः पुनः ।  
 द्रव्यषट्कोणमध्ये तु षट्कोणं चारुतेजसम् ॥  
 कोणे कोणे च षड्वर्गान् भावयेत् स्थिरचञ्चलान् ॥ ७९ ॥  
 तन्मध्ये च त्रिकोणे च रुक्मिणीसहितं हरिम् ॥ ८० ॥  
 कोटिचन्द्रमरीचिस्थ ध्यायेद् योगी विशालधीः ।  
 षड्दलान्तर्गतं पद्मं यागिनामपि साधनम् ॥ ८१ ॥  
 योगी नित्यं यः कुरुते तस्य मासात् प्रसिध्यति ।  
 एतच्चक्रप्रसादेन नीरोगो निरहङ्कृतः ॥ ८२ ॥  
 सर्वज्ञा भवति क्षिप्रं श्रीनाथपदभावनात् ।  
 ज्योतीरूपं योगमार्गं सूक्ष्मातिसूक्ष्मनिर्मलम् ॥ ८३ ॥  
 त्रैलोक्यकामनासिद्धिः षट्चक्रे भावयेद्धरिम् ।  
 यो हरिः स समस्तस्य यः शम्भुः सूक्ष्मरूपष्टक् ॥ ८४ ॥  
 सूक्ष्मरूपस्थितो ब्रह्मा ब्रह्माधीनमिदं जगत् ।  
 एकमूर्त्तस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८५ ॥  
 मम विग्रहमाकृष्टाः सृजत्यवति हन्ति च ।  
 प्राणायामाद्भवा एतं योगविघ्नकराः स्मृताः ॥ ८६ ॥  
 प्राणायामेन निष्पत्तिः प्रणवे सिद्धिमाप्नुयात् ।  
 अकारं ब्रह्मणो वर्णं शब्दरूपं महाप्रभम् ॥ ८७ ॥  
 प्रणवान्तगतं नित्यं यो हि पुरकमाश्रयेत् ।  
 उकारं वैष्णवं वर्णं शब्दभेदान्भोश्वरम् ॥ ८८ ॥  
 प्रणवान्तगतं सत्त्वं योगकुम्भकमाश्रयेत् ।

मकारं शान्भव रूपं जीवभूतं विधूङ्गतम् ॥ ८९ ॥  
 प्रणवान्तस्थितं कालं लयस्थानं समाश्रयेत् ।  
 वर्षत्रयविभागेन प्रणवं परिकल्पितम् ॥ ९० ॥

हंसमन्त्रः ।—

प्रणवाज्जायते हंसो हंसः सोऽहं परो भवेत् ।  
 सोऽहं ज्ञानं महाज्ञानं योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ९१ ॥  
 निरन्तरं भावयेद् यः स एव परमो भवेत् ।  
 हं पुमान् श्वासरूपेण चन्द्रेण प्रकृतिस्तु सः ॥ ९२ ॥  
 एतद्वंसं विजानीयात् सूर्यमण्डलभेदकः ।  
 विपरीतक्रमेणैव सोऽहं-ज्ञानं यदा भवेत् ॥  
 तदैव सूर्यः सिद्धः स्यात् सुरासुरप्रपूजितः ॥ ९३ ॥  
 हकारार्णं सकारार्णं गोपयित्वा ततः परम् ।  
 सन्धिं कुर्यात्ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः ॥ ९४ ॥  
 एतत् हंसं महामन्त्रं स्वाधिष्ठाने मनोग्रहे ॥ ९५ ॥  
 मनी रूपं भजेद् यस्तु स भवेत् सूर्यमध्यगः ।  
 हंसं सूर्यं विजानीयात् सोऽहं चन्द्रो न संशयः ॥  
 विपरीतो यदा भूयात्तदैव मोक्षभागभवेत् ॥ ९६ ॥  
 यदि हंसमनो रूपं स्वाधिष्ठाने हरेः पदे ।  
 विभाव्य श्रीगुरोः पादे नीयते नात्र संशयः ॥ ९७ ॥  
 सोऽहं यदा शक्तिकूटं अकाराऽऽकारसम्पुटम् ।  
 कृत्वा जपति यो ज्ञानी स भवेत् कल्पपादपः ॥ ९८ ॥  
 जपहोमादिकं सर्वं हंसेन यः करोति हि ।  
 तदैव चन्द्रसूर्यस्य चाङ्गमन्त्रप्रसाधकः ॥ ९९ ॥  
 एतज्जपं महादेव ! देहमध्ये करोम्यहम् ॥ १०० ॥  
 एकविंशत् सहस्राणि षट्शतानि च हं मनुम् ।  
 पंरूपेण हकारञ्च स्त्रीरूपेण सकारकम् ॥

जप्त्वा रक्षां करोतीह चन्द्रबिन्दुशतं च ॥ १०१ ॥  
 प्रणवान्तं महाहंसं नित्यं जपति यो नरः ।  
 वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य वायवी सुकृपा भवेत् ॥ १०२ ॥  
 बृहद्वंसं प्रवक्ष्यामि येन सिद्धो भवेन्नरः ॥ १०३ ॥  
 कामरूपी कुलादेव वाक्सिद्धिरिति निश्चितम् ।  
 आदौ प्रणवमुच्चार्य ततो हंसपदं लिखेत् ॥ १०४ ॥  
 तत्पश्चात् प्रणवं ज्ञेयं ततः प्रणवमेव च ।  
 तर्पयामि पदस्थान्ते प्रणवं फडिति स्मरेत् ॥ १०५ ॥  
 एतद्वि हंसमन्त्रस्तु वीराणामुदयाय च ।  
 बृहद्वंसप्रसादेन षट्चक्रभेदको भवेत् ॥ १०६ ॥  
 षट्चक्रे च प्रशंसन्ति सर्वे देवाश्चराचराः ।  
 योगसिद्धिविद्यया मे भ्रमन्ति क्रोधिनस्तनौ ॥ १०७ ॥  
 यदि हंसं बृहद्वंसं जपन्ति वायुसिद्धये ।  
 तदा सर्वे पलायन्ते राक्षसान्मानुषा यथा ॥ १०८ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावनिर्णये पाशवकल्पे  
 षट्चक्रसारसङ्घटे योगशिखाविधिनिर्णये सिद्धमन्त्रप्रकरणे  
 भैरव-भैरवीसंवादे त्रयोविंशः पटलः ॥ २२ ॥

## अथ त्रयोविंशः पटलः ।

भैरव्युवाच ।—

अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्ममार्गमनुत्तमम् ।  
 यद् यज्ज्ञात्वा सुराः सर्वे जयाख्या-परमं जगुः ॥ १ ॥  
 नमस्तेजःप्रकाशाय महतां धर्मबृहद्वये ।  
 योगाय योगिनां देव ! भक्तप्रस्थनिरूपणम् ॥ २ ॥  
 योगाभ्यासं यः करोति न जानातीह भक्षणम् ।

कोटिवर्षसहस्रेण न योगी भवति ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अतो भक्षणमाहात्म्यं प्रवदामि समासतः ।

यज्ज्ञात्वा सिद्धिमाप्नोति स्वाधिष्ठानादिभेदनम् ॥ ४ ॥

योगिनां भोजननियमः ।—

आदौ विवेकी यो भूयाद् भूतले परमेश्वर ! ।

स एव भक्षणीयञ्च गृहेऽरण्ये समाचरेत् ॥ ५ ॥

वायुसनदृढानन्दः परमानन्दनिर्भरः ।

मिताहारं सदा कुर्यात् पूरकाद्वादहेतुना ॥ ६ ॥

तदा पूरकसिद्धिः स्याद्भक्षणादिनिरूपणात् ।

उदरं पूरयेन्नित्यं कुम्भयित्वा पुनः पुनः ॥ ७ ॥

निजहस्तप्रमाणत्रिः पूरयेत् पूर्णमेव च ।

तत् प्रस्थं स्थापयेन्नाथ विश्वामित्रकपालके ॥ ८ ॥

हंसहादशवारिण शिलायामपि घर्षयेत् ।

नित्यं तत्पात्रपूर्णञ्च वायुनैकेन भक्षयेत् ॥ ९ ॥

तण्डुलान् शालिसम्भूतान् कपालप्रस्थपूर्णकान् ।

दिने दिने क्षयं कुर्याद्भक्षणादिषु कर्मसु ॥ १० ॥

हंसहादशवारिण जपेन संक्षयञ्चरेत् ।

शिलायां तत्कपालञ्च वर्धयेत् पूरकादिकम् ॥ ११ ॥

यावत्कालं क्षयं याति निजभक्षणनिर्णयम् ।

तत्कालं वायुनाऽऽपूर्येत् स्वोदरं काकचञ्चुभिः ॥ १२ ॥

आकुञ्चयेत् सदा मूले कुण्डलीं भक्षधारणात् ।

तत्र संपूरयेद् योगी भक्षप्रस्थावनाशनात् ॥ १३ ॥

कालक्रमेण तत् सिद्धिमवाप्नोति जितेन्द्रियः ।

यत् स्थानं भक्षणस्थैव तत् स्थाने पूरयेत् सुखम् ॥ १४ ॥

पुनः पुनर्भक्षणेन भक्ष्यसिद्धिमुपैति हि ।

विना पूरकयोगेन भक्षणं नापि सिध्यति ॥ १५ ॥

अथवाऽन्यप्रकारेण भक्ष्यत्यागविनिर्णयम् ।  
 येन हीना न सिध्यन्ति नाडीचक्रस्य देवताः ॥ १६ ॥  
 द्वात्रिंशद् ग्राममादाय त्रिपर्वणि यथास्थितम् ।  
 अर्द्धश्रासं विहायापि नित्यं भक्षणमाचरेत् ॥ १७ ॥  
 सदा सम्पूरयेद्वायुं भावको गतभीर्महान् ।  
 भक्ष्यस्थाने समायोज्य पिवेद्वायुमहर्निशम् ॥ १८ ॥  
 चतुःषष्टिदिने सर्वं क्षयं कृत्वा ततः सुधीः ।  
 पयोभक्षणमाकुर्व्यात् स्थिरचेता जितेन्द्रियः ॥ १९ ॥  
 पयःप्रमाणं वक्ष्यामि हस्तप्रस्थं त्रयं त्रयम् ।  
 ज्ञानैः शनैर्विजेतव्याः प्राणा मत्तगजेन्द्रवत् ॥ २० ॥  
 अण्मासाज्जायते सिद्धिः पूरकादिषु लक्षणम् ।  
 क्रमेणाष्टाङ्गसिद्धिः स्याद् यतीनां कामरूपिणाम् ॥ २१ ॥  
 वैश्वपद्मासनं कृत्वा विजयानन्दनन्दितः ।  
 धारयेन्मारुतं मन्त्री मूलाधारे मनोलयम् ॥ २२ ॥

आसननियमस्तद्भेदाश्च ।—

अथासनप्रभेदश्च शृणु मत्सिद्धिकाङ्क्षिणाम् ।  
 येन विना पूरकाणां सिद्धिभाक् न महीतले ॥ २३ ॥  
 अधोमुण्डासनं वक्ष्ये सर्वेषां प्राणिनां सुखम् ।  
 ऊर्ध्वमार्गे पदे दत्त्वा धारयेन्मारुतं सुधीः ॥ २४ ॥  
 सर्वासनानां श्रेष्ठं हि ऊर्ध्वपादो यदाचरेत् ।  
 तदैव महतीं सिद्धिं ददाति वायवी कला ॥ २५ ॥  
 एतत् पद्मासनं कुर्व्यात् प्राणवायुप्रसिद्धये ।  
 शुभासनः सदा ध्यायेत् पूरयित्वा पुनः पुनः ॥ २६ ॥  
 उरुमूले वामपादं पुनस्तद्दक्षिणं पदम् ।  
 वामोरो स्यादयित्वा च पद्मासनमिदं स्मृतम् ॥ २७ ॥  
 सव्यपादस्य योगेन आसनं परिकल्पयेत् ।



तदैकासनकाले तु द्वितीयासनमाचरेत् ॥ २८ ॥  
 शृष्टे करद्वयं नीत्वा वृद्धाङ्गुष्ठद्वयं सुधीः ।  
 कायसङ्कोचमाकृत्य धृत्वा बद्धासनो भवेत् ॥ २९ ॥  
 बद्धपद्मासनं कृत्वा वायुबद्धं पुनः पुनः ।  
 चिवुकं स्थापयेद् यत्राह्लादितेजसि भास्करे ॥ ३० ॥  
 इत्यासनं हि सर्वेषां प्राणिनां सिद्धिकारणम् ।  
 वायुवश्याय यः कुर्यात् स योगी नात्र संशयः ॥ ३१ ॥  
 स्वभावसिद्धिकरणं सर्वेषां स्वस्तिकासनम् ।  
 वामपादतले कुर्यात् पाददक्षिणमेव च ॥ ३२ ॥  
 सव्यापसव्ययोगिन आसनद्वयमेव च ।  
 सर्वत्रैवं प्रकारञ्च कृत्वा नारीव सा रमेत् ॥ ३३ ॥  
 आसनानि ऋणु ह्येतत् त्रिंशतासंख्यकानि च ।  
 सव्यापसव्ययोगेन द्विगुणं प्रभवेदिह ॥ ३४ ॥  
 चतुःषष्ट्यासनानौह वदामि वायुसाधनात् ।  
 द्वात्रिंशद्विन्दुभेदाय कल्पयेद्वायुवृद्धये ॥ ३५ ॥  
 कार्मुकासनमाकृत्य उदरे पूरयेत् सुखम् ।  
 तदा वायुर्वशो याति कालेन सूक्ष्मवायुना ॥ ३६ ॥  
 कृत्वा पद्मासनं मन्त्री वेष्टयित्वा प्रधारयेत् ।  
 करेण दक्षिणेनैव वामपादान्तिकं तटम् ॥ ३७ ॥  
 सव्यापसव्यद्विगुणं कार्मुकासनमेव च ।  
 कार्मुकद्वययोगेन शरवद्वायुमानयेत् ॥ ३८ ॥  
 कुक्कुटासनमावच्ये नाडीनिर्मलहेतुना ।  
 मत्कुलागमयोगेन कुर्याद्वायुनिषेवणम् ॥ ३९ ॥  
 निजहस्तद्वयं भूमौ पातयित्वा जितेन्द्रियः ।  
 पद्भ्यां बद्धं यः करोति कूर्परद्वयमध्यतः ॥ ४० ॥  
 सव्यापसव्ययुगलं कुक्कुटं ब्रह्मणा कृतम् ।

बद्धं कृत्वा अधःशीर्षं यः करोति खगासनम् ॥ ४१ ॥  
 खगासनप्रसादेन अमलेपो भवेद् द्रुतम् ।  
 पुनः पुनः श्वादेव त्रिषयश्मलोपकृत् ॥ ४२ ॥  
 लोलोसनं सदा कुर्यात् वायुलोलापघातनात् ।  
 स्थिरवायुप्रसादेन स्थिरचेता भवेद् द्रुतम् ॥ ४३ ॥  
 पद्मासनं समाकृत्य पादयोः सन्धिगह्वरे ।  
 हस्तद्वयं मध्यदेशे नियोज्य कुक्कुटाकृतिः ॥ ४४ ॥  
 निजहस्तद्वयं पश्चात् निपात्य हस्तनिर्भरम् ।  
 कृत्वा शरीरमुत्थाप्य स्थित्वा पद्मासनेऽनिलम् ॥ ४५ ॥  
 स्थित्वैतदासने मन्त्री अधःशीर्षं करोति चेत् ।  
 उत्तमाङ्गासनं ज्ञेयं योगिनामतिदुर्लभम् ॥ ४६ ॥  
 एतदासनमात्रेण शरीरं शीतलं भवेत् ।  
 पुनः पुनः प्रसादेन चैतन्या कुण्डली भवेत् ॥ ४७ ॥  
 सव्यापसव्ययोगिन यः करोति पुनः पुनः ।  
 पूरयित्वा मूलपद्मे सूक्ष्मवायुं विकृन्धयेत् ॥ ४८ ॥  
 कृत्वा कुम्भकमेवं हि सूक्ष्मवायुलयं विधौ ।  
 मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्ते स्थापयेत्त्रयगे पदे ॥ ४९ ॥  
 एतत् शुभासनं कृत्वा सूक्ष्मरन्ध्रे मनोलयम् ।  
 सूचीरन्ध्रे यथा सूत्रं पूरयेत् सूक्ष्मवायुना ॥ ५० ॥  
 एतत् क्रमेण षण्मासात् पूरकस्यापि लक्षणम् ।  
 महासुखं समाप्नोति योगाऽष्टाङ्गनिषेवणात् ॥ ५१ ॥  
 अथ वक्ष्ये महादेव ! पर्वतासनमङ्गलम् ।  
 यत् कृत्वा स्थिररूपो स्यात् षट्चक्राटिविलोपनम् ॥ ५२ ॥  
 योन्यासनं पर्वतेन योगं योगफलेऽनिलम् ।  
 तत्कालफलवन्तीव खिचरो यावदेव हि ॥ ५३ ॥  
 पादयोगेन चक्रस्य लिङ्गाग्रं यो नियोजयेत् ।

अन्यत् पदसुरौ दत्त्वा तत्र योन्यासनं भुवि ॥ ५४ ॥  
 तत्र मध्ये महादेव ! बन्धयोन्यासनं शृणु ।  
 यत् कृत्वा खेचरो भूत्वा विचरेदीश्वरो यथा ॥ ५५ ॥  
 कृत्वा योन्यासनं नाथ ! लिङ्गगुह्यादिवन्धनम् ।  
 मुखनासानेत्रकर्णं कनिष्ठाङ्गुलिभिस्तथा ॥ ५६ ॥  
 श्रोष्ठाधरकनिष्ठाभ्यां तथैव मध्यनासिके ।  
 मध्यमाभ्यां नेत्रयुग्मं तर्जनौभ्यां परैः श्रुते ॥ ५७ ॥  
 एतद् योन्यासनं नाथ ! योगिनामतिदुर्लभम् ।  
 कृत्वा यः पूरयेद्वायुमूलमाकुञ्च्य स्तम्भयेत् ॥ ५८ ॥  
 सव्यापसव्ययोगेन सिद्धो भवति साधकः ।  
 शनैः शनैः समारुह्य कुम्भकं परिपूरयेत् ॥ ५९ ॥  
 अरुणोदयकालाच्च वसुदण्डे सदाशिव ! ।  
 सव्यापसव्ययोगेन गृह्णीयाद्वायुगार्जलम् ॥ ६० ॥  
 द्वितीयप्रहरं कुर्याद्वायुपूजां मनोरमाम् ।  
 एतदासनमाकृत्य सिद्धो भवति साधकः ॥ ६१ ॥  
 अथान्यदासनं वक्ष्ये यत् कृत्वा सोऽमरो भवेत् ।  
 मत्साधकः शुचिः श्रीमान् कुर्याद् गत्वा निराविले ॥ ६२ ॥  
 भेकानामासनं योगं निजवक्षसि सम्मुखम् ।  
 निधाय पादयुगलं स्कन्धे बाहू पदोपरि ॥ ६३ ॥  
 ध्यायेद्द्वि चित्पदं भ्रान्तमासनस्थः सुखाय च ।  
 यदि सर्वाङ्गमुत्तोल्य गगने खेचरासनम् ॥ ६४ ॥  
 महाभेकासनं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।  
 महाविधामहामन्त्रं प्राप्नोति जपतीह यः ॥ ६५ ॥  
 एतत् प्रभेदं वक्ष्यामि करोति यः स चामरः ।  
 एकपादसुरौ बद्ध्वा स्कन्धेऽन्यत् पादरक्षणम् ॥ ६६ ॥  
 एतत् प्राणासनं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।

वायुमुले समारोप्य ध्यात्वाऽऽकुञ्च्य प्रकारयेत् ॥ ६७ ॥  
केवलं पादमेकञ्च स्कन्धे चारोप्य यत्नतः ।  
एकपादेन गगने तिष्ठेत् स दण्डवत् प्रभो ! ॥ ६८ ॥  
अपानासनमेतद्धि सर्वेषां पूरकाश्रयम् ।  
कृत्वा सूक्ष्मे शीर्षपद्मे समारोप्य च वायुभिः ॥ ६९ ॥  
तदा सिद्धो भवेन्नर्त्यः प्राणाऽपानसमागमम् ।  
अपानासनयोगेन कृत्वा योगेश्वरो भुवि ॥ ७० ॥  
समानासनमावक्ष्ये सिद्धमन्त्राटिसाधनात् ।  
एकपादसुरौ दत्त्वा गुह्येऽन्यस्त्रिङ्गवक्त्रके ॥ ७१ ॥  
एतद्दीरासनं नाथ ! समानासनसंज्ञकम् ।  
इत्याकृत्य जपेन्मन्त्रं धृत्वा वायुं चतुर्दले ॥ ७२ ॥  
कुण्डलीं भावयेन्मन्त्री कोटिविद्युल्लताकृतिम् ।  
आत्मचन्द्रासृतरसैराप्लुतां योगिनीं सदा ॥ ७३ ॥  
वीरासनन्तु वीराणां योगवायुप्रधारणम् ।  
यो जानाति महावीरः स योगी भवति ध्रुवम् ॥ ७४ ॥  
अथ वक्ष्ये महाकाल ! समानासनसाधनः ।  
भेदक्रमेण यज्ज्ञात्वा वीराणामधिपो भवेत् ॥ ७५ ॥  
समानासनमाकृत्य वृद्धाङ्गुष्ठं करेण च ।  
एकेन साधिकारी स्याद् स्वरयोगाटिसाधने ॥ ७६ ॥  
आसनं यो हि जानाति वायूनां हरणं तथा ।  
कालौदीनां निर्णयन्तु स कदाचिन्न नश्यति ॥ ७७ ॥  
कालेन लभ्यते सिद्धिः कालरूपो महोज्ज्वलः ।  
साधकेर्योगिभिर्ध्ययः सिद्धवीरासनात्मना ॥ ७८ ॥  
अथ वक्ष्ये नीलकरह ! ग्रन्थिभेदासनं शुभम् ।  
ज्ञात्वा रुद्रो भवेत् क्षिप्रं सूक्ष्मवायुनिषेवणात् ॥ ७९ ॥  
कृत्वा पद्मासनं मन्त्री जङ्घयोर्हृदये करी ।

कूर्परस्थानपर्यन्तं विभेद्य स्कन्धधारणम् ॥ ८० ॥  
 भित्त्वा पद्मासनं मन्त्री सहस्राङ्गेन घाटनम् ।  
 येन शीर्षं भावनम्नं सर्वाङ्गुलिभिराश्रमम् ॥ ८१ ॥  
 ग्रन्थिभेदासनञ्चेतत् खेचरादिप्रदर्शनम् ।  
 कृत्वा सूक्ष्मवायुलयं परमात्मनि कारयेत् ॥ ८२ ॥  
 अथान्यासनमावह्ये योगपूरकरक्षणात् ।  
 कृत्वा पद्मासनं पादा अङ्गुष्ठजङ्घयोः स्थितम् ॥ ८३ ॥  
 हस्तमेकन्तु जङ्घायां कार्मुके कूर्परोर्द्धुके ।  
 पद्मासने समाधाय अङ्गुष्ठं परिधावयेत् ॥ ८४ ॥  
 कार्मुकासनमेतच्च सव्यापसव्ययोगतः ।  
 पद्मासनं वेष्टयित्वा अङ्गुष्ठायं प्रधावयेत् ॥ ८५ ॥  
 यः करोति सदा नाथ ! कार्मुकासनमुत्तमम् ।  
 स वै रोगादिशत्रूँश्च क्षयं नीत्वा सुखी भवेत् ॥ ८६ ॥  
 अथ दक्ष्येऽत्र संक्षेपात् सर्वाङ्गासनमुत्तमम् ।  
 यत् कृत्वा योगनिपुणो विद्याभिः पण्डितो यथा ॥ ८७ ॥  
 अधो निधाय शीर्षञ्च ऊर्ध्वपादद्वयञ्चरेत् ।  
 पद्मासनन्तु तत्रैव भूमौ कूर्परयुगकम् ॥ ८८ ॥  
 दण्डे दण्डे सदा कुर्यात् अमशान्तिपरः सुधीः ।  
 नित्यं सर्वासनं हित्वा न कुर्यात् वायुधारणम् ॥ ८९ ॥  
 मासेन सूक्ष्मवायूनां गमनञ्चोपलभ्यते ।  
 त्रिमासे देवपदवीं त्रिमासे शीतलो भवेत् ॥ ९० ॥  
 अथ वक्ष्ये महादेव ! मयूरासनमुत्तमम् ।  
 भूमौ निपात्य हस्तौ द्वौ कूर्परोपरि देहकम् ॥ ९१ ॥  
 कूर्परोपरि संस्थाप्य सर्वदेहं स्थिराशयः ।  
 केवलं हस्तयुगलं निपात्य भुवि सुस्थिरः ॥ ९२ ॥  
 एतदासनमात्रेण नाडीसन्धेदनं भवेत् ।

पूरकेण दृढो याति सर्वत्राङ्गाश्रयेण च ॥ ८३ ॥  
 अथान्यदासनं कृत्वा सर्वव्याधिनिवारणम् ।  
 योगाभ्यासी भवेत् क्षिप्रं ज्ञानासनप्रसादतः ॥ ८४ ॥  
 दक्षपादोरुमूले च वामपादतलं तथा ।  
 दक्षपादतलं दक्ष-पार्श्वं संयोज्य धारयेत् ॥ ८५ ॥  
 एतज्ज्ञानासनं नाथ ! ज्ञानाद्विद्याप्रकाशकम् ।  
 निरन्तरं यः करोति तस्य ग्रन्थिः श्लथोभवेत् ॥ ८६ ॥  
 सव्यापसव्ययोगेन मुण्डासनमिति स्मृतम् ।  
 कृत्वा ध्यात्वा स्थिरो भूत्वा लीयते परमात्मनि ॥ ८७ ॥  
 गरुडासनमावच्छे येन ध्यानं स्थिरं भुवि ।  
 सर्वदोषाद्विनिर्मुक्तो भवतीह महावली ॥ ८८ ॥  
 एकपादमुरौ बद्ध्वा एकपादेन दण्डवत् ।  
 जङ्घापादमन्दिदेशे ज्ञानव्यग्रं व्यवस्थितम् ॥ ८९ ॥  
 एतदासनमाकृत्य पृष्ठे संहारमुद्रया ।  
 आराध्य योगनाथञ्च स टास ईश्वरस्य च ॥ ९० ॥  
 अथान्यदासनं वक्ष्ये येन सिद्धो भवेन्नरः ।  
 अकस्माद्वायुसञ्चारं कोकिलाख्याऽऽसनेन च ॥ ९० १ ॥  
 ऊर्ध्वं हस्तद्वयं कृत्वा तदग्रे पादयोः सुधीः ।  
 हृद्वाङ्गुष्ठद्वयं नाथ ! शनैः शनैः प्रधारयेत् ॥  
 पद्मासन समाकृत्य कूर्परोपरि संस्थितः ॥ ९० २ ॥  
 अश्रुवक्ष्ये वीरनाथ ! आनन्दमन्दिरासनम् ।  
 यत् कृत्वा अमरो धीरो भवत्येवेह साधकः ॥ ९० ३ ॥  
 हस्तयुग्मं पार्श्वदेशे पादयुग्मं प्रदापयेत् ।  
 प्रकृत्य दण्डवत् कौल ! नितम्बाग्रे प्रतिष्ठति ॥ ९० ४ ॥  
 खञ्जनासनमावच्छे यत् कृत्वा सुस्थिरो भवेत् ।  
 पृष्ठे पादद्वयं बद्ध्वा हस्तौ भूमौ प्रधारयेत् ॥ ९० ५ ॥

भूमौ हस्तद्वयं नाथ ! पातयित्वाऽनिलं पिबेत् ।  
 पृष्ठे पादद्वयं बद्ध्वा खञ्जनेन जयी भवेत् ॥ १०६ ॥  
 अथान्यदासनं वक्ष्ये साधकानां हिताय च ।  
 पवनासनरूपेण खेचरो योगिराड् भवेत् ॥ १०७ ॥  
 स्थित्वा बद्धासने धीरो नाभेरधः करद्वयम् ।  
 ऊर्ध्वमुण्डः पिबेद्वायुं निरुध्येत यमाविले ॥ १०८ ॥  
 अथ सर्पासनं वक्ष्ये वायुपानाय केवलम् ।  
 शरीरं दण्डवत्पिष्ठेद्रज्जुबद्धस्तु पादयोः ॥ १०९ ॥  
 वायवी कुण्डली देवी कुण्डलाकारमण्डले ।  
 मण्डिता भूषणाद्यैश्च वक्ष्ये सर्पासनस्थितिम् ॥ ११० ॥  
 निद्राऽऽलस्यभयान् त्यक्त्वा रात्रौ कुर्यात् पुनः पुनः ।  
 सर्वान् विघ्नान् वशीकृत्य निद्रादीन् वायुसाधनात् ॥ १११ ॥  
 अथ वक्ष्ये कालरूप ! स्कन्धासनमनुत्तमम् ।  
 कलिपापात् प्रमुच्येत वायवी वशमानयेत् ॥ ११२ ॥  
 निजपादद्वयं बद्ध्वा स्कन्धदेशे च साधकः ।  
 नित्यमेतत् पदद्वन्द्वं भूमौ पुष्टिकरं परम् ॥ ११३ ॥

अति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावासननिर्णये पाञ्चवक्ष्ये

षट्चक्रसारसङ्घेते सिद्धमन्त्रप्रकरणे भैरव-भैरवीसंवादि

त्रयोविंशः पटलः ॥ २३ ॥

### अथ चतुर्विंशः पटलः ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ वक्ष्ये महाकाल ! योगशास्त्रार्थनिर्णयम् ।

येन विज्ञानमात्रेण षट्चक्रप्रतियभेदकः ॥ १ ॥

योगसाधना ।—

पर्वातिरिक्तदिवसे कुर्यात् श्रीयोगसाधनम् ।

कालिकाकुलसर्वस्वं कलिकालान्वितं तथा ॥ २ ॥  
 आसनं विधिना ज्ञानं कोटिकोटिक्रिडाऽन्वितम् ।  
 शतलक्षसहस्राणि ह्यासनानि महीतले ॥ ३ ॥  
 स्वर्गे पातालमध्ये च संयुक्तानि महर्षिभिः ।  
 भेदाभेदक्रमेणैव कुर्यान्नित्यं सदासनम् ॥ ४ ॥  
 तत् प्रकारञ्च विविधं यत् कृत्वा सोऽमरो भवेत् ।  
 अमरः सिद्ध इत्येवमष्टैश्वर्य्यसमन्वितः ॥ ५ ॥  
 प्रतिभाति स एवाथ मूलमन्त्रार्थवेदिनः ।  
 अमरास्तं प्रशंसन्ति सर्वलोके नरन्तरम् ॥ ६ ॥  
 देवाः श्रीकामिनीकान्ताः प्रभवन्ति जगत्त्रये ।  
 कालं हि वशमाकर्तुं नियुक्तो यश्च भावकः ॥ ७ ॥  
 ते सर्वे विचरन्तीह कोटिवर्षशतेषु च ।  
 तत्तदासननामानि शृणु तत् साधनानि च ॥  
 येन विज्ञानमालेण साक्षादौशस्य भक्तमान् ॥ ८ ॥  
 अथ कूर्मासनं नाथ ! कृत्वा वायुं प्रपूरयेत् ।  
 कामरूपी भवेत् क्षिप्र कलिकल्पघनाशनम् ॥ ९ ॥  
 समानासनमाकृत्य लिङ्गाग्रे किल मस्तकम् ।  
 नितम्बे हस्तयुगलं भूमौ सङ्कोचितः पतेत् ॥ १० ॥  
 कुम्भीरासनमावक्ष्ये वायूनां धारणाय च ॥ ११ ॥  
 तिष्ठेत् कुण्डाकृतिर्भूमौ करशीर्षोपरि स्थितौ ।  
 षटोपरि पदं दत्त्वा शीर्षोपरि करद्वयम् ॥  
 तिष्ठेत् कुण्डाकृतिर्भूमौ कुम्भीरासनमेव तत् ॥ १२ ॥  
 अथ मत्स्यासनं वक्ष्ये हस्तोपरि करद्भुलेः ।  
 पादयुग्मप्रमाणेन वृद्धाङ्गुष्ठस्य योजनम् ॥ १३ ॥  
 मकरासनमावक्ष्ये वायुपानाय कुम्भयेत् ।  
 पृष्ठे पादद्वयं बद्ध्वा हस्ताभ्यां पृष्ठबन्धनम् ॥ १४ ॥



अथ सिंहासनं नाथ ! कूर्परोपरि जानुनी ।  
 स्थापयित्वा ऊर्ध्वमुखो वायुपानं समाचरेत् ॥ १५ ॥  
 अथ वक्ष्ये महाकाल ! कुञ्जरासनमुत्तमम् ।  
 करिणैकेन पादाभ्यां भूमौ तिष्ठेत् शिरःकरः ॥ १६ ॥  
 व्याघ्रासनमतो वक्ष्ये क्रोधकालविनाशनम् ।  
 एकपादं शीर्षमध्ये मेरुदण्डोपरि स्थितम् ॥ १७ ॥  
 भल्लूकासनमावक्ष्ये यत् कृत्वा योगिराड् भवेत् ।  
 नितम्बे च पादगोष्ठी हस्ताभ्यामङ्गुलीयकम् ॥ १८ ॥  
 अथ कामासनं वक्ष्ये कामसङ्गेन हेतुना ।  
 गरुडासनमाकृत्य कनिष्ठायैः स्पृशेद्भवम् ॥ १९ ॥  
 वत्तुलासनमावक्ष्ये यत् कृत्वा भैरवो भवेत् ।  
 आकाशस्थितपादाभ्यां पृष्ठदेशं निबन्धयेत् ॥ २० ॥  
 अथ क्षेमासनं वक्ष्ये यत् कृत्वा क्षेमभाक् भवेत् ।  
 दक्षहस्तं दक्षपादं केवलं स्थापयेत् सुधीः ॥ २१ ॥  
 वक्ष्ये मालासनं नाथ ! यत् कृत्वा वायवीप्रियः ।  
 शुभयोगं समाप्नोति एकहस्तस्थितो नरः ॥ २२ ॥  
 अथ दिव्यासनं वक्ष्ये पृष्ठं हस्तेन बन्धयेत् ।  
 एकहस्तमध्यदेशं भूमिहस्तञ्च नासया ॥ २३ ॥  
 अर्द्धोदयासनं नाथ ! सर्वाङ्गं खे नियोजयेत् ।  
 केवलं हस्तयुगलं भुवि चालोडयेत् तथा ॥ २४ ॥  
 अथ चन्द्रासनं वक्ष्ये पादाभ्यां स्वशरीरकम् ।  
 पुनः पुनर्भ्रामयेद् यो वायुधारणपूर्वकम् ॥ २५ ॥  
 अथ हंसासनं वक्ष्ये शरीरेण पुनः पुनः ।  
 भूमौ सन्ताडयेत् श्वासैः प्राणवायुं दृढः सुधीः ॥ २६ ॥  
 अथ सूर्यासनं वक्ष्ये पृष्ठात् पाटेन बन्धनम् ।  
 पृष्ठे भेदान्वितं पादं तस्य हस्तेन बन्धयेत् ॥ २७ ॥

अथ योगासनं वक्ष्ये यत् कृत्वा योगिराड् भवेत् ।  
 तिष्ठेत्पादतलद्वन्द्वे स्वाङ्गे बद्ध्वा करद्वयम् ॥ २८ ॥  
 गदासनमतो वक्ष्ये गदाकृतिर्वसेद्भुवि ।  
 ऊर्ध्वबाहुर्भवेद् येन कायशोधनहेतुना ॥ २९ ॥  
 अथ लक्ष्यासनं वक्ष्ये लिङ्गाग्रेऽङ्घ्रितलद्वयम् ।  
 गुह्यदेशे हस्तयुग्मं तलाभ्यां बन्धयेद्भुवि ॥ ३० ॥  
 अथ कुल्यासनं वक्ष्ये यत्कृत्वा कौलिको भवेत् ।  
 एकहस्तं मस्तकस्थोऽधःशीर्षेऽभिन्नगे करम् ॥ ३१ ॥  
 ब्राह्मणासनमावक्ष्ये यत्कृत्वा ब्राह्मणो भवेत् ।  
 एकपादसुरी दत्त्वा तिष्ठेद्दण्डाकृतिर्भुवि ॥ ३२ ॥  
 क्षत्रियासनमावक्ष्ये यत्कृत्वा वीर्यवान् भवेत् ।  
 केशेन पादयुगलं बद्ध्वा तिष्ठेदधोमुखः ॥ ३३ ॥  
 अथ वैश्यासनं वक्ष्ये यत्कृत्वा धनवान् भवेत् ।  
 वृद्धाङ्गुष्ठेन यस्तिष्ठेत् हस्तयुग्मं स्वकोरसि ॥ ३४ ॥  
 अथ शूद्रासनं वक्ष्ये यत्कृत्वा सेवको भवेत् ।  
 धृत्वाऽङ्गुष्ठद्वयं योज्यं नासाग्रपादमध्यके ॥ ३५ ॥  
 अथ जात्यासनं वक्ष्ये येन जातिस्मरो भवेत् ।  
 हस्ताङ्घ्रियुग्मं भूमौ च गमनागमनं ततः ॥ ३६ ॥  
 पाशवासनमावक्ष्ये कृत्वा पशुपतिर्भवेत् ।  
 पृष्ठे हस्तद्वयं बद्ध्वा कूर्पराग्रे स्वमस्तकम् ॥ ३७ ॥  
 एतेषां साधनादेव चिरजीवी भवेन्नरः ।  
 संवत्सरं साधनाद्दे जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३८ ॥  
 श्रीविद्यासाधनं पश्चात् कथितव्यं तव प्रभो ! ।  
 आसनं योगसिद्धार्थं कायशोधनहेतुना ॥ ३९ ॥  
 इदानीं शृणु देवेश ! रहस्यं कोमलासनम् ।  
 योगसिद्धिविचाराय सिद्धचर्मासनं शुभम् ॥ ४० ॥

अथ नरासनं वक्ष्ये षोडशादिप्रकारकम् ।  
 येन साधनमात्रेण योगी भवति साधकः ॥ ४१ ॥  
 प्रकारं षोडशं प्रीक्तं मत्कुलागमसम्भवम् ।  
 येन साधनमात्रेण साक्षाद् योगी महीतले ॥ ४२ ॥  
 एकमासाद्भवेत् कल्पो द्विमासे द्रुतकल्पनम् ।  
 त्रिमासे योगकल्पः स्याच्चतुर्मासे स्थिराशयः ॥ ४३ ॥  
 पञ्चमासे सूक्ष्मकल्पे षष्ठमासे विवेकगः ।  
 सप्तमासे ज्ञानयुक्तो भावको भवति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥  
 अष्टमासेऽन्नसंयुक्तो जितेन्द्रियकलेवरः ।  
 नवमे सिद्धमिलनो दशमे चक्रभेदवान् ॥ ४५ ॥  
 एकादशे महावीरो द्वादशे खेचरो भवेत् ।  
 इति योगासनस्थश्च योगी भवति साधकः ॥ ४६ ॥

नरासनम् ।—

नरासनं यः करोति स सिद्धो नात्र संशयः ।  
 तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि येन सिद्धो भवेत् प्रभो ! ॥ ४७ ॥  
 अधोमुखं महादेव । नरासनस्य साधने ।  
 करणीयं साधकेन्द्रैर्योगशास्त्रार्थसम्मतम् ॥ ४८ ॥  
 अक्षीणं यौवनोद्दामं सुन्दरं चारुकुन्तलम् ।  
 लोकानां श्रेष्ठमेवं हि पतितं रणसम्मुखे ॥ ४९ ॥  
 तत्सर्वं हि समानीय मङ्गले वासरे निशि ।  
 चन्द्रसूर्यासनं कृत्वा साधयेत्तत्र कौलिकः ॥ ५० ॥  
 अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रकारकम् ।  
 भेकासनं यः करोति स एव योगिनीपतिः ॥ ५१ ॥  
 अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा यागिराड् भवेत् ।  
 तत्सर्वोत्तरशिरसि स्थित्वा चन्द्रासने जपेत् ॥ ५२ ॥  
 अथान्यत् तत्प्रकारञ्च महाविद्यादिदर्शनात् ।

मत्सरे गौरवर्णे च तत्र शैलासने जपेत् ॥ ५२ ॥  
 अथान्यत्तत्प्रकारञ्च योगिकौलो न संशयः ।  
 यद्येवं म्रियते सोऽपि तदा भद्रासने जपेत् ॥ ५४ ॥  
 तत्तत्साधनकाले च एवं कुर्व्याद्दिने दिने ।  
 नृत्यवाद्यगीतराग-भोगोर्नविंशतौ दिने ॥ ५५ ॥  
 चतुर्दशं न वीक्ष्येत् भैरवाणां भयार्दनात् ।  
 मनोनिवेशमात्रेण योगी भवति भैरव ! ॥ ५६ ॥  
 स्त्रेच्छासनं समाकृत्य मन्त्रं जपति यो नरः ।  
 महासारो वीतरागः सिद्धो भवति निश्चितम् ॥ ५७ ॥

श्रवसाधना ।—

अथान्यत् श्रवमाहात्म्यं शृणुष्वावहितो मम ।  
 तत्सर्वं गृह्णानीयाऽऽच्छाद्य शार्दूलचर्मणा ॥ ५८ ॥  
 तत्र मन्त्री महापूजां कृत्वा प्रविश्य संजपेत् ।  
 पद्मासनस्थस्तस्यैव कृतयोगो न संशयः ॥ ५९ ॥  
 एतत्प्रकारासनमाशु कृत्वा जितेन्द्रियो योगफलार्थविज्ञः ।  
 भवेन्ननुत्थो मम चाज्ञया हि सिद्धो गणोऽसौ जगतामधीशः ॥ ६० ॥  
 शृणु शङ्खासनं वक्ष्ये तव वारादिनामृतम् ।  
 भङ्गकञ्च सर्पराजं व्याघ्रं सद्यो मृतं यजेत् ॥ ६१ ॥  
 यस्य मृत्युर्भवेन्नाथ ! भैरवस्य सुरापतेः ।  
 रणे सम्मुखयुद्धस्य तमानीय जपञ्चरेत् ॥ ६२ ॥  
 तत्र कौलासनं कृत्वा अथवा कमलासनम् ।  
 महाविद्यामहामन्त्रं जप्त्वा लिङ्गमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥  
 एतत्सर्वं न गृह्णीयाद् यदीच्छेदात्मनो हितम् ।  
 कुर्व्याधिमरणं कुष्ठं स्त्रीवश्यं पतितं मृतम् ॥ ६४ ॥  
 दुर्भिक्षमृतमुन्मत्तमव्यक्तलिङ्गमेव च ।  
 द्वीनाङ्गं भूचरं वृद्धं पलायनपरं तथा ॥ ६५ ॥

अन्यथा यद् विचारेण हत्वा लोकं जपन्ति ये ।  
 ते सर्वे व्याघ्रभक्षाः स्युः खादन्ति व्याघ्ररूपिणः ॥ ६६ ॥  
 पर्युषितं तथाऽस्त्रस्थमधिकाङ्गं कुक्किल्विषम् ।  
 ब्राह्मणं गोमयं वीरं धार्मिकं सन्यजेत् सुधीः ॥ ६७ ॥  
 स्त्रीजनं योगिनं त्यक्त्वा साधयेद्दीरसाधनम् ।  
 तदा सिद्धो भवेन्नन्वी आज्ञया मे न संशयः ॥ ६८ ॥  
 तरुणं सुन्दरं शूरं मन्त्रविद्धं समुज्ज्वलम् ।  
 गृहीत्वा जपमाकृत्य सिद्धो भवति नान्यथा ॥ ६९ ॥  
 मनुष्यशवहृत्पद्मे सर्वसिद्धिकुलाकुलाः ।  
 तत्र सर्वासनान्येव सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥ ७० ॥  
 अथान्यत्तत्प्रकारन्तु यत् कृत्वा योगिराड् भवेत् ।  
 कोमलाद्यासने स्थित्वा धारयन् मारुतं सुधीः ॥ ७१ ॥  
 तत्कोमलासनं वक्ष्ये शृणुष्व मम तद्वचः ।  
 अष्टद्वकं सृतं बालं षण्मासात् कोमलं परम् ॥ ७२ ॥  
 तद्विभेदं प्रवक्ष्यामि गर्भच्युतमहाशवम् ।  
 तद्वि व्याघ्रत्वचाऽऽबद्धं कृत्वा तत्र जपेत् स्थिरः ॥ ७३ ॥  
 षण्मासानन्तरं यावद्दशमासाच्च पूर्वकम् ।  
 सृतं चारुमुखं बालं गर्भाष्टमपुत्रः सरम् ॥ ७४ ॥  
 एकहस्ते द्विहस्ते वा चतुर्हस्ते समन्ततः ।  
 विशुद्ध आसने कुर्यात् संस्कारं पूजनं ततः ॥ ७५ ॥  
 पूर्णं पञ्चमवर्षं च साधको वीतभीः स्वयम् ।  
 हीनवीतोपनयनो यो सृतः स हि कोमलः ॥ ७६ ॥  
 गर्भच्युतफलं नाथ ! शृणु तत् फलसिद्धये ।  
 अग्निमाद्यष्टसिद्धिः स्यात् संवत्सरस्य साधनात् ॥ ७७ ॥  
 सृतासने जपेन्नन्वी महाविद्यामनुं शुभम् ।  
 अचिरात्तस्य सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७८ ॥

अथान्यत् शवमाहात्म्यं शृणु सिद्धिञ्च साधनात् ।  
 साधको योगिराड् भूत्वा मम पादतले वसेत् ॥ ७९ ॥  
 दशसंवत्सरे पूर्णे यो म्रियेत शुभे दिने ।  
 शनौ मङ्गलवारे च तमानोय प्रसाधयेत् ॥ ८० ॥  
 तत्र वीरासनं कृत्वा यो जपेद्भद्रकालिकाम् ।  
 अथवा बह्वपञ्चे च स सिद्धो भवति ध्रुवम् ॥ ८१ ॥  
 अथ भावफलं वक्ष्ये येन शवादिसाधनम् ।  
 अकस्मात् प्राप्तिमात्रेण शवस्य विहितस्य च ॥ ८२ ॥  
 यं पञ्चदशवर्षीयं सुन्दरं पतितं रणे ।  
 तमानोय जपेद्दिव्यां निशि वीरासने स्थितः ॥ ८३ ॥  
 शीघ्रमेव सुसिद्धिः स्यात् खेचरी वायुपूरणौ ।  
 धारणाशक्तिसिद्धिः स्यात् यः करोतोह साधनम् ॥ ८४ ॥  
 अथ षोडशवर्षीयं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।  
 भोगमोक्षौ करे तस्य शवेन्द्रस्यापि साधनात् ॥ ८५ ॥  
 एवंक्रमेण पञ्चाशद्वर्षीयं सुन्दरं वरम् ।  
 आनीय साधयेद् यस्तु स योगी भवति ध्रुवम् ॥ ८६ ॥  
 शवं रणस्थमानोय साधयेत् सुसमाहितः ।  
 इन्द्रतुल्यो भवेन्नाथ ! रणस्थशवसाधनात् ॥ ८७ ॥  
 यद्वि सम्मुखयुद्धे वा शृणु पट्टीशघातनम् ।  
 शवमानोय वीरेन्द्रो जपेद्दीरासनस्थितः ॥ ८८ ॥  
 तत् शवन्तु महादेव ! पूजार्थं निजमन्दिरे ।  
 देवालये निर्जने च स्थापयित्वा जपञ्चरेत् ॥ ८९ ॥  
 तत्र वीरासनं किंवा योनिमुद्रासनाटिकम् ।  
 पद्मासनं तथा कृत्वा वायुं धृत्वा जपञ्चरेत् ॥ ९० ॥  
 मासैकेन भवेद् योगी विप्रो गुणधरः शुचिः ।  
 सूक्ष्मवायुधारणञ्चो जपेद् यौवनगे शवे ॥ ९१ ॥

श्रवसाधनकाले च यद्व्यत् कर्म करोति हि ।

तत्कर्मसाधनादेव योगी स्यादमरो नरः ॥ ८२ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कालक्रियादिकं ज्ञात्वा सूक्ष्मानिलविधारणम् ।

साधको विचरेद्दीरो वीराचारविवेचकः ॥ ८३ ॥

श्रवादे रणघातस्य क्रियामाहात्म्यमुत्तमम् ।

शृणु सङ्केतभाषाभिः शिवेन्द्रचन्द्रशेखर ! ॥ ८४ ॥

एकहस्तार्द्धमाने तु भूस्यधो विधिर्मन्दरे ।

संस्थाप्य सुशवं नाथ ! मायादावगतः प्रभो ! ॥ ८५ ॥

एकाहं जगदाधारा आधारान्तर्गता सती ।

पतिहीना सूक्ष्मरूपा सधरादिचराचरे ॥ ८६ ॥

मदीयं साधकं पुण्यं धर्मकामार्थमोक्षगम् ।

एका पामि सदा दक्षा धात्रीरूपा सरस्वती ॥ ८७ ॥

केवलं तत्त्वभावेन शम्भो ! योगपरायण ! ।

मग्ना संसारकरणात्त्वयि त्वच्चाहमेव च ॥ ८८ ॥

यद्व्यत् पदार्थनिकरे तिष्ठसि त्वं सदा मुदा ।

तत्रैव संस्थिरा हृष्टा चाहमेव न संशयः ॥ ८९ ॥

एतद्भावं त्वं करोषि कस्य हेतोस्तव प्रिया ।

वामाङ्गे संस्थिरा नित्यं कामक्रोधविवर्जिता ॥ ९० ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

किं प्रयोजनमेवं हि श्रवादीनाञ्च साधनात् ।

यदि ते श्रीपदाभोज-मधुन्यक्तो भवेद् यतिः ॥ ९०१ ॥

त्रिलोक्यपूजिते भीमे ! वाग्वादिनीस्वरूपिणि ! ।

श्रवसाधनमात्रेण केन योगी भवेद्दद ॥ ९०२ ॥

आनन्दरसलावण्ये ! मन्दहासमुखाम्बुजे ! ।

योगी भजति योगार्थं केन तत्फलमावद ॥ ९०३ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

यदि शङ्कर ! भक्तोऽसि मम जापपरायणः ।  
 तथापि शवभावेन शववत् शवसाधनम् ॥ १०४ ॥  
 रात्रियोगे प्रकर्त्तव्यं दिवसे न कदाचन ।  
 शवे स्थिरो यो भवति स भक्तो मे न संशयः ॥ १०५ ॥  
 शवो मेऽतीव सद्भ्यं मम तुष्टिनिबन्धनम् ।  
 ममाज्ञापालने योग्यः कुर्याद्दीरः शवासनम् ॥ १०६ ॥  
 यद्यहं तत्र गच्छामि तदैव स शिवो भवेत् ।  
 निःशेषत्यागमात्रेण शवत्वं प्रलयं तनोः ॥ १०७ ॥  
 यः करोति भावराशिं मयि देव्यां महेश्वर ! ।  
 त्रैलोक्यपूजितायान्तु स शिवः शवमाश्रयेत् ॥ १०८ ॥  
 अधिकारी तु भक्तस्य पालने परपृष्ठतः ।  
 करोमि कामिनीनार्थं सन्देहो नात्र भूतले ॥ १०९ ॥  
 यदा वै त्यज्यते गात्रं पशूनां मारणाय च ।  
 तदैते च मृताः सर्वे जीवन्तं केन हेतुना ॥ ११० ॥  
 तदाहुतिमहाद्रव्यं शवेन्द्रं रणहानिगम् ।  
 आनीय साधयेद् यस्तु स स्थिरो मे सुभक्तिगः ॥ १११ ॥  
 सदा क्रोधी भवेद् यस्तु स क्रूरो नात्र संशयः ।  
 स कथं वीररात्रौ च साधयेद्विद्वलः शवम् ॥ ११२ ॥  
 भयविकलचेता यः स क्रोधी-नात्र संशयः ।  
 नास्ति क्रोधसमं पापं पापात् क्षिप्तो भवेत् शवे ॥ ११३ ॥  
 यो भक्तः पापनिर्मुक्तः सिद्धरूपो निराश्रयः ।  
 विवेकी ध्याननिष्ठश्च स्थिरः संसाधयेत् शवम् ॥ ११४ ॥  
 यावत्कालं स्थिरचित्तं न प्राप्नोति जितेन्द्रियः ।  
 तावत्कालं नापि कुर्यात् शवेन्द्रस्यापि साधनम् ॥ ११५ ॥  
 तद्दिनात्तद्दिनं यावत् यद्वद्वा व्याप्य साधयेत् ॥ ११६ ॥



एवं कृत्वा हविष्याशी महाविद्यादिसाधनम् ।  
जितेन्द्रियो मुदा कुर्यादष्टाङ्गसाधनेन च ॥ ११७ ॥

शवसाधनासिद्धिः ।—

तदष्टाङ्गफलं ह्येतत् यत् कृत्वा सिद्धिभागमवेत् ।  
नाडीमुद्राभेदकञ्च कुलाचारफलान्वितम् ॥ ११८ ॥  
अष्टाङ्गसाधनादेव सिद्धरूपी महीतले ।  
पश्चादन्यं स्वर्गगामी भवेन्न भूतलं विना ॥ ११९ ॥  
आदौ भूतलसिद्धिः स्याद्भवलोकस्य सिद्धिभाक् ।  
पश्चात् स्वर्लोकसिद्धिः स्यान्महर्लोकस्य सिद्धिभाक् ॥ १२० ॥  
जनलोकस्य सिद्धीशस्तपोलोकस्य सिद्धिभाक् ।  
सत्यलोकस्य सिद्धीशः पश्चाद्भवति साधकः ॥ १२१ ॥  
एवंक्रमेण सिद्धिः स्यात् स्वर्गादीनां महेश्वर ! ।  
अष्टाङ्गसाधनार्थाय देवा भवन्ति भूतले ॥ १२२ ॥  
भूतले सिद्धिमाहृत्य गच्छन्ति ब्रह्ममन्दिरे ।  
क्रमेणैवं विलीनास्ते अतो भूतलसाधनम् ॥ १२३ ॥

जापकस्य विधिनिषेधः ।—

भूतले शवमास्थाय ब्रह्मचारी दिवा शुचिः ।  
निशायां पञ्चतत्त्वेन दिवसेऽष्टाङ्गसाधनम् ॥ १२४ ॥  
जितेन्द्रियो निर्विकारो वित्तवान् हि परो नरः ।  
शवं संसाधयेद्दीरश्चिन्ताऽऽलस्यविवर्जितः ॥ १२५ ॥  
चिन्ताभिर्जायते लोभो लोभात् कामः प्रपद्यते ।  
कामाद्भवति सम्मोहो मोहादालस्यसञ्चयः ॥ १२६ ॥  
आलस्यदोषजालेन निद्रा भवति तत्क्षणात् ।  
महानिद्राविपाकेन मृत्युर्भवति निश्चितम् ॥ १२७ ॥  
अपक्वानिद्राभङ्गेन क्रोधो भवति निश्चितम् ।  
तत्क्रोधाच्चत्तविकलो विकलात् स्वासवर्द्धनः ॥ १२८ ॥

द्वयायुः क्षयमाप्नोति विस्तरे श्वाससंचये ।  
 बलं बुद्धिः क्षयं याति बुद्धिहीनो जडात्मकः ॥ १२८ ॥  
 जड़भावेन मन्त्राणां जपहीनो भवेन्नरः ।  
 जपहीने श्वासनाशः श्वासनाशे तनुक्षयम् ॥ १२९ ॥  
 अतस्तनुं समाश्रित्य जपनिष्ठो भवेत् शुचिः ।  
 अष्टाङ्गधारणेनैव सिद्धो भवति नान्यथा ॥ १३१ ॥  
 अष्टाङ्गलक्षणं वक्ष्ये साक्षात् सिद्धिकरं परम् ।  
 जन्मकोटिसहस्राणां फलेन कुरुते नरः ॥ १३२ ॥  
 यमेन लभ्यते ज्ञानं ज्ञानात् कुलपतिर्भवेत् ।  
 यो योगेशः स कुलेशः शिशुभावस्थनिर्मलः ॥ १३३ ॥  
 नियमेन भवेत् पूजा पूजया लभते शिवम् ।  
 यत्र पूजा न सम्पूर्णा सम्पूर्णः शुचिरुच्यते ॥ १३४ ॥  
 आसनेन दीर्घजीवी रोगशोकविवर्जितः ।  
 अन्यभेदनमात्रेण साधकः शीतलो भवेत् ॥ १३५ ॥  
 प्राणायामेन शुद्धः स्यात् प्राणवायुवशेन च ।  
 वशीभवति देवेश ! आत्मरामेऽपि लीयते ॥ १३६ ॥  
 प्रत्याहारेण चित्तन्तु चञ्चलं कामनाप्रियम् ।  
 तत्कामनाविनाशाय स्थापयेत् पदपङ्कजे ॥ १३७ ॥  
 धारणेन वायुसिद्धिरिष्टसिद्धिस्ततः परम् ।  
 अग्निमासिद्धिमाप्नोति अणुरूपेण वायुना ॥ १३८ ॥  
 ध्यानेन लभते मोक्षं मोक्षेण लभते सुखम् ।  
 सुखेनानन्दवृद्धिः स्यादानन्दो ब्रह्मविग्रहः ॥ १३९ ॥  
 समाधिना महाज्ञानी सूर्याचन्द्रमसोर्गतिः ।  
 महाशून्ये लयस्थाने श्रीपादाऽऽनन्दसागरः ॥ १४० ॥  
 तत्तरङ्गे मनो दत्त्वा परमार्थविनिर्मले ।  
 श्रीपादमूर्त्तिमाकल्प्य ध्यायेत् कोटिरवीन्दुवत् ॥ १४१ ॥

श्रीमूर्तिं कोटिचपला-प्रोज्ज्वलाच्च सुनिर्मलाम् ।  
 ध्यायेद् योगी महस्रारे कोटिसूर्येन्दुमन्दिराम् ॥ १४२ ॥  
 श्रीविद्यामतिसुन्दरीं त्रिजगतामानन्दपुञ्जेश्वरीं  
 कोट्यर्कायुततेजसि प्रियकरीं योगादरीं शाङ्करीम् ।  
 तां मालां स्थिरचञ्चलां गुरुवतां व्यालाचलां केवलां  
 ध्यायेत् सूक्ष्मसमाधिना स्थिरमतिः स श्रीपतिर्गच्छति ॥ १४३ ॥  
 इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावनिर्यये पाश्र्वकल्पे

षट्चक्रसारसङ्घेते योगविद्याप्रकरणे मन्त्रसिद्धिशतसुपाये

भैरव-भैरवीसंवादे षतुर्विंशः पटलः ॥ २४ ॥

### अथ षट्त्रिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

वद कान्ते ! रहस्यं मे तत्त्वावधानपूर्वकम् ।  
 यत् यत् ज्ञात्वा महायोगी प्रविशत्यनलाखुजे ॥ १ ॥  
 यदि स्नेहदृष्टिरस्ति मम ब्रह्मनिरूपणम् ।  
 योगसारं तत्त्वपथं निर्मलं वद योगिनि ! ॥ २ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणु प्राणेश ! वक्ष्यामि योगनाथ ! क्रियागुरो ! ॥  
 योगाङ्गं योगिनामिष्टं तत्त्वब्रह्मनिरूपणम् ॥ ३ ॥  
 एतत् सृष्टिप्रकारञ्च प्रपालनविधिं तथा ।  
 असंख्यसृष्टिसंहारं वदाभि तत्त्वतः शृणु ॥ ४ ॥

सूक्ष्मसृष्टिस्थितिसंहाराः ।—

त्वमेव संहारको हि वरप्रियः प्रधानमेषु त्रितयेषु शङ्कर ! ।  
 संहारभावं जननाशनात् सदा प्रधानमाद्यस्य जगत्प्रपालनम् ॥ ५ ॥  
 तत्राधनं मेरुभुजङ्गमङ्गं सृष्टिप्रकारं खलु तत्र मध्यमम् ।  
 तत्पालनञ्चेति मयैव राज्ये संहाररूपं प्रकृतेर्गुणार्थकम् ॥ ६ ॥

एतन्नय नाथ ! भयादिकारणं तन्नाशनास्त्रे प्रणवं गुणात्मकम् ।  
 त्रयं गुणातीतमनन्तमक्षरं सम्भाव्य योगी भवतीह साधकः ॥ ७ ॥  
 अव्यक्तरूपात् प्रणवाद्भिः सृष्टिस्तल्लीयते व्यक्ततनौ स्वभासा ।  
 सूक्ष्माद्यकारात्प्रतिभाति खे सदा प्रणश्यति स्थूलकलान्निरक्षरात् ॥ ८ ॥  
 अतीवचित्रं जगतां त्रिचित्रं नित्यं चरित्रं कथितं न शक्यते ।  
 हंसाश्रितास्ते भववासिनो जना ज्ञात्वा न देहस्थमुप्राश्रयन्ते ॥ ९ ॥  
 देहाधिकारी प्रणवादिदेव मायाश्रितो निद्रित एष कालः ।  
 प्रलीयते दीर्घपथे च काले तदा प्रणश्यन्ति जगत्स्थिता जनाः ॥ १० ॥  
 काहो जगद्भक्तक ईशवेशी तरो तु जीर्णां पतिञ्चीनदीना ।  
 स एव सृष्ट्यविहितं चराचरं प्रभुञ्जति श्रीरहितं पलायनम् ॥ ११ ॥  
 पञ्चेन्दुतत्त्वेन महेंद्रसृष्टिः प्रतिष्ठिता यज्ञविधानहेतुना ।  
 सदैव यज्ञं कुरुते भवार्णवे निःसृष्टिकाले वरयज्ञसाधनम् ॥ १२ ॥  
 द्विताहितं तत्र महार्णवे भयं विलोक्य लोका भयविह्वलाः सदा ।  
 विशन्ति ते कुम्भितमार्गमण्डले अतो महानारकिबुद्धिसंयुता ॥ १३ ॥  
 मायामये धर्मकुलानले भवे लीनो हरैर्याति पथानुसारी ।  
 श्रियेत कालानलतुल्यसृष्ट्युना कथन्तु योगी कथमेव साधकः ? १४ ॥  
 यः साधक, प्रेमकलासु भक्त्या स एव मूर्खो यदि याति संसृती ।  
 संसारहीनः प्रियचारुकाव्याः सिद्धो भवेत् कामटचक्रवर्ती ॥ १५ ॥  
 वसेन्न सिद्धो गृहिणीसमृद्ध्यां महाविपद् दुःखविशोषिकायाम् ।  
 यदीह काले प्रकरोति वासना तदा भवेन्मुत्युरतीव निश्चितम् ॥ १६ ॥  
 कृपावलोकं वदनारविन्दं तदैव हे नाथ ! ममेव चेद् यदि ।  
 सदैव यः साधुगणाश्रितो नरो ध्यात्वा निगूढं मतिभावगद्गदः ॥ १७ ॥  
 स एव साधुः प्रकृतर्गुणाश्रितः कृती वशी वेदपुराणवक्ता ।  
 स त्वं महाकाल ! इति स्म चाहं प्रनिश्चयं ते कथितं श्रिये मया ॥ १८ ॥  
 गुणेन भक्तेन्द्रगणाधिकानां साक्षात् फलं योगजयाख्यसङ्गतिम् ।  
 अष्टाङ्गभेदेन शृणुष्व काम-प्रेमात्मभावाय जयाय वक्ष्ये ॥ १९ ॥

मायादिकं यः प्रथमं वशं नयेत् स एव योगी जगतां प्रतिष्ठितः ।  
 रविप्रकारं यमवामनावशे शृणुष्व तं कालवशार्थकेवलम् ॥ २० ॥  
 सर्वत्र कामादिकमाशु जित्वा जितुं समर्थो यमकर्मसाधकः ।  
 कामं तथा क्रोधमतीव लोभं मोहं मदं मत्सरितं सुदुष्कृतम् ॥ २१ ॥  
 अतो यमहादशशब्दघातकं वशं समाकृत्य महेंद्रतुल्यम् ।  
 सर्वत्र वायोर्वशकारणाय करोति योगी स ध्रुवो यथा भवेत् ॥ २२ ॥  
 अहिंसनं सत्यसुवाक्यसुप्रियं अस्तेयभावं कुरुते वशिष्ठवत् ।  
 सुब्रह्मचर्यं सुदृढार्जवं सदा क्षमाष्टौ तिष्ठति सूक्ष्मवायुगः ॥ २३ ॥  
 तथा मिताहारमसंशयं मनःशौचं प्रपञ्चार्यविवर्जनं प्रभो ! ।  
 करोति यः साधकचक्रवर्ती वास्योत्सवाज्ञानविवर्जनं सदा ॥ २४ ॥  
 वशी यमहादशसंख्ययेति करोति चाष्टाङ्गफलार्थसाधनम् ।  
 वरानना श्रीचरणारविन्दं लब्ध्वा दशां नेच्छति नेत्रगोचरम् ॥ २५ ॥  
 तपश्च सन्तोषमनःस्थिरं सदा आस्तिक्यमेवं द्विजदेवपूजनम् ।  
 नितान्तदेवाचनमेव भक्त्या सिद्धान्तशुद्धश्रवणञ्च क्रीर्मतिः ॥ २६ ॥  
 जपो हृतं तर्पणमेव सेवनं तद्भावनं चेष्टनमेव नित्यम् ।  
 इतीह शास्त्रे नियमाश्चतुर्दश भक्तिक्रियामङ्गलसूचनानि ॥ २७ ॥  
 पूर्वीक्तयोन्यासनमेव सत्य भेकासनं बद्धमहोत्पलाऽऽसनम् ।  
 वीरासनं भद्रसुभद्रकासनं पूर्वीक्तमेवासनमाशु कुर्यात् ॥ २८ ॥  
 सर्वाणि तन्त्राणि कृतानि नाथ! सूक्ष्माणि नालं वशहेतुना मया ।  
 तथापि मूढो यदि वायुपानमाहृत्य योनौ भ्रमतीह पातकी ॥ २९ ॥  
 प्राणानिलानन्दवशेन मत्तो गजेन्द्रगामी पुरुषोत्तमः स्मृतः ।  
 यश्चैवमेवानिपुणो भवेद्दशी ब्रह्माण्डलोकं परिपाति यो बली ॥ ३० ॥  
 वदामि देवादिसुरेश्वर ! प्रभो ! सूक्ष्मानिलं प्राणवशेन धारयेत् ।  
 सिद्धो भवेत् साधकचक्रवर्ती सर्वान्तरस्थं परिपश्यति प्रभुम् ॥ ३१ ॥  
 आनन्दभैरव उवाच ।—

वद कान्ते ! महाब्रह्म-ज्ञानं सर्वत्र शोभनम् ।

येन वायुवशं कृत्वा खेचरो भूभृतां पतिः ॥ ३२ ॥

साधको ब्रह्मरूपी स्यात् ब्रह्मज्ञानप्रसादतः ।

ब्रह्मज्ञानात् परं ज्ञानं कुत्रास्ति ? वद सुन्दरि ! ॥ ३३ ॥

अनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणुष्व योगिनां नाथ ! धर्मज्ञो ब्रह्मसंज्ञक ! ।

अज्ञानध्वान्तमोहानां निर्मलं ब्रह्मसाधनम् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मसाधनम् ।—

ब्रह्मज्ञानसमो धर्मी नान्यधर्मी विधीयते ।

यदि ब्रह्मज्ञानधर्मी स सिद्धो नात्र संशयः ॥ ३५ ॥

कोटिकन्याप्रदानेन कोटिजापेन किं फलम् ? ।

ब्रह्मज्ञानसमो धर्मी नान्यधर्मी विधीयते ॥ ३६ ॥

सरोवरसङ्घेन कोटिहेमाऽचलेन च ।

कोटिब्राह्मणभोज्येन कोटितीर्थेन किं फलम् ? ॥ ३७ ॥

कामरूपे महापीठे साधकैर्लभ्यते यदि ।

ब्रह्मज्ञानसमो धर्मी नान्यधर्मी विधीयते ॥ ३८ ॥

ब्रह्मज्ञानन्तु द्विविधं प्राणायामजमव्ययम् ।

भक्तिवाक्य शब्दरसं स्वरूपं ब्रह्मणः पदम् ॥ ३९ ॥

प्राणायामन्तु द्विविधं निर्गर्भञ्च सगर्भकम् ।

जपध्यानं सगर्भं स्यात् निर्गर्भं तद्दिवार्ज्जितम् ॥ ४० ॥

अव्ययालक्षणाक्रान्तं प्राणायामं परात्परम् ।

ब्रह्मज्ञानेन जानाति साधकौ विजितेन्द्रियः ॥ ४१ ॥

तत्प्रकारद्वयं नाथ ! मात्रावर्त्तिजपक्रमम् ।

मात्रावर्त्तिहादशकं जपक्रमन्तु षोडशम् ॥ ४२ ॥

नासिकायां महादेव ! लक्षणत्रयमुत्तमम् ।

पूरकं कुम्भकं तत्र रेचकं देवतात्रयम् ॥ ४३ ॥

एतेषामप्यधिष्ठानं ब्रह्मविष्णुशिवः प्रजाः ।

त्रिवैणीसङ्गमे यान्ति सर्वपापापहारकाः ॥ ४४ ॥

योगिनां सूक्ष्मतीर्थानि ।—

इडा च भारती गङ्गा पिङ्गला यमुना मता ।

इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ॥ ४५ ॥

त्रिवैणीसङ्गमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते ।

त्रिवैणीसङ्गमे वीरश्चालयेत्तान् पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

सर्वपापाहिनिर्मुक्तः सिद्धो भवति नान्यथा ।

पुनः पुनर्भ्रामयित्वा महातीर्थे निरञ्जने ॥ ४७ ॥

वायुरूपं महादेवं सिद्धो भवति नान्यथा ।

चन्द्रसूर्यात्मिका मध्ये वङ्गिरूपे महोज्ज्वले ॥ ४८ ॥

ध्यात्वा कोटिवीरकरं कुण्डलीकिरणं वशी ।

त्रिवारभ्रमणं वायोरुत्तमाधममध्यमम् ॥ ४९ ॥

यत्र यत्र गतो वायुस्तत्र तत्र त्रयं त्रयम् ।

इडा देवी च चन्द्राख्या सूर्याख्या पिङ्गला तथा ॥ ५० ॥

सुषुम्ना जननी मुख्या सूक्ष्मा पङ्कजतन्तुवत् ।

सुषुम्नामध्यदेशे तु वज्राख्या नाडिका शुभा ॥ ५१ ॥

तत्र सूक्ष्मा चित्रिणी च तत्र श्रीकुण्डली गतिः ।

तया संगृह्य तत् नाड्या षट्पद्मं सुमनोहरम् ॥ ५२ ॥

ध्यानगम्यापरं ज्ञानं षट्शरं शक्तिसंयुतम् ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ ५३ ॥

ततः परशिवो नाथ ! षट्शिवाः परिकीर्त्तिताः ।

लाकिनी राकिणी शक्तिर्लाकिनी काकिनी तथा ॥ ५४ ॥

साकिनी तत्र षट्पद्मे शक्तयः षट्शिवान्विताः ।

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं सुपङ्कजम् ॥ ५५ ॥

अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाचक्रं महोत्पलम् ।

आज्ञाचक्रादि मध्ये तु चन्द्रं शीतलतेजसम् ॥ ५६ ॥

प्रपतन्तं मूलपद्मे तं ध्यात्वा पूरकानिलम् ।  
 यावत्कालं स्थैर्यगुणं तत्कालं कुम्भकं स्मृतम् ॥ ५७ ॥  
 पिङ्गलायां प्रगच्छन्तं रचकं तं वशं नयेत् ।  
 अङ्गुष्ठैकपर्वणा च दक्षनासापुटं वशी ॥ ५८ ॥  
 धृत्वा षोडशवारिष्य प्रणवेन जपञ्चरेत् ।  
 एतत् पूरकमाकृत्य कुर्यात् कुम्भकमद्भुतम् ॥ ५९ ॥  
 चतुःषष्टिप्रणवेन जपं ध्यानं समाचरेत् ।  
 कुम्भकानन्तरं नाथ ! रचकं कारयेद् बुधः ॥ ६० ॥  
 द्वात्रिंशद्द्वारजापेन मूलेन प्रणवेन वा ।  
 द्विनासिकापुटं बद्ध्वा कुम्भकं सर्वसिद्धिदम् ॥ ६१ ॥  
 कनिष्ठाऽनामिकाभ्यान्तु वाममङ्गुष्ठदक्षिणम् ।  
 पुनर्दक्षिणनासाग्रे वायुमापूरयेद् बुधः ॥ ६२ ॥  
 मनुषोडशजापेन कुम्भयेत् पूर्ववत्ततः ।  
 ततो वामे रचकञ्च द्वात्रिंशत् प्रणवेन तु ॥ ६३ ॥  
 पुनर्वामेन सम्पूर्य्य षोडशप्रणवेन तु ।  
 पुनर्दक्षिणनासाग्रे द्वादशाङ्गुलमानतः ॥ ६४ ॥  
 कुम्भयित्वा रचयेद् यः सर्वत्र पूर्ववत् प्रभो ! ।  
 प्राणायामत्रयेणैव प्राणायामैकमुत्तमम् ॥ ६५ ॥  
 द्विवारं मध्यमं प्रोक्तं मध्यमञ्चैकवारकम् ।  
 त्रिकालं कारयेद् यत्नादनन्तफलसिद्धये ॥ ६६ ॥  
 प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाह्ने नियतः शुचिः ।  
 जपध्यानादिभिर्मुक्तं सगर्भं यः करोति हि ॥ ६७ ॥  
 मासात् सन्नक्षत्रं प्राप्य षण्मासे पवनाशनः ।  
 तालुमूले समारोप्य जिह्वाग्रं योगसिद्धये ॥ ६८ ॥  
 त्रिकाले सिद्धिमाप्नोति प्राणायामेन षोडश ।  
 सदाऽभ्यासी बशीभूत्वा पवनं जनयेत् पुमान् ॥ ६९ ॥



षण्मासाभ्यन्तरे सिद्धिरिति योगार्थनिर्णयः ।  
 योगेन लभ्यते सर्वं योगाधीनमिदं जगत् ॥ ७० ॥  
 तस्माद्योगं परं कार्यं यदा योगी तदा सुखी ।  
 विना योगं न सिध्येत कुण्डलीपरदेवता ॥ ७१ ॥  
 अथ योगं सदा कुर्यादीश्वरीपाददर्शनात् ।  
 योगयोगाद्भवेन्मोक्ष इति योगार्थनिर्णयः ॥ ७२ ॥  
 मन्त्रसिद्धीच्छुको यो वा सैव योगं सदाऽभ्यसेत् ।  
 मात्रावृत्तिं प्रवक्ष्यामि काकचञ्चुपुटं तथा ।  
 सूक्ष्मवायुमक्षणन्तत् चन्द्रमण्डलचाननम् ॥ ७३ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

त्रावृत्तिञ्चैव विविधं तन्मध्ये उत्तमं त्रयम् ।  
 वर्णं सचन्द्रं संयुक्तं मूलं त्र्यक्षरमेव वा ॥ ७४ ॥  
 जानुजङ्घामध्यदेशे तत्तत् सर्वासनस्थितः ।  
 वामहस्ततालुमूलं भ्रामयेद् द्वादशक्रमात् ॥ ७५ ॥  
 द्वादशक्रमशः कुर्यात् प्राणायामं हि पूर्ववत् ।  
 मात्रावृत्तिक्रमेणैव जपमष्टसहस्रकम् ॥ ७६ ॥  
 प्राणायामद्वादशकैर्भवेदष्टसहस्रकम् ।  
 कृत्वा सिद्धेश्वरो नाथ ! निष्पापश्चैकमासतः ॥ ७७ ॥  
 त्रिसन्ध्यां कारयेद् यद्वाद् ब्रह्मज्ञानी निरञ्जनः ।  
 भवतीति न सन्देहः सदाऽभ्यासी हि योगिराट् ॥ ७८ ॥  
 योगाभ्यासाद्भवेन्मुक्तो योगाभ्यासात् कुलेश्वरः ।  
 योगाभ्यासाच्च सत्यासी ब्रह्मज्ञानी निरामयः ॥ ७९ ॥  
 सदाऽभ्यासाद्भवेद् योगी सदाऽभ्यासात् परन्तपः ।  
 सदाऽभ्यासात् पापमुक्तो विधिविद्या सक्लकृत् ॥ ८० ॥  
 काकचञ्चुपुटं कृत्वा पिबेद्वायुमहर्निशम् ।  
 सूक्ष्मवायुक्रमेणैव सिद्धो भवति योगिराट् ॥ ८१ ॥

योगिनां जपनियमः ।—

बद्धपद्मानं कृत्वा योगिसुदां विभाव्य च ।  
 मूले सम्पूरयेद्वायुं काकचञ्चुपुटेन तु ॥ ८२ ॥  
 मूलमाकुञ्च्य सर्वत्र प्राणायामे मनोरमे ।  
 प्रबोधयेत् कुण्डलिनीं चैतन्यां चित्स्वरूपिणीम् ॥ ८३ ॥  
 श्रीष्ठाधरे काकतुण्डं दन्ते दन्तान् प्रगाढकम् ।  
 बद्धा वा यद्जपेद् योगी जिह्वां नैव प्रसारयेत् ॥ ८४ ॥  
 राजदन्तयुगं नाथ ! न स्पृशेज्जिह्वया सुधीः ।  
 काकचञ्चुपुटं कृत्वा बद्धा वीरामने स्थितः ॥ ८५ ॥  
 तालुजिह्वामूलटेश्च योगी जिह्वां प्रयोजयेत् ।  
 तद्द्वृतामृतरसं काकचञ्चुपुटे पिबेत् ॥ ८६ ॥  
 सूक्ष्मवायुक्रमेणैव सिद्धो भवति योगिराट् ।  
 करोति स्तम्भनं योगी मोऽमरो भवति ध्रुवम् ॥ ८७ ॥  
 एतद् योगप्रभाटेन जीवन्मुक्तस्तु साधकः ।  
 जराव्याधिमहापीडा-रहितो भवति क्षणात् ॥ ८८ ॥  
 अथवा मात्रया कुर्यात् षोडशस्वरसम्पुटम् ।  
 स्वमन्त्रं प्रणवं वाऽपि जप्त्वा योगी भवेन्नरः ॥ ८९ ॥  
 अथर्वदर्शमालाभिः पुटितं मूलमन्त्रकम् ।  
 मात्रासंख्याक्रमेणैव जप्त्वा कालवशं नयेत् ॥ ९० ॥  
 वटने नोच्चरेद्दुर्गां वाञ्छाफलमसृजये ।  
 केवलं जिह्वया जप्यं कामनाफलसिद्धये ॥ ९१ ॥  
 नाभौ सूर्यां वह्निरूपी ललाटे चन्द्रमास्तथा ।  
 अग्निशिखास्यर्शनेन गलितं चन्द्रमण्डलम् ॥ ९२ ॥  
 तत्परासृतधाराभिर्दीप्तिमाप्नोति भास्करः ।  
 मन्तुष्टः पाति सततं पूरकेण च योगिनम् ॥ ९३ ॥  
 ततः पूरकयोगेन असृतं स्रावयेत् सुधीः ।

कुर्यात् प्रज्वलितं वङ्गि रेचकेन वराग्निना ॥ ८४ ॥  
 अथ मौनजपं कृत्वा ततः सूक्ष्मानिलं मुदा ।  
 सहस्रारे गुरुं ध्यात्वा योगी भवति भावकः ॥ ८५ ॥  
 प्राणवायुस्थिरो यावत्तावन्मृत्युभयं कुतः ? ।  
 ऊर्ध्वरेता भवेद् यावत्तावत्कालभयं कुतः ? ॥ ८६ ॥  
 यावद्विन्दुः स्थितो देहे विधुरूपी सुनिर्मलः ।  
 सदा गलत्क्षधाव्याप्तस्तावन्मृत्युभयं कुतः ? ॥ ८७ ॥

ज्ञानन्दभैरव उवाच ।—

वद कान्ते ! कुलानन्द-रसिके ! ज्ञानरूपिणि ! ।  
 सर्वतेजोग्रदेवेन येन सिद्धो भवेन्नरः ॥ ८८ ॥  
 महामृता खेचरी च सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ।  
 कीदृशी शाङ्करी विद्या श्रोतुमिच्छामि तत्क्रियाम् ॥ ८९ ॥  
 अध्यात्मविद्या योगेशि ! कीदृशी भवित्यथा ।  
 कीदृशी परमा देवी तत्प्रकारं वदस्व मे ॥ १०० ॥

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

अध्यात्मज्ञानम् ।—

यस्य नाथ ! मनःस्थैर्यं महासत्त्वे सुनिर्मले ।  
 भक्त्या सम्भावनं यत्र विनाऽवलम्बनं प्रभो ! ॥ १०१ ॥  
 यस्य मनश्चित्तवशं स्वमिन्द्रियं स्थिरा स्वदृष्टिर्जगदीश्वरीपदे ।  
 नखेन्दुशोभे च विनाऽवलोकनं वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधनम् १०२  
 त एव मुद्रा विचरन्ति खेचरी प्रापाद्भिमुक्ताः प्रपिबन्ति वायुम् ।  
 यथा हि बालस्य च तस्य चेष्टा निद्राविहीनाः प्रतियान्ति निद्राम् १०३  
 पथापथज्ञानविवर्जिता ये धर्मार्थकामाद्विहीनमानसः ।  
 विनाऽवलम्बं जगतामधीश्वर ! एषैव मुद्रा विचरन्ति शाङ्करी ॥ १०४ ॥  
 ज्ञाने साध्यात्मविद्यार्थं जानाति कुलनायकम् ।  
 अध्याज्ञानक्रपन्नस्यं शिवात्मानं सुविद्यया ॥ १०५ ॥

अध्यात्मज्ञानमात्रेण सिद्धो योगी न संशयः ।  
 षट्चक्रभेदको यो हि अध्यात्मज्ञः स उच्यते ॥ १०६ ॥  
 अध्यात्मशास्त्रसङ्केतमात्मना मण्डितं शिवम् ।  
 कौटिचन्द्राकृतिं शान्तिं यो जानाति षडम्बुजे ॥ १०७ ॥  
 स ज्ञानी सैव योगी स्यात् सैव देवो महेश्वरः ।  
 स मां जानाति हे कान्त ! विस्मयो नास्ति शङ्कर ! ॥ १०८ ॥  
 अम सर्वात्मकं रूपं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।  
 सृष्टिस्थितिप्रलयगं यो जानाति स योगिराट् ॥ १०९ ॥  
 अध्यात्मविद्यां विज्ञाप्य नानाशास्त्रं प्रकाशितम् ।  
 तच्छास्त्रजालयुक्ता ये तेऽध्यात्मज्ञाः कथं नराः ? ॥ ११० ॥  
 त्रिदण्डी स्यात् सदा भक्तो वेदाभ्यासपरः कृती ।  
 वेदादुद्भूतशास्त्राणि त्यक्त्वा मां भावयेद् यतिः ॥ १११ ॥  
 वेदाभ्यासं समाकृत्य नानाशास्त्रार्थनिर्णयम् ।  
 समुत्पन्नां महाशक्तिं समालोक्य भजेद् यतिः ॥ ११२ ॥  
 सर्वत्र व्यापिकाशक्तिं कामरूपां निराश्रयाम् ।  
 व्यक्ताव्यक्तां स्थिरपदां वायवीं मां भजेद् यतिः ॥ ११३ ॥  
 यस्या ह्यानन्दमतुलं ज्ञानं यस्याः फलाफलम् ।  
 योगिनां निश्चयज्ञानमेकमेव न संशयः ॥ ११४ ॥  
 यस्याः प्रभावमात्रेण तत्त्वचिन्तापरो नरः ।  
 तामेव परमां देवीं सर्पराजसुकुण्डलीम् ॥ ११५ ॥  
 तामेव वायवीं शक्तिं सूक्ष्मरूपां स्थिराश्रयाम् ।  
 आनन्दरसिकां गौरीं ध्यायेत् श्वासनिवासिनीम् ॥ ११६ ॥  
 आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तत्त्वदेहे व्यवस्थितम् ।  
 तस्याभिव्यक्तकं द्रव्यं योगिभिः परिपीयते ॥ ११७ ॥  
 तद्द्रव्यस्थां महादेवीं नीलोत्पलदलप्रभाम् ।  
 मानवीं परमां देवीमष्टादशभुजैर्युताम् ॥ ११८ ॥

कुण्डलो चेतनाकान्तिं चैतन्यां परदेवताम् ।  
 आनन्दभैरवीं नित्यां घोरहासा भयानकाम् ॥ ११९ ॥  
 तामिव परमा देवीं सर्ववायुवशङ्करीम् ।  
 मादरासिन्धुसम्भूतां मत्तां रौद्रीं वराभयाम् ॥ १२० ॥  
 योगिनीं यागजनीं ज्ञानिना मोहिनोसमाम् ।  
 सर्वभूतसर्वयत्न-स्थितिरूपां महोज्ज्वलाम् ॥ १२१ ॥  
 षट्चक्रभेदिकां सिद्धिं तासां नित्यां मतिस्थिताम् ।  
 विमलां निर्मलां ध्यात्वा योगी मूलाब्जुज्जे यजेत् ॥ १२२ ॥  
 एतत् पटलपाठे तु पापमुक्तो विभाकरः ।  
 यथोद्धरेता धर्मज्ञो विचरेत् ज्ञानसिद्धये ॥ १२३ ॥  
 एतत् क्रियादग्नेन ज्ञानी भवति साधकः ।  
 ज्ञानादेव हि मोक्षः स्यान्मोक्षः समाधिसाधनः ॥ १२४ ॥  
 यदुद्धरति वायुश्च धारणाशक्तिरेव च ।  
 तन्तन्मन्त्रं वर्द्धयित्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ १२५ ॥  
 प्राणायामात् परं नास्ति पापराशिस्तथाय च ।  
 सर्वपापक्षये याते किं न सिध्यति भूतले ? ॥ १२६ ॥  
 प्राणवायुं महोग्रन्तु महत्तेजोमयं परम् ।  
 प्राणायामेन जित्वा च योगोत्तमो गजं यथा ॥ १२७ ॥  
 प्राणायामं विना नाथ ! कुत्र सिद्धो भवेन्नरः ? ।  
 सर्वसिद्धाक्रियासारं प्राणायामं परं स्मृतम् ॥ १२८ ॥  
 प्राणायामं त्रिवेणीस्थ वः करोति सुहृर्मुहुः ।  
 तस्याष्टाङ्गसमृद्धिः स्याद् योगिनां योगवल्लभः ॥ १२९ ॥

इति श्रीतद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने भावनिर्णये पाशकण्ठे षट्चक्र-  
 सारसङ्घटे लिङ्गमन्त्रप्रकरणे प्राणायामोक्तासे भैरव-भैरवीसंवादे

## अथ षड्विंशः पटलः ।

आनेन्दभैरव्युवाच ।—

षट्चक्रभेदः ।—

शृणु प्राणेश ! सफलं प्राणायामनिरूपणम् ।  
प्राणायामे जपं ध्यानं तत्त्वयुक्तं वदामि ते ॥ १ ॥  
प्रकारमेयमुक्त्वा संप्राणायामेषु शोभितम् ।  
देवता विधिविष्णुशास्त्रोक्तमाधममध्यमाः ॥ २ ॥  
रजस्तमोगुणं नाथ ! सत्त्वे संस्थाप्य यत्नतः ।  
कामक्रोधादिकं त्यक्त्वा योगी भवति योगवित् ॥ ३ ॥  
रजोगुणं नृपाणान्तु तमोगुणमतीव च ।  
अधिकन्तु पशूनां हि साधूनां सत्त्वमेव च ॥ ४ ॥  
सत्त्वं विष्णुर्वेदरूपं निर्मलं हैतद्वर्जितम् ।  
आत्मोपलाब्धविषयं त्रिमूर्त्तिमूलमाश्रयेत् ॥ ५ ॥  
सत्त्वगुणाश्रयादेव निव्यापः सर्वसिद्धिभाक् ।  
जितेन्द्रियो भवेत् शीघ्रं ब्रह्मचारिव्रतेन च ॥ ६ ॥  
प्राणवायुवशेनापि दशीभृताश्चराचराः ।  
तस्यैव कारणे नाथ ! जपं ध्यानं समाचरेत् ॥ ७ ॥  
वक्ष्यामि तत् प्रकारञ्च जपध्यानं विधिद्वयम् ।  
एतत्करणमात्रेण यागी स्यान्नात्र संशयः ॥ ८ ॥  
जपञ्च त्रिविधं प्रीक्तं व्यक्तव्यक्तातिसूक्ष्मगम् ।  
व्यक्तं वाचिकं मुपांशु ह्यव्यक्तं सूक्ष्म-मानसम् ॥ ९ ॥  
तत्र ध्यानं प्रवक्ष्यामि प्रकारमेकविंशति ।  
ध्यानेन जपसिद्धिः स्याज्जपात् सिद्धिर्न संशयः ॥ १० ॥  
आदौ विद्यामहादेवी ध्यानं वक्ष्यामि शङ्कर ! ।  
एषा देवी कुण्डलिनी यस्या मूलाब्जं मनः ॥ ११ ॥

मनः करोति सर्वाणि धर्मकर्माणि सर्वदा ।  
 यत्र गच्छति स श्रीमान् तत्र वायुश्च गच्छति ॥ १२ ॥  
 अतो मूले समारोप्य मानसं वायुरुपिणम् ।  
 द्वादशङ्गुलं वाद्यै नासाग्रे चावधारयेत् ॥ १३ ॥  
 मनःस्थरूपमाकल्प्य मनो धर्मं सुहृमुहुः ।  
 मनः सहस्रधा याति मतिर्यत्र सदा भवेत् ॥ १४ ॥  
 मनोविकाररूपन्तु एकमेव न संशयः ।  
 अज्ञानिनां हि देवेश ! ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ १५ ॥  
 अव्यक्तं ब्रह्मरूपं हि तच्च देहे व्यवस्थितम् ।  
 धर्मकर्मविनिर्मुक्तं मनो गम्यं भजेद् यतिः ॥ १६ ॥  
 पद्मं चतुर्दलं मूले स्वर्णवर्णं मनोहरम् ।  
 तत्कर्णिकामध्यदेशे स्वयम्भ्वेष्टितां भजेत् ॥ १७ ॥  
 कोटिसूर्यप्रतिकाशां सुषुम्नावज्रगामिनीम् ।  
 ऊर्ध्वं गलत्सुधाधारा-मण्डितां कुण्डलीं भजेत् ॥ १८ ॥  
 स्वयम्भूलङ्क परमं ज्ञानं विरविवर्द्धनम् ।  
 सूक्ष्मातिसूक्ष्माकार्शं कुण्डलोज्ज्वलितं भजेत् ॥ १९ ॥  
 पूर्वोक्तयोगपटलं तत्र मूले विभावयेत् ।  
 कुण्डलोद्धानमात्रेण षट्चक्रभेदको भवेत् ॥ २० ॥  
 ध्यायेद्देवीं कुण्डलीनीं परापरगुरुप्रियाम् ।  
 आनन्दां भुवि मध्यस्थां योगिनीं योगमातरम् ॥ २१ ॥  
 कोटिविद्युज्जताभासां सूक्ष्मातिसूक्ष्मवर्त्मगाम् ।  
 ऊर्ध्वमार्गं व्याचलन्तीं परमाकृणविग्रहाम् ॥ २२ ॥  
 अथमोक्षमने कौल-ज्ञानमार्गप्रकाशकाम् ।  
 अतिप्रमाणे प्रत्यक्षाममृतव्याप्तविग्रहाम् ॥ २३ ॥  
 धर्मोदयां भानुमतीं जगत्स्थावरजङ्गमाम् ।  
 सर्वत्रस्थां निर्विकल्पां चैतन्यानन्दनिर्मलाम् ॥ २४ ॥

आकाशवाहिनीं नित्यां निर्निर्वर्णस्वरूपिणीम् ।  
 महाकुण्डलिनीं ध्येयां ब्रह्माविष्णुशिवदिभिः ॥ २५ ॥  
 प्रणवान्तःस्थितां शुद्धां शुद्धज्ञानाश्रयां शिवाम् ।  
 कुलकुण्डलिनीं सिद्धं चन्द्रमण्डलभेदिनीम् ॥ २६ ॥  
 मूलाभोजस्थितामाद्यां जगद्योनिं जगत्प्रियाम् ।  
 स्वाधिष्ठानादिपद्मस्थां सर्वशाक्तमयीं पराम् ॥ २७ ॥  
 आत्मविद्यां शिवानन्दां पीठस्थामतिसुन्दरीम् ।  
 सर्पाकृतिं रक्तवर्णां सूर्यरूपविमर्हिणीम् ॥ २८ ॥  
 कामिनीं कामरूपस्था मातृकामात्मदायिनीम् ।  
 कुलमागोनन्दमयीं कालीं कुण्डलिनीं भजेत् ॥ २९ ॥  
 इति ध्यात्वा मूलपद्मे निर्मले योमसाधन ।  
 धर्मोदये ज्ञानरूपी साधयेत् परकुण्डलीम् ॥ ३० ॥  
 कुण्डलीभावनादेव खेचराद्यष्टसिद्धिभाक् ।  
 ईश्वरत्वमवाप्नोति साधको भूपतिर्भवेत् ॥ ३१ ॥  
 योगाभ्यासे भावासिद्धौ स्मृतो वायुर्महोदयः ।  
 प्राणिनामनिवार्यो हि यत्नेन तं प्रचालयेत् ॥ ३२ ॥  
 प्रतिक्षणं समाकृष्य मूलपद्मस्थकुण्डलीम् ।  
 तदा प्राणमहावायुर्वशा भवति निश्चितम् ॥ ३३ ॥  
 ये देवास्यैव ब्रह्माण्डे चित्ते पीठे सुतोयके ।  
 शिलायां शून्यगे नाथ ! सिद्धाः स्युः प्राणवायुना ॥ ३४ ॥  
 ब्रह्माण्डे यानि वै सन्ति न्तानि सन्ति कलेवरे ।  
 ते सर्वे प्राणसंलग्नाः प्राणातौतो निरञ्जनः ॥ ३५ ॥  
 यावत् प्राणः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ? ।  
 गते प्राणे समाद्यान्त देवतास्येतनास्थिताः ॥ ३६ ॥  
 सर्वेषा मूलभूता सा कुण्डली भूतदेवता ।  
 वायुरूपा पाति सर्वमानन्दचेतनामयी ॥ ३७ ॥



जगतां चेतनारूपा कुण्डली योगदेवता ।  
 आत्ममनःसमायुक्ता ददाति मोक्षमेव सा ॥ ३८ ॥  
 अतस्तां भावयेन्नन्वी भावज्ञानप्रसिद्धये ।  
 भवानीं भोगमोक्षस्थां यदि योगमिहेच्छति ॥ ३९ ॥  
 वायुरोधनकाले च कुण्डलौ चेतनामुखी ।  
 ब्रह्मरन्ध्रावाधि ध्येया योगिनं पाति कामिनी ॥ ४० ॥  
 जयारूपां परां देवीं नित्यां योगेश्वरीं जयाम् ।  
 निर्विकल्पां त्रिकोणस्थां सदा ध्यायेत् कुलेश्वरीम् ॥ ४१ ॥  
 अनन्तां कोटिसूर्याभां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।  
 अनन्तज्ञाननिलयां यां भजन्ति मुमुक्षवः ॥ ४२ ॥  
 अज्ञानतिमिरे घोरे सा लग्ना मूढचेतसौ ।  
 सुप्ता सर्पासना मौला पाति साधकमीश्वरी ॥ ४३ ॥  
 ईश्वरीं सर्वभूतानां ज्ञानाज्ञानप्रकाशिनीम् ।  
 धर्माधर्मफलव्याप्तं करुणामयविग्रहाम् ॥ ४४ ॥  
 नित्यां ध्यायान्त योगेन्द्राः काञ्चनाभाः कलिस्थिताः ।  
 कुलकुण्डलिनो देवीं चैतन्यानन्दनिर्भराम् ॥ ४५ ॥  
 वकारादिमान्तवर्ण-मालाविद्युल्लताच्युताम् ।  
 हेमालङ्कारभूषाङ्गीं ये मां सन्भावयन्ति ते ॥ ४६ ॥  
 ये वै कुण्डलिनीं विद्यां कुलमार्गप्रकाशिनीम् ।  
 ध्यायन्ति वर्षसंयुक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥ ४७ ॥  
 ये मुक्ताः पापराशिस्तु धर्मज्ञानसुमानसाः ।  
 तेऽवश्यं ध्यानमाकुर्वन् सुवन्ति कुण्डलीं पराम् ॥ ४८ ॥  
 कुलकुण्डलिनीध्यानं भोगमोक्षप्रदायकम् ।  
 यः करोति महायोगी भूतले नात्र संशयः ॥ ४९ ॥  
 त्रिविधं कुण्डलोध्यानं दिव्यवैरपशुक्रमम् ।  
 पशुभावादियोगिन सिद्धो भवति योगिराट् ॥ ५० ॥

दिव्यध्यानं प्रवक्ष्यामि सामान्यानन्तरं प्रभो ! ।  
 आदौ सामान्यमाकृत्य दिव्यादीन् कारयेत्ततः ॥ ५१ ॥  
 कोटिचन्द्रप्रतीकाशां तेजोविद्या निराकुलाम् ।  
 प्राणायामसहस्राख्या कालानलशतोपमाम् ॥ ५२ ॥  
 दंष्ट्राकरालदुर्द्वेषां जटामण्डलमण्डिताम् ।  
 घोररूपां महारौद्रीं सहस्रकोटिचञ्चलाम् ॥ ५३ ॥  
 काटिचन्द्रसर्मास्त्राणां सर्वत्रस्थां भयानकाम् ।  
 अनन्तसृष्टिसंहार-पालनोन्मत्तमानसाम् ॥ ५४ ॥  
 सर्वव्यापकरूपाद्यामादिलोलाकलेवराम् ।  
 अनन्तसृष्टिनिलयां ध्यायन्ति तां सुमुच्यते ॥ ५५ ॥  
 वीरध्यानं प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा वीरवल्लभः ।  
 वीराणां वल्लभो यो हि मुक्तो भोगी स उच्यते ॥ ५६ ॥  
 वीराचारे सत्त्वगुण निर्मलं दिव्यमुत्तमम् ।  
 सम्प्राप्य च महावीरो योगी भवति तत्क्षणात् ॥ ५७ ॥  
 वीराचारं विना नाथ ! दिव्याचारं न लभ्यते ।  
 ततो वीराचारधर्मं कृत्वा दिव्यं समाचरेत् ॥ ५८ ॥  
 वीराचारं कोटिफलं वारैकजपसाधनम् ।  
 कोटिकोटिजन्मपाप-दुःखनाशन्तु भक्तके ॥ ५९ ॥  
 कुलाचारसमाचारं वीराचारं महाफलम् ।  
 कृत्वा सिद्धिञ्च वै ध्यानं कुलध्यानं मदीयकम् ॥ ६० ॥  
 कुलकुण्डलिनीं देवीं मां-ध्यात्वा पूजयन्ति ये ।  
 मूलपद्मे महावीरां भैरवीं सुवशेन्द्रियाम् ॥ ६१ ॥

देव्या वीरध्ययरूपम् ।—

कालीं कीलां कुलेशीं कलकलकलिजध्यानकालानलार्का  
 काल्योक्त्रां कालकलां किलिकिलिकलिकां केलिलावण्यलीलाम् ।

सूक्ष्माख्यां संक्षयाख्यां चयकुलकमले सूक्ष्मतेजोमयीं तां  
आद्यन्तस्थां भजन्ति प्रणतसदयां सुन्दरीं चारुवर्णाम् ॥ ६१ ॥

अष्टादशभुजैर्युक्तां नीलेन्द्रीवरलोचनाम् ।

मटिरासागरोत्पन्नां चन्द्रसूर्याग्निरूपिणीम् ॥ ६२ ॥

चन्द्रसूर्याग्निमध्यस्थां सुन्दरीं वरटायिनीम् ।

कामिनीं कोटिकन्दर्प-दर्पान्तकपतिप्रियाम् ॥ ६३ ॥

आनन्दभैरवाक्रान्तामानन्दभैरवीं पराम् ।

योगिनीं कोटिश्रीतांशु-गलद्गात्रमनोहराम् ॥ ६४ ॥

कोटिविद्युलताकारां सदसङ्गक्तिवर्जिताम् ।

ज्ञानचेतन्यनितरां तां धीरां भावयन्ति हि ॥ ६५ ॥

अस्या ध्यानप्रसादेन त्वं तुष्टो भैरवः स्वयम् ।

अहञ्च तुष्टा संसारे सर्वे तुष्टा न संशयः ॥ ६६ ॥

प्राणायामान् यः करोति साधकः स्थिरमानसः ।

ध्यात्वा देवीं मूलपद्मे वीरो योगमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

वीरभावं सूक्ष्मवायु-धारणेन महेश्वर ! ।

साधको भुवि जानाति स्वमृत्युं जन्मसङ्कटम् ॥ ६८ ॥

मासादाकर्षणीसिद्धिर्वाक्सिद्धिश्च द्विमासतः ।

मासत्रयेण स यागी जायते देववल्लभः ॥ ६९ ॥

एवं चतुर्थमासे तु भवेत् दिक्पालगोचरः ।

पञ्चमे पञ्चबाणः स्यात् षष्ठे रुद्रो न संशयः ॥ ७० ॥

वीरभावस्य माहात्म्यं कोटिजन्मफलेन च ।

जानाति साधकश्रेष्ठो देवभक्तः स योगिराट् ॥ ७१ ॥

वीराचारं महाधर्मं चित्तस्थैर्यस्य कारणम् ।

यस्य प्रसादमात्रेण दिव्यभावाश्रितो भवेत् ॥ ७२ ॥

स्वयं रुद्रो महायोगी महाविष्णुः कृपानिधिः ।

महावीरस्तथा शीघ्रं मोक्षभागी न संशयः ॥ ७३ ॥

योगिनां सूक्ष्मस्नानम् ।—

वक्ष्ये नाथ ! महावीर-भावस्नानं कुलाश्रयम् ।

यत्कृत्वा शुचिरिव स्यात् शुचिञ्चेत् किं न सिध्यति ॥७४॥

कुलस्नानं महाद्भानं योगिनामतिदुर्लभम् ।

हृत्वा जितेन्द्रियो वीरः कुलध्यानं समाचरेत् ॥ ७५ ॥

स्नानन्तु त्रिविधं प्रोक्तं मज्जनं गात्रमाज्जनम् ।

मन्त्रज्ञानादिभिः स्नानमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ७६ ॥

तत्रकारं शृणु पाण-वत्तम ! प्रियकारक ! ।

स्नानमात्रेण मुक्तः स्यात् पापशैलाटनन्तगः ॥ ७७ ॥

स्नानञ्च विमले तीर्थे हृदयान्भोजपुष्करे ।

विन्दुतीर्थेऽथवा स्नायात् सर्वजन्माघमुक्तये ॥ ७८ ॥

इडासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णं वहतः शरीरे ।

ब्रह्मादिभिः स्नाति तयोस्तु नीरे किं तस्य गाङ्गेरपि पौष्करैर्वा ॥७९॥

इडा मलस्थाननिवासिनी या सूर्यात्मिकायां यमुना प्रवाहिका ।

तथा सुषुम्नामलदेशगामिनी सरस्वती रक्षति मज्जनार्थकम् ॥८०॥

मनोगतस्नानपरो मनुष्यो मन्त्रक्रियायोगविशिष्टतत्त्ववित् ।

महीस्थतीर्थे विमले जले मुदा मूलाम्बुजे स्नाति स मुक्तिभाग्भवेत् ८१

सर्वादितीर्थे सुरतीर्थपावनौ गङ्गा महासत्त्वविनिर्गता सती ।

क्रूरोति पापक्षयमेव मुक्तिं टटाति साक्षात्तुलार्थपुण्यदा ॥८२॥

स्वर्गस्थं यावता तीर्थं स्वाधिष्ठाने तु पङ्कजे ।

मनो निधाय योगेन्द्रः स्नाति गङ्गाजले यथा ॥ ८३ ॥

मणिपूरे देवतीर्थं पञ्चकुण्डं सरोवरम् ।

एतत् श्रीकामनातीर्थं स्नाति यो मुक्तिमिच्छति ॥ ८४ ॥

अनाहते सर्वतीर्थे सूर्यमण्डलमध्यगम् ।

विभवे सर्वतीर्थेषु स्नाति यो मुक्तिमिच्छति ॥ ८५ ॥

विशुद्धाख्ये महापद्मे अष्टतीर्थं समुद्रवम् ।

कैवल्यमुक्तिदं ध्यात्वा स्नाति वीरो विमुक्तये ॥ ८६ ॥  
 मानसं विन्दुतीर्थञ्च कानीकुण्डं कलात्मकम् ।  
 आज्ञाचक्रं सदा ध्यात्वा स्नाति निर्वाणसिद्धये ॥ ८७ ॥  
 एतत्कल्पप्रियस्नानं कुर्वन्ति योगिनो मुदा ।  
 अतो वीराः सत्त्वयुक्ताः सर्वसिद्धियुताः सुराः ॥ ८८ ॥  
 नानाप्राप्तं सदा कृत्वा ब्रह्म इत्यादि गर्हितम् ।  
 कृत्वा स्नानं महातीर्थे सिद्धाः स्युरणिमादिगाः ॥ ८९ ॥  
 स्नानमात्रेण निष्पापः शक्तः स्नादायुसंग्रहे ।  
 तीर्थानां दर्शने शक्तो स वै योगी भवेद् ध्रुवम् ॥ ९० ॥

कौलानां सभ्या ।—

अथ सभ्यां महातीर्थे कुलनिष्ठः समाचरेत् ।  
 कुलरूपां योगविद्यां योगी योगाद् यतौश्वरः ॥ ९१ ॥  
 शिवशक्तयोः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते ।  
 सा सभ्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थे प्रजायते ॥ ९२ ॥  
 शिवं सूर्यं हृदि ध्यात्वा भालशक्तौन्दुमङ्गमम् ।  
 सा सभ्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थे प्रजायते ॥ ९३ ॥  
 अथवेन्दुं शिवं ध्यात्वा हृत्सूर्यशक्तिमङ्गमम् ।  
 रुंयोगविद्या सा सभ्या समाधिस्थे प्रजायते ॥ ९४ ॥  
 इति सभ्या च कथिता ज्ञानरूपा जगन्मथौ ।  
 सा नित्या वायवोशक्तिः किन्नाभिन्ना विनाशनात् ॥ ९५ ॥

कौलतर्पणम् ।—

तत्त्वतीर्थे महादेव ! तर्पणं यः करोति हि ।  
 त्रैलोक्य तर्पितं तेन तत्रकारं शृणु प्रभो ! ॥ ९६ ॥  
 मृत्नाम्भोजे कुण्डलिनीं सोमसूर्याग्निरूपिण्यौम् ।  
 समुत्थाप्य कुण्डलिनीं परं विन्दुं निवेश्य च ॥ ९७ ॥  
 तदुद्भवामृतनेह तर्पयेद्देहदेवताम् ।

कुलेश्वरौमादिविद्यां स सिद्धो भवति ध्रुवम् ॥ ८८ ॥  
 चन्द्रसूर्यमहावह्नि-सम्भूताऽऽमृतधारया ।  
 तर्पयेत् कौलिनीं नित्याममृताक्तां विभावयेत् ॥ ८९ ॥  
 एतत् परपदा काली स्त्रीविद्यादिप्रतर्पणम् ।  
 कृत्वा योगी भवेदेव सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ॥ १०० ॥  
 मूले पात्रं चान्द्रमसं ललाटेऽमृततन च ।  
 संपूर्य्य ज्ञानमार्गेण तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥ १०१ ॥  
 सुधासिन्धोर्मध्यदेशे कुलकन्यां प्रतर्पयेत् ।  
 मदिराऽऽमृतधाराभिः सिद्धो भवति योगिराट् ॥ १०२ ॥  
 तत्र तीर्थे महाज्ञानी ध्यानं कुर्यात् प्रयत्नतः ।  
 तद्गर्भसार्द्धधी नित्यं ध्यानमेतद्ध योगिनाम् ॥ १०३ ॥  
 स्त्रीयां कन्यां भोजयेद्द्वै परकीयामथापि वा ।  
 परितोषाय सर्वेषां युवतीं वा प्रतोषयेत् ॥ १०४ ॥  
 स्तोत्रेणानेन दिव्येन तोषयेत् शङ्करं प्रभो ! ।  
 सहस्रनाम्ना कौमार्याः स्तुत्वा देवीं प्रतोषयेत् ॥ १०५ ॥  
 यः करोति पूर्णयज्ञं पञ्चाङ्गं जपकर्मणि ।  
 पुरश्चरणकार्यञ्च प्राणायामं न कारयेत् ॥ १०६ ॥  
 प्राणवायुः स्थिरो देहे पूजाग्रहणहेतुना ।  
 येऽन्तरस्थं न कुर्वन्ति तेषां सिद्धिः कत्रं स्थिता ? ॥ १०७ ॥  
 अतोऽन्तर्यजनेनैव क्लृण्वन्ती तुष्टमानसा ।  
 यदि तुष्टा महादेवी तदैव सिद्धिभाक् पुमान् ॥ १०८ ॥

मानसपूजा ।—

अभिषिञ्च्य जगद्धात्रीं प्रत्यक्षपरदेवताम् ।  
 मूलाभोजात् सहस्रारि पूजयेद्दिन्दुधारया ॥ १०९ ॥  
 गलच्चन्द्राऽमृतोक्तास-धारयाऽऽसिञ्च्य पार्वतीम् ।  
 पूजयेत् परया भक्त्या मूलमन्त्रं स्मरन् सुधीः ॥ ११० ॥

अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् ।  
 तन्मनस्कतया बुद्ध्या सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥ १११ ॥  
 मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि परिभावयेत् ।  
 त्रिमले परमे व्योम्नि परमानन्दसंस्थितम् ॥ ११२ ॥  
 संपश्येदात्मसद्भावैः पूजाहोमादिभिर्विना ।  
 तदन्तर्यजनं ज्ञेयं योगिनां शङ्कर! प्रभो! ॥ ११३ ॥  
 अन्तरात्मा महात्मा च परमात्मा स उच्यते ।  
 तस्य स्मरणमात्रेण साधु योगी भवेन्नरः ॥ ११४ ॥  
 अमायमनहृद्धारमरागममदं तथा ।  
 असोहकमदम्बञ्च अनिन्दाचीभक्तौ तथा ॥ ११५ ॥  
 अमात्मर्यमलोभञ्च दशपुष्पाणि योगिनाम् ।  
 अहिंसा परमं पुष्यं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ ११६ ॥  
 दयापुष्यं क्षमापुष्यं ज्ञानपुष्यञ्च पञ्चमम् ।  
 इति पञ्चदशपुष्ये पूजयेत् परदेवताम् ॥ ११७ ॥

मानसहोमः ।—

अथ होमविधिं वक्ष्ये पुरश्चरणसिद्धये ।  
 सङ्केतभाषया नाथ ! कथयामि शृणुष्व तत् ॥ ११८ ॥  
 आत्मानमपरिच्छिन्नं विभाव्य सूक्ष्मवत् स्थितम् ।  
 आत्मत्रयस्वरूपन्तु विल्कुण्डं चतुरस्रकम् ॥ ११९ ॥  
 आनन्दमेखलायुक्तं नाभिस्थज्ज्ञानवह्निषु ।  
 अर्द्धमात्राकृतिं योनि-भूषितं जुहुयात् सुधीः ॥ १२० ॥  
 इति मन्त्रेण तदङ्गो सोऽहंभावेन होमयेत् ।  
 ब्राह्मणाङ्गीविधिं त्यक्त्वा मूलान्तेन स्ततेजसम् ॥ १२१ ॥  
 नाभिचैतन्यरूपान्गौ हविषा मनसा शुचा ।  
 ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षततिर्जुहोम्यहम् ॥ १२२ ॥  
 इति प्रथममाहुत्या मूलान्ते सञ्चरेत् क्रियाम् ।

द्वितीयाहुतिदानेन होमं कृत्वा भवेदशौ ॥ १२३ ॥  
 धर्माधर्मप्रदीप्ते च आत्मग्नौ मनसा श्रुवा ।  
 सुषुम्नावर्त्मना नित्यमन्नवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥ १२४ ॥  
 स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य आद्ये मूलं नियोज्य च ।  
 जुहुयादेकभावेन मूलाश्वीरुहमण्डले ॥ १२५ ॥  
 चतुर्थं पूर्णहवने एतन्मन्त्रेण कारयेत् ।  
 एतन्मन्त्रचतुर्थन्तु पूर्णविद्याफलप्रदम् ॥ १२६ ॥  
 अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमैधमाने  
 मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ ।  
 कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकाशभूमौ  
 विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम् ॥ १२७ ॥  
 इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षात् ब्रह्ममयो भवेत् ।  
 न तस्य पुण्यपापानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥  
 ज्ञानिनां योगिनामेव अन्तर्योगो हि सिद्धिदः ॥ १२८ ॥

पञ्चमकारपूजा ।—

अथान्तःपञ्चमकार-यजनं शृणु शङ्कर ! ॥ १२९ ॥  
 अन्तर्यजनकाले तु दृढभावेन भावयेत् ।  
 त्वां मां नाथैकतां ध्यात्वा दिवारात्रेप्रकता यथा ॥ १३० ॥  
 सुरा शक्तिः शिवो मांसं तद्भक्तो भैरवः स्वयम् ।  
 तयोरैक्यसमुत्पन्नं आनन्दे मोक्षनिर्णयः ॥ १३१ ॥  
 आनन्दं ब्रह्मकिरणं देहमध्ये व्यवस्थितम् ।  
 तदभिव्यञ्जकैर्द्रव्यैः कुर्यात् ब्रह्मादितर्पणम् ॥ १३२ ॥  
 आनन्दं जगतां सारं ब्रह्मरूपं तनुस्थितम् ।  
 तदभिव्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तैः प्रपूज्यते ॥ १३३ ॥  
 लिङ्गत्रयञ्च षट्पद्माऽऽधारमध्येन्दुभेदके ।



पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत् ॥ १३४ ॥  
 मूलाभोजो ब्रह्मरन्ध्रं चालयेदाशु चालयेत् ।  
 गत्वा पुनः पुनस्तत्र चिच्चन्द्रः परमोटयः ॥ १३५ ॥  
 चिच्चन्द्रः कुण्डलीशक्तिः सारमस्य महोटयः ।  
 व्योमपङ्कजनिस्त्यन्द-सुधापानरती नरः ॥ १३६ ॥  
 मधुपानमिदं नाथ ! बाह्ये चाभ्यन्तरे सताम् ।  
 इतरन्मद्यपानन्तु योगिनां योगघातनम् ॥ १३७ ॥  
 इतरन्तु महापानं भ्रान्तिमिथ्याविवर्जितम् ।  
 महावीरः संकरोति योगाष्टाङ्गमसृष्टये ॥ १३८ ॥  
 पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानलभ्यो न योगवित् ।  
 परशिवे च यच्चित्तं नियोजयति साधकः ॥ १३९ ॥  
 मांमाश्री म भवेदेव इतरे प्राणघातकाः ।  
 शरीरस्थे महावक्त्रौ दग्धमत्स्यानि पूजयेत् ॥ १४० ॥  
 शरीरस्थजलस्थानि इतराण्यशुभानि च ।  
 महीगतास्त्रिदशमीस्योद्भवसुद्रा महाफलाः ॥ १४१ ॥  
 तत्सर्वं ब्रह्मकिरणे आरोप्य तर्पयेत् सुधीः ।  
 तत्र सुद्राभोजनानि श्रानन्दवर्द्धकानि च ॥ १४२ ॥  
 इतराणि च भोगार्थं एतद्धि योगिनां परम् ।  
 परशक्त्या च मिथुन-संयोगानन्दनिर्भराः ॥ १४३ ॥  
 मुक्तास्ते मैथुनं तत् स्थापितरे स्त्रीनिषेवकाः ।  
 एतत्पञ्चमकारेण पूजयेत् परनायिकाम् ॥ १४४ ॥

पञ्चमकारमाहात्म्यम् ।—

पुरश्चरणगूढार्थ-सारमन्त्रप्रपूजनम् ।

एतद् योगं सदाऽभ्यासान्निद्रालस्यविवर्जितः ॥ १४५ ॥

प्राणवायुजयं कुर्यात् कालवारणकारणात् ।

एतत् क्रियां प्राणवशे यः करोति निरन्तरम् ॥

तस्य योगसमृद्धिः स्यात् कालसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उद्धारतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने भावनिर्णये सृष्ट्योगविद्यारथिप्रकरणे  
प्राणवक्तव्ये षट्षण्णसारसङ्घेते सिद्धमन्त्रप्रकरणे भैरवी-भैरवसंवादे  
सप्तविंशः पटलः ॥ २६ ॥

### अथ सप्तविंशः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

विविधानि त्वयोक्तानि योगशास्त्राणि भैरवि ! ।

सर्वरूपत्वमेवास्या वद कान्ते ! प्रियंवदे ! ॥ १ ॥

योगाष्टाङ्गफलान्येव सर्वतत्त्वफलानि च ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शक्तितत्त्वक्रमेण तु ॥ २ ॥

पूर्वोक्तप्राणवायूनां हरणं वायुधारणम् ।

प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं समाधिमेव च ॥ ३ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

प्राणायामलक्षणम् ।—

शृणु लोकिश ! वक्ष्यामि प्राणायामफलफलम् ।

न गृह्णीयाद्विस्तरन्तु स्वल्पं नैव तु कुम्भयेत् ॥ ४ ॥

शनैः शनैः प्रकर्त्तव्यं संघातञ्च विवर्जयेत् ।

धुरकाह्लादसिद्धेश्च प्राणायामं शतं शतम् ॥ ५ ॥

वृद्धैः प्राणलक्षणन्तु यस्मिन् यस्मिन् दिने गतिः ।

क्षणपक्षे शुक्लपक्षे तिथित्रिंशत्फलोदयः ॥ ६ ॥

शुक्लपक्षे इडायास्तु क्षणपक्षेऽन्यदेव हि ।

कुर्व्यात् सर्वत्र गमनं सुषुम्ना बहुरूपिणी ॥ ७ ॥

तिथित्रयं सितस्त्रापि प्रतिपदादिसम्भवम् ।

तदयं दक्षनाभायां वायोर्ज्ञेयं महाप्रभो ! ॥ ८ ॥  
 चतुर्थीं पञ्चमीं षष्ठीं व्याप्योदयति देवता ।  
 वामनामापुटे ध्येया वायुधारणकर्मणि ॥ ९ ॥  
 सप्तमीमष्टमीञ्चैव नवमीं व्याप्य तिष्ठति ।  
 वामनामापुटे ध्येया साधकैः कुलपण्डितैः ॥ १० ॥  
 दशम्येकादशीं चैव द्वादशीं व्याप्य तिष्ठति ।  
 वायुर्दक्षिणनासाग्रे ध्येयो योगिभिरोश्वरः ॥ ११ ॥  
 त्रयोदशीं व्याप्य वायुः पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।  
 वामनामापुटे ध्येयः संहारहरणाय च ॥ १२ ॥  
 कृष्णपक्षफलं वक्ष्ये यज्ज्ञात्वा अमरो भवेत् ।  
 कालज्ञानी भवेत् शीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥  
 प्रतिपदं द्वितीयाच्च तृतीयामपि तस्य च ।  
 पिङ्गलायां समा व्याप्य वायुर्नःसरते सदा ॥ १४ ॥  
 चतुर्थीं पञ्चमीं षष्ठीं वामे व्याप्य प्रतिष्ठति ।  
 सप्तमीमष्टमीं वायुर्नवमीं दक्षिणे ततः ॥ १५ ॥  
 दशम्येकादशीं वायुर्व्याप्य भ्रमति सर्वदा ।  
 वामे च दक्षिणेऽन्यानि तिथ्यादीनि सदानिश्च ॥ १६ ॥  
 यदा एतद् व्यस्रभावं समाप्नोति नरोत्तमः ।  
 तदैव मरणं रोगं बन्धुनाशं त्रिपक्षके ॥ १७ ॥  
 मित्तजन्मतिथिं ज्ञात्वा तस्मिन् काले विरोधयेत् ।  
 आरभ्य जन्मनाशाय प्राणायामं समाचरेत् ॥ १८ ॥  
 यदा व्यत्ययभावेन देहं त्यक्त्वा प्रयच्छति ।  
 तदा निरुध्य स्वसनं कालाग्नौ धारयेदधः ॥ १९ ॥  
 यावत् स्वस्थानमायाति तावत् कालं समभ्यसेत् ।  
 यावन्न चलते देहं यावन्न चलते मनः ॥ २० ॥  
 क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदीङ्गमोऽधमः ।

मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परस्य तु ॥ २१ ॥  
 षण्मासाद्भूतदर्शी स्याद्दूरश्रवणमेव च ।  
 संवत्सराभ्यासयोगात् योगविद्याप्रकाशकत् ॥ २२ ॥  
 योगी जानाति सर्वाणि तन्त्राणि सक्रमाणि च ।  
 यदि दर्शनदृष्टिः स्यात्तदा योगी न संशयः ॥ २३ ॥  
 प्रत्याहारफलं वक्ष्ये यत् कृत्वा खैवरो भवेत् ।  
 ईश्वरे भक्तिमाप्नोति धर्मज्ञानी भवेन्नरः ॥ २४ ॥  
 तत्त्वमस्य गुणाप्राप्तिर्यावत् शीलनमिष्यते ।  
 तावज्जपेत् सूक्ष्मवायुप्रत्याहारप्रसिद्धये ॥ २५ ॥

प्रत्याहारः ।—

इन्द्रियाणां विचरतां विधाय किल वर्द्धनम् ।  
 बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ २६ ॥  
 नान्यकर्मसु धर्मेषु शास्त्रधर्मेषु यागिराट् ।  
 पतितं चित्तमानीय स्थापयेत् पादपङ्कजे ॥ २७ ॥  
 दुर्निवार्यं दृढं चित्तं दुरत्ययमसम्मतम् ।  
 बलादाहरणं तस्य प्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ २८ ॥

भावमाहात्म्यम् ।—

एतत्प्रत्याहारबलाद् योगी स्वस्थो भवेत् ध्रुवम् ।  
 अकस्माद्भावमाप्नोति भावराशिस्थिरो नरः ॥ २९ ॥  
 भावात् परतरं नास्ति भावाधौनमिदं जगत् ।  
 भावेन लभ्यते योगस्तस्माद् भावं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

धारणा ।—

अथ धारणमावक्ष्ये यत् कृत्वा धैर्यरूपभाक् ।  
 त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा पूर्णः स्रष्टेति योगिराट् ॥ ३१ ॥  
 अङ्गुष्ठ-गुल्फ-जानू-सोमनि लिङ्ग-नाभिषु ।  
 हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि ॥ ३२ ॥

भ्रूमध्ये मस्तके मूर्द्ध्नि हादशान्ते यथाविधि ।  
 धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥ ३३ ॥  
 सर्वनाडोग्रन्यदेशे षट्चक्रे देवताऽऽलये ।  
 ब्रह्ममार्गं धारणं यद्धारणेति निगद्यते ॥ ३४ ॥  
 धारणं मूलदेशे तु कुण्डली नासिकातटे ।  
 प्राणवायोः प्रशमनं धारणेति निगद्यते ॥ ३५ ॥  
 तत्र श्रीचरणाभोज-मङ्गले चारुतेजसि ।  
 भावेन स्थापयेच्चित्तं धारणाशक्तिमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

ध्यानम् ।—

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा सर्वगो भवेत् ।  
 ध्यानयोगाद्भवेन्नोचो मत्कुलागमनिर्गमः ॥ ३७ ॥  
 समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना ।  
 आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥ ३८ ॥  
 श्रीपादाभोरुहदन्धे नखकिञ्चलकचित्रिते ।  
 स्थापयित्वा मनः पद्मं ध्यायेदिष्टगुणं महत् ॥ ३९ ॥

समाधिः ।—

अथ समाधिमाहात्म्यं वदामि तत्त्वंतः शृणु ।  
 यस्यैव कारणादेव पूर्णयोगी भवेन्नरः ॥ ४० ॥  
 समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।  
 समाधिना जयी भूयादानन्दभैरवेश्वर ! ॥ ४१ ॥  
 संयोगसिद्धिमात्रेण समाधिस्थं महाजनम् ।  
 प्रपश्यति महाज्ञानी समाध्यष्टाङ्गलक्षणैः ॥ ४२ ॥  
 एतत् समाधिमाकृत्य योगी योगान्वितो भवेत् ।  
 अथ चन्द्रे मनः कुर्यात् समारोप्य विभावयेत् ॥ ४३ ॥  
 एतदष्टाङ्गसारेण योगयोग्यो भवेन्नरः ।  
 योगयोगाद् भवेन्नोचो मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ॥ ४४ ॥

योगशास्त्रप्रकारेण सर्वे वै भैरवाः स्मृताः ।  
 योगशास्त्रात् परं शास्त्रं त्रैलोक्ये नापि वर्तते ॥ ४५ ॥  
 त्रैलोक्यातीतशास्त्राणि योगाङ्गविविधानि च ।  
 ज्ञात्वा मां पश्यति क्षिप्रं नानाध्यायेन शङ्कर ! ॥ ४६ ॥  
 कामादिदोषनाशाय कथितं ज्ञानमुत्तमम् ।  
 इदानीं शृणु वक्ष्यामि मन्त्रयोगार्थनिर्णयम् ॥ ४७ ॥  
 विश्वं शरीरमाकाशं पञ्चभूताश्चयं प्रभो ! ।  
 चन्द्रसूर्याग्निर्जोभिर्जीवब्रह्मैकरूपकम् ॥ ४८ ॥  
 तिस्रः कोट्यो दक्षिणतः शरीरेण तयोर्मताः ।  
 तेषु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ॥ ४९ ॥  
 प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र सोमसूर्याग्निरूपिणी ।  
 नाडीत्रयस्वरूपेण योगमाता प्रतिष्ठिता ॥ ५० ॥  
 इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी ।  
 शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥ ५१ ॥  
 दाडिमीकुसुमप्रख्या विषाख्या परिकीर्तिता ।  
 मेरुमध्ये स्थिता या तु सुषुम्ना बहुरूपिणी ॥ ५२ ॥  
 विसर्गाद्दिन्पर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ।  
 मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मिके ॥ ५३ ॥  
 मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तं कीटिसूर्यसमप्रभम् ।  
 तदूर्ध्वं कामबीजन्तु कलाशान्तीन्दुनायकम् ॥ ५४ ॥  
 तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली ब्रह्मविग्रहा ।  
 तदुवाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णचतुर्दलम् ॥ ५५ ॥  
 द्रुतहेमममप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ।  
 तदूर्ध्वेऽग्निममप्रख्यं सङ्गन्धं हीरकप्रभम् ॥ ५६ ॥  
 वादिलान्तार्णषड्वर्ण-सहितं वत्सपत्रकम् ।  
 स्वाधिष्ठानाख्यसदनं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥ ५७ ॥

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं प्रकीर्तितम् ।  
 स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं खलिङ्गकम् ॥ ५८ ॥  
 तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् ।  
 मेघाभं विद्युदाभञ्च बहुतेजोमयं ततः ॥ ५९ ॥  
 मणिमद् भिन्नं तत् पद्मं मणिपूरं शशिप्रभम् ।  
 कथितं सकलं नाथ । हृदयार्जं शृणु प्रिय ! ॥ ६० ॥  
 दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ।  
 शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकरकारकम् ॥ ६१ ॥  
 तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्मं हृदिस्थं विकलाकुलम् ।  
 उद्यदादित्यसङ्काशं कादिठान्ताक्षरान्वितम् ॥ ६२ ॥  
 दलद्वादशसंयुक्तमीश्वराद्यसमन्वितम् ।  
 तन्मध्ये वाणलिङ्गन्तु सूर्य्यायुतसमप्रभम् ॥ ६३ ॥  
 शब्दब्रह्ममयं वक्ष्येऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।  
 तेनाऽनाहतपद्माख्यं योगिनां योगसाधनम् ॥ ६४ ॥  
 आनन्दमदनं तत्तु सिद्धेनाधिष्ठितं परम् ।  
 तदूर्ध्वन्तु विशुद्धाख्यं दलषोडशपङ्कजम् ॥ ६५ ॥  
 वर्णैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् ।  
 योगिनामद्भुतस्थानं सिद्धिवर्गं समभ्यसेत् ॥ ६६ ॥  
 विशुद्धं तनुते यस्मात् जीवस्य हंसलोकनात् ।  
 विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महत्प्रभम् ॥ ६७ ॥  
 आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु अर्थिनांऽधिष्ठितं परम् ।  
 आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञैति कीर्तितम् ॥ ६८ ॥  
 कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु तदूर्ध्वं बोधनं ततः ।  
 एवंविधानि चक्राणि कथितानि तव प्रभो ! ॥ ६९ ॥  
 तदूर्ध्वस्थानममलं सहस्राराम्बुजं परम् ।  
 विन्दुस्थानं परं ज्ञेयं गणानां मतमाश्रुणु ॥ ७० ॥

गणमतकथनम् ।—

बौद्धा वदन्ति चात्मानं आत्मज्ञानौ न ईश्वरः ।  
 सर्वं नास्तौति चार्वाका नानाकर्मविवर्जिताः ॥ ७१ ॥  
 वेदनिन्दापराः सर्वे बौद्धाः शून्याभिवाटिनः ।  
 मम ज्ञानाश्रिताः कान्ताश्चीनभूमिनिवासिनः ॥ ७२ ॥  
 आत्मानमपरिच्छिन्नं विभाव्य भाव्यते मया ।  
 श्रीपादाजे विन्दुयुग्मं नखेन्दुमण्डलं शुभम् ॥ ७३ ॥  
 शिवस्थानं प्रवदन्ति शैवाः शाक्ता महर्षयः ।  
 परमं पुरुषं नित्यं वैष्णवाः प्रीतिकारकाः ॥ ७४ ॥  
 हरिहरात्मकं रूपं संवदन्ति परे जनाः ।  
 देव्याः पदं नित्यरूपाश्चरणानन्दनिर्भराः ॥ ७५ ॥  
 वदन्ति सुनयो मुख्यं पुरुषं प्रकृतात्मकम् ।  
 पुं प्रकृत्याख्यभावेन मग्ना भान्ति महीतले ॥ ७६ ॥  
 इति ते कथितं नाथ ! मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।  
 योगमार्गानुसारेण भावयेत् सुप्तमाहितः ॥ ७७ ॥  
 आदौ महाप्रकरणे मूले संयोजयेन्मनः ।  
 गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबुद्धयेत् ॥ ७८ ॥  
 लिङ्गभेदक्रमेणैव प्रापयेद्दिन्दुचक्रकम् ।  
 शम्भुभालां परां शक्तिमेकीभावैर्विचिन्तयेत् ॥ ७९ ॥  
 तत्रोत्थितामृतरसं द्रुतलाक्षारसोपमम् ।  
 पाययित्वा परां शक्तिं कृष्णाख्यां योगसिद्धिदाम् ॥ ८० ॥  
 षट्चक्रभेदकस्तत्र सन्तर्प्याऽमृतधारया ।  
 आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥ ८१ ॥  
 एवमभ्यस्यमानस्य अहन्यहनि मारुतम् ।  
 जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ८२ ॥  
 तन्नोक्तकथिता मन्त्राः सर्वे सिध्यन्ति नान्यथा ।



स्वयंसिद्धो भवेत् क्षिप्रं योगे हि योगवल्लभः ॥ ८३ ॥  
 ये गुणाः सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिनः ।  
 ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ॥ ८४ ॥  
 इति ते कथितं नाथ ! मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।  
 इदानीं धारणाख्यन्तु शृणुष्व परमाञ्जनम् ॥ ८५ ॥  
 ध्यानलक्ष्यविवरणम् ।—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने त्वयि चित्तं निधाय च ।  
 मयि वा साधकवरो ध्यायन् तन्मयतामियात् ॥ ८६ ॥  
 तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवन्नृक्षैक्ययोजनात् ।  
 इष्टपादे मतिं दत्त्वा नखकिञ्चल्कचित्त्रिते ॥ ८७ ॥  
 अथवा मननं चित्तं यदा क्षिप्रं न सिध्यति ।  
 तदावयवयोगेन योगी योगं समभ्यसेत् ॥ ८८ ॥  
 पदाश्रोजे मनो दद्यात् नखकिञ्चल्कचित्त्रिते ।  
 जङ्घायुग्मे तथा राम-कदलीकाण्डमण्डिते ॥ ८९ ॥  
 ऊकहये मतहस्ति-करदण्डसमप्रभे ।  
 गङ्गाऽऽवर्त्तगभीरे तु नाभौ सिद्धवने ततः ॥ ९० ॥  
 उदरे वर्चास तथा हरिश्रीवक्षकौस्तुजे ।  
 पूर्णचन्द्रायुतप्रखे ललाटे चारुकुण्डले ॥ ९१ ॥  
 शङ्खचक्रगदाश्रोज-दोर्दण्डपरिमण्डिते ।  
 सहस्रादित्यसङ्काशे किरीटकुण्डलद्वये ॥ ९२ ॥  
 स्थानेष्वेव भजेन्मन्त्री विघ्नदः शुद्धचेतसा ।  
 मनो निवेश्य श्रीकृष्णे वैष्णवो भवति ध्रुवम् ॥ ९३ ॥  
 इति वैष्णवमाख्यातं ध्यानं सत्त्वसुनिर्मलम् ।  
 विष्णुभक्ताः प्रभजन्ति स्वाधिष्ठानमनःस्थिराः ॥ ९४ ॥  
 यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्तयेत् ।  
 तावत् स्वाधिष्ठानसिद्धिरिति योगार्थनिर्णयः ॥ ९५ ॥

तावज्जपेन्ननुं मन्त्री जपहोमं समभ्यसेत् ।  
 अतःपरं न किञ्चिच्च कृत्यमस्ति महोतले ॥ ८६ ॥  
 विदिते परतत्त्वे तु समस्तौर्ग्यमैरलम् ।  
 अतएव सदा कुर्व्यात् ध्यानं योगं जपेन्ननुम् ॥ ८७ ॥  
 तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।  
 एवं यो संवृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ ८८ ॥  
 इति ते कथितं नाथ ! मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।  
 कृत्वा प्रापोद्भवैर्दुःखैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८९ ॥  
 दुर्लभं विप्रयासकैः सुलभं योगिनां किल ।  
 सुलभं न त्यजेत् विद्वान् यदि सिद्धिमिहेच्छति ॥ ९० ॥  
 ब्रह्मज्ञानं योगध्यानं मन्त्रजाप्यं क्रियादिकम् ।  
 यः करोति सदा भद्रो वीरभद्रो हि योगिराट् ॥ ९०१ ॥  
 भक्तिर्या स्यात् सदा शम्भोः श्रीविद्या या परात्परा ।  
 योगसाधनकाले च केवलं भावनादिभिः ॥ ९०२ ॥  
 मननं कीर्तनं ध्यानं स्मरणं पादसेवनम् ।  
 अर्चनं वन्दनं द्रास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ९०३ ॥  
 एतद्भक्तिप्रसादेन जीवन्मुक्तस्तु साधकः ।  
 योगिनां वल्लभो भूत्वा समाधिस्थो भवेद् यतिः ॥ ९०४ ॥

इति श्रीब्रह्मयानले उत्तरतन्त्रे सहातन्त्रोद्दीपने भावनिर्णये पाशवकल्पे

मट्पत्रसारसङ्घेते सिद्धमन्त्रप्रकरणे मन्त्रयोगाधिकरणे

भैरवी-भैरवसंवादे सप्तविंशः पटलः ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

त्रैलोक्य-पूजिते ! कान्ते ! इदानीं सिद्धिहेतवे ।  
 मन्त्रसिद्धेर्लक्षणन्तु योगिनामतिदुर्लभम् ॥ १ ॥

त्वन्मुखाभारुहोक्तास-नि.सृतं परमानृतम् ।

पीत्वा चकार तन्नापि यत्तत्र नास्ति तद्दद ॥ २ ॥

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

मन्त्रसिद्धिलक्षणम् ।—

निश्चयन्तु प्रवक्ष्यामि ज्ञानन्दभैरवेश्वर ! ।

मन्त्रसिद्धेलक्षणन्तु योगमार्गानुकूलतः ॥ ३ ॥

नित्यं चेतसि सुस्थिरो स्थितिपथक्लेशादिदोषक्षमं

सर्वशोक्तममन्त्रसिद्धिकलितं संलक्षणं शोभनम् ।

मृत्यूनं हरणं जगत्पतिमतिं सन्दर्शनशोक्तमं

योगाक्लेशविवर्द्धनं समुद्रयाक्लेशप्रयोगेष्वभाक् ॥ ४ ॥

नरेन्द्राणीकाये प्रविशति हठात् क्षोभरहितं

परत्रैषा मूर्धोत्क्रमणपरमुच्चैः परपुरे ।

अधश्चित्रं पश्येत् खचरवनितामेलनमलं

करोति प्रध्यानं जगति महतां कीर्तिरतुला ॥ ५ ॥

इतीह सिद्धराटिसुलक्षण्येन प्रयाति वैकुण्ठपुरीं मनोरमाम् ।

हिताहितं पश्यति सत्त्वभूभृतां जगद्विपक्षो निजपक्षमाश्रयेत् ॥ ६ ॥

कीर्त्तिभ्रंशादिभक्तिः सदसि च सफला मुक्तिक्रियासंयुता

देवानामतिभक्तियुक्तहृदयं सर्वक्रियादक्षता ।

त्रैलोक्यं निजदास्यकर्मणि तथा जित्वा चिरं जीवति

प्लेष्टाङ्गाभ्यसनं जगद्व्यकरं चैतन्यतामुत्तमाम् ॥ ७ ॥

भोगिच्छारहितं जगज्जनचमत्कारानुकल्पान्वितं

रोगाणां दरणं विरक्तहृदयं वैराग्यमूर्त्तिप्रियम् ।

त्यागं संस्मरणं तथा शमदया मायाविजालान्तरं

शिष्यं कवितारसं धनजनं लक्ष्मीगणं जापनम् ॥ ८ ॥

उल्लासं हृदयाम्बुजे सुतधनं सम्पत्तनं चत्पथं

ब्राह्म्यासागररत्नपूर्णघटितं कान्ताशुणामोदितम् ।

सङ्केतादिमनुप्रियं हरिहरब्रह्मैकभावान्वितं  
 लोकानां गुरुता निरन्तरशिवानन्दैकमुद्राधरम् ॥ ८ ॥  
 एतदुक्तं महादेवोत्तरतन्त्रनिरूपणम् ।  
 मन्त्रनिहितक्षणं तदुत्तमाधममध्यमम् ॥ १० ॥  
 मुनयो देवमुत्थाञ्च नित्यं जन्मनि जन्मनि ।  
 दिव्यं रूपं नरकुले धृत्वा दृष्यन्ति चानिशम् ॥ ११ ॥  
 तवैवापि ममैवापि तर्पणं होमसाधनम् ।  
 सर्वदा कुरुते साधुश्चैतन्मं भवति ध्रुवम् ॥ १२ ॥  
 एतत् प्राणवायुपाने सूक्ष्मचन्द्रनियोजने ।  
 कर्त्तव्यं प्रत्यहं कार्यं दिवारात्रौ मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥  
 अद्यैतत् कर्म संस्कुर्थात् योगसाधनमुत्तमम् ।  
 स श्रीमान् साधु सङ्गता दृष्टशास्त्रोऽपि सिध्यति ॥ १४ ॥  
 एतद्दोषसमूहान्तु वदामि तत्त्वतः शृणु ।  
 किन्नाट्टिदोषदृष्टानां योगतत्त्वेन निध्यति ॥ १५ ॥  
 देवेन्द्रशापदुष्टा च भुवनेषु सुनिदिता ।  
 आराधिता महाविद्या वीर्यदपैविवर्जिता ॥ १६ ॥  
 एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेन महोज्ज्वला ।  
 तदधुर्वरमा देवो तारसंपुटहंसिनौ ॥ १७ ॥  
 आविष्ठा कामवीजेन विद्याकामेश्वरी परा ।  
 शरेण पौडिता पूर्वं भुवनेषु प्रतिष्ठिता ॥ १८ ॥  
 या कुमारी महाविद्या मायाभ्रमविरोधिका ।  
 ताराचन्द्रस्वरूपाहं शिवशक्त्या च केवलम् ॥ १९ ॥  
 श्रीविद्यानां भैरवीणां दोषजालं शृणु प्रभो ! ।  
 एतान् दोषान् प्रणश्यन्ति योगमार्गानुसारिणः ॥ २० ॥  
 अतः कुण्डलिनी देवो योगेन चेतनामुखी ।  
 अतो योगं सदा कुर्यात् सर्वमन्त्रप्रसिद्धये ॥ २१ ॥

भैरवौलक्षणम् ।—

भैरवो विधिजसा च दग्धा च कौलिता तथा ।  
 भैवसन्धानकरणी मीहिता चानुमोहिता ॥ २२ ॥  
 महामदोन्मत्तचित्ता मूर्च्छिता वीर्यवर्जिता ।  
 स्तम्भिता चावृता च्छिन्ना बुद्धा रुद्धा च त्रासिता ॥ २३ ॥  
 निर्वीजा शक्तिहीना च सुप्ता मत्ता च घूर्णिता ।  
 पराङ्मुखी नेत्रहीना सा भीता दुष्टसंस्कृता ॥ २४ ॥  
 सुषुप्ता भेदतः प्रौढा बालिका कामिनी क्रिया ।  
 भयदा युवती क्रूरा दाम्भिका शोकसङ्कटा ॥ २५ ॥  
 निस्त्रिंशका सिद्धिहीना कूटस्था मन्दबुद्धिदा ।  
 हीनकर्णा हीननासा तथा क्रुद्धाङ्गभङ्गुरा ॥ २६ ॥  
 कलहाकलहप्रीता भ्रष्टस्थानक्षयाकुला ।  
 धर्मभ्रष्टा नातिवृद्धाऽतिबाला सिद्धिनाशिनी ॥ २७ ॥  
 हतवीर्या महाभीमा क्रोधपुञ्जा च ध्वंसिनी ।  
 कालविद्या सूक्ष्मधर्मा सूक्ष्मकर्मा च लोहिनी ॥ २८ ॥  
 दुर्गतिस्था तिस्रचित्ता प्रचण्डाचण्डगामिनौ ।  
 उल्कावञ्जलति क्षीणा मन्दहासा निरशका ॥ २९ ॥  
 सत्त्वहीना केकरा च धूपितालिङ्गिता जिता ।  
 अतिमुग्धा लुभार्ता च धूर्ता व्यालास्थिरास्थिरा ॥ ३० ॥  
 तत्राविद्याः प्रसन्नाः स्युर्योगकालनिरोधनात् ।  
 वीरभावेन सिद्धिः स्यात् पुरश्चरणकर्मणा ॥ ३१ ॥

भैरवीचक्रम् ।—

अत्र वीरो यजेत् कान्तां परकीयामथापि वा ।  
 रम्यालङ्कारसंयुक्तां सुन्दरीं चारुहासिनीम् ॥ ३२ ॥  
 मदनानलतप्तार्ज्जीमासवानन्दविग्रहाम् ।  
 योगिनीं कौलिनीं योग्यां धर्मशीलां कुलप्रियाम् ॥ ३३ ॥

दीक्षितां लोलवदनां वदनाम्भोजमोहिनोम् ।  
 नानादेशस्थितां कन्यां युवतीं परिपूजयेत् ॥ ३४ ॥  
 जापिकां मन्दहामाञ्च मन्दमन्दगतिप्रियाम् ।  
 क्लशाङ्गीमतिचार्वङ्गीमलङ्कृतकलेवराम् ॥ ३५ ॥  
 कोटिकन्याप्रदानेन यत् फलं लभते नरः ।  
 तत् फलं लभते सद्यः कामिनीपरिपूजनात् ॥ ३६ ॥  
 ततः षोडशकन्याञ्च योगिन्यो योगसिद्धये ।  
 पूजयेत् परया भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ३७ ॥  
 नानाविधैः पिष्टकान्त्रैः पक्वान्त्रैः प्राणसम्भवेः ।  
 दधिदुग्धघृतेष्वपि नवनीतैः सशर्करैः ॥ ३८ ॥  
 उपल्लाखण्डमिश्रान्त्रैर्नानारुफलान्वितैः ।  
 गुडादिभिर्नारिकेलैः कपिलैर्नागरङ्गकैः ॥ ३९ ॥  
 नानावर्णफलैश्चैव नानागन्धसमन्वितैः ।  
 ऋगनाभिवन्दनैश्च श्रीखण्डैर्नवपल्लवैः ॥ ४० ॥  
 पूजयेत्ताः प्रथमेन जसजैः स्थलजैस्तथा ।  
 नानासुगन्धिपुष्पैश्च रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ॥ ४१ ॥  
 पूजयेत् शून्यगेहे च निजगे विपिने तथा ।  
 कुलदेवीं समानीय स्वागतं प्रवदेदनु ॥ ४२ ॥  
 अर्घ्योदकेन संशोभ्याऽऽसृतीकरणमाचरेत् ।  
 शक्तिञ्चाभिमुञ्चो नोत्वा वीरयोगी भवेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥  
 शक्तिञ्च षोडशीं देवीं कुलचक्रप्रियां शुभाम् ।  
 महाशक्तिं शृणु प्राण-वल्लभ ! स्त्रीकलावतीम् ॥ ४४ ॥  
 ब्राह्मणी क्षत्रिया वेश्या शूद्रा वेश्या च सुन्दरी ।  
 कुलभूषासमाक्रान्ता मानिनी नातिपिङ्गला ॥ ४५ ॥  
 रजकी नर्तकी कीला श्यामाङ्गी स्थूलविग्रहा ।  
 सङ्केतागमना भार्या विदग्धा वच्चकी तथा ॥ ४६ ॥

खल्वकी लोलकन्या च कुलमागप्रवर्त्तिका ।  
 सर्वाङ्गसुन्दरौ भव्या चारुनेत्रा ह मन्युखी ॥ ४७ ॥  
 यद्यदोच्चारतास्तास्तु देया दीक्षा तदा प्रभो ! ।  
 सूक्ष्मतन्त्रानुसारेण कथितं पूर्वसूचितम् ॥ ४८ ॥  
 सर्वाङ्गसुन्दरी शुद्धा शुद्धलोककुलोद्भवा ।  
 युवती योगानरता सा देवी डाकिनी मता ॥ ४९ ॥  
 तामानीय महामन्त्रं दापयेद्विष्टमिद्वये ।  
 ततस्ताः पूजनौघास्तु दीक्षाहीनाऽमुना चरेत् ॥ ५० ॥  
 श्रीकृष्णराममन्त्रान्तु दापयेत् सच्चसिद्धये ।  
 ताम्य आदौ ततो मृत्युञ्जयमन्त्रं ततश्चरेत् ॥ ५१ ॥  
 आनन्दभैरवीबीजं देवीं शक्तिं स्वबीजकम् ।  
 अथवा सिद्धमन्त्रान्तु श्रीविद्यायाः प्रदापयेत् ॥ ५२ ॥  
 किं वा केवलमायान्तु क्रोधारुणकराकृतिम् ।  
 ज्वलन्तीं मूलपद्मे तु स्वयम्भृकुसुमाकराम् ॥ ५३ ॥  
 एवम्भूतां महामायां तस्मै दत्त्वा जयौ भवेत् ।  
 आदौ वामकर्णपुटे अग्निवारं परित्रयम् ॥ ५४ ॥  
 अतः शिवां सदानन्द ! दीक्षान्ते कारयेद् बुधः ।  
 दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं गुरोः कृपा ॥ ५५ ॥  
 दीक्षामाश्रित्य मायां या जपेत् सा खेवरौ परा ।  
 तस्याः पूजनमात्रेण प्रसन्नाहं न संशयः ॥ ५६ ॥  
 जगतां जगदीशानां नारौरूपेण संस्थितिः ।  
 अहं नारी न सन्देहः सुन्दरी कुक्षिता परा ॥ ५७ ॥  
 सुन्दरीपालनार्थाय विनाशार्थाश्च कुक्षिता ।  
 साधकस्य भ्रान्तिरूपा साहं ताः परिभावयेत् ॥ ५८ ॥  
 या परा माक्षदा विद्या सुन्दरौ कामचारिणी ।  
 भाविनी सा भवानी च तां विद्यां परिपूजयेत् ॥ ५९ ॥

तस्या अङ्गे स्थिरा नित्यं देवताया अहं प्रभो ! ।  
यश्च योगी सर्वसमः स सर्वात्मा नयेत् क्रिल ॥ ६० ॥  
अन्यथा सिद्धिद्वितिः स्याद्भावाभावविचारणात् ।  
विना भावं न सिध्येतु वीराणां भावराशिकम् ॥ ६१ ॥  
कुर्यात् कौलः पुरश्चर्यां कुलाकुलविमुक्तये ।  
योगी स्यादव्यथो धीरो विद्वन्भक्तो हि जीवने ॥ ६२ ॥

भैरवीपूजा ।—

ब्राह्मणो सुन्दरीञ्चैव संस्थाप्य क्रमतो यजेत् ।  
वामहस्ते भङ्गार्घ्यन्तु दक्षिणे आसनादिकम् ॥ ६३ ॥  
दद्यात् पाद्यमामनानि तत्तन्नाम्ना च स्वागतम् ।  
तत्तदा अर्घ्यपात्रस्थ-जलेन प्रोक्षयेच्च ताम् ॥ ६४ ॥  
धेनुमुद्रा समाकृत्य धंमन्त्रेणाऽमृतीक्रियाम् ।  
अमृतीकरणान्ते च रूपभेदं समानयेत् ॥  
संज्ञाभिर्नामकरणं कृत्वा चासनमर्पयेत् ॥ ६५ ॥  
आदौ कुर्यात् परानन्द रसनागरसम्भवम् ।  
मान्द्यं मन्दगुणोपेतं शृणु तत् क्रममुत्तमम् ॥ ६६ ॥  
स्तोत्रं कुर्यात् मूलपद्मे कुण्डलिन्याः पुरस्क्रियाम् ।  
पुरश्चरणकाले तु जपान्ते नित्यकर्मणि ॥ ६७ ॥  
काम्यकर्मणि धर्मेषु तथैव धर्मधर्मिषु ।  
गुर्वाद्यगुरुनित्येषु भक्तिमाकृत्य सम्पठेत् ॥ ६८ ॥

कन्दवासिनीस्तोत्रम् ।—

ओं नमो गुरवे ओं नमो गुर्वम्बपरदेवतायै । सर्वधर्मार्थ-  
स्वरूपायै सर्वज्ञानस्वरूपायै ॥ ६९ ॥

ओं भवाविभवायै ओं दक्षयज्ञविनाशिन्यै । ओं भद्रकाल्यै  
ओं कपालिन्यै ओं उमायै ओं माहेश्वर्य्यै ओं सर्वसङ्घटतारिण्यै  
ओं महादेव्यै नमो नमः ॥ ७० ॥



श्रीं या मायामयदानवत्रयकरौ शक्तिः क्षमाकर्तृका  
 शुभश्री महिषासुरासुरवलप्राणेन चण्डापहा ।  
 भक्त्यार्द्रा रुधिरप्रिया प्रियकरौ क्रोधाङ्गरक्तोत्पला  
 चामुण्डा रणरक्तवोजरजनौ ज्योत्स्नामुखेन्दोवरा ॥ ७१ ॥  
 या जाया जयदायिनी नृगृह्णिणी भीत्यापहा भैरवी  
 नित्या सा परिरक्षणं कुरु शिवा सारस्वतोत्पत्तये ।  
 सा मे पातु कलेवरस्य विषयाह्लादेन्द्रियाणां बलं  
 रक्षःस्थायिनमुख्यणा ज्वल्लशिखाकारादिजीवांशका ॥ ७२ ॥  
 कृत्वा योगकुलान्वितं स्वभवने नित्यं मनोरञ्जनं  
 नित्यं संयमतत्परं परतरे भक्तिक्रियानिमलम् ।  
 शम्भो रक्ष रजोऽपनौशचरणाभोजे सदा भावनं  
 विश्राथप्रियदर्शनं त्रिजगतां संयम्य योगो भवेत् ॥ ७३ ॥  
 आकाङ्क्षापरिवर्जितं निजगुरोः सेवापरं पावनं  
 प्रेमाह्लादकथाच्युतं कुटिलताहिंसापमानप्रियम् ।  
 कालक्षेपणदोषजालरहितं शक्तं सुभक्तं यतिं  
 श्रीशक्तिप्रियवल्लभं सुरचिरज्ञानान्तरं मानिनम् ॥ ७४ ॥  
 मालासूत्रसूक्ष्ममङ्गनिलयं सल्लक्षणं साक्षिणं  
 नानाकारणकारणं सशरणं साकारब्रह्मार्पणम् ।  
 नित्या सा जडितं महान्तमखिले योगासनज्ञानिनं  
 तं वन्दे पुरुषोत्तमं त्रिजगतामंशार्कहंसं परम् ॥ ७५ ॥  
 मायाङ्गे प्रतिभाति चारुनयनाह्लादैकबीजा सदा  
 कल्लोला विकुला चला समतुला कालाग्निहालाहला ।  
 हालाहेलनशीलकालकलिका केयूरहा वामना  
 सर्वाङ्गं परिपातु पीतवसना शीघ्रासना वासना ॥ ७६ ॥  
 सा बालावलवाहना नृगहना सम्मानना धारणा  
 खं खं खं खचराचरा कुलचरा वाचाचरा वंखरा ।

चं चं चं चमरौहरौ भगवती गाथागतिः मङ्गतिः  
 वाही मे परिपातु पङ्कजमुखी या चण्डमुण्डापहा ॥ ७७ ॥  
 कं कं कं कमलाकलागतिफैला फुत्कारफेरुत्कला  
 पं पं पं परमा रमाजयगमा व्यासङ्गमा जङ्गमा ।  
 तं तं तं तिमिरारुणा सकरुणा मातावलातारिणी  
 भं भं भं भयहारिणी प्रियकरी सा मे भवत्वन्तरा ॥ ७८ ॥  
 भं भं भं भ्ररभ्रभ्ररौगतिपथस्था तारमानन्दितं  
 मं मं मं मलिनं हि सा हयगता हन्ती रिपूणां हिता ।  
 भक्तानां भयहारिणौ रणमुखे शत्रोः कुलाग्निस्थिता ।  
 सा सा सा भवतु प्रभावपटलादौसाङ्घ्रियग्मोज्ज्वला ॥ ७९ ॥  
 गं गं गं गुरुहृदिपी गणपतेरानन्दपुञ्जोदया  
 तारासारसरोरुहरुणकला कोटिप्रभालोचना ।  
 नेत्रं पातु सदा शिवाप्रियपथा कोट्यायुतार्कप्रभा  
 तुण्डं मुण्डविभूषणा नरशिरोमालाविलोला समा ॥ ८० ॥  
 योगेशी शशिशेखरप्रियकथालापोदया भामिनी  
 शीर्षं पत्रललाटकर्णयुगलानन्तं ततः सर्वदा ।  
 मूर्त्तं मेरुशिखास्थिता व्यवतु मे गण्डस्थलं मैथुनी  
 तुष्टं चाष्टमघष्टिकाधरतलं धात्रीधराधारिणी ॥ ८१ ॥  
 नासाग्रहयगह्वरं भृगुतरा नेत्रत्रयं तारिणी  
 केशे कुन्तलकालिका सुकपिला कैलामशैलासना ।  
 कङ्कालामलमालिका सुवसना दन्तावनी दैत्यहा  
 वाक्यं मन्त्रमनन्तशास्त्रनरणी संज्ञावचःस्तम्भिनी ॥ ८२ ॥  
 हं हं हं नरहारघोररमणी सञ्चारिणी पातु मे  
 शत्रूणां टलनं करोतु नियतं मे चण्डमुण्डापहा ।  
 भीमा सन्दहतु प्रतापतपना संवह्नेन वर्धिनी  
 मन्दारप्रियगन्धविभ्रममदा वैदग्ध्यमोहान्तरा ॥ ८३ ॥

सा सा सा तु पतङ्गकोटिनिलया वृङ्गारटङ्गारिणी  
 आनन्दोत्सवसर्वसारजयदा सर्वत्र सा रत्नका ।  
 शौं शौं शौं कठिनाक्षरा क्षयकरो सर्वाङ्गदोषं हनां  
 देहारेः कचह्रीं कराकचकुचाकौलालपूरश्रिता ॥ ८४ ॥  
 घं घं घं घटधर्षरा विघटिता जायापतिः पातु मे  
 कल्पेऽसौ कुलपालिका भययुतं सर्वत्र मे त्रिग्रहम् ।  
 निद्राद्रावितकौलका मम कुलं लङ्कातटाच्छादिनी  
 लं लं लं नयनानना सुकमला सा लाकिनीलक्षणा ॥ ८५ ॥  
 कुक्षौ पृष्ठतरं मुटा समधनं सा पातु मुद्रामयी  
 मोक्षं पातु करमक्तालरजको या रञ्जको धौतकी ।  
 कृत्या नापितपुत्रिका शशिमुखी सूक्ष्मा मम प्राणगम्  
 मन्दारप्रियमालया मणिमयग्रन्थरा महन्मण्डिता ॥ ८६ ॥  
 पूज्या योगिभिरुत्सुकी भगवती मूलस्थिता सत्क्रिया  
 मत्ता पातु पतिव्रता मम गृहे धर्मं सदा श्रेयसे ।  
 धर्माभोरुहमध्यदेशनिकरे कालो महायोगिनी  
 मत्तानामतिदर्पहा हरशिरोमालाकला केवला ॥ ८७ ॥  
 मे गुह्यं जयमेव लिङ्गमपि मे मूनाम्बुजं पातु सा  
 या कन्या हिमपर्वतस्य भयहा पायान्नितम्बस्थलम् ।  
 सर्वेषां हृदयोदयानलशिखाशक्तिर्मनोरूपिणी  
 मे भक्तिं परिपातु कामकुशला लक्ष्मीप्रिया मे प्रभो ! ॥ ८८ ॥  
 गौरी गौरवकारिणी भुवि महामाया महामोहना  
 \* \* \* \* \*  
 वं वं वं वकरारुणी सुमतिरा मे पातु नित्यं कटीं  
 कूटा सा रविचन्द्रवङ्गिरहिता स्नेहामयी मे सुखम् ॥ ८९ ॥  
 एतत् स्तोत्रं पठेद् यस्तु सर्वकाले च सर्वदा ।  
 स भवेत् कालयोगिन्द्रो महाविद्यानिधिर्भवेत् ॥ ९० ॥

मूलपद्मबाधने च मूलप्रकृतिसाधने ।

निजमन्त्रबाधने च घोरसङ्कटकालके ॥ ८१ ॥

आपटस्तस्य नश्यन्ति अन्धकारे यथा रविः ।

सर्वकाले सर्वदेशे महापातकघातकम् ॥

स भवेद्योगिनोपुत्रः कलिकाले न संशयः ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायाम् उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्चक्रप्रकाशे भैरव-भैरवी-संवादे  
ब्रह्मविद्भिन्नोक्तोक्तं नाम अष्टाविंशः पटलः ॥ २८ ॥

### अथ एकोनविंशः पटलः ।

अतःपरं महावीरो विवेकी परमार्थवित् ।

पुनर्जिज्ञासयामास ज्ञानज्ञेयेन शङ्करः ॥ १ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

षट्चक्रभेदनकथां कथयस्व वरानने ! ।

हिताय सर्वजन्तूनां हिरण्यवर्णमण्डितम् ॥ २ ॥

प्रकाशयस्व वरदे ! योगानामुदयं वद ।

येन योगेन धीराणां हितार्थं वाञ्छितं यथा ॥ ३ ॥

कालक्रमेण सिद्धिः स्यात् कालज्ञानविनाशनात् ।

कालक्षालनहेतीश्वरं पूर्वं नोदयापनं कृतम् ॥ ४ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

षट्चक्रभेदः ।—

शृणु कान्त ! प्रवक्ष्यामि षट्चक्रभेदनक्रियाम् ।

यत् कृत्वा अमरा लोके विचरन्ति चराचरे ॥ ५ ॥

अकालसृष्ट्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।

योगेन जीवगाश्चैव भवन्त्यमररूपिणः ॥ ६ ॥

षट्चक्रे च महापद्मे सर्वसत्त्वगुणान्विते ।

धर्माधर्मं मनोराज्ये सर्वविद्यानिधौ कृती ॥ ७ ॥

कलिकल्पप्रमुख्यानां सर्वपापपहारके ।

मनो दत्त्वा महाकाल ! जीदाः सर्वत्रगामिनः ॥ ८ ॥

षट्चक्रयोगः ।—

अथ षट्चक्रयोगञ्च प्रवक्ष्यामौह तत्त्वतः ।

कुण्डलीविधियोगञ्च कृत्वा योगो भवेन्नरः ॥ ९ ॥

मूलादिव्रह्मरन्ध्रान्तं षट्चक्रभेदनं मतम् ।

षट्चक्रे योगशास्त्राणि विविधानि वसन्ति हि ॥ १० ॥

यो जानातौह षट्चक्रं सर्वशास्त्राथविद्भवेत् ।

चतुर्दलं मूलपद्मं यादिसान्ताणंसम्भवम् ॥ ११ ॥

हिरण्यवर्णममलं ध्यायेद् योगी पुनः पुनः ।

निर्जने विपिने शून्चे पशुपत्तिगणान्विते ॥ १२ ॥

निर्भये सुन्दरे देशे दुर्भिक्षादिविबर्जिते ।

कृत्वा दृढासनं मन्त्रो योगमार्गपरो भवेत् ॥ १३ ॥

तदा योगो भवेत् क्षिप्रं मम शास्त्रानुसारतः ।

पूर्वदले वकारञ्च ध्यायेद् योगी सदा सुखी ॥ १४ ॥

सुवर्णवर्णं हितकारिणं नृणां सत्त्वोद्भवं पूर्वदलस्थितं सुखम् ।

मत्तप्रियं वारणमत्तमन्दिरं मन्त्रार्थकं शीतलरूपधारिणम् ॥ १५ ॥

योगानुभावाश्रयकालमन्दिरं तेजोमयं सिद्धिसमृद्धिदं गुरुम् ।

आद्याक्षरं वं वरभावसाधनं नारायणं भावनपञ्चमच्युतम् ॥ १६ ॥

अथं शकारं कनकाचलप्रभं गोरीपतेः श्रीकरणं पुरातनम् ।

लक्ष्मीमयं सर्वसुवर्णवेष्टितं सदा मुदा दक्षिणपत्रपावनम् ॥ १७ ॥

षमीश्वरी षष्ठगुणावतंसं षट्पद्मसम्भेदनकारकं परम् ।

परापरस्थाननिवासिनं गुणं हेमावलाच्छन्दमहं भजामि ॥ १८ ॥

सकारमानन्दरसं प्रियाप्रियं ध्यायेद् महाहाटकपर्वताग्रकम् ।

ध्यायेद् मुदाहं धननाथमन्दिरे मायामहामौहविनाशनं जयम् ॥ १९ ॥

चतुर्भुजं भुजयुगमष्टादशभुजं तथा ।  
 अष्टहस्तं सदा ध्यायेन्मन्त्रभावविशुद्धये ॥ २० ॥  
 ततो ध्यायेत् कार्णिकायां मध्यदेशे मनोरमम् ।  
 स्वयम्भूलङ्गपरमं योगिनां योमविद्धिदम् ॥ २१ ॥  
 प्रातःसूर्यसमप्रखलं तडित्कोटिसमप्रभम् ।  
 तं संवेद्य महादेवी कुण्डलीयोगदायिनी ॥ २२ ॥  
 सार्धैत्रवेष्टनग्रन्थि-युक्ता सा मुक्तिदायिनी ।  
 निद्रिता सापदा भद्र ! महापातकघातिनी ॥ २३ ॥  
 निरन्तरं तस्य शीर्षे विभाति शशिधा रणे ।  
 तत् श्वासधारिणी नित्या जगतां प्राणधारिणी ॥ २४ ॥  
 सुप्तसर्पसमा भान्ति यथाऽकेशतकोटयः ।  
 यदा लिङ्गं सा विहाय प्रगच्छति महापथे ॥ २५ ॥  
 तदा निदो भवेद् योगी ध्यानधारणकृत् शुचिः ।  
 सदा नन्दमयो नित्यश्चैतन्यकुण्डली यदा ॥ २६ ॥  
 सुषुम्नानाडिकामध्ये महासूक्ष्मा विलोहिता ।  
 मनां निशय यो योगो श्वासमार्गपरो भवेत् ॥ २७ ॥  
 तदा सा द्रवति क्षिप्रं चैतन्यकुण्डली भवेत् ।  
 दुष्टदेशे महाकुण्डे मिरुमूले महाप्रभे ॥ २८ ॥  
 मूलादिब्रह्मःस्वयं सदाऽस्थिरूपधारकः ।  
 कनकाचलनाम्ना च प्रतिभाति भुजद्वये ॥ २९ ॥  
 तन्मध्ये परमा सूक्ष्मा सुषुम्ना बहुरूपिणी ।  
 मना सुनिब्रूपा च मनश्चैतन्यकारिणी ॥ ३० ॥  
 तन्मध्ये भाति वज्राख्या घोरपातकघातिनी ।  
 सिद्धिदा भावविज्ञानां मोक्षदा कुलरूपिणाम् ॥ ३१ ॥  
 तन्मध्ये विद्विषो देवी देवताप्रतिवर्द्धनी ।  
 हितैः प्रणो महाप्राया कालजालविनाशिनी ॥ ३२ ॥

सा पाति सकलान् चक्रान् पद्मरूपधरान् परान् ।  
 त्रैलोक्यमण्डलगतान् साक्षादमृतविग्रहान् ॥  
 स्वयं दधार सा देवी चित्राख्या चारुतेजसी ॥ ३३ ॥  
 तले पृष्ठे मूर्धदेशे शीर्षे वक्षसि नाभिषु ।  
 कण्ठकूपे चक्रमध्ये ब्रह्माण्डं पाति सर्वदा ॥ ३४ ॥  
 शरीरात्मकमीशार्थं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।  
 चित्राख्यानयनं पद्मं यो भावयति भावुकः ॥ ३५ ॥  
 भावेन लभ्यते योगो भावेन भाव्यते शिवः ।  
 भावेन शक्तिमाप्नोति तस्माद्भावं समाश्रयेत् ॥ ३६ ॥  
 षट्चक्रभावनां कृत्वा महायोगी भवेन्नरः ।  
 सर्वधर्मान्वितो भूत्वा राजते च्छितिमण्डले ॥ ३७ ॥  
 सर्वत्रगामी स भवेत् यदि पद्मे मनोलयम् ।  
 पद्मभावनमात्रेण आकाशसदृशो भवेत् ॥ ३८ ॥

मनोमहाप्रलयः ।—

महापद्मे मनो दत्त्वा महाभक्तो भवेद् ध्रुवम् ।  
 यदि भक्तो भवेन्नाथ ! तदा युक्तो न संशयः ॥ ३९ ॥  
 यदि सुक्तो महौमध्ये ध्यानयोगपरायणः ।  
 तदा कालवशं कृत्वा सर्वदर्शी च सर्वदित् ॥  
 सर्वज्ञः सर्वतोभद्रो भवतीति न संशयः ॥ ४० ॥  
 चित्रिणीमध्यदेशे च ब्रह्मनाडी महत्प्रभा ।  
 सर्वमिद्विप्रदा नित्या सा देवी सकलाकला ॥  
 व्योमरूपा भगवती सर्वचैतन्यरूपिणी ॥ ४१ ॥  
 एकरूपं परं ब्रह्म ब्रह्मातीतं जगत्त्रयम् ।  
 यदा जगत्त्रयं ब्रह्म तदा महालयं प्रभो ! ॥ ४२ ॥  
 महालये मनो दत्त्वा सर्वकालजयो भवेत् ॥ ४३ ॥  
 मृत्युञ्जयो महावीरो महाक्षेत्रो महापतिः ।

सर्वव्यापकरूपेण ईश्वरत्वेन भासते ॥ ४४ ॥  
 सर्वदा ह्यत्रमन्वतो विशालाक्षः प्रसन्नधोः ।  
 एकस्थानस्थितो याति नक्षत्रं स हि शङ्कर ! ॥ ४५ ॥  
 एकदृष्टिः क्षुधाटण्णा-रहितो वाक्स्ववर्जितः ।  
 निराकारे मनो दद्यात्तदा महालये प्रभो ! ॥ ४६ ॥  
 किन्तु नाथ ! प्राणिनां हि नापि कापि महात्सवः ॥  
 महाप्रलय एव हि योगिनां नात्र संगमः ॥ ४७ ॥  
 यदा मनोयोगविशुद्धये मनो लयं सदा यः कुरुतेऽप्यहर्निशम् ।  
 स एव मुक्तो गुणनिम्बुरूपकः कालगिरूपेण तदेव देवतम् ॥ ४८ ॥  
 महामना योगविकारवर्जितः कामक्रियाकारण्डविशुद्धिमण्डितः ।  
 हितो गतीनां मतिमान्निरस्तो महालग्नस्थोऽमर एव भक्तः ॥ ४९ ॥  
 मानी विचारार्थविवेकचित्ते चातुर्यचित्तोत्थणताविवर्जितः ।  
 योगी भवेत् साधकचक्रवर्ती व्योमाम्बुजे चित्तविसर्जनं सदा ॥ ५० ॥

इति श्रीब्रह्मसूत्रे उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्चक्रप्रकाशे भैरवीभैरवसंवादे  
 महाप्रलयो नाम एकविंशः पटलः ॥ २६ ॥

### अथ त्रिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

मूलपद्मभेदनम् ।—

अथ वक्ष्ये महाकाल ! मूलपद्मविवेचनम् ।  
 यत् कृत्वा अमरो भूत्वा वसेत् कालचतुष्टयम् ॥ १ ॥  
 अत्र षट्चक्रभेदार्थं भेदिनौशक्तिमाश्रयेत् ।  
 छेदिनीं सर्वव्यथीनां योगिनां समुपाश्रयेत् ॥ २ ॥  
 तस्या मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि येन सिद्धो भवेन्नरः ।  
 आदौ शृणु महामन्त्रं भेदिन्याः प्रबलं मनुम् ॥ ३ ॥



आकालीं समुपाकृत्य ब्रह्ममन्त्रं ततःपरम् ।  
 देव्याः प्रणवमुद्धृत्य भेदिनी तदनन्तरम् ॥ ४ ॥  
 ततो हि मम गृह्णीयात् प्रापय्य इममेव च ।  
 चित्तचञ्चलशब्दास्ते मां रत्न युग्ममेव च ॥ ५ ॥  
 भेदिनि मम शब्दान्ते अकानमरणं हर ।  
 हरस्व स्वं महापापं नभो नमोऽग्निजायया ॥ ६ ॥  
 एतन्मन्त्रं जपेत्तत्र डाकिनी रक्षति प्रभो ! ।  
 आदौ प्रणवमुद्धृत्य ब्रह्ममन्त्रं ततःपरम् ॥ ७ ॥  
 शान्भवीति ततश्चोक्त्वा ब्रह्मण्योति पदं ततः ।  
 मनोनिवेशं कुरुते तारयेति द्विधा पटम् ॥ ८ ॥  
 छेदिनि पटमुद्धृत्य मम मानसशब्दतः ।  
 महान्धकारमुद्धृत्य छेदयेति द्विधा पटम् ॥ ९ ॥  
 स्वाहान्तं मनुमुद्धृत्य जपेन्मूलाब्जं सुधौः ।  
 एतन्मन्त्रप्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १० ॥  
 तथा श्रीयोगिनोमन्त्रं जपेत्तत्रैव शङ्कर ! ।  
 श्रीं घोररूपिणी-पदं सर्वथापि शङ्कर ! ॥ ११ ॥  
 महायोगिनि पापं मे शोकं वीगं हरति च ।  
 विपक्षं छेदयेत्युक्त्वा योगं मय्यर्पय हयम् ॥ १२ ॥  
 स्वाहान्तं मनुमुद्धृत्य जपाद् योगी भवेन्नरः ।  
 खिचरत्वं समाप्नोति योगाभ्यासेन योगिराट् ॥ १३ ॥

डाकिनीमाघनम् ।—

डाकिनीं ब्रह्मणा युक्तां मूले ध्यात्वा पुनः पुनः ।  
 जपेन्मन्त्रं सदा योगो ब्रह्ममन्त्रेण योगवित् ॥ १४ ॥  
 ब्रह्ममन्त्रं प्रवक्ष्यामि तज्जापेतापि योगिराट् ।  
 ब्रह्ममन्त्रप्रसादेन जडो योगी न संशयः ॥ १५ ॥  
 प्रणवत्रयमुद्धृत्य दौर्घप्रणवयुग्मकम् ।

तदन्ते प्रणवतीणि ब्रह्म ब्रह्म त्रयं त्रयम् ॥ १६ ॥  
 सर्वसिद्धिपदस्थान्ते पालिकेति चं मां पदम् ।  
 सत्त्वगुणे रक्ष रक्ष माया स्नाहापदं जपेत् ॥ १७ ॥  
 डाकिनोमन्त्रराजञ्च शृणुष्व परमेश्वर ! ।  
 यज्जप्या डाकिनो वश्या त्रेलाक्यस्थितिपालकः ॥ १८ ॥  
 यो जपेत् डाकिनोमन्त्रं चैतन्यकुण्डलीं तथा ।  
 अनायासेन सिद्धिः स्यात् परमात्मप्रदर्शनात् ॥ १९ ॥  
 मायात्रयं समुद्धृत्य प्रणवैकं ततःपरम् ।  
 डाकिन्यन्ते महाशब्दं डाकिन्यवपदं ततः ॥ २० ॥  
 पुनः प्रणवमुद्धृत्य मायात्रयं ततःपरम् ।  
 मम योगीसाङ्गमन्ते साधयेति द्विधा पदम् ॥ २१ ॥  
 ऋतुमुद्धृत्य देवेभ्यः जपाद् योगी भवेज्जडः ।  
 जह्या संपूजयेन्मन्त्री पुरश्चरणसिद्धये ॥ २२ ॥  
 सर्वत्र चित्तमाल्येन द्रव्यादिविधिविधानि च ।  
 पूजयित्वा मूलपद्मे चित्तोपकरणेन च ॥ २३ ॥  
 ततो मानसजापञ्च स्तोत्रञ्च कलिपारणम् ।  
 पठित्वा योगिराड् भूत्वा वसेत् षट्चक्रवेश्मनि ॥ २४ ॥  
 शक्तियुक्तं विधिं यस्तु स्तौति नित्यं महेश्वर ! ।  
 तस्यैव पालनार्थाय मम जन्म महीतले ॥ २५ ॥  
 तत् स्तोत्रं शृणु योगार्थं सावधानावधारय ।  
 एतत् स्तोत्रप्रसादेन महाकालवशो भवेत् ॥ २६ ॥

डाकिनोस्तोत्रम् ।—

नित्यां ब्रह्मपरायणां त्रिनयनां ध्यायेन्मुदा डाकिनीं  
 रक्ताङ्गच्छविमोहिनीं कुलपथज्ञानाकुलज्ञानिनीम् ।  
 मूलाश्वोरुहमध्यदेशनिकटे भूविस्वमध्ये प्रभां  
 हेतुस्थां गतिमोहिनीं श्रुतिभुजां विद्यां भवाङ्गादिनीम् ॥ २७ ॥

विद्या वास्तवमालया गलतलप्रालम्बशोभाकरां  
 ध्यात्वा मूलनिकेतने निजकुले यः स्तौति भक्त्या सुधीः ।  
 नानाकारविकारसारकरणां कर्त्री विधोर्भागिनीं  
 मुख्यां मुख्यजनास्थितां स्थितिमतीं सत्त्वाश्रितामाश्रये ॥२८॥  
 या देवी नवडाकिनी सुरमणी विज्ञानिनी मोहिनी  
 मां पातु प्रियकामिनी भवविधेरानन्दसिन्धुद्भवा ।  
 मे मूलं गुणभासिनी प्रचयतु श्रीकीर्त्तिचक्रं हि मां  
 नित्या सिद्धिगुणोदया सुरदया श्रीसंज्ञया मोहिता ॥२९॥  
 तन्मध्ये परमाफला कुलफला रत्नप्रकान्ताकरा  
 राका राशषसा दशा शशिघटा लीलाऽमला कामना ।  
 सा माता नवमालिनी मम कुलं मूलाम्बुजं सर्वदा  
 सा देवी लयकारिणी कलिफलोत्सासैकवीजान्तरा ॥३०॥  
 धात्री धैर्यवती सती मधुमती विद्यावती भारती  
 कल्याणौ कुलकन्यकाधरनरारूपा हि सूक्ष्मास्यदा ।  
 भोक्ष्ण्या स्थितिपूजिता स्थितिमता माता सुता योगिनां  
 नौमि श्रीभविष्काशयां शमनगां गीतोद्गतां गोपनाम् ॥३१॥

\* \* \* \*

कुक्केशीं कुलपण्डितां कुलपथशान्तिक्रियाच्छेदिनीं  
 नित्यांशां गुणपण्डितां प्रचपलां मालाशतार्काक्ष्याम् ॥३२॥  
 विद्यां चण्डगुणोदयां समुदयां त्रैलोक्यरक्षाक्षरां  
 ब्रह्मज्ञाननिवासिनीं सितशुभानन्देकवीजागताम् ।  
 गीतार्थानुभवप्रियां सकलया सिद्धप्रभापाटलाम्  
 कामाख्यां प्रभजामि जन्मनिलयां हेतुप्रियां सत्क्रियाम् ॥३३॥

\* \* \* \*

सिद्धौ साध्यं प्रधानं परमपरतरं दिव्यरूपं मनोगम् ।  
 ब्रह्मज्ञानं निदानं गुणनिधिनयनं कारणानन्दयानं

ब्रह्माणं ब्रह्मभोजं रजनिजयपरं योगकार्यानुरागम् ॥ ३४ ॥

शोकातीतं विनीतं नरकजयपरं सर्वविद्याविधिज्ञं  
सारात्सारं तर्कं तं सकलतिमिरहरं हंसगं पूजयामि ।

एतत्सम्बन्धभागं नवनवदलगतं वेदवेदाङ्गविज्ञं

मूलाभोजप्रकाशं तरुणरविशशिप्रोन्नताकारसारम् ॥ ३५ ॥

\* \* \* \*

भावाख्यं भावसिद्धं जयजयदविधिध्यानगम्यं पुराणं  
पाराख्यं पारणाख्यं परजनजनितं ब्रह्मरूपं भजामि ॥ ३६ ॥

डाकिनीसहितं ब्रह्म-ध्यानं कृत्वा पठेत् स्तवम् ।

पठनाद्वारणान्धन्तो योगिनीसङ्गतिर्भवेत् ॥ ३७ ॥

एतत् पठनमात्रेण महापातकनाशनम् ।

एकरूपं जगन्नाथं विशालनयनाम्बुजम् ॥

एवं ध्यात्वा पठेत् स्तोत्रं पठित्वा योगिराड् भवेत् ॥ ३८ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायाम् उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकसिद्धिः

साधने भैरवीभैरवसंबन्धे डाकिनीब्रह्मस्तोत्रं नाम त्रिंशः पटलः ॥ ३० ॥

## अथ एकत्रिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

भेदिनीसाधनम् ।—

अथ नाथ ! प्रवक्ष्यामि भेदिन्याः साधनं परम् ।

येन साधनमात्रेण योगी स्यात् कालजालहः ॥ १ ॥

कलिकाले महायोग साधय त्व महाप्रभो ! ।

यदि न साधितः कालः स कालो देहभक्षकः ॥ २ ॥

भेदिनीसाधनेनैव ग्रन्थिना भेदनं भवेत् ।

डाकिनीं हृदये ध्यायित् परमानन्दरूपिणीम् ॥ ३ ॥

अष्टहस्तां विशालाक्षीं शशाङ्कावयवाङ्किताम् ।

त्रैलोक्यमोहिनीं विद्यां भयहं वरदां सताम् ॥ ४ ॥  
 शुक्लवर्णां त्रिनयनां चारुपमनोहराम् ।  
 ध्यात्वा मूनाम्बुजे योगी पाद्याद्यैः परिपूजयेत् ॥ ५ ॥  
 तत्र मनो लयं कृत्वा योगी भवति भूतले ।  
 यदा मनोलयं याति तदा तस्याः स्तवं पठेत् ॥ ६ ॥  
 स्तोत्रस्य पठनात् सत्यं स सर्वत्राश्रितो भवेत् ।  
 ध्यानमाकृत्य प्रपठेत् सर्वनिदिमंशो भवेत् ॥ ७ ॥

भेदिनीस्तोत्रम् ।—

या भेदिनीसकलग्रन्थिविनाशनानां  
 धर्मान्तरे सकलशत्रुविनाशनस्था ।  
 सा मे मदा प्रतिदिनं परिणतु देहं  
 कालार्थिका भगवती सुतकार्यकर्त्री ॥ ८ ॥  
 या कान्ता करुणामयी त्रिजगतामानन्दसिद्धिस्थिता  
 स्थित्या सा परिपालिका कुलकला लीलाकलाकोमला ।  
 वाणीसिद्धिकरी कृतार्थनिगडे श्रीग्रीदया शङ्करी  
 संज्ञाभेदनभेदिका सुवरदा वेदान्तसिद्धान्तदा ॥ ९ ॥  
 वाणी बाला कुन्डला कलकलचरणा जामला संख्यमाला  
 ह्रीलाभालान्तराला कुलक्रमलचला चञ्चला देहकार्ता ।  
 भेदाख्या भेदभेदा वरनदनिनदा नादविन्दुप्रकाशा  
 सा मे शीघ्रं ललाटं मुखहृदयकटिं मुख्यपद्मं प्रपायात् ॥ १० ॥  
 काञ्चीपीठप्रकाशा निजपदविलया योगिनीनेत्रवच्चा  
 नेत्री योगप्रकाशा गुरुमतघटिता घोरसंहारकारा ।  
 ब्रह्मानन्दस्वरूपा त्रिगतमतिहरा हीरकाभा त्रिनेत्रा  
 हारश्रेण्यादिभूषा शशिशतकिरणा पातु मां भेददेहम् ॥ ११ ॥  
 या भेदिनी सकलपापिपुप्रियाणां  
 स्वर्गोपवर्गविरला वगलामुष्ठी सा ।

मे पातु देहघटितं सकलोप्सितार्थं

भावप्रभावपटला मम गेहसंस्था ॥ १२ ॥

कामाश्रिता विविधदीर्घविनाशलेया

सौन्दर्यवेशकरणौ क्रतुकर्मरक्षा ।

दीक्षा सतां मतिमतां निजयोगदात्री

सा मे मदा सकलदेहमिच्छाश्वभेद्या ॥ १३ ॥

कान्ताशान्तगुणोदया मय्य धनं देहस्य नित्याशया

पायात् श्रीकृलदैवतस्य जयदा सा योगभारं परम् ।

साक्षादीश्वरपूजितां समुचितां चित्तार्थिता चार्थिता

जन्मे घोरतरं जये निजकुले काल कुजे व्याकुले ॥ १४ ॥

भेदाभिः प्रिवाजता सुरवरश्रोहस्तपद्मा चर्ते

मेढ्रं मे खलु लिङ्गमूलकमलं कालप्रिया पातु सा ।

सप्तस्वर्गतलं ममेव वपुषो मियापमनापद्मा

हेतुं वास्वुदसुन्दरप्रियवती हेमावती भारती ॥ १५ ॥

एतत् स्तोत्रं पठित्वा यः स्तौति मूलाश्वजे च माम् ।

स एव योगमाप्नोति स भवेद् योगवल्लभः ॥ १६ ॥

मनःस्थिरं भवेत् क्षिप्रं राजत्वं लभते तदा ।

अनायासेन सिद्धिः स्यात् यस्य वायुर्वशे भवेत् ॥ १७ ॥

योगिनीनां दर्शनं हि अनायासेन लभ्यते ।

भावमिन्सुयुतो भूत्वा विचरेदमरो यथा ॥ १८ ॥

मूलपद्मे वसेद्देवी मूलाश्वोजप्रकाशिनी ।

मालती मालवी मौना मालिनी च मनोहरा ॥ १९ ॥

मानमी मदना मान्या मद्रामैथुनतत्परा ।

मेरुस्था माद्यकसुमा मण्डिता मण्डलस्थिता ॥ २० ॥

मनःस्थैर्यकरी देवी भाव्यते यैः कुमारकैः ।

अकस्मात् सिद्धिमाप्नोति कालेन परमाश्रय ! ॥ २१ ॥

छेदिनीसाधनम् ।—

अथ वक्ष्ये महादेव्याः छेदिन्याः सुरसत्तम !  
 छेत्ता त्वं सर्वग्रन्थीनां यत्प्रसादाद् यतीश्वर ! ॥ २२ ॥  
 यत् प्रसादाटनन्ती हि योगी संसारमण्डले ॥ २३ ॥  
 देशानन्दा सकलगुणदा छेदिनी क्लेदनस्था  
 हृद्यस्था सा विभवनिरता या निरस्ता निशायाम् ।  
 सा मे नित्यं कुलकमलगा गोपनीया विधिज्ञा  
 श्रीपालेशो गगनवसना सर्वयोगं प्रपायात् ॥ २४ ॥  
 कामानन्दा मदननिरता भाविनी भावमिन्धीः  
 कामानन्दोद्भवसनरता योगियोगस्य धात्री ।  
 देहक्लेटे निरसनरता धर्मपुञ्जं प्रपायात्  
 कालाकाले कमलकलिकावासिनी कालिकाले ॥ २५ ॥

\* \* \* \*

ग्रन्थिच्छेदस्थिरगृहगता गात्रनाडीपथस्था ।  
 वक्त्राभोजे वचनमधुरं धारयन्ती जनानां  
 सा मे रन्ध्रं सुहृत्चिरतनोः पातु पञ्चानना सा ॥ २६ ॥  
 योगाङ्गस्था स्थितिलयविभवा लोमकूपाब्जुजस्था  
 माता गौरी गिरिपतिसुता भासुरास्त्रप्रदीप्ता ।  
 संपायात्मे हृदयविवरं छेदिनी मूजपूरे  
 कैलासस्थामृतकगिरिशं पातु रुद्रप्रसादात् ॥ २७ ॥  
 नान्दान्तःस्था मलगुणधरणासन्नसिद्धान्तपारा  
 भोगानन्दा भगनगविले क्षाशयन्ती जनानाम् ।  
 विद्याविद्या विधिविधिकगणा छेदिनी कृन्नरूपा  
 सा सर्वान्तःकरणनिलया लाकिनी प्रेमभावा ॥ २८ ॥  
 योगं स्वर्गोर्षयसि मनसि प्रेमभावं परेशी  
 याया यात्रा त्रिविधकरणा कारणा सर्वजन्तोः ।

माता ज्ञात्रो सेवकसदया सर्वकर्त्री मनो मे  
 रक्षा रक्षाचरगतकमला केवला निष्कला या ॥ २८ ॥  
 सा योगिन्द्रा समवतु मुदा मे गुदं कुण्डलिन्यां  
 भक्तः कन्या कमलनिलया राकिणौ प्रेमभावान् ।  
 मोक्षप्राणान् तपनरहिता पातु मे वेदवक्त्रा  
 सिद्धा मूलाभ्युदलगता पावनी पातु तुण्डम् ॥ ३० ॥

\* \* \* \*

हेरस्वाज्ञापलयघटिता काकिनी क्रोधरूपा ॥ ३१ ॥  
 यदि भजति कुलीनः कामिनीं क्रोधविद्यां  
 स भवति परयोनी छेदिनीस्तोत्रपाठात् ।  
 सकलदुरितनाशः क्षालनादिप्रसिद्धिः  
 सकलजर्नाहृतं स्यात् तस्य नित्यं सुराज्यम् ॥ ३२ ॥  
 एतत् स्तोत्रं पठेद्दिवान् महासंयमतत्परः ।  
 मूले मनःस्थिरं याति सर्वानिष्टविनाशने ॥ ३३ ॥  
 सर्वमिद्धिः करे तस्य यो भावं समुपाश्रयेत् ॥ ३४ ॥  
 शृणुष्व परमानन्द ! रससागरसम्भव ! ।  
 योगिनीस्तोत्रसारञ्च श्रवणाद्वारणाद् यतिः ॥ ३५ ॥  
 अप्रकाशमिदं रत्नं नृणामिष्टफलप्रदम् ।  
 यस्य विज्ञानमात्रेण शिवो भवति साधकः ॥ ३६ ॥

योगिनीस्तोत्रम् ।—

कङ्काली कुलपण्डिता कुलकला कालानना श्यामला  
 योगिन्द्रेन्द्रसुराज्य नाथ-यजिताऽन्या योगिनी मोक्षदा ।  
 मामेकं कुजडं सुखास्तमधनं हीनञ्च द्वीनं खलं  
 ऋषेत्वं परिपालनं प्रकुरुते त्वं त्राहि तामाश्रये ॥ ३७ ॥  
 यज्ञेशी शशिशिखरा शमपरा हेरस्वयोगासदा  
 पात्री दानपरा हरा हरिहराऽधोराभराशङ्करा ।



भूद्रे बुद्धिविहन्यदेहजडितं पूजाजपावजितं  
 कामे कार्यमकिञ्चन यदि किल त्वं योगिनौ रक्षसि ॥ ३८ ॥  
 भाव्या भावनतत्परस्य करणा सा चारणा भोगिनी  
 चन्द्रा निजनाथदेहसुगता मन्दारमालाच्युता ।  
 योगेशो कुक्षयो मनै त्वममरा धाराधराच्छादिनी  
 योगेन्द्रोत्सवरागयागजडिता या मोहासिद्धिस्थिता ॥ ३९ ॥  
 हंसं पाति परेश्वरी सुरतरी वाराहिका भास्वरी  
 शीर्षं पाशविवस्त्रं तव कथाऽऽलापामृतावर्जितम् ।  
 नानाधर्मविवर्जिते कलिज्जुले संव्याकुलं मां क्षणं  
 यद्येके यदि दृष्टिपातकमला तत् केवलं सेवतम् ॥ ४० ॥

मायामयी हृदि यदा मम चित्तमग्नं  
 राज्यं तदा किमु फलं फलमाधनं वा ।  
 इत्याशया बलवतौ मम शक्तिदेवो  
 भाति प्रिये शुनिले मुखरापेणं ते ॥ ४१ ॥  
 या योगिनी सकलयोगसुमन्त्रणाख्या  
 क्वच्य मङ्गलमयी करुणानिधाना ।  
 सा मे भयं हरतु वारणमत्तचित्ता  
 संहारिणी भवतु सोदररत्नहारा ॥ ४२ ॥  
 यदि पठति मनोगो गोवसानी सुरङ्गी  
 वशयति रिपुवर्गं क्रोधपुञ्जं निर्हन्ति ।  
 भुवनपवनभक्तो भावुकः स्यात् सुसङ्गो  
 रतिपनिगुणतुल्यो रामचन्द्री यथेशः ॥ ४३ ॥  
 एतत् स्तोत्रं पठेद् यस्तु स भक्तो भवति प्रियः ।  
 मूलपद्मे स्थिरो भूत्वा षट्चक्रे राज्यमाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

३६ श्रीब्रह्मयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्चक्रपञ्चाशे सिद्धगन्त-  
 प्रकरणे भैरवभैरवीसंवादे भेदिन्यादिस्तोत्रं नाम

## अथ द्वाविंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ कान्त ! प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मम तत्त्वतः ।  
 शक्तिः कुण्डलिनो देवी सर्वभेदनभेदिनी ॥ १ ॥  
 कलिकल्पप्रहन्त्री च जगतां मोक्षदायिनी ।  
 तस्याः स्तोत्रं तथा ध्यानं न्यासं मन्त्रं शृणु प्रभो ! ॥ १ ॥  
 यस्य विज्ञानमात्रेण मूलपद्मे मनोलयः ।  
 चैतन्यानन्दनिरतो भवेत् कुण्डलिसङ्गमात् ॥ २ ॥  
 आकाशगामिनीं सिद्धिं ददाति कुण्डलिन्यहम् ।  
 अमृतानन्दरूपाभ्यां करोमि पालनं नृणाम् ॥ ३ ॥  
 श्वासोत्श्वासकलाभ्याञ्च शरीरं त्रिगुणात्मकम् ।  
 पञ्चभूता च ता नित्यं नानाशक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ४ ॥

कन्दवासिनीध्यानम् ।—

कोटिसूर्यप्रतीकाशां निरालम्बां विभावयेत् ।  
 सर्वस्थितां ज्ञानरूपां श्वासोत्श्वासनिवासिनीम् ॥ ६ ॥  
 स्वयम्भूकुसुमोत्पन्नां ध्यानज्ञानप्रकाशिनौम् ।  
 मोक्षदां शक्तिदां नित्यां नित्यज्ञानस्वरूपिणीम् ॥ ७ ॥  
 लोलां लीलां धरा सर्वां शुद्धज्ञानप्रकाशिनौम् ।  
 कोटिकालानलसमा विद्युत्कोटिमहौजसाम् ॥ ८ ॥  
 तेजसा व्याप्तकिरणां मूलादूर्ध्वप्रकाशिनौम् ।  
 अष्टलोकप्रकाशाद्या फुल्लेन्दौवरलोचनाम् ॥ ९ ॥  
 सर्वमुखीं सवेहस्ता सर्वपादाम्बुजस्थिताम् ।  
 मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्त-स्थानालोकप्रकाशिनौम् ॥ १० ॥  
 त्रिभाषां सर्वभक्ष्याञ्च श्वासनिगमपालिनीम् ।  
 ललितां सुन्दरीं नित्यां कुण्डलीं कुण्डलाकृतिम् ॥ ११ ॥  
 अमूमण्डलवाद्यस्यां बाह्यज्ञानप्रकाशिनौम् ।

नागिनीं नागभूषाढ्यां भयानककलेवराम् ॥ १२ ॥  
 योगिज्ञेयां शुद्धरूपां विरलामूर्द्धगामिनीम् ।  
 एवं ध्यात्वा मूलपद्मे कुण्डलीं परदेवताम् ॥ १३ ॥  
 भावविद्धिर्भवेत् क्षिप्रं कुण्डलीभावनादिह ।  
 ततो मानसजापं हि मानसं होमतर्पणम् ॥ १४ ॥  
 अभिषेकं मुदा कृत्वा प्रातःकाले पुनः पुनः ।  
 प्राणायामं ततः कृत्वा स्तोत्रञ्च कवचं पठेत् ॥ १५ ॥  
 एतत्स्तोत्रप्रपाठेन स्वयं सिद्धान्तविद्भवेत् ।  
 कुण्डली-सुकृपा तस्या मासाद्भवति निश्चितम् ॥ १६ ॥  
 निद्रादशादिकं त्यक्त्वा प्रकाश्याहं शरीरके ।  
 अहं दात्री सुयोगानामधिपाहं जगत्त्रये ॥ १७ ॥  
 अहं कर्मि अहं धर्मीः अहं देवी च कुण्डली ।  
 यो जानाति महावीर ! कुण्डलीरूपसेवनात् ॥ १८ ॥  
 जगत्पालनकर्त्री तु ह्यवतीर्णा हि सर्वदा ।  
 अत एव परं मन्त्रं कुण्डलिन्याः स्तवं शुभम् ॥ १९ ॥  
 प्रपठेत् सर्वदा गेहे यावद्दृश्या न कुण्डली ।  
 तावत्कालं जपं कुर्यात् यावत् सिद्धिर्न जायते ॥ २० ॥

कन्दवासिनीस्तवः ।—

आधारे परदेवता भवन्ता धीकुण्डली देवता  
 देवानामधिदेवता त्रिजगतामनन्दपुञ्जस्थिता ।  
 मूलाधारनिवासिनी त्रिरमणी वा ज्ञानिनी मालिनी  
 सा मे माहमनुस्थिता कुंलपथानन्दैकवीजानना ॥ २१ ॥  
 सर्वाङ्गस्थितिकारिणी सुरगणानन्दैकचिह्ना शिवा  
 वीरेन्द्रा नवकामिनी वचनदा सा सर्वदा ज्ञानदा ।  
 सानन्दा घननन्दिनी घनगणा छिन्नाभवा योगिनी  
 धीरा धैर्यवती समाप्तविषया श्रीमङ्गली कुण्डली ॥२२॥

सर्वाकारनिवासिनो जयधरा धाराधरस्था गया  
 गीता गोधनवर्द्धनी गुरुमयी गानप्रिया गोधना ।  
 गौर्दीर्घस्थितिचन्द्रिकाभूलतिका जाड्यापहा रागदा  
 दारा गोधनकारिणी मृगमना ब्रह्माण्डमार्गोज्ज्वला ॥२३॥  
 माता मानप्रगोचरा हरिचरा सिंहासनाकारणा  
 खाशोटासगणेश्वरी गुणवती गायाम्गणस्थायिनी ।  
 निद्रालुब्धजनप्रिया वरगणा भाषाविशेषस्थिता  
 स्थित्यन्तप्रलयोपहा रणशिरोमालाधरा कुण्डली ॥ २४ ॥  
 गाङ्गेशी भुवनेश्वरी गुरुतरी गोदावरौ भास्करौ  
 भक्तात्तिल्यकारिणौ मम शिवं यद्येकभावान्विता ।  
 त्वं शीघ्रं कुरु कौलिके ! मम शिवे ! वीरेन्द्र ! ह्यङ्गं मुदा  
 तत्प्रस्थितदेवतं कुलवति ! मादस्थले पाँडि माम् ॥२५॥  
 भालोर्द्ध्वं धवला कलारसकला कृष्णाभिभा चीज्ज्वला  
 फेरुप्राणनिकेतने गुरुतरा गुर्वी सुगुर्वी सुरा ।  
 हालोल्लाससमोदयां यतिदया माया जगत्तारिणी  
 निद्रामैथुननाशिनी मम महामोहापहा पातु कम् ? ॥२६॥  
 भाले नीलतनुस्थिता भतिमतामर्थाप्रिया मैथुनी  
 भालामन्दकरा महाप्रियजना पद्मानना कोमला ।  
 नानारङ्गसुधीठदेशदशना सिंहासना घोषणा  
 त्राणस्था वररूपिणी कलिहली श्रीकुण्डली पातु कम् ? ॥२७॥  
 भ्रममध्ये वगलामुखी शशिमुखी विद्यामुखी सम्मुखी  
 नागास्था नगवाहिनी महिषहा पञ्चाननस्थायिनी ।  
 पारावारविहारहेतुशफरो सेतुप्रकारा परा  
 काशीवासिनमौश्वरं प्रतिदिनं श्रीकुण्डली पातु कम् ? ॥२८॥  
 या कुण्डोद्भवसारपाननिरता मोहादिदोषापहा  
 सा नेत्रत्रयमण्डिता सुबलिका श्रीकालिका कौलिका ।

काकस्था द्विकचञ्चुपारणकरो संज्ञाकरो सुन्दरौ  
 मे पातु प्रियया तथा विशदया सच्छायया छादिता ॥ २८ ॥  
 श्रीकुण्डे रणचण्डिका सुरतिका कङ्कालिका कालिका  
 साकाशा परिवर्जिता सुगतिका ज्ञानोर्मिका चोत्सुका ।  
 सौक्ष्मा सूक्ष्मसुखप्रिया गुणनिका दौघा च सूक्ष्माख्यका  
 सानन्दं मम कन्दवासिनि शिवे! संत्राहि संत्राहि कम् ? ॥ ३० ॥  
 एतत् स्तोत्रं पठित्वा त्रिभुवनपवनं पावनं लौकिकानां  
 राजा स्यात् किल्बिषाग्निः क्रतुपतिस्त्रिभुवः क्षेमदं योगिनां वा ।  
 सर्वेशः सर्वकर्त्ता भवति निजगृहे योगयोगाङ्गवक्त्रा  
 शान्तः शिवः स एकः परमपुरुषगो निर्मलात्मा महात्मा ॥ ३१ ॥

प्रणवे पुटितं कृत्वा यः स्तौति नियतः शुचिः ।

स भवेत् कुण्डलोपुत्रो भूतले नात्र सशयः ॥ ३२ ॥

इति श्रीब्रह्मयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने मूलकवचसारसङ्घेते भैरवै-

भैरवसंवादे कन्दवासिनोस्तोत्रं नाम द्वादशः पटलः ॥ ३२ ॥

### अथ त्रयस्त्रिंशः पटलः ।

अथ वक्ष्ये महादेव ! कुण्डलीकवचं शुभम् ।

परमानन्दं सिद्धौ सिद्धवृन्दनिषेवितम् ॥ १ ॥

यत् कृत्वा योगिनः सर्वे धर्माधर्मप्रदर्शकाः ।

ज्ञानिनो मानिनो धर्मा विचरन्ति यथामराः ॥ २ ॥

सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च करुणाः सर्वदेवताः ।

एतत्कवचपाठेन देवेन्द्रो योगिराडभूत् ॥ ३ ॥

ऋषयो योगिनः सर्वे जटिलाकुलभैरवाः ।

प्रातःकाले त्रिवारह मध्याह्ने वारयुग्मकम् ॥ ४ ॥

सायाह्ने वारमेकन्तु पठेत् कवचमेव च ।

पठेदेवं महायोगी कुण्डलोद्गमनं भवेत् ॥ ५ ॥

कन्दवासिनौकवचम् ।—

अस्य श्रीकुलकुण्डलीकवचस्य ब्रह्मोन्द्रऋषिर्गायत्रीच्छन्दः कुल-  
 कुण्डलीदेवता सर्वाभौष्टसिद्धयर्थे विनियोगः ॥ ६ ॥  
 श्री ईश्वरी जगतां धात्री ललिता सुन्दरी परा ।  
 कुण्डलीकुलरूपा च पातु मां कुलचण्डिका ॥ ७ ॥  
 शिरो मे ललितादेवी पातूयाख्या कपोलकम् ।  
 ब्रह्ममन्त्रेण पुटिता भ्रूमर्ध्वं पातु मे सदा ॥ ८ ॥  
 नेत्रत्रयं महाकाली कालाग्निभक्षिका शिखाम् ।  
 दन्तावलीं विग्रान्नाक्षी ओष्ठमिष्टानुवासिनी ॥ ९ ॥  
 कामवौजात्मिका विद्या अधरं पातु मे सदा ।  
 लघुगस्था गण्डयुग्मं मायाविश्वरसप्रिया ॥ १० ॥  
 भुवनेशी कर्णयुग्मं चिवुकं क्रोधकालिका ।  
 कपिला मे गलं पातु सर्वबीजस्वरूपिणी ॥ ११ ॥  
 मातृकार्णपुटिता कुण्डलीकण्ठमेव च ।  
 हृदयं कालटुष्वी च कङ्कालो पातु मे सुखम् ॥ १२ ॥  
 भुजयुग्मं चतुर्वर्गा चण्डदोर्दण्डखण्डिनी ।  
 स्कन्धयुग्मं स्कन्दमाता हालाहलगता मम ॥ १३ ॥  
 अङ्गुल्यग्रं कुलानन्दा श्रीविद्या नखमण्डलम् ।  
 कालिका भुवनेशानी पृष्ठदेशं सदाऽवतु ॥ १४ ॥  
 पार्श्वयुग्मं महावीरा वीरासनधराऽभया ।  
 पातु मां कुलदर्भस्था नाभिमुदरमम्बिका ॥ १५ ॥  
 कटिदेशं पीठसंस्था महामहिषघातिनी ।  
 लिङ्गस्थानं महासुद्रा भगमाला मनुप्रिया ॥ १६ ॥  
 भगीरथप्रिया घृन्ना मूलाधारं गणेश्वरी ।  
 चतुर्दलं कक्षपूज्या दलाग्रं मे वसुन्धरा ॥ १७ ॥  
 शीर्षं राधा रणाख्या च ब्राह्मणं पातु मे सदा ।

मेदिनी पातु कमला वाग्देवी पूर्वगं दलम् ॥ १८ ॥  
 छेदिनी दक्षिणे पातु पातु चण्डा महातपाः ।  
 चण्डघण्टा सदा पातु योगिनी वारुणं दलम् ॥ १९ ॥  
 उत्तरस्थं दलं पातु पृथिवीमिन्द्रपालिताम् ।  
 चतुष्कोणं कामविद्या ब्रह्मविद्याञ्जकोणकम् ॥ २० ॥  
 अष्टशूलं सदा पातु सर्ववाहनवाहना ।  
 चतुर्भुजा सदा पातु डाकिनी कुलचञ्चला ॥ २१ ॥  
 मेद्रस्था मदनधारा पातु मे चारुपङ्कजा ।  
 स्वयम्भूलिङ्ग चार्वाका कोटराक्षी ममासनम् ॥ २२ ॥  
 कदम्बवनमापातु कदम्बवनवासिनी ।  
 वैष्णवी परमा मध्या पातु मे वैष्णवं पदम् ॥ २३ ॥  
 षड्वर्गं राक्षिणी पातु राक्षिणी कामवासिनी ।  
 कामेश्वरा कामरूपा श्रीकृष्णं पौतवाससम् ॥ २४ ॥  
 वनमाल्यं वनदुर्गा शङ्खं शक्तीक्षणी शिवा ।  
 चक्रं चक्रेश्वरी पातु कमलाक्षी गदां मम ॥ २५ ॥  
 पद्मं मे पद्मगन्धा च पद्ममाला मनोहरा ।  
 रादिस्तान्ताक्षरं पातु लाकिनी लोकपालनी ॥ २६ ॥  
 षड्वर्गस्थितदेवी च पातु कैलासवासिनी ।  
 अग्निवर्णा सदा पातु जलं मे परमेश्वरी ॥ २७ ॥  
 मणिपूरं सदा पातु मणिमालाविभूषणा ।  
 दशपात्रं दशार्थं डादिफान्तं त्रिविक्रमा ॥ २८ ॥  
 पातु नीला महाकाली भद्रा भीमा सरस्वती ।  
 अयोध्यवासिनी देवी महापीठनिवासिनी ॥ २९ ॥  
 वाग्मवाद्या महाविद्या कुण्डली कालकुण्डली ।  
 दशच्छदमतं पातु रुद्रं रुद्रात्मकं मम ॥ ३० ॥  
 सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा पातु सूक्ष्मस्थाननिवासिनी ।

राक्षिणी लोकजननी पातु कूटाक्षरस्थिता ॥ ३१ ॥  
 तेजसं पातु नियतं रजनी राजपूजिता ।  
 विजया कुलबीजस्था तवगं तिमिरापहा ॥ ३२ ॥  
 मन्दात्मिका मणियन्त्रिं भेदिनी पातु सर्वदा ।  
 गर्भदाता ऋगुत्तुता पातु मां नाभिवसिनी ॥ ३३ ॥  
 नन्दिनी पातु सकलं कुण्डलीकालकम्पिता ।  
 हृत्पद्मं पातु कालाख्या धूम्रवर्णा मनोहरा ॥ ३४ ॥  
 दलदादशवर्णञ्च भःस्कारी भावसिद्धिदा ।  
 पातु मे परमा विद्या कवणं कामचारिणी ॥ ३५ ॥  
 चवर्गं चारुवसना व्याघ्रास्था टङ्कधारिणी ।  
 चकारं पातु कृष्णाख्या काकिनो पातु कालिका ॥ ३६ ॥  
 टकुराङ्गी टकारं मे जीवभावा महोदया ।  
 ईश्वरी पातु विमला मम हृत्पद्मवासिनी ॥ ३७ ॥  
 कर्णिकां कालसन्दर्भा योगिनी योगमातरम् ।  
 इन्द्राणी वारुणी पातु कुलमाला कुलान्तरम् ॥ ३८ ॥  
 तारिणी शक्तिमाता च कण्ठवाक्यं सदाऽवतु ।  
 विप्रचित्ता महोद्योगा प्रभा दीप्ता घनासना ॥ ३९ ॥  
 वाक्स्तम्भिनी वज्रदेहा वैदेही हृषवाहिनी ।  
 उन्मत्तानन्दवित्ता च घनकेशा भगान्तरा ॥ ४० ॥  
 मम षोडशपत्राणि पातु मङ्गलसंस्थिता ।  
 सुरान् रक्षतु वेदज्ञा सर्वभाषा च कर्णिकाम् ॥ ४१ ॥  
 ईश्वराङ्गीमनगता प्रपायान्ते सदाऽश्वम् ।  
 शाकम्भरो महामाया शाकिनी पातु सर्वदा ॥ ४२ ॥  
 भवानो भगमाता च पायाद् भूमध्यपङ्कजम् ।  
 हिदलं व्रतक माख्या अष्टाङ्गसिद्धदायिनी ॥ ४३ ॥  
 पातु गसा सदानन्दा मनोरूपा जगन्त्रिया ।



लकारं लक्षणाक्रान्ता सर्वलक्षणलक्षणा ॥ ४४ ॥  
 कृष्णाजिनधरा देवी चकारं पातु सर्वदा ।  
 द्विदलस्थं सर्वदेवं सदा पातु वरानना ॥ ४५ ॥  
 बहुरूपा विश्वरूपा हाकिनो पातु सस्थिता ।  
 हरा परशिवं पातु मानसं पातु पञ्चमा ॥ ४६ ॥  
 षट्चक्रस्था सदा पातु षट्चक्रकुलवासिनी ।  
 अकारादिक्षकारान्ता बिन्दुसर्गसमन्विता ॥ ४७ ॥  
 मातृकार्णा सदा पातु कुण्डली ज्ञानकुण्डली ।  
 दैवकालगतिः प्रेमा पूर्णा गिरितटं शिवा ॥ ४८ ॥  
 ऊर्ध्वयानिश्चरी देवी सकलं पातु सर्वदा ।  
 कैलासपर्वतं पातु कैलासगिरिवासिनी ॥ ४९ ॥  
 पातु मे डाकिनीशक्तिर्लाकिनी राकिणी कला ।  
 साकिनी हाकिनी देवी षट्चक्रादीन् प्रपातु मे ॥ ५० ॥  
 कैलासाख्यं सदा पातु मानं मम तनूद्भवा ।  
 द्विरखवर्णा रजनो चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणी ॥ ५१ ॥  
 सहस्रदलपद्मं मे सदा पातु कुलाकुला ।  
 सहस्रदलपद्मस्था दैवतं पातु भैरवौ ॥ ५२ ॥  
 काली तारा षोडश्याख्या मातङ्गी पद्मवासिनी ।  
 शशिकीटिगलद्रूपा पातु मे सकलं तमः ॥ ५३ ॥  
 वने घोरे जले दोषे युद्धे वा देशनाशके ।  
 सर्वत्रगमने ज्ञाने सदा मां पातु शैलजा ॥ ५४ ॥  
 पर्वते विविधायासे विनाशि पातु कुण्डली ।  
 प्रादादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वाकाशं सुरेश्वरी ॥ ५५ ॥  
 सदा पातु भवावद्या सर्वज्ञानं सदा मम ।  
 नवलक्षमहाविद्या दशदिक्षु प्रपातु माम् ॥ ५६ ॥  
 इत्येतत् कवचं देवि! कुण्डलिन्याः प्रसिद्धिदम् ।

ये पठन्ति ध्यानयोगे योगमार्गव्यवस्थिताः ॥  
 ते यान्ति मुक्तिपदवीमैहिके नात्र संशयः ॥ ५७ ॥  
 मूलपद्मे मनोयोगं कृत्वा दृढासनस्थितः ।  
 मन्त्रं ध्यायेत् कुण्डलिनीं मूलपद्मप्रकाशिनीम् ॥ ५८ ॥  
 धर्मोदयां दयारूढामाकाशस्थानवाहिनीम् ।  
 अमृतानन्दरसिकां विकलां सुकलां सिताम् ॥ ५९ ॥  
 असितां रक्तरहितां विसक्तां रक्तविग्रहाम् ।  
 रक्तनेत्रां कुलक्षिप्तां ज्ञानाञ्जनजयोज्ज्वलाम् ॥  
 शिखाकारां मनोरूपां मूले ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥ ६० ॥  
 एवं यः कुरुते योगी स सिद्धो नात्र संशयः ॥ ६१ ॥  
 रोगी रोगात् प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ६२ ॥  
 राज्यं श्रियमवाप्नोति राज्यहीनः पठेद् यदि ।  
 पुत्रहीनो लभेत् पुत्रं योगहीनो भवेद्दृशी ॥ ६३ ॥  
 कवचं धारयेद् यस्तु शिखायां दक्षिणे भुजे ।  
 वामा वामकरे धृत्वा सर्वाभौष्टमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥  
 स्वर्णे रौप्ये तथा तास्त्रे स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ।  
 सर्वदेशे सर्वकाले पठित्वा सिद्धिमाप्नुयात् ॥  
 स भूयात् कुण्डलीपुत्रो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मसंहितायां चतुस्त्रिंशोऽध्याये महावल्गोद्घोषने सिद्धविद्याप्रकरणे षट्चक्रप्रकाशे  
 भैरव-भैरवी-संवादे अन्धवृत्तान्धो कवचं नाम त्रयविंशः पटलः ॥ २३ ॥

## अथ चतुस्त्रिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्याच ।—

अथ भेटान् प्रवक्ष्यामि हिताय जगतां प्रभो ! ।  
 निर्मलात्मा शुचिः श्रीमान् ध्यानाचारः सदाशिवः ॥ १ ॥  
 स मोक्षगो ज्ञानरूपो षट्चक्रार्थविभेदकः ।

त्रिगुणो दिक्कलो देवोऽनुपश्यति दिवानिशम् ॥ २ ॥  
 दिवारात्रज्ञानहेतीर्न पश्यति कलेवरम् ।  
 इति कृत्वा हि मरणं नृणां जन्मनि जन्मनि ॥  
 तज्जन्मक्षयहेतोश्च मम योगं समभ्यसेत् ॥ ३ ॥

पञ्चस्वरादियोगाः ।—

पञ्चस्वरं महायोगं कृत्वा स्यादमरी नरः ॥ ४ ॥  
 तत् प्रकारं शृणुं प्राण-वल्लभ ! प्रियदर्शन ! ।  
 तदभावेन कायेन कुत्रापि वदं शङ्कर ! ॥ ५ ॥  
 यदि लोकस्थ निकटे कथ्यते योगसाधनम् ।  
 विघ्ना घोरां वैसन्धिव गात्रे योगादिकं कथम् ? ॥ ६ ॥  
 योगयोगाङ्गवेन्मोक्षस्तत्रकाशादिनांशनम् ।  
 अतो न दर्शयेद् योगं यदीच्छेदात्मनः शुभम् ॥ ७ ॥  
 कृत्वा पञ्चस्वरं योगं प्रत्यहं भक्तिसंयुतः ।  
 पठेत् श्रीकुण्डलीदेवी-सहस्रनाम चाष्टकम् ॥ ८ ॥  
 महायोगी भवेन्नाथ ! धरमासे नात्र संशयः ।  
 पञ्चस्वरा योगत्रिया सर्वविद्याप्रकाशिनी ॥ ९ ॥  
 कृत्वा पञ्चस्वरां सिद्धिं ततोऽष्टाङ्गादिधारणा ।  
 आदौ पञ्चस्वरासिद्धिस्ततोऽन्या योगधारणा ॥ १० ॥  
 तत्रकारं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।  
 अहं जानामि संसारे केवलं योगपरिण्डिता ॥ ११ ॥  
 तस्मात्त्रिणी ह्यहं नाथ ! भक्तानामुदयाय च ।  
 इदानीं कथये तेऽहं मम वा योगसाधनम् ॥ १२ ॥  
 एषं कृत्वा नित्यरूपी योगानामष्टधा यतः ।  
 ततः कालेन पुरुषः सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ॥ १३ ॥  
 पञ्चाशद्वा विधानानि क्रमेण शृणुं शङ्कर ! ।  
 जैतीयोगं हि सिद्धानां महाकफविनाशनम् ॥ १४ ॥

दन्तीयोगं ततः पश्चात् हृदययन्त्रिभेदनम् ।  
 धीतीयोगं ततः पश्चात् सर्वं मलविनाशनम् ॥ १५ ॥  
 नेत्रलीयोगपरमं सर्वाङ्गोदरचालनात् ।  
 चालनं परमं योगं नाडीनां चालनं स्मृतम् ॥ १६ ॥  
 एतत् पञ्चस्वराद्योगं यमिनामतिगोचरम् ।  
 यमनियमकाले तु पञ्चस्वरक्रियाच्चरेत् ॥ १७ ॥  
 अमरः साधनादेव अमरत्वं समेद् भुवम् ।  
 एतत्करणकाले च तथा पञ्चस्वरासतम् ॥ १८ ॥  
 पञ्चधा भक्षणेनैव अमरो योगसिद्धिभाक् ।  
 तानि द्रव्याणि वक्ष्यामि तवाग्रे परमेश्वर ! ॥  
 येन हीना न सिध्यन्ति कल्पकोटिशतेन च ॥ १९ ॥  
 एका तु अमरा दूर्वा तस्या ग्रन्थिं समानयेत् ॥ २० ॥  
 अन्या तु विजया देवी सिद्धिरूपा सरस्वती ।  
 अन्या तु विश्वपत्राख्या शिवसन्तोषकारिणी ॥ २१ ॥  
 अन्या तु योगसिद्धयर्थे निर्गुण्डी चामरा मता ।  
 अन्या तु कणातुलसी श्रीविष्णोः परितोषणी ॥ २२ ॥  
 एता पञ्चस्वरा ज्ञेया योगसाधनकर्मणि ।  
 एतासां द्विगुणं ग्राह्यं विजयापत्रमुत्तमम् ॥ २३ ॥  
 ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा सर्वत पूजिता ।  
 एतद् द्रव्याणि संगृह्य भक्षयेद्वर्णमुत्तमम् ॥ २४ ॥  
 तच्चूर्णभक्षणक्षणे एतन्मन्त्रादिपञ्चकम् ।  
 पठित्वा भक्षणं कृत्वा नरो सुच्येत सङ्घटात् ॥ २५ ॥

विजयासेवनमन्त्राः ।—

श्रीं त्वं दूर्वेऽमरपूज्ये त्वं अमृतोद्भवसम्भवे ।

अमरं मां सदा भद्रे ! कुरुष्व नृहरिप्रिये ! ॥ २६ ॥

- श्रीं दूर्वायै नमः स्वाहा । इति दूर्वायाः ।  
 पुनर्विजयामन्त्रेण शोधयेत् सर्वकन्यकाः ॥ २७ ॥
- श्रीं संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि ! सदाऽनघे ! ।  
 भैरवाणाञ्च त्वस्यर्थे पवित्रा भव सर्वदा ॥ २८ ॥
- श्रीं ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं सिद्धिमूलकरे देवि ! हीनबोधप्रबोधिनि ! ।  
 राजपुत्रीवशङ्करि ! शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ! ॥ २९ ॥
- श्रीं चतुर्यायै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं अज्ञानन्धनदीप्तान्ने ! ज्ञानाग्निज्वलरूपिणि ! ।  
 आनन्दज्ञानकारणे ! सम्यक्ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥ ३० ॥
- श्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं नमस्यासि नमस्यासि योगमार्गप्रदर्शिनि ! ।  
 त्रैलोक्यविजये ! मातः ! समाधिफलदा भव ॥ ३१ ॥
- श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं कार्यसिद्धिकरि ! देवि ! बिल्बपत्रनिवासिनि ! ।  
 अमरत्वं सदा देहि शिवतुल्यं कुरुष्व माम् ॥ ३२ ॥
- श्रीं शिवदायै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं निर्गुण्डिपरमानन्दे ! योगानामधिदेवते ! ।  
 सां सां रक्ष तु अमरे ! भावसिद्धिप्रदे ! नमः ॥ ३३ ॥
- श्रीं शोकापहायै नमः स्वाहा ।  
 श्रीं विष्णोः प्रिये महामाये ! कालजालविधारिणि ! ।  
 तुलसि ! सां सदा रक्ष मामेकममरं कुरु ॥ ३४ ॥
- श्रीं ह्रीं श्रीं एं ह्रीं अमरायै नमः स्वाहा ।  
 पुनरेव समाकृत्य सर्वासां शोधनञ्चरेत् ॥ ३५ ॥
- श्रीं अमृतोद्भवेऽमृतवर्षिणि ! अमृतमाकर्षय आकर्षय सिद्धिं  
 देहि स्वाहा ॥ ३६ ॥

धेनुमुद्रां योनिमुद्रां मत्स्यमुद्रां प्रदर्शयेत् ।  
 तत्त्वमुद्राक्रमेणैव तर्पणं कारयेद् बुधः ॥ ३७ ॥  
 अमन्त्रकं सप्तवारं गुरोर्नाम्ना शिवेऽर्पयेत् ।  
 सप्तवारमिष्टदेव्या नाम्ना सिद्धिप्रदा भवेत् ॥ ३८ ॥  
 ततस्तर्पणमाकुर्व्यात्तर्पयामि नमो नमः ।  
 एतद्वाक्यस्य पूर्वं च इष्टमन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ३९ ॥  
 परदेवतेति उद्धृत्य सर्वाद्यप्रणव स्मृतम् ।  
 ततो मुखे प्रजुहुयात् कुण्डलीनामपूर्वकम् ॥ ४० ॥  
 “श्रीं ऐं वद वद वाग्वादिनि ! मम जिह्वायै स्थिरीभव सर्व-  
 स्वरवशङ्करि ! शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ! स्वाहा ।”  
 एतज्जह्वा यशस्वी च वशी साधकसत्तमः ।  
 पञ्चस्वरासाधनज्ञः कुलाचारविधिप्रियः ॥  
 स्थिरचेता भवेद् योगी यद्येतत्पञ्चधागतः ॥ ४१ ॥  
 नेतीयोगविधानानि शृणु कैलासपूजिते ॥  
 येन सर्वमस्तकस्य-कफानां दहनं भवेत् ॥ ४२ ॥

नेतीयोगः ।—

सूक्ष्मसूत्रं दृढतरं प्रदद्यान्नासिकाविले ॥ ४३ ॥  
 मुखरन्ध्रे समानोय सन्धानेन समानयेत् ।  
 पुनः पुनः सदा योगी यातायातेन घर्षयेत् ॥ ४४ ॥  
 क्रमेण वर्द्धनं कुर्यात् सूत्रस्य परमेश्वरि ! ।  
 नेतीयोगेन नासाया रन्ध्रं निर्मलकं भवेत् ॥  
 वायोर्गन्धनकाले तु महासुखमिति प्रभो ! ॥ ४५ ॥  
 दन्तीयोगं ततः पश्चात् कुर्यात् साधकसत्तमः ॥ ४६ ॥

दन्तीयोगः ।—

दन्तधावनकाले तु योगमेतत् प्रकाशयेत् ।  
 दन्तधावनकाष्ठञ्च सार्द्धहस्तैकसम्भवम् ॥ ४७ ॥

नातिस्थूलं नातिसूक्ष्मं नवीनं नम्रमुत्तमम् ।  
 अपक्वं यत्नतो ग्राह्यं मृणालसदृशं तरुम् ॥ ४८ ॥  
 गृहीत्वा दन्तकाष्ठं तत् क्रमेण तु प्रभक्षयेत् ।  
 दन्तकाष्ठाग्रभागञ्च कनिष्ठाङ्गुलिपर्वतः ॥ ४९ ॥  
 एवं दन्तावलिभ्याञ्च चर्वणं सुन्दरं चरेत् ।  
 ततः प्रक्षाल्य तीयेन शनैर्गिलनमाचरेत् ॥ ५० ॥  
 शनैः शनैः प्रकर्त्तव्यं कायवाक्चित्तशोधनम् ।  
 यावदभिन्नकाष्ठाग्रं नाभिमूले तु नाक्षतम् ॥ ५१ ॥  
 तावत् सूक्ष्मतरं ग्राह्यं अवश्यं प्रत्यहं चरेत् ।  
 हृदये जलचक्रञ्च यावत् खण्डं न जायते ॥ ५२ ॥  
 तावत् कालं सर्वदिने प्रभाते वरधावनम् ।  
 हृदये कफभाण्डस्य खण्डनं जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥  
 पवनागमने सौख्यं प्रयाति योगनिर्भरम् ।  
 खेचरत्वं स लभतां अस्नानञ्च कट्झवम् ॥ ५४ ॥  
 मिष्टान्नं शाकदध्यन्नं द्विवारं रात्रिभोजनम् ।  
 अवश्यं सन्त्यजेद् योगी यदि योगमिहेच्छति ॥ ५५ ॥  
 एकभागं मुद्गबीजं द्विभागं तण्डुलं मतम् ।  
 उत्तमं पाकमाकृत्य घृतदुग्धेन भक्षयेत् ॥ ५६ ॥  
 अथवा केवलं दुग्ध-तर्पणं कारयेद् बुधः ।  
 कुण्डलीं कुलरूपाञ्च दुग्धेन परितर्पयेत् ॥ ५७ ॥  
 कुण्डलीतर्पणं योगी यद्वि जानाति शङ्कर ! ।  
 अनायासेन योगी स्यात् स ज्ञानीन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५८ ॥  
 यमनियमपरो यः कुण्डलीसेवनस्थो  
 विभवविरहितो वा भूतिभाराश्रितो वा ।  
 स भवति परयोगी सर्वविद्यार्थवेद्यो  
 गुणिगणगगनस्थो मुक्तरूपी गणेशः ॥ ५९ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उचरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्षकप्रकाशे भैरव-भैरवीसंवादे  
 पञ्चसरायोगसाधनं नाम चतुस्त्रिंशः पटलः ॥ ३४ ॥

## अथ पञ्चविंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ वक्ष्ये महाकाल ! रहस्यं चातिदुर्लभम् ।  
यस्य विज्ञानमात्रेण नरो ब्रह्मपदं लभेत् ॥ १ ॥  
आकाशे तस्य राज्यञ्च खेचरेशो भवेद् भ्रुवम् ।  
धनेशो भवति क्षिप्रं ब्रह्मज्ञानी भवेन्नरः ॥ २ ॥  
योगानामधिपो राजा वीरभद्रो यथा कविः ।  
विरिञ्चिगणनाथस्य कृपा भवति सर्वदा ॥ ३ ॥  
यः करोति पञ्चयोगं स स्यादमरविग्रहः ।  
धौतीयोगं प्रवक्ष्यामि यत्कृत्वा निर्मलो भवेत् ॥ ४ ॥  
अत्यन्तगुह्ययोगस्य समाप्तिकरणं नृणाम् ।  
यदि न कुरुते योगं तदा मरणमाप्नुयात् ॥  
धौतीयोगं विना नाथ ! कः सिध्यति महीतले ॥ ५ ॥

धौतीयोगः ।—

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं वस्त्रं हात्रिंशत्कुम्भमानकम् ॥ ६ ॥  
एकहस्तक्रमेणैव यः करोति शनैः शनैः ।  
यावत् धत्ते कुम्भकञ्च तावत् कालं क्रियां चरेत् ॥ ७ ॥  
एतत्क्रियाप्रयोगेण योगी भवति तत्क्षणात् ।  
क्रमेण मन्त्रसिद्धिः स्यात् कालंजालवशं नयेत् ॥ ८ ॥  
एतन्मध्ये आसनानि शरीरस्थानि चाचरेत् ।  
दृढासने योगसिद्धिरिति मन्त्रार्थनिर्णयः ॥ ९ ॥  
सिद्धे मनो पराऽवाप्तिः पञ्चयोगासनेन च ।  
षार्धं चाष्टाङ्गुलं वस्त्रं दीर्घं हात्रिंशदीश्वर ! ॥ १० ॥  
एतत् सूक्ष्मं सुवसनं गृहीत्वा कारयेद् यतिः ।  
जितेन्द्रियः सदा कुर्यात् ज्ञानध्याननिषेवणः ॥ ११ ॥  
कुन्तीनः पण्डितो मानी विवेकी सुस्थिराशयः ।



धौतीयोगं यदा कुर्यात्तदैव शुचिगी भवेत् ॥ १२ ॥  
 अनाचारेण हानिः स्यादिन्द्रियाणां बलेन च ।  
 महापातकमुख्यानां सङ्गदोषेण हानयः ॥ १३ ॥  
 सम्भवन्ति महादेव ! तत्र योगं सुकर्म च ।  
 बृद्धो वा यौवनस्थो वा बालो वा जड एव वा ।  
 कारणात् दीर्घजीवो स्यादमरो लोकवल्लभः ॥ १४ ॥  
 मन्त्रसिद्धिरष्टसिद्धिः स सिद्धीनामधीश्वरः ॥ १५ ॥  
 शनैः शनैः सदा कुर्यात् कालदोषविनाशनात् ॥  
 हृदयग्रन्थिभेदेन सर्वावयववर्द्धनम् ॥ १६ ॥  
 तदा महाबलौ ज्ञानौ चारुवर्णौ महाशयः ।  
 धौतीयोगोद्भवं कामं महामरणकारणम् ॥ १७ ॥  
 तस्य त्यागं यः करोति स नरो देवविक्रमः ।  
 श्वासं त्यक्त्वा स्तम्भनञ्च मनो दद्यान्महाऽनिले ॥ १८ ॥  
 श्वासादौनाञ्च गणनं अवश्यं भावयेद् गृहे ।  
 प्राणायामविधानेन सर्वकालं सुखीभवेत् ॥ १९ ॥  
 वायुपानं सदा कुर्यात् ध्यानं कुर्यात् सदैव हि ।  
 प्रत्याहारं सदा कुर्यात् मनोनिवेशनं सदा ॥ २० ॥  
 मानसादि प्रजाप्यञ्च सदा कुर्यान्ननोलयम् ।  
 धौतीयोगानन्तरं हि नेउलीकर्म चाचरेत् ॥ २१ ॥

नेउलीयोगः ।—

नेउलीकर्मयोगेन आसने नेउलोपमः ।  
 नेउलीसाधनादेव चिरजीवी निरामयः ॥ २२ ॥  
 अन्तरात्मा सदा मौनी निर्मलात्मा सदा सुखी ।  
 सर्वदा मम चानन्दैः कारणानन्दविग्रहः ॥ २३ ॥  
 योगाभ्यासं सदा कुर्यात् कुण्डलीसाधनादिकम् ।  
 कृत्वा मन्त्री खेचरत्वं प्राप्नोति नात्र संशयः ॥ २४ ॥

तत्रकारं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।  
 भुक्त्वा मुक्त्वापक्वञ्च वारैकं प्रतिपालयेत् ॥ २५ ॥  
 प्रचालयेत् स्त्रीदरञ्च कटिनासाविवर्जितम् ।  
 पुनः पुनश्चालनञ्च कुर्यात् स्त्रीदरमध्यगम् ॥ २६ ॥  
 कुलालचक्रवत् कुर्यात् भ्रमणञ्चीदरस्य च ।  
 सर्वाङ्गचालनादेव कुण्डलीचालनं भवेत् ॥ २७ ॥  
 चालनात् कुण्डलीदेव्याश्चैतन्या सा भवेत् प्रभो ! ।  
 एतस्यानन्तरं नाथ ! चालनं परिकीर्तितम् ॥ २८ ॥  
 नाडीनां चालनादेव सर्वविद्यानिधिर्भवेत् ।  
 सर्वत्र जयमाप्नोति कालिकादर्शनं भवेत् ॥ २९ ॥  
 वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य पञ्चभूतस्य सिद्धिभाक् ।  
 तस्य कीर्त्तिस्त्रिभुवने कामदेवबलोपमः ॥ ३० ॥  
 सर्वत्र गामौ स भवेदिन्द्रियाणां पतिर्भवेत् ।  
 मुण्डाननं हि सर्वत्र सर्वदा कारयेद् बुधः ॥ ३१ ॥  
 ऊर्ध्वं पद्मासनं कृत्वा अधो हस्ते जपञ्चरेत् ।  
 यदि त्रिदिनमाकर्णं समर्थो मुण्डिकासनम् ॥ ३२ ॥  
 तदा हि सर्वेनाद्यश्च वशीभूता न संशयः ।  
 नाडीचालनयोगेन मोक्षदाता स्वयं भवेत् ॥ ३३ ॥  
 नाडीयोगेन सर्वार्थ-सिद्धिः स्यान्मुण्डिकासनात् ।  
 मुण्डासनं यः करोति नेउलीसिद्धिगो यदि ॥ ३४ ॥  
 नेउलीसाधनगती नेउलीसाधनोत्तमः ।  
 तदा चालनयोगेन सिद्धिमाप्नोति साधकः ॥ ३५ ॥  
 नेउलीं यो न जानाति स कथं कर्त्तुमुत्तमः ।  
 स धीरो मानसचरो मतिमान् स जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥  
 यो नेउलीयोगसारं कर्त्तुमुत्तमपारगः ।  
 स चावश्यं चालनञ्च कुर्यात् नाद्यादिधारणम् ॥ ३७ ॥

नेत्रलीयोगमार्गेण नाडीचालनपारगः ।  
 भवत्येव महाकाल ! राजराजेश्वरो यथा ॥ ३८ ॥  
 पृथिवीपालनरतो विग्रहार्थं प्रपालनम् ।  
 केवलं प्राणवायोश्च धारणात् चालनं भवेत् ॥ ३९ ॥  
 विना चालनयोगिन देहशुद्धिर्न जायते ।  
 चालनं नाडिकादीनां कफपित्तमलादिकम् ॥ ४० ॥  
 करोति यत्नतो योगी मुण्डासनाऽऽदिकासनम् ।  
 वायुग्रहणमेव हि नेत्रलीवशकालके ॥ ४१ ॥  
 न कुर्यात् केवलं नाथ ! अन्यकाले सदा चरेत् ।  
 अज्ञात्वा नेत्रलीयोगं योगी वायुं न संपिबेत् ॥ ४२ ॥  
 बहुतरं न संग्राह्यं वायोरागमनादिकम् ।  
 केवलं श्वासमणनं यावन्नेत्रली सिध्यति ॥ ४३ ॥  
 षष्ठस्वरा प्रकथिता योगिनीसिद्धिदायिका ।  
 पञ्चानां साधनादेव षष्ठवायुर्वशो भवेत् ॥ ४४ ॥  
 प्रतापे सूर्यतुल्यः स्यात् शोकदोषापहारकः ।  
 सर्वयोगस्थिरतरः संप्राप्य योगिराड् भवेत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्चक्रप्रभाशे भैरव-भैरवीसंवादे

षष्ठस्वराधोगसाधनं नाम षट्त्रिंशः पटलः ॥ ३५ ॥

### अथ षट्त्रिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ कान्त ! प्रवक्ष्यामि कुण्डलीचेतनादिकम् ।  
 सहस्रनाम सफलं कुण्डलिन्याः प्रियं सुखम् ॥ १ ॥  
 अष्टोत्तरं महापुण्यं विधानात् सिद्धिदायकम् ।  
 तव प्रेमवशेनैव कथयामि शृणुष्व तत् ॥ २ ॥

विना यजनयोगिन विना ध्यानेन यत् फलम् ।  
 तत्फलं लभते सद्यो विद्यायाः सुकृपा भवेत् ॥ ३ ॥  
 या विद्या भुवनेशानी त्रैलोक्यपरिपूजिता ।  
 सा देवी कुण्डली माता त्रैलोक्यं पाति सर्वदा ॥ ४ ॥  
 तस्य नामसहस्राणि पुण्यान्यष्टोत्तराणि च ।  
 श्रवणात् पठनान्मन्त्री महाभक्तो भवेदिह ॥  
 ऐहिके स भवेन्नाथ जीवन्मुक्तो महावली ॥ ५ ॥

कुण्डलिन्याः अष्टोत्तरसहस्रनामानि ।—

अस्य श्रीमन्महाकुण्डलीसाष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्रस्य ब्रह्मर्षि-  
 जंगतीच्छन्दो भगवतो श्रीमन्महाकुण्डली देवता सर्वयोग-  
 समृद्धिसिद्धार्थे विनियोगः ।

श्रीमन्महाकुण्डली च कुलकन्या कुलप्रिया ।  
 कुलेश्वरी कुलानन्दा कुलीना कुलकुण्डली ॥ ६ ॥  
 कुलक्षेत्रस्थिता कौली कुलीनार्थप्रकाशिनी ।  
 कुलाख्या कुलमार्गस्था कुलशास्त्रार्थपालिनी ॥ ७ ॥  
 कुलज्ञा कुलयोग्या च कुलपुष्पप्रकाशिनी ।  
 कुलीना च कुलाध्यक्षा कुलचन्दनलेपिता ॥ ८ ॥  
 कुलरूपा कुलोद्भूता कुलकुण्डलिवासिनी ।  
 कुलाभिन्ना कुलोत्पन्ना कुलाचारविनोदिनी ॥ ९ ॥  
 कुलवृक्षसमुद्भूता कुलमाला कुलप्रभा ।  
 कुलस्था कुलमध्यस्था कुलकङ्कणशोभिता ॥ १० ॥  
 कुलोत्तरा कौलपूज्या कुलालापा कुलप्रिया ।  
 कुलाभेदा कुलप्राणा कुलदेवौ कुलस्तुतिः ॥ ११ ॥  
 कौलिका कालिका काल्या कलिभिन्ना कलाकुला ।  
 कलिकल्मषहन्त्री च कलिदोषविनाशिनी ॥ १२ ॥  
 कङ्काली केवलानन्दा कालज्ञा कालधारिणी ।

कौतुकी कौमुदी केका काला काललयान्तिका ॥ १३ ॥  
 कोमलाङ्गी करालास्या कन्दपूज्या च कोमला ।  
 कौशोरी काकपुच्छस्था कम्बलासनवासिनी ॥ १४ ॥  
 कैकेयीपूजिता कोला कोलपुत्री कपिध्वजा ।  
 कमला कमलाक्षी च कम्बलाश्वतरप्रिया ॥ १५ ॥  
 कलिकाभङ्गदोषस्था कालजा कालकुण्डली ।  
 काव्यदा कवितावाणी कालसन्दर्भभेदिनी ॥ १६ ॥  
 कुमारी करुणाकारा कुरुसैन्यविनाशिनी ।  
 कान्ता कुम्भगता कामा कामिनी कामनाशिनी ॥ १७ ॥  
 कामोद्भवा कामकुल्या केवला कालघातिनी ।  
 कैलासशिखरारूढा कैलासपतिसेविता ॥ १८ ॥  
 कैलासनाथनमिता केयूर-द्वारमण्डिता ।  
 कन्दर्पा कठिनानन्दा कुचगा कीटगापहा ॥ २० ॥  
 कमलास्या कठोरा च कीटरूपा कटिस्थिता ।  
 कन्देश्वरी कन्दरूपा कोलिका कन्दवासिनी ॥ २१ ॥  
 कूटस्था कूटभक्षा च कालकूटविनाशिनी ।  
 कामाख्या कमला काम्या कामराजतनूद्भवा ॥ २२ ॥  
 कामरूपधरा काम्ना कमनीया कलिप्रिया ।  
 कञ्जानना कञ्जहस्ता कञ्जपत्रायतेक्षणा ॥ २३ ॥  
 काकिनी कामरूपस्था कामरूपप्रकाशिनी ।  
 कोलविध्वंसिनी कङ्का कलङ्कार्ककलङ्किनी ॥ २४ ॥  
 कुल्या कुलनदी कर्णा कर्मकाण्डविमोहिनी ।  
 काण्डस्था काण्डकरुणा कर्मस्था च कुटुम्बिनी ॥ २५ ॥  
 कामलाभभवा कल्पा करुणा करुणामयी ।  
 करणेशी करा कर्त्री कर्तृहस्ता कलीदरा ॥ २६ ॥  
 कारुण्यसागरोद्भवा कारुण्यसिन्धुवासिनी ।

कार्तिकेशी कार्तिकस्था कार्तिकप्राणपालनी ॥ २७ ॥

करुणानिधिपूज्या च करणीया क्रियाकला ।

कल्पस्था कल्पनिलया कल्पातीता च कल्पिता ॥

कुलपा क्लविज्ञाना कार्षणी कालरात्रिका ॥ २८ ॥

कैवल्यदा केकरस्था कलमञ्जीररञ्जिनी ।

कलयन्ती कालजिह्वा किङ्करासनकारिणी ॥

कुमुदा कुशलानन्दा कौशल्याकाशवाग्निनी ॥ २९ ॥

कंसोपहासहन्त्री च कैवल्यगुणसम्भवा ।

काकाकिनो कार्करूपा कवला कर्कटस्थिता ॥ ३० ॥

कर्कोटकपृष्ठरूपा कूटवह्निकरस्थिता ।

कूजन्ती मधुरध्वानं कामयन्ती सुलक्षणम् ॥

केतकीकुसुमानन्दा केतकीपुष्पमण्डिता ॥ ३१ ॥

कर्पूरपूररुचिरा कर्पूरभक्षणप्रिया ।

कपालपात्रहस्ता च कपालचन्द्रधारिणी ॥ ३२ ॥

कामधेनुस्वरूपा च कामधेनुक्रियाऽन्विता ।

काश्यपी काश्यपा कुन्ती केशान्ता केशमोहिनी ॥ ३३ ॥

कालकर्त्री कूपकर्त्री कुलपा कामचारिणी ।

कज्जलाभा कज्जलस्था कमिता कोपघातिनी ॥ ३४ ॥

केलिस्था केलिकलिता कोपना कर्कटस्थिता ।

कलातीता कालविद्या कालात्मपुरषाङ्गवा ॥ ३५ ॥

कष्टहा कष्टिकुष्ठस्था कुष्ठहा कूटहा कुशा ।

कलिकास्फुटकर्त्री च काखोजा कामनाऽऽकुला ॥ ३६ ॥

कुशलाख्या काककुम्भा कर्मस्था कुम्भमध्यगा ।

कुण्डलाकारचक्रस्था कुण्डगोलोद्भवा कफा ॥ ३७ ॥

कपित्याग्रवसाकाशा कपित्यरोधकारिणी ।

कहोड़ी काहड़ा काड़ा कङ्गलाभाषकारिणी ॥ ३८ ॥

कनका कनकाभा च कनकाद्रिनिवासिनौ ।  
 करञ्जा कर्पटौ कर्पा कृपा कार्पासवासिनौ ॥ ४० ॥  
 कार्पासयज्ञसूत्रस्था कूटब्रह्मार्थसाधिनौ ।  
 कालञ्जभक्षणी क्रूरा क्रोधपुञ्जा कपिस्थिता ॥ ४१ ॥  
 कपालीसाधनरता कनिष्ठाकाशवासिनौ ।  
 कुञ्जरेणौ कुञ्जरस्था कुञ्जरागतिगामिनौ ॥ ४२ ॥  
 कुञ्जस्था कुञ्जरमणौ कुञ्जमन्दिरवासिनौ ।  
 कुपिता कोपशून्या च कोपा कोपविवर्जिता ॥ ४३ ॥  
 कपिञ्जलस्था कापिञ्जा कपिञ्जलतरुङ्गवा ।  
 कुन्तीप्रेमकथाऽऽविष्टा कुन्तीमानसपूजिता ॥ ४४ ॥  
 कुन्तला कुन्तदस्ता च कुलकुन्तलमोहिनी ।  
 कान्ताङ्घ्रिसेविका कान्तकुशला कोशलावती ॥ ४५ ॥  
 केलिहन्त्री ककुटस्था च ककुटस्थवनवासिनौ ।  
 कैलासशिखरानन्दा कैलासगिरिपूजिता ॥ ४६ ॥  
 कौलालनिर्मलाकारा कौलालस्निग्धकारिणी ।  
 कुतुका कुट्टनौ कुट्टा कुट्टलामोदकारिणी ॥ ४७ ॥  
 कौंकारी कौंकारी काशी कशवस्था किरातिनी ।  
 कूजन्ती सर्ववचनं कारयन्ती कृताकृतम् ॥ ४८ ॥  
 कृपानिधिस्वरूपा च कृपासागरवासिनौ ।  
 केवलाऽऽनन्दनिरता केवलाऽऽनन्दकारिणी ॥ ४९ ॥  
 कृमिजा कृमिदोषघ्नी कृपाकपटकुट्टिता ।  
 कृशाङ्गी क्रमभङ्गस्था किङ्करस्था कटस्थिता ॥ ५० ॥  
 कामरूपा कान्तरता कामरूपस्य सिद्धिदा ।  
 कामरूपपीठदेवी कामरूपाङ्गजा कुजा ॥ ५१ ॥  
 कामरूपा कामविद्या कामरूपादिकालिका ।  
 कामरूपकला काम्या कामरूपकुलेश्वरी ॥ ५२ ॥

कामरूपजनानन्दा कामरूपकुशाग्रधीः ।  
 कामरूपकराकाशा कामरूपतरुस्थिता ॥ ५३ ॥  
 कामात्मजा कामकला कामरूपविहारिणी ।  
 कामशास्त्रार्थमध्यस्था कामरूपक्रियाकला ॥ ५४ ॥  
 कामरूपमहाकाली कामरूपयशोमयी ।  
 कामरूपपरानन्दा कामरूपादिकामिनी ॥ ५५ ॥  
 कुलमूला कामरूप-पद्ममध्यनिवासिनी ।  
 कृताञ्जलिप्रिया कृत्या कृत्यादेवीस्थिता कटा ॥ ५६ ॥  
 कटका कटका कीटा कोटिमुण्डविनोदिनी ।  
 काटस्थलकरा काष्ठा कात्यायनसुसिद्धिदा ॥ ५७ ॥  
 कात्यायनी काचलस्था कामचन्द्रानना तथा ।  
 काश्मीरदेशनिरता काश्मीरी कृषिकर्मजा ॥ ५८ ॥  
 कृषिकर्मस्थिता कौर्मा कूर्मपृष्ठनिवासिनी ।  
 कालघण्टानादरता कलमञ्जौरमोहिनी ॥ ५९ ॥  
 कलयन्ती शत्रुवर्गान् क्रोधयन्ती गुणागुणम् ।  
 कामयन्ती सर्वकामं काशयन्ती जगत्त्रयम् ॥ ६० ॥  
 कौलकन्या कालकन्या कौलकालकुलेश्वरी ।  
 कौलमन्दिरसंस्था च कुलधर्मविडम्बिनी ॥ ६१ ॥  
 कुलधर्मरताकारा कुलधर्मविनाशनी ।  
 कुलधर्मपण्डिता च कुलधर्मसमृद्धिदा ॥ ६२ ॥  
 कौलभोगमोक्षदा च कौलभोगेन्द्रयोगिनी ।  
 कौलकर्मानवकुला केतकीपुष्पमालिनी ॥ ६३ ॥  
 कुलपुष्पकान्तकुला कुलपुष्पभवोद्भवा ।  
 कौलकोलाहलकरा कौलकर्मक्रिया परा ॥ ६४ ॥  
 काशीस्थिता काशकन्या काशीचक्षुःप्रिया कुथा ।  
 काष्ठासनप्रिया काका काकपक्षकपालिका ॥ ६५ ॥



कपालरसभोज्या च कपालवनमालिनी ।  
 कपालस्था च कापाली कपालसिद्धिदायिनी ॥ ६६ ॥  
 कपाला कुलकर्त्री च कपाललिखनस्थिता ।  
 कथना कृपणश्रीदा कृपौ कृपणसेविता ॥ ६७ ॥  
 कर्महन्त्री कर्मगता कर्माकर्मविवर्जिता ।  
 कर्मसिद्धिरता कामी कर्मज्ञाननिवासिनी ॥ ६८ ॥  
 कर्मधर्मसुशौला च कर्मधर्मवशङ्करी ।  
 कनकाञ्जसुनिर्माण-महासिंहासनस्थिता ॥ ६९ ॥  
 कनकग्रन्थिमालाढ्या कनकग्रन्थिभेदिनी ।  
 कनकोद्भवकन्या च कनकाभ्याजवासिनी ॥ ७० ॥  
 कालकूटादिकूटस्था किटिशब्दान्तरस्थिता ।  
 क्रङ्कपचनादसुखा कामधेनूद्भवा कक्षा ॥ ७१ ॥  
 कङ्कणाभाधरा कर्दा कर्दमा कर्दमस्थिता ।  
 कर्दमस्थजलाच्छन्ना कर्दमस्थजलप्रिया ॥ ७२ ॥  
 कामठस्था कामठस्था कम्बुस्था कंसवासिनी ।  
 कंसाप्रिया कंसहन्त्री कंसाज्ञानकरालिनी ॥ ७३ ॥  
 काञ्चीनाभा काञ्चीनस्त्रा कामटा क्रमदामदा ।  
 कान्तभिन्ना कान्तचिन्ता कमलासनवासिनी ॥ ७४ ॥  
 कमलासनसिद्धिस्था कमलासनदेवता ।  
 कुक्षिता कुक्षिततरा कुक्षांपापविवर्जिता ॥ ७५ ॥  
 कुपुत्ररक्षका कुल्वा कुपुत्रमानसापहा ।  
 कुजररक्षकरी कौजौ कुजाख्या कुजविग्रहा ॥ ७६ ॥  
 कुन्खी कुपदीक्षुस्था कुकरी कुधनी कुदा ।  
 कुप्रिया कोकिलानन्दा कोकिला कामदायिनी ॥ ७७ ॥  
 कुकार्मिनी कुबुद्धिस्था कूर्पवासनभोहिनी ।  
 कुम्भीका कललोक्तस्था कुशासनसुसिद्धिदा ॥ ७८ ॥

कौशकीदेवता कन्या कुन्दोवारिसुप्रिया ।  
 कुसौष्ठवा कुमित्रस्था कुमित्रशत्रुघातिनी ॥ ७९ ॥  
 कुञ्जाननिकरा कुस्था कुजिस्था कर्जदायिनी ।  
 कुकर्जा कर्जकरणी कर्जवद्धविमोहिनी ॥ ८० ॥  
 कर्जशोधनकर्त्री च कालास्त्रधारिणी सदा ।  
 कुगतिः कालसुगतिः कलिबुद्धिविनाशिनी ॥  
 कलिकालफलोत्पन्ना कलिपावनकारिणी ॥ ८१ ॥  
 कलिपापहरा काली कलिसिद्धिसुमोक्षदा ।  
 कालिदासवाक्यगता कालिदामसुसिद्धिदा ॥ ८२ ॥  
 कलिशिखा कालाशिखा कन्दशिखापरायणा ।  
 कमनीयभावरता कमनीयसुभक्तिदा ॥ ८३ ॥  
 करकाजनरूपा च कक्षावाटकरा करा ।  
 कक्षुवर्णा काकवर्णा क्रोष्टुरूपा कषायणा ॥ ८४ ॥  
 कोष्टनादरता क्रीता कातरा कातरप्रिया ।  
 कातरस्था कातरज्ञा कातरानन्दकारिणी ॥ ८५ ॥  
 काशमर्दतरुद्रुता काशमर्दविभक्तिणी ।  
 कष्टहानिः कष्टदात्री कष्टलोकविरक्तिदा ॥ ८६ ॥  
 कायगीता कायसिद्धिः कायानन्दप्रकाशिनी ।  
 कायगन्धहरा कुम्भा कारकुम्भकठोरिणी ॥ ८७ ॥  
 कठोरतरुसंस्था च कठोरलोकनाशिनी ।  
 कुमार्गस्थापिता कुप्रा कार्पासतरुसम्भवा ॥ ८८ ॥  
 कार्पासवृक्षसूत्रस्था कुवर्गस्था करोत्सवा ।  
 कर्णाटी कर्णसम्भूना काण्डाटी कर्णपूजिता ॥ ८९ ॥  
 कर्णास्तरक्षिका कर्णा कर्णहा कर्णकुण्डला ।  
 कर्णाटदेशनमिता कुटुम्बा कुम्भकारिका ॥ ९० ॥  
 कर्णासवासना कृष्णा कृष्णहस्ताम्बुजार्चिता ।

कृष्णाङ्गी कृष्णदेहस्था कुदेशस्था कुमङ्गला ॥ ९१ ॥  
 क्रूरकर्मस्थिता कीरा किराता कनकामिनी ।  
 कालरात्रिप्रिया कामा काव्यवाक्यप्रिया क्रुधा ॥ ९२ ॥  
 कञ्जलावर्णकौमुदी कुञ्चोत्स्रा च कलप्रिया ।  
 कलना सर्वभूतानां कापित्यवनवासिनी ॥ ९३ ॥  
 कटुनिखस्थिता कात्या कवर्गाख्या कवर्गिका ।  
 किगतच्छेदिनी कार्या कार्याकार्यविवर्जिता ॥ ९४ ॥  
 कात्यायनादिकल्पस्था कात्यायनसुखोदया ।  
 कुचेत्रस्था कुलाविघ्ना करणादिप्रवेशिनी ॥ ९५ ॥  
 कां काली कीं कला काला कीलिता सर्वकामिनी ।  
 कीलितापेक्षिता कूटा कूटकुङ्कुमचर्चिता ॥ ९६ ॥  
 कुङ्कुमागन्धनिलया कुटुम्बभरणस्थिता ।  
 कां कृपा कारणानन्दा कवितारसमोहिनी ॥ ९७ ॥  
 काव्यशास्त्रानन्दरता काव्यपूज्या करीश्वरी ।  
 कटकदिहस्त्रियूथ-हृद्यदुर्लभशब्दिनी ॥ ९८ ॥  
 कितवा क्रूरधूर्त्तस्था केकाशब्दनिवासिनी ।  
 के केवलान्विता केता केतकीपुष्पमोहिनी ॥ ९९ ॥  
 के केवल्यगुणोपासा केवल्यधनदायिनी ।  
 करीश्वरेन्द्रजननी काक्षराख्या कलङ्किनी ॥ १०० ॥  
 कुडुम्बान्ता कान्तिशान्ता काङ्क्षापरमहंसगा ।  
 कर्त्रीचिन्ता कान्तावत्ता कृष्णा कृषिभोजिनी ॥ १०१ ॥  
 कुङ्कुमासक्तहृदया केयूरहारमालिनी ।  
 कोश्वरी केशवन्धस्था केशोरजनमण्डिता ॥ १०२ ॥  
 कलिकामध्यनरता कोकिलस्वरगामिनी ।  
 कूटदेहहरा कुम्भा कुडुम्बा कुरभेदिनी ॥ १०३ ॥  
 कृष्णलीश्वरसंवादा कृष्णलीश्वरमध्यदा ।

कालसूक्ष्मा काशयज्ञा कलाहारकरो कुहा ॥ १०४ ॥  
 कपिलस्था कलहहा कामहा कविकोकिटा ।  
 कुरङ्गेशी कुरङ्गस्था कौरङ्गी कुण्डलापला ॥ १०५ ॥  
 कुललक्ष्मी कृष्णबुद्धिः कृष्णध्याननिवासिनी ।  
 कुतरा कातरमेता कृतार्थकरणी कुसी ॥  
 कलाकस्थी कासुरस्था कलिकाभङ्गदोषजा ॥ १०६ ॥  
 कुसुमाकारकमला कुसुमस्रग्विभूषणा ।  
 किञ्चल्का कैतवा केशा कमनीयजलीदया ॥ १०७ ॥  
 ककारकूटसर्वाङ्गी ककारास्वरमालिनी ।  
 कालभेदकराकाटा कर्पवासा ककुत्स्थिता ॥ १०८ ॥  
 कुवासा कवरी कर्वा कुसर्वा कुरुपालिनी ।  
 कुरुपृष्ठा कुरुश्रेष्ठा कुरुणी ज्ञाननाशिनी ॥ १०९ ॥  
 कुतूहलैरता कान्ता कुव्यासा कष्टबन्धना ।  
 कषायणतरेस्था च कषायणरसोद्भवा ॥ ११० ॥  
 कविविद्या कुष्ठटात्री कुष्ठशोकविसर्जनी ।  
 काष्ठासनगता कार्याश्रया काश्रयकौलिका ॥ १११ ॥  
 कलसा कलसत्रस्ता कौलिकध्यानवासिनी ।  
 क्लृप्तस्था क्लृप्तजननी क्लृप्तच्छिन्ना कलिध्वजा ॥ ११२ ॥  
 केशवा केशवानन्दा केश्याटिटानवापहा ।  
 केशवाङ्गजकन्या च केशवाङ्गजमोहिनी ॥ ११३ ॥  
 केशवार्चनयोग्या च केशवार्चनदेवता ।  
 कान्तश्रीकरणी कुल्या कृपाटप्रियघातिनी ॥ ११४ ॥  
 कुकामजनिता कोचा कोचस्था कोचवासिनी ।  
 कुपथस्था कुबुद्धिस्था कुलमालामनोरमा ॥ ११५ ॥  
 कुलपुष्पाश्रया कान्तिः क्रमटा क्रमटक्रमा ।  
 कुविक्रमा कुक्कमस्था कुण्डली कुलदेवता ॥ ११६ ॥

कौण्डिन्यनगरोद्भूता कौण्डिन्यगोत्रपूजिता ।  
 कापिराजास्थिता कापी कपिबुद्धिविनोदिनी ॥ ११७ ॥  
 कपिध्यानपारमाख्या कुच्यवस्था कुसाक्षिदा ।  
 कुमध्यस्था कुकल्या च कुलपङ्क्तिप्रकाशिनी ॥ ११८ ॥  
 कुलभ्रमरदेहस्था कुलभ्रमरनादिनी ।  
 कुलासङ्गा कुलाक्षी च कुलमत्ता कुलाविला ॥ ११९ ॥  
 कालिचिह्ना कालचिह्ना कशठाचिह्ना कवीन्द्रजा ।  
 करौन्द्रा कमलेशश्रीः कोटिकन्दर्पदर्पहा ॥ १२० ॥  
 कोटितेजोमयी कोट्या कोटीरपद्ममालिनी ।  
 कोटीरमोहिनी कोटिः कोटि-कोटि-विभूद्भवा ॥ १२१ ॥  
 कोटिसूर्यसमानास्या कोटिकालानलापमा ।  
 कोटीरहारनमिता कोटिपर्वतधारिणी ॥ १२२ ॥  
 कुचयुग्मधरादेवी कुचकामप्रकाशिनी ।  
 कुचानन्दा कुचाच्छन्ना कुचकाठिन्यकारिणी ॥ १२३ ॥  
 कुचयुग्ममोहनस्था कुचमायातुरा कुचा ।  
 कुचयौवनसम्प्लोहा कुचमर्दनसौख्यदा ॥ १२४ ॥  
 काचस्था काचदेहा च काचपूरनिवासिनी ।  
 काचाग्रस्था काचवर्णा कीचकप्राणनाशिनी ॥ १२५ ॥  
 कमलालोचनप्रेमा कोमलाक्षी मनुप्रिया ।  
 कमलाक्षी कमलजा कमलास्या करालजा ॥ १२६ ॥  
 कमलाङ्घ्रिद्वया काम्या कराख्या करमालिनी ।  
 करपद्मधरा कन्दा कन्दबुद्धिप्रदायिनी ॥ १२७ ॥  
 कमलोद्भवपुत्री च कमलापुत्रकामिनी ।  
 किरन्ती किरणाच्छन्ना किरणप्राणवासिनी ॥ १२७ ॥  
 काव्यप्रदा काव्यचित्ता काव्यभावप्रकाशिनी ।  
 कल्या च कल्पजननी कल्पभेदासनस्थिता ॥ १२८ ॥

कालिच्छा कालसारखा कालमारणघ्रातिनी ।  
 किरणक्रमदोषस्था कर्मस्था क्रमदोषिका ॥ १२८ ॥  
 काललक्ष्मोः कालत्रण्डा कुलत्रण्डेश्वरप्रिया ।  
 काकिनीशक्तिदेहस्था कितवा कुलकारिणी ॥ १२९ ॥  
 कारञ्चा कञ्चुका क्रौञ्चा काकचञ्चुपुटस्थिता ।  
 काकाख्या काकशब्दस्था कालाग्निदहनार्थिका ॥ १३१ ॥  
 कुचचनिलया कुवा कुपुत्रा क्रतुरक्षका ।  
 कनकप्रतिभाकारा करबन्धाकृतिस्थिता ॥ १३२ ॥  
 कृतिरूपा कृतिप्राणा कृतिचक्रनिवारिणी ।  
 कुच्चिरक्षाकरा कुचा कुच्चिब्रह्माण्डधारिणी ॥ १३३ ॥  
 कुच्चिदेवस्थिता कुच्चिः क्रियादक्षा क्रियातुरा ।  
 क्रियानिष्ठा क्रियानन्दा क्रतुकर्मा क्रियाप्रिया ॥ १३४ ॥  
 कुशलासवसंसक्ता कुशारिप्राणवल्लभा ।  
 कुशारिष्वचमटिरा काशीराजबधोद्यमा ॥ १३५ ॥  
 काशीराजगृहस्था च कर्त्तृभ्रातृगृहस्थिता ।  
 कर्पाभरणभूषाव्या कण्ठभूषा च कण्ठका ॥ १३६ ॥  
 कण्ठस्थानगता कण्ठा कण्ठपद्मनिवासिनी ।  
 कण्ठप्रकाशकरणो कण्ठसापिण्डमालिनी ॥ १३७ ॥  
 कण्ठपद्मसिद्धिकरी कण्ठाकाशनिवासिनी ।  
 कण्ठपद्ममालिनीस्था कण्ठघोडशप्रदिका ॥ १३८ ॥  
 कृष्णाजिनधरा विद्या कृष्णाजिनसुवासिनी ।  
 कुतुकस्था कुञ्जेलस्था कुगुणालङ्कृताकृता ॥ १३९ ॥  
 कलगीता कलघना कलभङ्गपरायणा ।  
 कालोचम्बला कला काव्या कुञ्जेलस्था कुञ्जेलता ॥ १४० ॥  
 कुचौरधतिनी कच्छा ककुदस्था च कुचानता ।  
 कङ्गाहृतमुखी कङ्गा क्रञ्जतुण्डा कुजौवनी ॥ १४१ ॥

कामराजीववाद्यस्था प्रियहृद्धारनादिनी ।  
 कलाययन्नसूत्रस्था कीलालानन्दसंज्ञका ॥ १४२ ॥  
 कटिहासा कपाटस्था कटधूमनिवासिनौ ।  
 कटिनादघोरतरा कुङ्गला पाटलिप्रिया ॥ १४३ ॥  
 कामठा कञ्जनेत्रा च कामठद्वारसंक्रमा ।  
 काष्ठपर्वतसन्दाहा कुष्ठा कष्टनिवारणौ ॥ १४४ ॥  
 कञ्चोडमन्तसिद्धिस्था कङ्कनाङ्गीस्त्रियः प्रिया ।  
 कुलडिण्डिमवाद्यस्था कामडामरसिद्धिदा ॥ १४५ ॥  
 कुलडामरमध्यस्था कुलटक्कानिनादिनी ।  
 कीजागरतूथनादा कांस्यवौररणास्थिता ॥ १४६ ॥  
 कालादिकर्णाच्छिद्रा करुणानिधिवत्सला ।  
 क्रतुश्रौदा कृतार्थश्रीः कालतारा कुलोत्तरा ॥ १४७ ॥  
 कथापूज्या कथानन्दा कथनाकथनप्रिया ।  
 कार्यचिन्ता कार्यविद्या काममिथ्याऽपवादिनी ॥ १४८ ॥  
 कदम्बपुष्पसङ्काशा कदम्बपुष्पमालिनी ।  
 कादम्बरौपानतुष्टा कायदम्भा कृतोद्यमर्षी ॥ १४९ ॥  
 कुञ्जानपत्रमध्यस्था कुलधाराधरप्रिया ।  
 कुलदेवशरीरार्हा कुलधामा कलाधरा ॥ १५० ॥  
 कामनागभूषणाढ्या कामनोरगुणप्रिया ।  
 कुलीननागहस्ता च कुलीननागवाहिनी ॥ १५१ ॥  
 कामपूरस्थिता कोपा कपालीवन्दनोद्भवा ।  
 कौरागा कुजलापाना कारागारप्रपालिनी ॥ १५२ ॥  
 क्रियापङ्क्तिः कर्णपङ्क्तिः कर्णमूला कफोदया ।  
 कामफुल्लारविन्दस्था कामरूपफलाफला ॥ १५३ ॥  
 कायफला कायफेना कान्तनाडी कलीश्वरा ।  
 कामफेरुगता गौरी कामवाणो कुवीरगा ॥ १५४ ॥

कवरोमणिवन्धस्था कावेरीतीर्थसङ्गमा ।  
 कामभीतिहरा कन्दा कवाचकभ्रमातुरा ॥ १५५ ॥  
 कविभावहरा कम्त्रा कमनीयभयापहा ।  
 कामभर्गदेवमाता कामकल्पलतामरा ॥ १५६ ॥  
 कमठप्रियमासादा कमठा कामठप्रिया ।  
 किमाकारा किमाधारा कुम्भकारमनःस्थिता ॥ १५७ ॥  
 कास्ययज्ञस्थिता कास्या कास्ययज्ञोपवौतिका ।  
 कामयागसिद्धिकरी काममैथुनयामिनी ॥ १५८ ॥  
 कामाख्यायमनाशस्था कालयामा कयागिनी ।  
 कुर्यागाहुतियोग्या कुरुमांसविभक्षिणी ॥ १५९ ॥  
 कुरुरक्तप्रिया कालो-किङ्करप्रियकारिणी ।  
 कर्त्रीश्वरी कारणात्मा कविभक्ष्या कविप्रिया ॥ १६० ॥  
 कविशत्रुपृष्ठलग्ना कौलासोपवनस्थिता ।  
 कलिक्रियाटिसिद्धिस्था कलित्तिटिनसिद्धिदा ॥ १६१ ॥  
 कलङ्करहिता कालो कलिकल्मषकालदा ।  
 कुलपुष्परङ्गसूत्र-मणिग्रन्थिसुशोभना ॥ १६२ ॥  
 काम्बोजवङ्कदेशस्था कुलवासुकिरक्तका ।  
 कुलशास्त्रक्रियाशान्तः कुलशान्तः कुलेश्वरी ॥ १६३ ॥  
 कुशलप्रतिमा काशी कुलषट्चक्रभेदिनी ।  
 कुलषट्पद्ममध्यस्था कुलषट्पद्मदीपनी ॥ १६४ ॥  
 कृष्णमार्जारकालस्था कृष्णमार्जारषष्ठिका ।  
 कुलमार्जारकुपिता कुलमार्जारषोडशी ॥ १६५ ॥  
 कालान्तकवलात्पद्मा कपिलान्तकघातिनी ।  
 कलहंसा कलहसौ कङ्कालार्था कलामला ॥ १६६ ॥  
 कक्षापक्षरक्षा च कुक्षेत्रपक्षसंक्षया ।  
 केकराक्षासाक्षिणी च कौबल्ये संप्रतिष्ठिता ॥ १६७ ॥



कोटिसूर्यशतच्छाया कप्रभाऽङ्कुरचर्चिता ।  
 कावेरीतीरभूमिस्था कालाग्निस्तोकधारिणी ॥ १६८ ॥  
 किं ईं श्रीं कामकमला पातु कैलासरक्षिणी ।  
 मम श्रीं ईं बीजरूपा पातु कालौ शिरःस्थलम् ॥ १६९ ॥  
 ऊरुस्थलार्जं सकलं तमोल्का पातु कालिका ।  
 उडुमूलार्करमणौ ऊर्द्धांशं कुलमाढका ॥ १७० ॥  
 क्षतापेक्षा क्षन्तिमती कङ्कारौ कुलपण्डिता ।  
 कुलदीर्घस्ररा क्लृप्ता कैलासपर्वतार्चिका ॥ १७१ ॥  
 कैशोरी कैं करा कैं कैं बीजाख्या नत्रयुग्मकम् ।  
 कामामतङ्गयजिता कौशल्यादिचयामिका ॥ १७२ ॥  
 पातु मे कर्णयुग्मन्तु कौं कौं जीवकरालिनी ।  
 गण्डयुग्मं सदा पातु कुण्डल्यङ्गनिवासिनी ॥ १७३ ॥  
 कोटिसूर्यशताभासा काञ्चराचरमालिनी ।  
 आशुतोषकरीहस्ता कुलदेवौनिरञ्जना ॥ १७४ ॥  
 पातु मे कुलपुष्पाद्या मृष्टदेशं कुलोत्तमा ।  
 कुमारौ कामनापूर्णा पार्श्वदेशं सदाऽवतु ॥ १७५ ॥  
 देवी कामाख्यका पूज्या पातु प्रत्यङ्गकं कटिम् ।  
 कटिस्थदेवता पातु लिङ्गमूलं सदा मम ॥ १७६ ॥  
 गुह्यदेशं काकिनी मे लिङ्गाधः कुलसिंहिका ।  
 कुलनामेश्वरी पातु नितम्बदेशमुत्तमम् ॥ १७७ ॥  
 कङ्कालमालिनी देवी पातु मे चोक्षमूलकम् ।  
 कङ्कायुग्मं सदा पातु कीर्तित्रकापहारिणी ॥ १७८ ॥  
 पादयुग्मं पाकसंस्था पाकशासनरक्षिका ।  
 कुलालचक्रभ्रमरा पातु पादाङ्गुलीर्मम ॥ १७९ ॥  
 नखाग्राणि दशविधान्वेवं हस्तदशस्य च ।  
 विंशरूपा कालनाचर सर्वदा परिरक्षतु ॥ १८० ॥

कुलच्छ्वाधाररूपा कुलमण्डलगौपिता ।  
 कुलकुण्डलिनी माता कुलपण्डितमण्डिता ॥ १८१ ॥  
 काकाननी काकतुण्डी काकायुःप्रखरार्कजा ।  
 काकज्वरा काकजिह्वा काकविज्ञा कपिप्रिया ॥  
 कालकाञ्चीविंशतिस्था सदा विंशतखाग्रकम् ॥ १८२ ॥  
 पातु देवी कालरूपा कलिकालफलालया ।  
 क्षेत्रे वा पर्वते वाऽपि शून्यागारे चतुष्पथे ॥ १८३ ॥  
 कुलेन्द्रसमयाचारा कुलाचारजनप्रिया ।  
 कुलपर्वतसंस्था च कुलकैलासवासिनी ॥ १८४ ॥  
 महादावानले पातु कुमारी कुलितग्रहे ।  
 राज्ञोऽप्रिये राजवश्ये महाशत्रुविनाशने ॥ १८५ ॥  
 कलिकालमहालक्ष्मीः क्रियालक्ष्मीः कुलाम्बरा ।  
 कलीन्द्रकीलिता कौला कौलालस्वर्गवासिनी ॥ १८६ ॥  
 दशदिक्षु सदा पातु इन्द्रादिदशलोकपा ।  
 नवच्छिन्ने सदा पातु सूर्यादिकनवग्रहा ॥ १८७ ॥  
 पातु मां कुलमांसाढ्या कुलपद्मनिवामिनी ।  
 कुलद्रव्यप्रिया काली षोडशी भुवनेश्वरी ॥ १८८ ॥  
 विद्यावाटे विवाटे च मत्तकाले महाभये ।  
 दुर्भिक्षादिभये चैव व्याघ्रिसङ्करपौडिते ॥ १८९ ॥  
 काली कुल्वा कपाली च कामाख्या कामचारिणी ।  
 सदा मां कुलसंसर्गे पातु कौले सुसङ्गता ॥ १९० ॥  
 सर्वत्र सर्वदेशे च कुलरूपा सदाऽवतु ।  
 इत्येतत्कथितं नाथ ! तव प्रसादहेतुना ॥ १९१ ॥  
 कुण्डलीन्याः प्रियं नाम अष्टोत्तरसहस्रकम् ।  
 कुलकुण्डलिनीदेव्याः सर्वमन्त्रसुसिद्धये ॥ १९२ ॥  
 सर्वदेवमनूनाञ्च चैतन्याय सुसिद्धये ।

अणिमाद्यष्टसिद्धार्थं साधकानां हिताय च ॥ १८३ ॥  
 अकुलीनिऽब्राह्मणे च न देयः कुण्डलोस्तवः ।  
 प्रवृत्ते कुण्डलोचक्रं सर्वं वर्णां दिजातयः ॥  
 निवृत्ते भैरवीचक्रं सर्वं वर्णाः पृथक् पृथक् ॥ १८४ ॥  
 कुलीनाय प्रदातव्यं साधकाय विशेषतः ॥ १८५ ॥  
 दानादेव हि सिद्धिः स्यान्ममाज्ञाबलहेतुना ।  
 मम क्रियायां यस्तिष्ठेत् स मे पुत्रो न संशयः ॥  
 समायाति मम पदं जीवन्मृतः स मानवः ॥ १८६ ॥  
 आसवैर्नरमांसेन कुलबन्धी मदानिधि ।  
 नाम प्रत्येकमुच्चार्य जुहुयात् कार्यसिद्धये ॥ १८७ ॥  
 पञ्चाचाररतो भूत्वा ऊर्ध्वरेता भवेद् यतिः ।  
 मन्त्ररान्मम स्थाने ह्यायाति नात्र संशयः ॥ १८८ ॥  
 ऐहिके कायसिद्धिः स्यादैहिके सर्वसिद्धिदः ।  
 वशीभूतास्त्रिमार्गस्थाः स्वर्गभूतलवासिनः ॥ १८९ ॥  
 तस्य भृत्याः प्रभवन्ति इन्द्रादिलोकपालकाः ॥ २०० ॥  
 स एव योगी परमा यस्वार्थोऽयं सुनिश्चलः ।  
 स एव खेचरो भक्तो नारदादिशुकोपमः ॥ २०१ ॥  
 यो लोकः प्रजपत्येषं स शिवो न च मानुषः ।  
 स समाधिगतो नित्यो ध्यानस्थो योगिवल्लभः ॥ २०२ ॥  
 चतुर्व्यूहगतो देवः सहसा नात्र संशयः ।  
 यो धारयेद्विदं भक्त्या कण्ठे वा मस्तके भुजे ॥ २०३ ॥  
 स भवेत् कालिकापुत्रो विद्यानाथः स्वयं भुवि ।  
 धनेशः पुत्रवान् योगी यतेशः सर्वगो भवेत् ।  
 वामा वामकरे धृत्वा सर्वसिद्धीश्वरी भवेत् ॥ २०४ ॥  
 यदि पठति मनुष्यो मानुषी वा महत्या  
 सकल धनजनिशा पुत्रिणी जीववत्सा ।

कुलपतिरह लोके स्वर्गमोक्षैकहेतुः

स भवति भवनाथो योगानीवल्लभेशः ॥ २०५ ॥

पठति य इह नित्यं भाक्तभावेन मर्त्या

स्मरणमपि करोति प्रातरुत्थानकाले ।

स्तवनपठनपुण्यं कोटिजन्माघनाशं

कार्यतुमपि न शक्ता तस्य पुण्यात्मकस्य ॥ २०६ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायाम् श्रीसत्त्वस्योक्तौ महासत्त्वस्योक्तौ सत्त्वस्योक्तौ सत्त्वस्योक्तौ

भैरवीभैरवसंवादे महाकुलकुण्डलिन्या अष्टोत्तरसहस्रनाम-

स्तवकथन नाम षट्त्रिंशः पटलः ॥ २६ ॥

### अथ सप्तविंशः पटलः ।

श्रीआनन्दभैरव उवाच ।—

श्रुतञ्च परमं ज्ञान धर्माधर्मविवेचनम् ।

सर्ववेदान्तसारञ्च सारात्सारं परात्परम् ॥ १ ॥

कुण्डलौस्तवनं श्रुत्वा पुण्योऽहं जगदौश्वरि !

इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्वाधिष्ठानप्रकाशकम् ॥ २ ॥

यदि मे सुकृपाट्टाष्टिरानन्दघनमञ्जये ।

वट श्रीकुण्डलौयोगं स्वाधिष्ठानविभेदनम् ॥

येन क्रमेण भेदः श्लात्तत्रकारविनिर्णयम् ॥ ३ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

महाकाल ! महावीर ! आनन्दसागराश्रय !

योग्योऽसि योगमार्गाणामत एव प्रकथ्यते ॥ ४ ॥

येन क्रमेण चक्रस्य भेदः स्यादमरस्तथा ।

अमरो जितचित्तारिः क्रोधजित् प्रबलो बली ॥ ५ ॥

स्वाधिष्ठाने श्रोत्रुष्णसाधनम् ।—

धर्माधर्मज्ञानवाञ्छं योगी भवति सज्जनः ।

विद्वान् परकालदर्शी क्रतुश्रद्धापरायणः ॥ ६ ॥

अहङ्कारविहीनो यः स योगी भवति ध्रुवम् ॥ ७ ॥  
 महावीरकसङ्गी च सङ्गदोषविवर्जितः ।  
 महात्मा परमब्रह्म-ज्ञानो भवति योगिराट् ॥ ८ ॥  
 विख्यातः सर्वदेशे च किन्तु स्वाश्रयवर्जितः ।  
 बालको विक्रमी धन्वी धनुर्वाणधरोऽव्ययः ॥  
 स भवेत् योगमार्गेशो विवेकी पाकवर्जितः ॥ ९ ॥  
 अविद्याग्रन्थिनिश्चेष्टो विवेकधर्मचातकः ।  
 चतुरो विषमज्ञान-वर्जितो यज्ञकृत् शुचिः ॥  
 स भवेद्योगिनोपुत्रो योगानामधिपो ध्रुवम् ॥ १० ॥  
 यदि योगस्थितो मन्त्री वायवीशक्तिनिर्भरः ।  
 स एव योगी प्रणामासादिति मे तन्त्रनिर्णयः ॥ ११ ॥  
 यो मे तन्त्राणि जानाति सदर्थज्ञानजानि च ।  
 स एव चतुरो योगी मम भक्तो न सशयः ॥ १२ ॥  
 यदि वायुपानरतो मन्त्री भवति साधकः ॥ १३ ॥  
 अथ स्वाधिष्ठान कुलवरगतं कामनिलयं  
 महायोगीन्द्राणां मतसि निचयं चारुकिरणम् ।  
 शरच्चन्द्रज्योत्स्नायुतशतघनं भव्यविषयं  
 यदा भावचेत्रे सकलसुधियां वेदपरमम् ॥ १४ ॥  
 जना ये ध्यायन्ति क्षितिगतवतः शीपदयुगं  
 महाविष्णोः पीताम्बरयुगयुंजः श्यामलतनोः ।  
 प्रकाशन्ते तेषां हृदयनिलये भर्गनिचयाः  
 सदा स्वान्तस्थान्तर्गततिमिरराशिः क्षयमियात् ॥ १५ ॥  
 वटच्छायामध्ये निवसति यदा गोकुलकुले  
 हरिध्यानं कुर्व्यान्नरवधिमहाऽऽनन्दरसिकः ।  
 स एवात्मा साक्षादिह नखवयः षोडशयुवा  
 चतुर्वर्गस्याप्तिर्भवति नियतं तस्य भवने ॥ १६ ॥

महासर्पारिस्थं त्रिभुवनपतिं श्रीपतिमहो  
सदा वंशीध्वानध्वनितभुवनं भावयति यः ।  
स एवात्मा नित्यो यतिरिह भवेत् कामटलनः  
कुलागारे सारे प्रभवति सदाऽव्याहतमतिः ॥ १७ ॥  
सुरानन्दश्रीढं दितिजवनदावानलमजं  
गुणातीतं व्याप्तं सकलभुवने रासरसिकम् ।  
सुधाकान्तं कृष्णं परमपुरुषं भावयति यो  
महाविद्यासिद्धहरति भुवने सोऽन्तकजयी ॥ १८ ॥  
सुकुन्दं श्रीकृष्णं नवदलगतं स्नागममतं  
सुरारिं पापारिं नवयुवतिहृत्यद्भसु गतम् ।  
हृषीकेशं विष्णुं विषयकरणं भावयति यः  
स योगीन्द्रो ज्ञानी जयति युक्तो कौतुकवताम् ॥ १९ ॥  
रमेशं श्रीकृष्णं भवविषहरं मानसधरं  
सरस्वत्या युक्तं कुलरसमयं मुक्तिजडितम् ।  
जपेच्चैतन्यान्तं सुरतशवरं मोक्षमतये  
यतीन्द्रः सश्रीकः प्रचयति निजं भव्यविषयम् ॥ २० ॥  
पुराणं योगीन्द्रं हरिमखिलपं कामनिलयं  
महासूक्ष्मोदारं कुलजनरतं कामविजयम् ।  
विशालाक्षं कृष्णं निजहृदयके कान्तिसहितं  
कृपापारावारं गुणगणितदेहं नरहरिम् ॥ २१ ॥  
महाधूर्तं सत्यं शमन-शमनं ज्ञाननिलयं  
सुराधौशं श्रीशं शशिसुखकराभोजजडितम् ।  
तमात्मानं कृष्णं निजहृदयके यो हि जपति  
स लोकेऽस्मिन् पूज्यो भवति मनुजानां सुरपतिः ॥ २२ ॥  
महाशब्दोत्पद्यं प्रकृतियुक्तिं कारणकृतिं  
कृपासिन्धुं कृष्णं कुलबधूशतामोदमिलितम् ।

\* \* \* \*

भवेत्तोके वश्यो नृपतिनिकरस्तस्य सततम् ॥ २३ ॥

जगन्नाथं स्तौति क्षितिपतिवशाद्योपकरणैः

वैराट्ब्रह्माण्डत्रयसृजनरक्षासु कुशलम् ।

प्रचण्डे संसारे कृतवसतिकं भावसदने

महामेघश्यामं त्रिपथकरुणासागरजले ॥ २४ ॥

अमूल्ये संसारे विषयरसनासञ्चयविषं

स कृष्णः श्रोविष्णुः प्रकृतिगदया हन्ति सततम् ।

अतः कृष्णो ध्येयः सुरनरगणैर्योगिभिरब्जं

कुलाम्भोजे षट्के रसरसदले ध्यानफलितः ॥ २५ ॥

धराधारं पूर्णं गगनानलयं कालपुरुषं

मनोगम्यं रम्यं नवनयनलावण्यरसिकम् ।

सदा ध्यायेत् कृष्ण कुरुगणरिपुं तं कुलपति-

निरालम्बं श्यामं प्रकृतियमुनातौरतरुगम् ॥ २६ ॥

कुलीनं गोपीभिः परिमलितपार्श्वस्थलसुखं

प्रधानं क्षेत्रज्ञं क्षितिपतिकराभोजमर्हितम् ।

दयागारं नाथं प्रचयकरुणं ध्येयचरणं

मनोधर्मच्छत्रं द्विविधगुणगानाश्रितकरम् ॥ २७ ॥

त्रिकालस्थं स्वर्णोद्भवनवरसं प्राणरसिकं

जनः स्तौति प्रातर्भवर्भयञ्जरं नित्यवरदम् ।

महामोक्षक्षेत्रं कुलबधुयुतं कृष्णपरमं

गुणेशं व्याधेशं व्रजनिधियुजं वेदनिलयम् ॥ २८ ॥

क्रियादत्तं सूक्ष्मं समयगुणगं योगजडितं

द्विकोणस्थं गङ्गाजलगालितरसं तारकवरम् ।

महाकालानन्दं गगनघनवहर्णसहितं

प्रभावारं तारं तरुणदपुष्पं श्रीधरमजम् ॥ २९ ॥

किरातीकामिन्या नयनकमलापानमधुरं  
रसोत्फुल्लाम्भोजामलविवरवासार्थकलयम् ।  
महाशोभारूपं कुलपुरुषभूपं जपति यः  
स योगी संसारे भवति रसनायोगनिरतः ॥ ३० ॥  
मनोऽन्तर्व्याधाय प्रचुरफलदं कृष्णमखिलं  
महाज्ञानोक्ताहं निखिलजगतां प्राणनिलयम् ।  
जगत्तारं ब्राह्मं निरवधि महाघोरकिरणं  
यदा लोकः स्तौति प्रतिदिनमिहानन्दघटितम् ॥ ३१ ॥  
विकारं सर्वेषां ग्रहणनिलयं भास्करविधो-  
र्महाराहुग्रासं शतशतमहापुण्यनिलयम् ।  
कुलानन्दं विष्णुं शशिशतघटाधामकिरणं  
मनोगम्यं सूक्ष्मं त्रिगुणजडितं भावयति सः ॥ ३२ ॥  
कृष्णभक्तो सदा कृष्णं ध्यात्वा ध्यात्वा यतिर्भवेत् ।  
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तस्य भक्तिर्न संशयः ॥ ३३ ॥  
कृष्णो ब्रह्म परं ज्योतिरिति ध्यानपरायणः ।  
स कृष्णस्तं जनं नीत्वा ददाति मयि शङ्कर ! ॥ ३४ ॥  
विना कृष्णपदाभोजं स्वाधिष्ठानं कुतो जयेत् ।  
कृष्णध्यानान्महापद्मे भेदं प्राप्नोति शङ्कर ! ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मसूत्रे उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्षकप्रकाशे भैरव-भैरवीसंवादे  
स्वाधिष्ठाने श्रीकृष्णराकिणोसाधनं नाम सप्तविंशः पटलः ॥ ३७ ॥

## अष्टविंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि श्रीकृष्णसाधनोत्तमम् ।

येन क्रमेण भक्तिः स्यात् कालजालवशं करी ॥ १ ॥



मम पादास्वजे भक्तिर्भवत्यैव न संशयः ।

भक्तिमान् हि साधकेन्द्रो महाविष्णुं भजेद्दयदि ॥

शिवतुल्यो भवेन्नाथ ! मम भक्तौ महीतले ॥ २ ॥

श्रीकृष्णं जगदीश्वरं त्रिजगतामानन्दमोक्षात्मकं

सम्पूर्णं त्रिगुणावृतं गुणधरं सत्त्वाधिदैवं परम् ।

लिङ्गाधःस्थितराज्यपालपुरुषं पञ्चाननस्थायिनं

श्रीविष्णुं शुभदं जनो यदि भजेत्लोकः सशक्तिः सुखी ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णमन्त्रः ।—

आदौ कामं त्रिसर्गं कुलबधुनियुतं कामवीजं त्रिसर्गं

श्रीकृष्णं वारयुग्मं प्रणययुगलकं चन्द्रिकाकाशयुक्तम् ।

ब्रह्मद्वन्द्वं भजामि प्रकृतिपुरुषिकां काकिनीं तत्परि च

भूयो भूयो भजामि श्रवणगनयनं वल्लिजायाविलम्बम् ॥ ४ ॥

एतन्मन्त्रं जपित्वा प्रणवमिति नमोऽन्तं तथाद्ये मिलित्वा

भूयो भूयो मनःस्थस्त्रिभुवनसहितं क्षीभयेत्तत्क्षणेन ।

राजश्रीस्तस्य शीर्षे निरवधिवसुधामन्दिरे संस्थिता स्यात्

कालच्छेदं प्रकृत्या प्रवसति सुमुखी ब्रह्मदण्डे च काले ॥ ५ ॥

ततः प्राण ! देव ! नाथ ! मम सन्तोषवर्द्धन ! ।

इदानीं नरसिंहस्य मन्त्रं शृणु महाप्रभो ! ॥ ६ ॥

नरसिंहमन्त्रः ।—

कान्तवीजं समुद्धृत्य युगलं युगलं स्मृतम् ।

महानृसिंहमन्त्रेण पूजयामि नमोनमः ॥ ७ ॥

स्वाधिष्ठाने महापद्मे जनो निष्पापहेतुना ।

मनो निधाय यो योगी जपेन्मन्त्रं पुनः पुनः ॥ ८ ॥

एतन्मन्त्रजपेनापि सिद्धो भवति साधकः ।

एतन्मन्त्रप्रभावेण भावसिद्धिं क्षणाल्लभेत् ॥ ९ ॥

साधको यदि भूमिस्थः साधयेद्दयो हरमनुम् ।

एवमेव क्रमेणैव सिद्धिं प्राप्नोति धैर्यतः ॥ १० ॥  
 अथ वक्ष्ये महादेव ! सर्ववर्णसुसारकम् ।  
 वर्णमालास्वभंसक्तो जह्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥  
 सिद्धमन्त्रं प्रार्थयते यदि मर्त्या निराश्रयः ।  
 निर्ज्जने सुस्थिरो भूत्वा एकाकी लोभवर्जितः ॥ १२ ॥  
 निःशङ्कः प्रजपेन्नन्त्रं स्वाधिष्ठानाजमद्भगः ।  
 वशीकृतं जगत् सर्वं येन तत्क्रममाशृणु ॥ १३ ॥  
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नान्तबीजं तथोद्धरेत् ।  
 वद्धिबीजसमालम्बमधोदन्त्यस्त्ररान्वितम् ॥ १४ ॥  
 नादविन्दुसमायुक्तं पुनर्वारद्वयं वदेत् ।  
 मरसिंहेतिशब्दान्ते पुनर्वारद्वयं वदेत् ॥ १५ ॥  
 देवीबीजं शक्तिबीजं स्वाह्वान्तं मनुमुद्धरेत् ।  
 एतन्मन्त्रप्रयोगेण कुण्डलीवशमानयेत् ॥ १६ ॥  
 स्वाधिष्ठाने स्थिरो भावं प्राप्नोति साधकाग्रणीः ।  
 सर्वेषां प्राणगो भूत्वा प्रबलोऽसौ महीतले ॥ १७ ॥  
 शीतं रोद्रं समं तस्य पापापापं जयाजयम् ।  
 धर्माधर्मं समं ज्ञानं नित्यज्ञानं समाप्नुयात् ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णस्य मन्त्रान्तरम् ।—

पुनः श्रीकृष्णमन्त्राच्च सर्वदेवनिषेवकाः ।  
 यज्ज्ञात्वा देवताः सर्वाः सर्वदिङ्मुखपालकाः ॥ १९ ॥  
 तत्प्रयोगं महादेव ! शृणु सिद्धेश्च लक्षणम् ।  
 विना कृष्णाश्रयेणापि ब्रह्मा तुष्टो न कुत्रचित् ॥ २० ॥  
 न तुष्टा कुण्डली देवी प्रशुभावं विना प्रभो ! ।  
 पशुभावे ज्ञानमिद्धिर्वीरभावे हि मोक्षभाक् ॥  
 दिव्यभावे समाधिस्थो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २१ ॥  
 कान्तबीजं समुद्धृत्य शक्रवामस्वरान्वितम् ।

नादविन्दुसमाक्रान्तं क्लृण्वन्स्वोधनं पदम् ॥ २२ ॥  
 पुनः पूर्वमनुं जह्वा त्र्यक्षरात्ममहामनुम ।  
 एतन्नन्त्रजपं कृत्वा योगी भवति योगिराट् ॥ २३ ॥  
 योगोऽयं परमाह्लाट-कारकोऽनन्तरूपकः ॥ २४ ॥  
 बह्वभिः कथनीयं किं यः करोति फलं लभेत् ।  
 ध्यायेत् श्रीगोपिकानाथं राक्षिणीमण्डलेश्वरम् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णध्यानम् ।—

जगतां सत्त्वनिलयं श्रीकृष्णं गोकुलेश्वरम् ।  
 स्वाधिष्ठानस्थितं श्यामं भजेद्भुजचतुष्टयम् ॥ २६ ॥  
 शङ्खचक्रगदापद्म-महाशोभामनोहरम् ।  
 सर्वविद्यागतं काम्यं श्रीगोविन्दं सुशीतलम् ॥ २७ ॥  
 महामोहहरं नाथं वनमालाविभूषितम् ।  
 कोटिकन्याकराभोज-जितं सर्वज्ञसङ्गतम् ॥ २८ ॥  
 किरीटिनं महावीरं बालेन्दुकलयान्वितम् ।  
 गुञ्जामालाशोभिताङ्गं श्रीनाथं परमेश्वरम् ॥ २९ ॥  
 पीताम्बरं मन्दहास्यं षट्पद्मदलमध्यगम् ।  
 कामिनीप्राणनिलयं वसुदेवसुतं हरिम् ॥ ३० ॥  
 एवं ध्यात्वा षड्दले च सदा वक्षःस्यकौस्तुभम् ।  
 राजराजेश्वरं शौरिं भाव्यं श्रीवत्सलाञ्छनम् ॥ ३१ ॥  
 स्वाधिष्ठानगतं ध्यायेन्मुरारिं सिद्धिगो नरः ।  
 एवं ध्यात्वा पुरा ब्रह्म नारायणगुणोदयम् ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णपूजा ।—

मनःकल्पितद्रव्यैश्च पूजयेत् परमेश्वरम् ।  
 षड्दले च महापद्मे संध्यात्वा हरिमाजपेत् ॥ ३३ ॥  
 षोडशोपचारयुक्तैर्मानसक्षेत्रसम्भवेः ।  
 मनःकल्पितपीठे च स्थापयित्वा हरिं गुरुम् ॥ ३४ ॥

योगेश्वरं कृष्णमीशं राधिकाराक्षिणीश्वरम् ।  
 एकान्तचित्ते चारोप्य कृष्णं पीठे प्रपूजयेत् ॥ ३५ ॥  
 तत्र दलाष्टकं पद्मं तत्र षट्कोणकर्णिकम् ।  
 वेदहारोपशोभञ्च संनिर्माय मनोहरम् ॥ ३६ ॥  
 पुनः पुनर्मृदा ध्यायेत् षड्दलेषु दलेऽष्टकम् ।  
 पञ्चोपचारैर्दशकैः श्रीविष्णुं परिपूजयेत् ॥ ३७ ॥  
 गन्धादयो नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका ।  
 आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनौयकम् ॥ ३८ ॥  
 मधुपर्काचमस्नान-वसनाभरणानि च ।  
 सुगन्धि सुमनोधूप-दीपनैवेद्यवन्दनम् ॥ ३९ ॥  
 प्रयोजयेत् मङ्गेशाय उपचारांस्तु षोडश ।  
 विष्णोरााराधने कार्यः सर्वत्र विधिरेष हि ॥ ४० ॥  
 विधिः स्यात् कृष्णविश्वेश-समुद्भूतस्य सत्पतेः ।  
 दशोपचारकथनं श्रूयतां वल्लभ ! प्रभो ! ॥ ४१ ॥  
 पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमं तथा ।  
 गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥ ४२ ॥  
 विष्णुं सम्पूज्य शुद्धः स्याद्द्विविध्याशो जितेन्द्रियः ।  
 सर्वदा परमानन्दः कालिकावशसेवकः ॥ ४३ ॥  
 सर्वज्ञानधरो वीरो विवेकी सर्वदर्शकः ।  
 संभावयेत् स्वाधिष्ठाने निरन्तरं महाशुचिः ॥ ४४ ॥  
 बालकक्रियया व्यक्त-भावज्ञानी निरामयः ।  
 स भवेत् कालिकापुत्रो यः कृष्णभावतत्परः ॥ ४५ ॥  
 कृष्णं सचिन्तयेत् मूल-कमलाङ्गं कुलात्मकम् ।  
 स भवेत् कालिकापुत्रोऽष्टाङ्गसिद्धिगुणान्वितः ॥ ४६ ॥  
 मानसैः पूजनं कृत्वा शङ्खस्थापनमाचरेत् ।  
 यत् कृत्वा मानसं योगं न कुर्व्याद्बहिरर्चनम् ॥ ४७ ॥

मूलमन्त्रदेवतायाः साधने दैवतं यजेत् ।  
 देवस्य दक्षिणस्थांश्च पूर्वपार्श्वसुसंस्थितान् ॥  
 पूजयेद्बन्धुपुष्पाद्यैस्तुल्यमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ४८ ॥  
 ततः श्रीकृष्णपादाब्ज-ध्यानं कुर्यात् मनोमयम् ॥ ४९ ॥  
 एवं क्रमेण तत् पद्मे स्थिरो भवति योगिराट् ।  
 यः स्मरेत् शुद्धभावं तं महामोहहरं हरिम् ॥ ५० ॥  
 स्थापयित्वा च षट्पद्मे स महामोक्षमाप्नुयात् ।  
 यः प्रधानगुणत्रयं स मे शास्त्रार्थमाश्रयेत् ॥ ५१ ॥  
 इह शक्रतुल्यलोकि निवसत्येव योगिराट् ॥ ५२ ॥  
 पादाभोजे मनो दद्यादथ किञ्चल्लक्षित्विती ।  
 जङ्घायुगे चारू राम-कदलीकाण्डमण्डिते ॥  
 ऊरुद्वये मत्तगज-करदण्डसमप्रभे ॥ ५३ ॥  
 गङ्गावर्त्तगभीरे तु नाभौ शुद्धविलेऽमले ।  
 उदरे वक्षसि तथा हरी श्रीवत्सकौस्तुभे ॥ ५४ ॥  
 पूर्णचन्द्रायुतनिभे ललाटे चारुकुन्तले ।  
 शङ्खचक्रगदाभोज-दोर्दण्डाञ्चितविग्रहे ॥ ५५ ॥  
 सहस्रादित्यसङ्काशं किरीटकुण्डलद्वयम् ।  
 स्थानेष्वेषु जपेन्मन्त्री विशुद्धः शुद्धचेतसा ॥ ५६ ॥  
 मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम् ।  
 यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्मये ॥ ५७ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकमन्त्रांशे भैरवी-  
 भैरवसंवादे श्रीकृष्णस्वाधिष्ठानप्रवेशो नाम अष्टविंशः पटलः ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशः पटलः ।

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

अथ नाथ ! प्रवक्ष्येऽहं संसारसाधनोत्तमम् ।

येन साधनमात्रेण योगी भवति तत्क्षणात् ॥ १ ॥  
 अनायासेन सिद्धिः स्वाद्यद्यन्मसि वर्तते ।  
 त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षिप्रं त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ २ ॥  
 रामिण संहितं नित्यं जगतां साक्षिणं वरम् ।  
 जामदग्न्यकराभोज-सेवितं सर्वसेवितम् ॥ ३ ॥  
 अनन्तसत्त्वनिलयं वासुक्षिसङ्कुलेक्षणम् ।  
 अष्टहस्तयुतं श्रौटं नानाऽलङ्कारशोभितम् ॥ ४ ॥  
 स्वाधिष्ठानगतं ध्यात्वा शीतलो जायते वशी ।  
 तत् स्तोत्रं शृणु मे नाथ ! यत्पाठात् सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ५ ॥  
 ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः क्रतुरक्षकाः ।  
 एतत् स्तोत्रं पुरा कृत्वा जीवन्मृता महीतले ॥  
 अतः श्रीकालिकानाथ ! स्तोत्रं शृणु महत्फलम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।—

श्रीविष्णोरद्भुतकर्मणो ब्रह्मर्षिस्त्रिष्टुप्कृन्दः श्रीविष्णुः  
 श्रीकृष्णः श्रीनारायणो देवता सर्वस्तोत्रसारकवचमन्त्रसिद्धयर्थं  
 विनियोगः ।

श्रीकृष्णं जगतामधीशमनघं ध्यानादिसिद्धिप्रदं  
 गोविन्दं भवसिन्धुपारकरणं मायापहारात्मकम् ।  
 श्रीविष्णुं वनमालिनं नरहरिं नारायणं गोकुलं  
 योगेन्द्रं नरनाथमादिपुरुषं वृन्दावने भावयेत् ॥ ७ ॥  
 मोक्षश्रीसंहितं कृतान्तविक्रान्तिं धर्माण्वं सुन्दरं  
 श्रीरामं बलरामभावविमलं नित्याकुलं सङ्कुलम् ।  
 श्रीश्यामं ककुदादिहारविगललम्बोदरं श्रीधरं  
 तं वन्दे हरिमौखरं गुणयुतं मायाश्रयं स्वाश्रयम् ॥ ८ ॥  
 वैकुण्ठेशमशेषदोषरहितं सायुज्यमोक्षात्मकं  
 नानारत्नविनिर्मितं मम जपे राजेन्द्रचूडामण्डम् ।

शोभामण्डलमण्डितं सुरतरुच्छायाश्रयं योगिनं  
 विद्यागोपसुतारतं गुणमयं वाक्सिद्धये भावये ॥ ९ ॥  
 स्वाधिष्ठाननिकेतनं परजनं विद्याधनं मायिनं  
 श्रीनाथं कुलयोगिनं त्रिभुवनोक्तासैकवोजं प्रभुम् ।  
 संसारोत्सवभावनादिनिरतं सर्वादिदेवं सुखं  
 वन्देऽहं वरसर्वशत्रुसकले पृष्ठे स्थिरानन्दनम् ॥ १० ॥  
 भावान्तं भवभावयोगजडितं जाड्यापहं भासुरं  
 नित्यं शुद्धगुणं गभीरधिषणामोदैकहेतुं परम् ।  
 कीर्त्तित्वेमकरं महाभयहरं कामाधिदेवं शिवं  
 तत्तत् षड्दलमध्यगेहृत्चिरानन्दैकदेशास्पदम् ॥ ११ ॥  
 वन्दे श्रीपतिमच्युतं नरहरिं दैत्यारिशिक्ताकुलं  
 गन्धर्वप्रवरेः सुगायनरतं वंशीधरं भावदम् ।  
 रत्नानामधिपं गतिस्थिमचलं गोवर्द्धनोद्धारकं  
 विश्वामित्रतपोधनादिमुनिभिः संसेवितं मुक्तये ॥ १२ ॥  
 वन्दे गोविन्दपादाब्जयुगममलं भक्तिमार्गं प्रसन्नं  
 मल्लोत्पन्नं प्रभुत्वं परगुणनमितं चारुमञ्जीरहारम् ।  
 हंसाकारं प्रगल्भं बलधरं गरुडानन्दपृष्ठे निषण्णं  
 बन्धूकारक्तसारान्वितचरणतलं सर्वदा शान्तभावम् ॥ १३ ॥  
 राक्षिण्याः प्रेमसिद्धं नववयसि मतं गीतवाद्यानुरक्तं  
 रागोत्पन्नं जनानां सुसकलगुणदं गोकुलानन्दचन्द्रम् ।  
 वाणीलक्ष्मीप्रियं तं त्रिभुवनसुजनाह्लादकर्त्तारमाद्यं  
 वन्दे सिद्धान्तसारं गतिनतिरहितं सारसङ्केतितान्तम् ॥ १४ ॥  
 कामं कामात्मकं तं विधुगतशिरसं कृष्णसम्बोधनान्तं  
 वीजं कामं पुनस्तत्पृथुलसुरतरुं भावयित्वा भवेऽहम् ।  
 श्रीकृष्णं कृष्णकृष्णं निरवधिसुखदं सुप्रकाशं प्रसन्नं  
 स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे मनसि गतभये सिद्धसिद्धिस्थलस्थम् ॥ १५ ॥

आकाशे चारूपद्मे सरभसदलग्रं रक्तवर्णं प्रकाण्डम्  
 आत्मारामं नरेन्द्रं सकलरतिकरं कंसहन्तारमादिम् ।  
 आद्यन्तस्थानहीनं विधिहरगमनं सेन्द्रनीलाभनीलं  
 भावोत्साहत्रिवर्गस्थितिपरमपरं भावये भावसिद्धे ॥१६॥  
 सर्वेषां ज्ञानदानं रसदलकमले सर्वदा त्वं करोषि  
 ज्ञेमानन्दं सुधादिप्रियधनगुणिनामिकयोगप्रधानम् ।  
 मायापूर्णो ह्यमायी प्रचयनपरमः प्रातिदेशः प्रवेशः  
 श्रीवर्ज्यं चेमहोने मयि धनरहिते दृष्टिमात्रं ददस्व ॥१७॥  
 कालीश्रीकण्ठनाल्याः परगृहविगतं तारकब्रह्मरूपं  
 मुक्तिच्छत्रे वसन्तं कटिघृतवसनं भार्यया क्रीडयन्तम् ।  
 संसत्क्षेत्रप्रदेशे लयवशकरकां दूरसंस्थाभिषेकम्  
 ध्यात्वाहं स्तौमि भावैः स्थिरदलकमले संस्थितं निश्चलं तम् १८  
 वैकुण्ठं कृष्णमौडिं गुरुभयहरणं व्याधिहन्तारकं तं  
 शान्तानां ज्ञानगम्यं स्वनयनकमले पालयन्तं त्रिमार्गम् ।  
 पापारिं पृतनारिं हयवकनरकध्वान्तसंहारशूरं  
 मान्यं लोकेषु सर्वेष्वतिशयमलकं केवलं निर्मलञ्च ॥ १९ ॥  
 ओङ्कारं कारणाख्यं सुगतमतिमतां मातृकायन्त्रसिद्धं  
 सिद्धानामादिसिद्धं सुररिपुशमनं कालरूपं रिपूषाम् ।  
 मूलोर्ध्वं षड्दलान्ते मनसि सुविमले पूजयित्वा मुकुन्दं  
 नित्यं सम्भावयेऽहं निजतनुदलके सिद्धये लोकमध्ये ॥२०॥

\* \* \*

त्वां साक्षादखिलेश्वरं प्रियदारं श्रीलोकहस्तार्चितम् ॥ २१ ॥  
 क्षीणेशः प्रलयात्मकः प्रतिगुणी ज्ञानी त्वमेको महान्  
 यद्येवं मम पामरस्य कलुषं श्रीभ्रमहोनान्वितम् ।  
 हृत्वा तत् सकलं कृपागुणतया मुक्तिं विदेहि प्रभो !  
 कृत्वा पादतले मदीयनियतिं व्याचक्ष रक्षात्मक ! ॥२२॥



राधाकृष्णपदासनास्वजदलं चैतन्यसूत्र्याकुलं  
 सर्वत्राट्टियमागमं त्रिगमनं निर्वाणमोक्षाश्रयम् ।  
 बालं वैगिनिनाशनं सुखमयं कैवल्यमोक्षाख्यदं  
 देवं देवगणाचितं रसदले चारोपयामि प्रभो ! ॥ २३ ॥  
 निर्दिष्टं भुवनाश्रयं यदुपतिं निर्वाणमोक्षाख्यदं  
 निर्वाणादिकदानकातरतरं श्रीवञ्चलासङ्कुलम् ।  
 हंसारूढनिरीक्षणं क्षणगतं वाणीपतिं भूपतिं  
 द्वाञ्छाकल्पलतापतिं कुलपतिं दीक्षापतिं गोपतिम् ॥ २४ ॥

प्रभो ! निःसङ्केतं गुणमणियुतं श्रेयसि गतं  
 मतान्तस्थं सुस्थं विगलितमहाप्रेमसुरसम् ।  
 सदानन्दं कृष्णं हरकरतलाभोजमहितं  
 प्रभापुञ्जं साराश्रयपटकटं कामकुशलम् ॥ २५ ॥  
 महामन्त्रच्छायं रजनिमिलितं ध्वान्तजडितं  
 त्रिकोणस्थं कुस्थं कुगतिसुगतिं कारणगतिम् ।  
 जीवानां संस्थानं जगति जगतां धर्ममुदयं  
 रमेशं वाणीशं दिधिगतपदं शम्भुनिलयम् ॥ २६ ॥  
 त्रिकालं योगायां नयनकमलं शब्दनिरतं  
 कुलानन्दं गोपीजनहृदयरागं गोपमहितम् ।  
 निधानं त्वामिन्द्रं गुरुतरसुरेन्द्रं सुररिपुं  
 मुदा त्वां वन्देऽहं त्रियतचर्पलं भावमादितम् ॥ २७ ॥  
 कुलानां हि श्रद्धामयमखिलसिद्धिप्रदमजं  
 मनोऽतीतं गीतं सुरनरवरैः शास्त्रभवनम् ।  
 विनोदं नारीणां हृदयरसिकं शोकरहितं  
 निधानं यज्जानां हितशतगुणं यामि शरणम् ॥ २८ ॥  
 एतत् सखन्वमानो मयकुलाश्रयसि स्थायिनां गोष्यते हि  
 गोपीनां प्राणनाथः प्रतिदिनमनिशं भालदेशं प्रपायात् ।

भालाघोदेशसंस्थः समवतु सहसा राजराजः सुरेशः  
स्थित्यन्तेशस्त्रिनेत्रः सुखमखिलभवं कण्ठदेशादिसर्वम् ॥ २८ ॥  
पृष्ठस्थं पातु शौरिः प्रातदिनममरो लिङ्गवाह्यं काटस्थं  
शम्भुप्रेमाभिलाषी मम तु कुलपदं गुह्यदेशं प्रपायात् ।  
आनन्दोद्रेककारी सकलतनुगतं पातु नित्यं सुरारि-  
दैत्यारिश्चोरमूलं नृहरिवतु मे जङ्घया पादपद्मम् ॥ ३० ॥  
एतत् स्तोत्रं पठेद्द्वान् नियतो भक्तिमाज् शुचिः ।

स्थिरो भवति मासेन षड्दले सर्वसिद्धिभाक् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते उत्तरतन्त्रे महात्मनाहोपने षड्दशमोऽध्यायः ॥

भैरव-भैरवीसंवादे श्रीकृष्णसवकवचं नाम एकोनचत्वारिंशः

पटलः ॥ ३१ ॥

## चत्वारिंशः पटलः ।

श्रीआनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ नाथ ! प्रवक्ष्यामि शृणुष्ववाहितो मम ।

येन क्रमेण लोकानां योगकार्यं दृढं भवेत् ॥ १ ॥

सर्वत्र भावनाग्रस्तः सिद्धो भवति भैरव ! ।

यो भजेद्भैरवं देव भुवने सर्वगो हि सः ॥ २ ॥

क्रियादक्षो महावीरो वीरवल्लभभावकः ।

भावयित्वा वर्णमाला-मध्ये जप्त्वा टिवानिशम् ॥ ३ ॥

हविष्याशौ प्राणवायु-रतो वेदान्तपारगः ।

सिद्धान्तवेत्ता सर्वेषां शास्त्राणां निर्णये पटुः ॥ ४ ॥

गाथाज्ञानो परानन्दो विवेकी स भवेत् परः ।

भाववेत्ता रहस्यार्थ-ज्ञानो कविटवेदावित् ॥ ५ ॥

वाक्सिद्धश्च ज्ञानपरः सत्यवादी दृढासनः ।

भावयेत् षड्भूतं वर्ण-ध्यानं कुर्यात् पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

षट्पद्मस्थो भावयेद्दे षड्वर्णध्यानपूर्वकम् ।

वादिनां त्र्यक्षरं ध्यायेन्महाविद्यानिषेवकः ॥ ७ ॥

विकारं सौन्दर्यं स्वकिरणमयं भाव्यमतुलं

सुकुन्दं श्रीभक्तिप्रियरमणकं पूर्वदलगम् ।

विशिष्टज्ञानान्तं सुरवरनतं कोटिकिरणं

विभाव्य श्रीलक्ष्मीं गमयति परं कालपुरुषम् ॥ ८ ॥

द्विरण्डश्रीनाथं सुखयति भकारं रसदले

त्रिकोणं पार्श्वस्थात् चपलप्रतकं शम्भुनिलयम् ।

महारक्ताकारं तरुणविगतं भीममतुलं

कुलागारस्थानं कुलरमणिवज्रायुतमिति ॥ ९ ॥

यदा ध्यायेत् ज्ञानी निरवधि मुटा शोकविरहं

त्रिलोकानां स्थानं भुवनशरणं ध्येयपरमम् ।

महामोक्षद्वारे भवति स महान् सर्वजडितो

विलासी सर्वेषां नवमवधूनां प्रियपतिः ॥ १० ॥

महाकालस्थानं भुवनशरणं भावयति यः

\* \* \* \*

भकारं व्याहृत्य क्षितिन्नयकरं कोटिगुणितम् ॥ ११ ॥

त्रिकोणादच्चाङ्गे निगमनमनोयोगजडितो

विनोदी सौख्यानां सुरतरुसमानो भुवि भवेत् ।

भकारं यो ध्यायेदमरपदवी तस्य नियतं

महावाणीनाथः प्रणयजडितस्तस्य निखये ॥ १२ ॥

सुकुन्दानन्दास्थं पवनमिलितं कामकरणं

सटा ध्यात्वाऽकामी भवति नितरां कामविषयी ।

महाग्नेः संस्थानं परजननिधनं सूर्ध्वगतकं

सदानन्दं ध्यायेत् परमधनदं यज्ञसुधया ॥ १३ ॥

सुधादानज्ञानी हृदनकरणं काम्यफलदं

प्रियं तद्रेवत्याः कमलभुजगन्द्रार्चितपदम् ।  
 त्रिकोणान्भोजस्थं विधिहरिहरस्य श्रियमितो  
 विधानं वङ्गौर्णां कुलविमलवौजं सकरणम् ॥ १४ ॥  
 असंख्यानाखण्डं खड्गगणमनोरञ्जनपरं  
 यदि ध्यायेदेको विविधविभवं याति सहसा ।  
 महेंद्रं स्थानाङ्गं कमलमुखदं कृष्णनिलयं  
 प्रियं सिद्धिचैत्रं परसुखमयं भावयति यः ॥ १५ ॥  
 नकारं चन्द्रस्थं विधुशतकरं विन्दुनिलयं  
 विशालाक्षोगधामधुरवचनालापकलितम् ।  
 महादेवीतुष्टं सकलकरणं श्रापहरणं  
 विभाव्य श्रिनाथं भजति स नरो ध्याननिपुणः ॥ १६ ॥  
 ततो ध्येया महाविद्या राकिणी शक्तिरुत्तमा ।  
 श्रीविष्णुसंहितां नित्यं योगैर्भोगविवर्जितैः ॥ १७ ॥  
 अकलङ्गी कुंभानन्दो मन्दहास्यावृत्तो महान् ।  
 स योगी परमं राज्यं प्राप्नोति नात्र संशयः ॥ १८ ॥  
 थावत् मूलाधारयोगं तावद्युग्मादिकं प्रभो ! ।  
 धमनियामने काले जपं पञ्चासवान्वितम् ॥ १९ ॥  
 तावत् कुर्यात् महादेव ! यावत्तस्मिद्धिमाप्नुयात् ।  
 यदि पञ्चासने सिद्धिस्तदा मायादिसिद्धिभाक् ॥ २० ॥  
 पञ्चासवैः सिद्धिकाले प्राणादिवायुपञ्चकम् ।  
 धृत्वा धृत्वा पुनर्धृत्वा कुम्भयेदनिशं शनैः ॥ २१ ॥  
 शरीरं निर्मले याते वायोर्निर्मलता भवेत् ।  
 सर्वरूपी महावायुर्निर्मलात्मानमात्मनि ॥  
 सिद्धिं ददाति योगेश ! यदि स्वं कार्यमाश्रयेत् ॥ २२ ॥

शक्ति श्रीरुद्रयामने उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीहोत्रे सिद्धमन्त्रप्रकरणे

भैरव-भैरवीसंवादे षड्दलवर्णप्रकाशो नाम

चत्वारिंशः पटलः ॥४०॥

## एकचत्वारिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कृतान्तसंस्कारविहारभोगं रसाप्लुतं श्रीकर ! शङ्कर ! प्रभो ! !  
 तवाङ्गयाहं कथयामि सिद्धये ममागमानन्दवशाद्धि तन्वम् ॥ १ ॥  
 प्रेमाभिलाषी सुजनो मुनीन्द्रो जानाति तन्वार्थमनन्तसाधनम् ।  
 महाप्रभावश्चरणान्जभक्तो गोविन्दशम्भोर्यदि भक्तिमान् जनः ॥ २ ॥  
 षट्चक्रमेदार्थविशेषसाधनं जानाति यो वै स जनोऽतिदुर्लभः ।  
 स एव ससारनिषेधसाधकः सदा विचिन्त्याचलभक्तिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

यदि मे कथिता कान्ते ! षड्दलप्रक्रिया शुभा ।  
 राकिण्या मिलनं देव्याः कुण्डलिन्याः पराक्रमम् ॥ ४ ॥  
 साहं श्रीविष्णुना काल-रूपिणा बहुरूपिणा ।  
 शुद्धनिर्मलसत्त्वेन परिवारगणैः सह ॥ ५ ॥  
 न तर्हि कथितं सर्वं श्रीकृष्णस्य प्रकाशकम् ।  
 स्तवनं किल राकिण्या सहितं कृष्णसाधनम् ॥ ६ ॥  
 मङ्गलं परमं ब्रह्म-साधनं ज्ञानवर्द्धनम् ।  
 कृष्णप्रकाशस्तवनं राकिणीशक्तिसंयुतम् ॥ ७ ॥  
 कथयस्व महाकालि ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।  
 अत्यन्तगुह्यकथनं सहस्रनाममङ्गलम् ॥ ८ ॥  
 अष्टोत्तरं महाविष्णो राकिण्या सहितं प्रिये ! ।  
 इदानीं राकिणीस्तोत्रं वद भाविनि कामदे ! ॥ ९ ॥

श्रीआनन्दभैरव्युवाच ।—

योगेन्द्र ! परमानन्द सिद्ध ! श्रीचन्द्रशेखर ! ।  
 शृणुष्व राकिणीस्तोत्रं परमानन्दवर्द्धनम् ॥ १० ॥  
 सर्वत्र सुखदं प्रोक्तं सिद्धानामपि साधनम् ।

एतत्स्तोत्रस्य पाठेन योगी योगेन्द्रभाग् भवेत् ॥ ११ ॥  
 वैष्णवीसाधने यस्तु पञ्चाचारं करोति वा ।  
 सर्वेषां साधनोत्कृष्टं जातिभ्रष्टोऽपि नो भवेत् ॥ १२ ॥  
 समता शत्रुमित्त्रेषु कर्माकर्मसु तत्त्ववित् ।  
 वैष्णवावैष्णवे नाथ ! समभावः प्रजायते ॥ १३ ॥  
 पञ्चाचारक्रमेणैव सिद्धो भवति नान्यथा ।  
 राधादिगोपीवृन्दैश्च गोपिकाभिः समन्ततः ॥ १४ ॥  
 पञ्चाचारं मुदा कृत्वा सर्वेषां परिपालनम् ।  
 चकार कमलानाथोऽतः पञ्चाचारमाश्रयेत् ॥ १५ ॥  
 पञ्चाचारक्रमेणैव चैतन्यकुण्डलो भवेत् ।  
 कृष्णचैतन्यहेतोश्च राकिण्याश्च तथा प्रभो ! ॥ १६ ॥  
 चैतन्याय षड्दक्षस्थ-देवचैतन्यहेतुना ।  
 कुण्डलीबधूराकिण्याः स्तोत्रं शृणु कुलार्णव ! ॥ १७ ॥

राकिणीस्तोत्रम् ।—

आन्दोलिता रसनिधौ कुलचञ्चला या  
 माया महीसकलदुःखविनाशबीजा ।  
 सम्यग्विलाससुगता सुलभा मुनीनां  
 भव्या प्रपातु भविका कुलराकिणी माम् ॥ १८ ॥  
 आनन्दसिन्धुजडिताखिलसारपारा  
 बाला कुचाग्रनमिता दलषट्कुलस्था ।  
 काली कलामलगुणा धनदा धनस्था  
 कृष्णेश्वरी समुदयं कुरु राकिणि मे ॥ १९ ॥  
 या राकिणी त्रिजगतामुदयाय चेष्टा  
 संज्ञामयी कुलपरा कुलवल्लभस्था ।  
 विश्वेश्वरी स्मरह्वरप्रियकर्म्मनिष्ठा  
 कृष्णप्रिया मम सुखं परिपातु देवी ॥ २० ॥

षड्वर्गनाथकरपद्मनिषेविता या  
 राधेश्वरौ प्रियकरौ सुरसुन्दरी या ।  
 माता कुलेशजननी जगतां सदैव  
 विद्या परादिसुखदावतु मे शरीरम् ॥ २१ ॥  
 गोविन्दरामरमणी वनमालिनी या  
 वाद्येश्वरौ स्मरहरा नवकामिनो या ।  
 मे षडदलाश्रितगुरुं परिपातु नित्यं  
 श्रीकुण्डली कुलपरा कुलहन्दवन्द्या ॥ २२ ॥  
 श्रीहासिनी सुविमला कुलराकिणी या  
 श्रीसुन्दरी कुलपरा रतिकामतीर्था ।  
 श्रीद्रामिनी कुलगणामलभावदात्री  
 नित्यं प्रपातु विषयं कुलषडदलानाम् ॥ २३ ॥  
 चैतन्यदाननिरतां त्रिगुणाभिरामां  
 नीलाचलस्थितिकरां वरदानहस्ताम् ।  
 श्रीकृष्णारामकमलोपरि पूजयामि  
 तां राकिणीं त्रिरमणीं शमनापहन्त्रिणीम् ॥ २४ ॥  
 पद्मासनां श्रुतिभुजां गुरुजामनन्तां  
 शान्तां षडम्बुजदलोपरि पूजयामि ।  
 शान्तिस्थिता कपटकोपविनाशमुक्तां  
 रम्यां शिवां परमवैष्णवपूजिताङ्घ्रिणीम् ॥ २५ ॥  
 राकासुधां वरमयीं जगतां गुणस्थां  
 धर्माणवां रसदले परिपूजयामि ।  
 कर्त्री परां सकरुणां रमणीं त्रिसर्गा-  
 माह्लादिनौमतिःश्यामलार्थचिन्ताम् ॥ २६ ॥  
 भ्रान्तिं भ्रमाद्यघहरां स्मृतिमूलपूज्यां  
 भार्यां हरेरतिसुखां परिपूजयामि ।

या कातरं निरवधि प्रलयेऽपि रक्षेत्  
 वागीश्वरो भगवती नतिकोटिनम्त्रम् ॥ २० ॥  
 सा राकिणी प्रकृतितेजसि रक्तवर्णा  
 मायामयी सुरकला किल पातु मेऽङ्गम् ।  
 कल्पद्रुमाश्रयलता फलरूपिणी या  
 भर्गस्थिता निखिलसिद्धगणैर्नमस्या ॥ २१ ॥  
 सा मे कुलेश्वरसं हरिहस्तपूज्या  
 क्षान्तिः सदा मम धनं परिपातु राधा ।  
 क्षेमहारी वरकरो सुकरो हरित्या  
 या सौकरो भयकरो त्रिपुरा महेश्री ॥ २२ ॥  
 वायुस्थिता लयमयी स्थितिमार्गसङ्गा  
 भङ्गप्रिया सुवचनां परिपातु राधा ।  
 श्रीकृष्णचित्तहरणे कुशला रसज्ञा  
 रासेश्वरी शुभकरी जगदम्बिका सा ॥ २० ॥

मन्त्रस्था जयदा मुदा कुमुदिनी भालं भुवोरन्तरं  
 विद्यावाग्भवकुण्डलोफणबला बाला च नेत्रत्रयम् ।  
 गण्डं चण्डसरस्वती श्रुतियुगं कैलासशृङ्गस्थिता  
 घाटं मे घटवासिनी शशिसुखी सूक्ष्मातिसूक्ष्माशया ॥ २१ ॥  
 जिह्वाग्रं चिवुकं रदानधिमङ्गाकण्ठं गलं स्कन्धकं  
 स्कन्देशी दशनप्रभामलमतिवैकुण्ठधामेश्वरी ।  
 नानावर्णविलासिनी मदुरसं शम्भोर्भवानी शिवा  
 पृष्ठं कूर्ममुष्टका गतिकरी नित्या नृणां भास्वती ॥ २२ ॥  
 सर्वं मे कुलमालिनी मम काटिं लिङ्गं नितम्बास्वरं  
 कामाख्या धनदायिनी सकरुणा पादद्वयं पातु सा ।  
 मातृक्रोधनिवारिणी मम शिवं षट्पत्रशोभाकरं  
 पातु श्रोमृदुहासिनी कुलतकं गौरी परानन्ददा ॥ २३ ॥



चैतन्यस्थलवासिनौ हृदि गता गोविन्दसुप्तिस्थला  
 चैतन्यं सततं प्रपातु तरुणी धात्री परचेतना ।  
 मध्या पिङ्गललोचनाम्बुजमुखौ चैतन्यकर्मप्रिया  
 मां सर्वत्र शुभङ्करो सुनियतं शक्तिः क्षमाकर्तृका ॥ ३४ ॥

\* \* \* \*

कीर्तिस्था मम कीर्तिचक्रनिलयं लालारुणा वल्लरी  
 लीलाचक्रनिवासिनौ मम सदा जोवं मुदा पातु सा ॥ ३५ ॥

एतत् स्तोत्रं पठेन्नित्यं प्राणवायुधरः शुचिः ।

षट्चक्रभेदसमये सदा पाठ्यं सुयोगिभिः ॥ ३६ ॥

कुलविन्याससमये कुलचक्रप्रवेशने ।

अवश्यं प्रपठेद्द्विद्वान् राकिणीराधिकास्तवम् ॥ ३७ ॥

त्रिसन्ध्यं श्रद्धया जप्त्वा पाठत्वा च पुनः पुनः ।

ततो भावपरो भूत्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ३८ ॥

अचलां भक्तिमाप्नोति विश्वामित्रो यथा वशी ।

पठनात् पामरो याति ब्रह्मलोकं कुलाधिप ! ॥ ३९ ॥

एतत् पठनमात्रेण शीतलो गुणवान् भवेत् ।

अप्रकाश्यमिदं स्तोत्रं सर्वानृतविनाशनम् ॥ ४० ॥

समभावं समाकृष्य जीवन्मुक्तो भवेद्वशी ।

पञ्चाचाररतो भूत्वा साधयेद् यदि साधनम् ॥ ४१ ॥

कुण्डलीयोगकाले च कुलाचारं न वर्जयेत् ।

कुलाचारवर्जनेन महाहानिः प्रजायते ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा शूद्र एव च ।

समभावं मुदा कृत्वा कुलाचार समाश्रयेत् ॥ ४३ ॥

कुण्डली पृथिवी देवी राकिणी स्वाधिदेवता ।

तद्देहगामिनी देवौ राधिका चाद्यकामिनौ ॥ ४४ ॥

अस्याः साधनकाले च समयाचारमाश्रयेत् ।

समभावे महामोक्ष इति तन्वार्थनिर्णयः ॥

समभावार्थकथनं त्यक्त्वा योगी भवेत् कुतः ॥ ४५ ॥

इति श्रीब्रह्मसूत्रे उत्तरतन्त्रे महातन्त्राद्वीपने विद्वन्मन्त्रप्रकरणे षट्षक-

प्रकाशे भैरव-भैरवीसंवादे स्वाविष्टानराक्षिणीस्त्रीं

नाम एकचत्वारिंशः पटलः ॥ ४१ ॥

## द्विचत्वारिंशः पटलः ।

श्रीभ्रानन्दभैरव्युवाच ।—

राक्षिणीसाधनम् ।—

कथयामि महाकाल ! परमाद्भुतसाधनम् ।

कुण्डलीरूपिणीदेव्याः राक्षिण्याः कुलवल्लभ ! ॥ १ ॥

मानसं द्रव्यमानौय चाथवा वाह्यद्रव्यकम् ।

अनन्तहृष्टचित्तञ्च पूजयेत् सावधानतः ॥ २ ॥

भक्त्या जपेन्मूलमन्त्रं मानसं सर्वमेव च ।

पूजयित्वा ततो जप्त्वा होमं कुर्यात् परासृते ॥ ३ ॥

समांसैः पक्कनैवेद्यैः सुगन्धिकुसुमैस्तथा ।

स्वयम्भूकुसुमैर्नित्यमर्घ्यं कृत्वा निवेदयेत् ॥ ४ ॥

सुमुखं पूजयेन्नित्यं मधुमांसेन शङ्कर ! ।

एवं श्रुत्वा पुनर्ध्यात्वा प्रणवाद्युग्निसङ्गमैः ॥ ५ ॥

भ्रामयित्वा मनोराज्ये स्थापयित्वा पुनः पुनः ।

पुनरागम्यगमनं कारयित्वा सुमेलनम् ॥ ६ ॥

वाचयित्वा सुवाणीभिर्याचयित्वाऽऽसवादिकम् ।

तर्पणञ्चाभिषेकञ्च केवलासवमिश्रितैः ॥

मांसैर्मुद्गादिभिर्मत्स्यैः सारद्रव्यैः सपिष्टकैः ॥ ७ ॥

वृतादिसुफलेवापि यद्यदायाति कौलिके ।

तत्तद्रव्यैः साधकेन्द्रो नित्यं सन्तर्प्य संजपेत् ॥ ८ ॥

राकिणीमन्त्राः ।—

श्रीं महाकालऋषेन्द्रनीलमणिनिभ राकिणीवल्लभ कुण्डली  
महावीर राकिणीकैवल्यमाचदात्रेय नमः ।

क्रां क्रौं क्रं क्रं क्लीं श्रीं रां रीं रुं रे रै रीं रीं रं रः स्वाहा ।

परमवैष्णवो महाभैरवो महाविष्णुः कुलदेवतां परजन-  
निष्फल पुरुषोत्तम वासुदेव हृषीकेश केशव नारायणं दामोदर  
पञ्चचूड चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाधर राकिणी सूक्ष्मा कुलकुण्डली  
राधिका वाञ्छदेवता श्रीश्रीविद्याचैतन्यानन्दमयी विश्वव्यापिका  
जगन्मोहिनी मूलात् प्रभृति षडाधारभेदिनी बन्धनाकारप्रका-  
शिनी मनोभवां मां मां मांसङ्घिरादिशरीरपरिवारादिकं पालय  
गोपय गोपयं स्थापय स्थापय शत्रून् घातय श्रीं ह्रीं ह्रीं स्त्रीं स्त्रीं  
ह्रं सकलं क्रां सकलं क्लीं श्रीं जौं ह्रीं ममोनमः स्वाहा ।

एतन्मन्त्रं पठित्वां च तर्पणञ्च संमोचरेत् ।

तर्पणान्ते चाभिषेक संदा कुर्व्याच्च तान्त्रिकात् ॥ ८ ॥

मूलान्ते चाभिषिञ्चामि नमः स्वाहा पटं ततः ।

ततो हि प्रणमेद्भक्त्या अष्टाङ्गनतिभिः प्रभो ! ॥ १० ॥

सहस्रनाम्नां स्तवनं पुण्येनाष्टोत्तरेण च ।

अङ्गाङ्गं राकिणीयुक्तं राकिणीकेशवस्तवम् ॥ ११ ॥

शृणु तत् सकलं नाथ ! यत्र श्रद्धा सदा तव ।

श्रवणार्थं बहूक्तं तत् क्लृपया ते वदाम्यहम् ॥ १२ ॥

एतत् श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।

राकिणीमङ्गलं नाथ ! स्तवनं नाम पावनम् ॥ १३ ॥

ये पठन्ति धियाचारश्रद्धया वा पुनः पुनः ।

तस्य सर्वपापराशिः क्षयं याति कुंलादिह ॥ १४ ॥

काले काले महावीरो भवत्येव हि योगिराट् ।

संसारोत्तारणे युक्तो महाबलपराक्रमः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण-राकिणी-सहस्रनामानि ।—

अस्य श्रीमदानन्दकुलमङ्गल कालकाल सुन्दर कृष्णमुकुन्द  
नारायण राकिणी कुलकुण्डलिनी मिलन सर्वसाधननिष्पत्तये  
परममोक्षाय नित्यसुखाय योगसिद्धये अष्टोत्तरसहस्रनाम्नः  
स्तोत्रस्य गणेशकुलगणाधिपतिर्ऋषिर्बृहतीच्छन्दः श्रीमत्कृष्ण-  
महाकालपुरुषोत्तम कुलकुण्डलिनी राधा राकिणी देवता  
स्रष्टृदलाधारादि प्रकाश षट्पद्मसिद्धार्थं विनियोगः ।

श्रीं श्रीकृष्णो महामाया यादवी देवराकिणी ।

गोविन्दो विश्वजननी महाविष्णुर्महेश्वरी ॥ १६ ॥

मुकुन्दो मालतीमाला विमलो विमलाकृतिः ।

रमानाथो महादेवी महायोगी प्रभावती ॥ १७ ॥

वैकुण्ठो देवजननी दहनो दहनप्रिया ।

दैत्यारिर्दैन्यमघनी मुनीशो मौनभाविता ॥ १८ ॥

नारायणो जलाच्छन्ना वरुणो वरुणामयी ।

दृषीकेशः कौशिकी च केशवः केशिघातिनी ॥ १९ ॥

किशोरश्चापि केशोरो महाकालो महाकला ।

महायज्ञो यज्ञहन्तौ दक्षेशो दक्षकन्यका ॥ २० ॥

महावली महाबाला बालको देवबालिका ।

चक्रधारो चक्रकारा चक्रकञ्चकमर्दका ॥ २१ ॥

अमरो युवती भौमोऽभया देवो दिविस्थिता ।

श्रीकरो हि देवेशदा वैद्यो योगिकुलस्थिता ॥ २२ ॥

समयज्ञो मानसज्ञा क्रियाविज्ञः क्रियाऽन्विता ।

अक्षरो वनमाला च कालरूपो कुलाक्षरा ॥ २३ ॥

विशालाक्षी दीर्घनेत्रा जयदो जयबाहना ।

शान्तः शान्तिकरी श्यामो विमलश्यामविग्रहा ॥ २४ ॥

कमलेशो महालक्ष्मीः सत्यः साध्वी शिशुः प्रभा ।

विद्युताकारवदनो विद्युत्पुञ्जनिभोदरा ॥ २५ ॥  
 राधेश्वरो राकिणी च कुलदेवः कुलामरा ।  
 दक्षिणो दक्षिणश्रीदा क्रियादक्षो महालया ॥  
 विशिष्टगमनो विद्या विद्येशो वाक् सरस्वती ॥ २६ ॥  
 अतीन्द्रियो योगमाता रणेशी रणपण्डिता ।  
 कृतान्तको बालकृष्णा कमनीयः सुकामना ।  
 अनन्तोऽनन्तगुणदा वाणीनाथो बिलक्षणा ॥ २७ ॥  
 गोपालो गोपवनिता गोपो गोपकुलात्मजा ।  
 मानौ मानकरोक्तासा मानवो मानवात्मजा ॥  
 सर्ववृन्दो मोहिनी च मायी मायाशरीरजा ॥ २८ ॥  
 अक्षुष्यो रजोदेहस्था गरुडस्थो हि गरुडी ।  
 सत्यप्रियो राक्षणी च सत्यप्राणोऽनृतापहा ॥ २९ ॥  
 सत्यकर्मा सत्यभामा सत्यरूपी त्रिसत्यदा ।  
 शशीशो विधुवदना कृष्णवर्णी विशालधीः ॥ ३० ॥  
 त्रिविक्रमो विक्रमस्था स्थितिमार्गो स्थितिप्रिया ।  
 श्रीमाधवो माधवो च मधुहा मधुसूदनो ॥ ३१ ॥  
 वैकुण्ठनाथो विकला विवेकस्थो विवेकिनी ।  
 विवादस्थो विवादेशा कुम्भकः कुम्भकारिका ॥ ३२ ॥  
 सुधापानः सुधारूपा सुधेशो देवमोहिनी ।  
 प्रक्रियाधारको धन्या धन्यार्थी धन्यविग्रहा ॥ ३३ ॥  
 धरणीशो महाऽनन्ता सानन्दो नन्दनप्रिया ।  
 अग्रियो विप्रियहरा विप्रपूज्यो द्विजप्रिया ॥ ३४ ॥  
 कान्तो विधुमुखी वैद्यो विद्या वागोश्वरोऽरुणा ।  
 अकामो कामरहिता क्रमो विलनरप्रिया ॥ ३५ ॥  
 पुण्डरीको विकुण्ठस्था वैकुण्ठो बालभाविनी ।  
 पद्मनेत्रः पद्ममाला पद्महस्तोऽम्बुजानना ॥ ३६ ॥

पद्मनाभः पद्मनेत्रा पद्मस्थः पद्मवाहना ।  
 वासुदेवो बृहन्नर्भा महामानी महाञ्जना ॥ ३७ ॥  
 कारुण्यगर्भः करुणात्माऽऽकाशाख्यो विभातिजा ।  
 तेजोराशिस्तैजसी च भयाच्छन्नो भयप्रदा ॥ ३८ ॥  
 उपेन्द्रो वर्णजालस्था देवरूपो विमानगा ।  
 नगेन्द्रस्थो नागिनी च नगेशो नागनन्दिनी ॥ ३९ ॥  
 सार्वभौमोऽमला काली नगेन्द्री नन्दिनी शुभा ।  
 कामदेवाश्रयो माया मित्रस्थो मित्रवासना ॥ ४० ॥  
 मानभङ्गकरो राका रावणारिः प्रियाप्रिया ।  
 रिपुहा राकिणी माता सुमित्रा मित्ररक्षका ॥ ४१ ॥  
 कालान्तः कङ्कला देवः पीतवासाम्बरप्रिया ।  
 पापहर्ता पापहन्त्री निष्पापः पापनाशिनी ॥ ४२ ॥  
 परमानन्दो मीना मीनरूपी मलापहा ।  
 इन्द्रनीलमणिश्यामो महेंद्रनीलरूपिणौ ॥ ४३ ॥  
 नीलकण्ठप्रियो दुर्गा दुस्यदुर्गतिनाशिनी ।  
 त्रिकोणमन्दिरः श्रीदा विमायो मन्दिरस्थिता ॥ ४४ ॥  
 मकरन्दरसोक्तासो मकरन्दरसप्रिया ।  
 दारुणाधिनिहन्ता च दारुणारिर्विनाशिनी ॥ ४५ ॥  
 कालः कालफलार्थी च काली कालफलावहा ।  
 कालक्षेत्रस्थितो रौद्री व्रतस्थो व्रतधारिणी ॥ ४६ ॥  
 विशालाक्षी विशालाक्षी चमत्कारो वरोद्यमा ।  
 लकारस्थो लाकिनी च लाङ्गली क्षीलकान्विता ॥ ४७ ॥  
 नाकस्थो नाकपदका नाकाक्षी नाकरक्षका ।  
 कामगो कामसन्ध्या विशोधको विशोधिका ॥ ४८ ॥  
 सामवेदो सामसन्ध्या सामगो मांसभक्षिणी ।  
 सर्वभक्ष्यो सर्वभक्ष्या वेदस्थो वेदपालनी ॥ ४९ ॥

रात्रिकारी महारात्रिः कालरात्रो महानिशा ।  
 नानादोषहरो मात्रा मारुहन्ता स्मरपहा ॥ ५० ॥  
 चन्दनाङ्गो नन्दपुत्रो नन्दपालो विलोपिनी ।  
 मुद्राकारो महामुद्रा मुद्रितो मुद्रिकारतिः ॥ ५१ ॥  
 शाक्तो ज्ञात्वा वेदज्ञात्तो लोपामुद्रा मनोहरा ।  
 महाज्ञानधरो ज्ञानधौरा मानहरोऽमरा ॥ ५२ ॥  
 सत्कीर्त्तिस्थो महाकीर्त्तिः कुलाख्यः कुलकीर्त्तिका ।  
 आशावासी वासना च कुलवेत्ता सुगोपिता ॥ ५३ ॥  
 अश्वत्यवृक्षनिलयो वृक्षसारनिवासिनी ।  
 नित्यवृक्षो नित्यलता क्लृप्तः क्लृप्तपदस्थिता ॥ ५४ ॥  
 कल्पवृक्षः कल्पलता सुकालः कालभक्षिका ।  
 सर्वालङ्कारभूषाढ्यः सर्वालङ्कारभूषिता ॥ ५५ ॥  
 अकलङ्की निराहारा दुर्निरोद्धो निरापटा ।  
 कामकर्त्ता कामकान्ता कामरूपी महाजवा ॥ ५६ ॥  
 जयन्तो जयजयन्तो जयाख्यो जयटाण्डिनी ।  
 त्रिजीवनो जीवमाता कुशलाख्यो त्रिमुन्दरा ॥ ५७ ॥  
 केशधरो केशिनी च कामजः कामजाह्वटा ।  
 किङ्करस्थो विकारस्था मानसज्ञो मनोप्रिया ॥ ५८ ॥  
 मिथ्याहरो महामिथ्या मिथ्यासर्गो निराकृतिः ।  
 नागयज्ञोपवीनी च नागमालाविभूषिता ॥ ५९ ॥  
 नागाख्यो नागकुलपा नायको नायिकाबधूः ।  
 नायकलेमटो नाथो नारी नारायणप्रिया ॥ ६० ॥  
 किरातवर्णी रामज्ञा तारको गुणतारिका ।  
 शृङ्गाराख्यो रजःद्रुवा कृपणः कृपणावती ॥ ६१ ॥  
 देशगो देशमन्तोषा दर्शी दर्शनवासिनी ।  
 दर्शनज्ञो दर्शनस्था दृग्दृष्ट्याऽसुरोऽसुरा ॥ ६२ ॥

सुरपालो देवरक्षा त्रिरक्षो रक्षदेवता ।  
 श्रीरामः सेवासुखंदा सुखदो व्योमवासिनी ॥ ६३ ॥  
 वृन्दावनस्थो वृन्दा च वृन्दावन्यो वृहत्तनुः ।  
 ब्रह्मरूपी त्रितारी च तारकाख्यो हि तारिणी ॥ ६४ ॥  
 तन्त्रज्ञस्तन्त्रविद्या च सुतन्त्रज्ञः सुतन्त्रिका ।  
 ढमः सुढमो लोकानां तर्पणस्थो विलासिनी ॥ ६५ ॥  
 मथुरामन्दिररतो मथुरामन्दिरासना ।  
 मन्दिरो मन्दिरा देवो निर्मायी सा मायापहा ॥ ६६ ॥  
 श्रीवत्सहृदयो वत्सा वत्सलो भक्तवत्सला ।  
 भक्तप्रियो भक्तगम्या भक्तो भक्तिः प्रभुः प्रभा ॥ ६७ ॥  
 जरो जरा रवो रावा हविर्देमा क्षमः क्षितिः ।  
 क्षीणीपो विजयोक्षासा विजयो जयरूपिणी ॥ ६८ ॥  
 जयदो जयदात्री च बलिपी बलिपालिका ।  
 कृष्णमार्जाररूपी च कृष्णमार्जाररूपिणी ॥ ६९ ॥  
 घोटकस्थो हयस्था च गजगो गजवाहना ।  
 गजेश्वरो गजाधारा गजो गर्जनतत्परा ॥ ७० ॥  
 गयासुरो गयादेवी गयदर्पो गयार्तिता ।  
 कामनाफलसिद्धार्थी कामनाफलसिद्धिदा ॥ ७१ ॥  
 धर्मदाता धर्मविद्या धर्मदो मोक्षदायिनी ।  
 मोक्षाश्रयो मोक्षकर्त्री नन्दगोपाल ईश्वरो ॥ ७२ ॥  
 श्रीपतिः श्रीमहाकाली किरणो वायुरूपिणी ।  
 वायूहारी वायुनिष्ठा वायुबीजो यशस्विनी ॥ ७३ ॥  
 जीता जयन्ती यागस्थो यागविद्या शिवः शिवा ।  
 वासवो वासवस्त्री च वासाख्यो वंशनिग्रहा ॥ ७४ ॥  
 आखण्डलो विखण्डा च खण्डस्थः खण्डमालिनी ।  
 खड्गहस्ती बाणहस्ता बाणगो बाणवाहना ॥ ७५ ॥



सिद्धान्तज्ञो सिद्धिदात्री धनस्थो धान्यवर्द्धिनी ।  
 लोकानुरागो रागस्था स्थितिस्थापकभावना ॥ ७६ ॥  
 स्थानभ्रष्टोऽपदस्था च शरच्चन्द्रनिभानना ।  
 चन्द्रोदयश्चन्द्रवर्णा चारुचन्द्रो रुचिस्थिता ॥ ७७ ॥  
 रुचिकारी रुचिप्रीता रुचिरा रुचिरप्रभा ।  
 राजराज्ञो राजकन्या भुवनो भुवनाश्रया ॥ ७८ ॥  
 सर्वज्ञः सर्वतोभद्रा वाचालो लयघातिनी ।  
 लिङ्गरूपधरो लिङ्गा कलिङ्गः कनकेश्वरी ॥ ७९ ॥  
 केवलानन्दरूपाख्यो निर्वाणमोक्षदायिनी ।  
 महामेघो गाढमला नन्दरूपी महामला ॥  
 घोररूपो महामेघ-मालाश्यामलविग्रहा ॥ ८० ॥  
 वियद्ग्रापको व्यापिका सर्वदेहे  
 महाशूरवीरो महाधर्मनीरा ।  
 महाकालरूपी महाचण्डरूपा  
 विवेकी विचिन्ता कुलेशः कुलेशा ॥ ८१ ॥  
 सुमार्गी सुगीता सुचिः श्रीविनीता  
 महार्को वितर्का सुतर्कोऽतितर्का ।  
 क्ततीन्द्रो महैन्द्रा भगो भाग्यचन्द्रा  
 चतुर्थी महार्था नगः कीर्त्तिचन्द्रा ॥ ८२ ॥  
 विशिष्टो महैष्टिर्मनस्वी सुतुष्टि-  
 र्महाषड्दलस्थो महासुप्रकाशा ।  
 गलच्चन्द्रधारोऽमृतस्निग्धदेहा  
 गलत्कोटिसूर्यः प्रकाशाभिलाषा ॥ ८३ ॥  
 महाचण्डवेगी महाकुण्डधारा  
 महारुण्डखण्डो महामुण्डखण्डा ।  
 कुलालभ्रमच्चक्रसारः प्रकारा

कुलाली मलाकारचक्रप्रकारा ॥ ८४ ॥  
 कुलालक्रियावान् महाघोरखण्डा  
 कुलालक्रमज्ञो भ्रमज्ज्ञानखण्डा ।  
 प्रतिष्ठः प्रतिष्ठा प्रतीक्षः प्रतीक्षा  
 महाक्षो महाक्षा सुकालोऽतिदीक्षा ॥ ८५ ॥  
 महापञ्चमाचारतुष्टप्रविष्टो  
 महापञ्चमा प्रेमहाकान्तचेष्टा ।  
 महामत्तवेशो महासङ्गलेशा  
 सुरेशः क्षपेशा वरो दीर्घवेशा ॥ ८६ ॥  
 चरो वाक्यनिष्ठा चरश्चारुवर्णा  
 कुलाद्यः कुलाद्या यतिर्यागवाद्या ।  
 कुलोकापहन्ता महामानहन्ती  
 महाविष्णुयोगी महाविष्णुयोगा ॥ ८७ ॥  
 क्षितिचोभहन्ता क्षितिक्षुम्बवाद्या  
 महार्थी महार्थ्या धनी चौर्यकार्य्या ।  
 महारात्रिशस्त्रान्धकारप्रकाशो  
 महारात्रिशस्त्रान्धकारप्रवेशा ॥ ८८ ॥  
 महाभीमगम्भीरशब्दः प्रशब्दो  
 महाभीमगम्भीरशब्दान्तशब्दा ।  
 गुणी ज्ञानदात्री मयो यामयात्रा  
 वशी सूक्ष्मवेशा खगो नागमाता ॥ ८९ ॥  
 हिरण्वाख्यहन्ता महाशत्रुहन्ती  
 विनाशप्रियो बाणनाशप्रिया च ।  
 महाडाकिनोपी महाराकिणीशा  
 महाडाकिनीपा महाराकिणीशः ॥ ९० ॥  
 सुकुन्दो महेन्द्रा महाभद्रचन्द्रा

क्षितित्यागकर्त्ता महायोगकर्त्री ।  
 द्वितो मारुहन्त्री महेशेश इन्द्रा  
 शक्तिचोभभावाऽपहो भावगम्या ॥ ८१ ॥  
 शशीनां समूहो शशी कोटिवक्त्रा  
 कदम्बाश्रितो वारमुख्या सतीनाम् ।  
 महोक्तासदाता महाकालमाता  
 स्वयं सर्वपुत्रः स्वयं लोकपुत्री ॥ ८२ ॥  
 महापापहन्ता महाभावहार्या  
 हरिः कार्तिकी कार्तिको देवसेना ।  
 जयामो विलिप्ता कुलाप्तो गणाप्ता  
 सुधीर्व्यासभाषा क्षितीशोऽतिमाया ॥ ८३ ॥  
 भवो भावलक्ष्मीः प्रियः प्रेमसूक्ष्मा  
 जनेशो धनेशी ऋषो मानभङ्गा ।  
 कठोरोत्कटानां महाबुद्धिदाता  
 कृतिस्था गुणज्ञो गुणानन्दविज्ञा ॥ ८४ ॥  
 महाकालपूज्यो महाकालपूज्या  
 खगाख्यः खगाख्या खरो खड्गहस्ता ।  
 अथर्वोऽथर्वान्दोलितस्था प्रहासा  
 खगः क्षोभनाशा हविः कूटहाला ॥ ८५ ॥  
 महापद्ममालाघृतो गाणपत्या  
 गणस्थो गभीरा गुरुज्ञानगम्या ।  
 घटप्राणदाता निराकाररूपा  
 भयार्थो डवीजा डमारी डकर्णा ॥ ८६ ॥  
 भवो भावमाता नरो यामघाता  
 चलान्तोऽचलाख्या चलश्चल्लोका ।  
 क्लृप्तश्चलाख्या क्लृप्तश्चकारा

जयो जीवनस्था जलेशो जलेशा ॥ ९७ ॥  
जगज्जापकारी जगज्जीवनीशा  
जगत्ताणनाथो जगत्ताणनाथा ।  
भूरो भूर्भरौगा भूतत्कारशब्दो  
भूतउभाननादो भूतत्काररावा ॥ ९८ ॥  
जचैतन्यकारी जकैवल्यनारी  
टनत् टङ्कहस्ता सुघोरा प्रचण्डा ।  
ठरीशोपविष्टकृत्कारादिकोटी-  
डरो डामरा डाकिनी डोडधारा ॥ ९९ ॥  
ढमेषो हि ढक्का वरस्थानवीजो-  
णवर्णा तमालस्तनुस्थाननिष्ठा ।  
थकारार्णमाला स्थलस्थानसंस्था  
दमो दानदाया धनेशो धनाब्जा ॥ १०० ॥  
नगाभो नगाभा गभीरोऽग्रहारा  
नगेशः परः पारसीषादिपाला ।  
फलात्मा फला फाल्गुनी फेननाशा  
फणाभूषणाब्जो वशी व्यालरम्या ॥ १०१ ॥  
भगाल्मा भवस्त्री महावीजमालो  
महावीजमाला मुकुन्दः सुसूक्ष्मा ।  
यतिस्थो यशःस्था रतानन्दकर्त्ता  
रतिर्नाकिनीशो लयार्थप्रचण्डा ॥ १०२ ॥  
प्रवालाब्धिधारी प्रवालाङ्गमाला  
हलो हालहेलापङ्कः पालताला ।  
वशीन्द्रप्रकाशो वरस्थानवासा  
शिवश्रीधराङ्गः शलाका शिला च ॥ १०३ ॥  
षडाधारराशिः षडाधारविद्या

षडभोजसंस्थः षडजोपविष्टा ।  
 सदा शैलशृङ्गोपविष्टोऽपि सुस्थो  
 हयस्थी हयस्था हरो हारिणी च ॥ १०४ ॥  
 लयस्थो लिपिस्था क्षयी कुलसंख्या  
 अनन्तो निवर्णा हराकारबीजा ।  
 उरःस्थोऽप्युरस्था उर ऊर्ध्वरूपा  
 ऋचस्थो हि ऋगा लृगो दीर्घलृस्था ॥ १०५ ॥  
 सदीङ्कारवर्णः कलीङ्कारबीजा  
 सदा चन्द्रहासः सदा चन्द्रहासा ।  
 हरीन्द्रो हरीशा हरिः कृष्णरूपा  
 शिवो वेदभाषा च शौरिः प्रसन्ना ॥ १०६ ॥  
 गणाध्यक्षरूपी परानन्दहार्या  
 परेशो गणेशी रसो रासपूज्या ।  
 चकोरीगणस्थः स्वबुद्धिस्थितिस्था  
 स्वयं कामधेनुस्वरूपी विरूपा ॥ १०७ ॥  
 हिरण्यप्रभः श्रीहिरण्यप्रभाङ्गी  
 प्रभातार्कवर्णोऽरुणाकारकाङ्गी ।  
 प्रभाषादिकूटो धरासङ्गसंस्था  
 धराधारणेशः क्षमासीत्यसङ्गा ॥ १०८ ॥  
 महायज्ञसंस्थो महायज्ञनिष्ठा  
 सदा कर्मरङ्गः सदा कर्मरङ्गी ।  
 किरातीपती राकिणी कोलपुत्री  
 किशोरः किशोरी कुरुक्षेत्रकन्या ॥ १०९ ॥  
 महालाङ्गलिः श्रीबलो रामकृष्णः  
 कुलालादिविद्या भवो भावपूर्णा ।  
 महालाकिनौ क्राकिनी शाकिनीशो

महासुपकाशा परो हाकिनीशा ॥ ११० ॥  
 कुरुक्षेत्रवासी कुरुप्रेमहन्त्री  
 महाभूतिभोगी महायोगिनी च ।  
 कुलाङ्गारकारी कुलाङ्गीशकन्या  
 तृतीयस्तृतीयाऽद्वितीयोऽद्वितीया ॥ १११ ॥  
 महाकन्दवासी महानन्दवासा  
 पुरग्रामवासी महापीठदेशा ।  
 जगन्नाथवक्षःस्थलस्थो वरेण्या  
 शिवानन्दकर्ता शिवानन्दकर्त्री ॥ ११२ ॥  
 जगद्दीपकाशो जगद्दीपनी सा  
 महाकामरूपी महाकामपीठा ।  
 महाकामपीठस्थिरो भूतशुद्धि-  
 र्महाभूतशुद्धिर्महाभूतसिद्धिः ॥ ११३ ॥  
 प्रभान्तःप्रवीणा गुरुस्थो गिरिस्था  
 गलद्वारधारी महाभक्तवेशा ।  
 क्षणक्षुब्धित्तिर्निर्वृत्तान्तरात्मा  
 सदन्तर्गतस्था लयस्थानगामी ॥ ११४ ॥  
 लयानन्दकाम्यो विसर्गापवर्गो  
 विशालाक्षसर्गा कुलार्णः कुलार्णा ।  
 सदा श्यामलश्रीर्भयानन्ददाता  
 तथा त्राणगीता सदज्ञानदाता ॥ ११५ ॥  
 तरोर्मूलवासी तरुस्थापदेशा  
 सुरेशः सुरेशा सुखी खड्गिनीशा ।  
 भयत्राणकर्त्री भयज्ञानदात्री  
 जनानां मखस्थो मखानन्दमङ्गा ॥ ११६ ॥  
 महासत्पथस्थो महासत्पथज्ञा

मङ्गाविन्दुमानो मङ्गाविन्दुमाना ।  
 खगेंद्रोपविष्टो विसर्गान्तरस्था  
 विसर्गप्रविष्टो मङ्गाविन्दुनादा ॥ ११७ ॥  
 सुधानन्दभक्तः सुधानन्दभक्तिः  
 शिवानन्दसंस्थः शिवानन्दधात्री ।  
 महावाहनाह्लादकारी सुवाहा  
 गिरानन्दकारी हृदानन्तकान्तिः ॥ ११८ ॥  
 मतङ्गस्थदेवो मतङ्गाधिदेवो  
 मङ्गामत्तरूपः प्रचण्डातिभीमा ।  
 तदेको मङ्गाचक्रपाणिः प्रचण्डा-  
 खिलाप्रस्थलस्थोऽविहङ्गीशपत्नी ॥ ११९ ॥  
 शिखानन्दकर्त्ता शिखादेशवासा  
 सुशाकम्भरी वेदयोगी युगज्ञा ।  
 युगो योगकन्या शरण्य. शरण्या  
 मुनिर्ज्ञानमान्या सुधन्यः सुधन्या ॥ १२० ॥  
 शशी वेदजन्या क्षयी कालवासा  
 सकामः सकामा ह्यकामो ह्यकामा ।  
 धृतीशो धृतीशा हटो हाटकस्था  
 धनेशो धनेशा भकारोऽतितीग्मा ॥ १२१ ॥  
 चलत्खञ्जनस्थः चलत्खञ्जनस्था  
 किरातः किराती सिताङ्गः सिताङ्गी ।  
 बृहत्खेचरस्थो बृहत्खेचरी च  
 महानागराजो महानागमाला ॥ १२२ ॥  
 हकारार्द्धसंज्ञाहृतो हारमाला  
 महाकालनेमिमङ्गापार्वती च ।  
 विपद्भङ्गकारी विपद्नाशनी च

सुखानन्ददाता महादुःखहन्त्री ॥ १२३ ॥

सदा दुःखहन्ता सदा दुःखहन्त्री

प्रभातार्कवर्ण प्रभातारुणश्रीः ।

महापर्वतप्रेमभारोपपन्नो

महादेवपत्नीशभावोपपन्ना ॥ १२४ ॥

इत्येतत् कथितं नाथ ! महास्तोत्रं मनोरमम् ।

सहस्रनाम योगाङ्गेरष्टोत्तरसमन्वितम् ॥ १२५ ॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिर्वा शुचिमानसः ।

भक्त्या शान्तिमवाप्नोति अनायासेन योगिराट् ॥ १२६ ॥

प्रत्यहं ध्यानमाकृत्य त्रिसंख्यं यः पठेत् शुचिः ।

षण्मासात् प्ररमो योगी सत्यं सत्यं सुरेश्वर ! ॥ १२७ ॥

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।

अपमृत्वादिहरणं वारमिकं पठेत् यदि ॥ १२८ ॥

पठित्वा ये हि गच्छन्ति विपत्काले महानिधि ।

अनायासेन ते यान्ति महाघोरे भयार्थव ॥ १२९ ॥

अकाले यः पठेन्नित्यं सुकालस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥ १३० ॥

राजत्वहरणे चैव सुवृत्तिहरणादिके ।

मासैकपठनादेव राजत्वं स लभेत् ध्रुवम् ॥ १३१ ॥

विचरन्ति महावीराः स्वर्गं मर्त्यं रसातले ।

गणेशतुल्यबालिनो महाक्रोधाः शरीरिणः ॥ १३२ ॥

एतत् स्तोत्रप्रसादेन जीवन्मुक्ता महीतले ।

महानामस्तोत्रसारं धर्माधर्मनिरूपणम् ॥ १३३ ॥

अकस्मात् सिद्धिदं कार्श्यं तथा परमसिद्धिदम् ।

महाकुलकुण्डलिन्या भवान्याः साधने शुभे ॥ १३४ ॥

अभेद्यभेदेन चैव महापातकनाशने ।

महाघोरतराकारे पठित्वा सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १३५ ॥



अट्चक्रस्तम्भनं नाथ ! प्रत्यहं यः करोति हि ।  
 मनोगतिस्तस्य हस्ते स शिवो न तु मानुषः ॥ १३६ ॥  
 योगाभ्यासं यः करोति न स्तवः पठ्यते यदि ।  
 योगभ्रष्टो भवेत् क्षिप्रं कुलाचारविलङ्घनात् ॥ १३७ ॥  
 कुलीनाय प्रदातव्यः स्तव एष कुलेश्वर ! ।  
 कुलाचारं समाकृत्य ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ॥  
 योगिनः प्रभवन्त्येव स्तोत्रपाठात् सदाऽमराः ॥ १३८ ॥

इति श्रीकद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीद्वीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्चक्रप्रकाशे  
 कृष्ण-राक्षसीलासे भैरव-भैरवीसंवादे अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्रं नाम  
 द्विचत्वारिंशः पटलः ॥ ४२ ॥

## द्विचत्वारिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

वद क्रान्ते ! रहस्यं मे मया सर्वञ्च विस्मृतम् ।  
 महाविषं कालकूटं पीत्वा देवादिरक्षणात् ॥ १ ॥  
 काण्ठस्था देवतः सर्वा भस्मीभूताः सुषमृताः ।  
 महाविषज्वालया च मम देहस्थदेवताः ॥ २ ॥  
 कैवल्यनिरताः सर्वे प्रार्थयन्ते निरन्तरम् ।  
 षट्चक्रपीदकथनममृततन्त्रव्यादिकम् ॥ ३ ॥  
 कथित्वा मम सन्तोषं कुरु कल्याणि ! वक्तुमे ! ।  
 अमृतानन्दजलधौ सुधाभिषिक्तविग्रहम् ॥  
 कृत्वा कथय शीघ्रं मे चायुषं परिवर्द्धय ॥ ४ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

निगूढार्थं महाकाल ! कालेश ! जगदीश्वर ! ।  
 भैरवानन्दनिक्षय ! कालकूटनिषेवण ! ॥ ५ ॥

सदान्तर्दत्तध्यानविषयपरां हारसुभगां  
कुलचेत्रोत्पन्नां चरमपददां दीपकलिकाम् ।  
सदानन्दाकारां गतिगुणहरां चारुकिरणां  
महारौप्यादिस्थां सकलकरुणां भावयति कः ? ॥ २६ ॥  
प्रतीज्ञानन्दां विप्रगतचरणां कोटिविधुगां  
वियद्वर्णां स्वस्थां निखिलवसुपूजाविधरताम् ।  
महासूक्ष्महारप्रवलनपरां भेदनकरीं  
दिवायोगाह्लादप्रियजनशिवां भावयति कः ? ॥ २७ ॥  
अयोध्यापीठस्थामरुणरमणीं प्रेमगलितां  
महारौद्रीं भीमां शतशतरविप्रेमनिकराम् ।  
महादुःखार्णान्तां नयनसुभगां भावविरहां  
सतां शीतामिन्द्रोत्सवनवघटां भावयति कः ? ॥ २८ ॥  
सुधाञ्जराह्लादप्रकरणसुरां सौरभकरां  
क्रियारूपां योग्यां भुवनमणिपूरप्रकृतिगाम् ।  
गुरोः स्थाबोदयोगां शमनदमनां शीतलकरां  
त्रितत्त्वां तत्त्वज्ञां समरहरशक्तिं भजति कः ? ॥ २९ ॥  
विकाराधाराङ्गीं तरुणरविकोटीश्रियमितां  
कुलाधारां सारां परमरसधारां जयधराम् ।  
कृपाच्छुब्दां मग्नां परमरसभाण्डेषु शुभदां  
भवोद्भद्रामाद्यां शशिमुखकराह्लादनिकराम् ॥ ३० ॥  
रसाञ्जो विश्रान्तिं कुपितजनशान्तिं सकरुणां  
त्रिलोकज्ञानस्था मदननिलयां योगनिकराम् ।  
मणिद्वीपच्छायां दशदलकृत्वा केवलभवां  
भवानीं रुद्राणीं वरदमणिपूरे भजति कः ? ॥ ३१ ॥  
कृपाधारां दौर्घां मनुगतसुतां मौननमितां  
श्रिवाङ्गां मूलस्थां सकलमणिपूरस्थसुभवाम् ।

द्विरस्याक्षीं सूक्ष्मां क्षयकरणराशौ स्थितिकरीं  
 विनोदीं पञ्चास्यप्रियगुणधरां भावयति कः ? ॥ ३२ ॥  
 महापद्माठव्यां सकलधनदानाकुलचलां  
 चलानन्दोद्रेकप्रचयरससिन्धुवृद्धिदि ।  
 हृदानन्दो ध्यायेत् सकलगुणदात्रीं सुखमयीं  
 कलां सूक्ष्मात्थन्तां तिमिरदहनां कीटिधनदाम् ॥ ३३ ॥  
 दशकं यः पठेन्नित्यं श्रीविद्यासुखदायिनीम् ।  
 ध्यात्वा हृदयपद्माधो निमलात्मा सदा भवेत् ॥ ३४ ॥  
 मणिपूरस्थितं देवं रुद्रं पश्यति योगिराट् ।  
 रुद्राणोसहितं शम्भुं दृष्ट्वा मुक्तो भवेत् क्षणात् ॥ ३५ ॥  
 जीवन्मुक्तः स एवात्मा योगिनीवल्लभो भवेत् ।  
 योगात्मा परमात्मा च स हि साक्षादनीश्वरः ॥ ३६ ॥  
 स भित्त्वा मणिपूराङ्गं निर्मलं ज्योतिरुज्ज्वलम् ।  
 शम्भोरौश्वरयोगज्ञ-क्रियानाथस्य श्रोतः ॥  
 निकटे याति द्रव्याश्च स्थाने योगी न संशयः ॥ ३७ ॥  
 इति श्रीरुद्रयामल उत्तरतन्त्र महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्चक्रप्रकाशे  
 मणिपूरभेदने भैरवो-भैरवसंवादे वितत्त्वालाङ्घिनोन्नक्तिस्तवनं  
 नाम षष्ठचत्वारिंशः पटलः ॥ ४५ ॥

### षट्चत्वारिंशः पटलः ।

आतन्दभैरव्युवाच ।—

क्रियाकालादिकथनम् ।—

अथ कालज्ञानं वक्ष्ये यत्काले योगिराड् भवेत् ।  
 तत्काले प्राणवायूनां निलयं सूक्ष्मसञ्चयम् ॥ १ ॥  
 पुनः पुनः सञ्चयेन हृदो भवति साधकः ।  
 क्रियाया अञ्चरन्त्येव योगिन्त्यो योगमातरः ॥ २ ॥

तत्काले तत्र कर्त्तव्यं तन्निरूप्य कुलार्णव ! ।  
 काले काले राशयोऽति-परमार्था निराशयाः ॥ ३ ॥  
 विना प्रयोगसारेण विना जाप्येन शङ्कर ! ।  
 कः सिद्धो जायते ज्ञानी योगी भवन्ति कुत्र वा ? ॥ ४ ॥  
 अभ्यासमन्त्रयोगिन शनैर्योगी भवेन्नरः ।  
 प्रभाते ज्ञानशी चञ्च कुण्डलीभावनादिकम् ॥ ५ ॥  
 तन्मध्ये चापि सङ्कुर्यात् योगं पञ्चाऽऽमवाटिकम् ।  
 ततो मन्त्रज्ञानकार्यं मस्तके जलसेचनम् ॥ ६ ॥  
 सन्ध्यावन्दनकार्यञ्च ततः कुर्यात् पृथक् पृथक् ।  
 तत उत्थाय सङ्गमौ ऊर्ध्वं कौमलजासने ॥ ७ ॥  
 उपविश्य सदाभ्यासी शुद्धकायासनं चरेत् ।  
 तत्कार्यसमये नाथ ! ध्यानं चैतन्यमेव च ॥ ८ ॥  
 कुण्डलिन्यां सदा कुर्यात्तन्मध्ये जपमेव च ।  
 आसनं सुन्दरं कुर्यात् सन्ध्यासव्यविभेदतः ॥ ९ ॥  
 आसनादिकमाकृत्य चोर्ध्वं पद्मासनं चरेत् ।  
 मस्तकाधः केशमध्ये हस्ती दत्त्वा मनुं जपेत् ॥ १० ॥  
 चतुरशीतित्रिगुणमासनं भञ्जनं तथा ।  
 प्रत्यासनं क्रमेणैव एतेषां द्विगुणं पुनः ॥ ११ ॥  
 एतेषामासनादीनां वक्तव्याः संख्यकाः पुनः ।  
 अष्टाङ्गसाधने नाथ ! कर्त्तव्यं सर्वमासनम् ॥ १२ ॥  
 प्राणायामं षोडशकं तथा वा द्वादशादिकम् ।  
 स्वकर्णागोचरं कृत्वा पिबेद्वायं सदा बुधः ॥ १३ ॥  
 ततः समाप्य तत्कार्यं मन्त्रयोग समभ्यसेत् ।  
 समाप्य मन्त्रयोगञ्च प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ १४ ॥  
 तत उत्थाय नद्यादिं विलीक्य चान्तरात्मनि ।  
 ज्ञानं कृत्वा महायोगी मानसादिक्रमेण तु ॥ १५ ॥

तत्रैव मानसं जापं समाप्य जपमैत्र च ।  
 एवं प्राणायामकार्यं कृत्वा तीरे विशेत् सुधीः ॥ १६ ॥  
 पिषाय पीतवसनं धर्माधर्मं विचिन्तयेत् ।  
 ततः सन्ध्यावन्दनञ्च कृत्वा पूजाविधिं चरेत् ॥ १७ ॥  
 सर्वत्र कुम्भकं कृत्वा भावयित्वा पुनः पुनः ।  
 मणिपुरे मन्त्रापौठे ध्यात्वा देवीं कुलेश्वरीम् ॥ १८ ॥  
 पूजयित्वा विधानेन प्राणायामं पुनश्चरेत् ।  
 ततः कुर्यात् साधकेन्द्री विधिना कवचं स्तवम् ॥ १९ ॥  
 सर्वत्र प्राणसंयोगात् योगी भवति निश्चितम् ।  
 अथवा कालजालानां वारणाय महाऋषिः ॥ २० ॥  
 एतत्कार्यं समाकुर्यात् योगनिर्णयसिद्धये ।  
 विना योगप्रसादेन स कालस्य वशो भवेत् ॥ २१ ॥  
 कालेन योगमाप्नोति योगाधीनं स्वकालकम् ।  
 योगाधीनं परं ब्रह्म योगाधीनं परं तपः ॥ २२ ॥  
 योगाधीना सर्वसिद्धिस्तस्मात् योगं समाश्रयेत् ।  
 योगेन ज्ञानमाप्नोति ज्ञानान्धो वमशाप्नुयात् ॥ २३ ॥  
 तत्कर्म शृणु भूचक्रे सर्वसिद्ध्यादिसाधनम् ।  
 सिद्धिसाधनमात्रेण योगी भवति भूपतिः ॥ २४ ॥  
 शीघ्रं राजा भवेद्योगी शीघ्रं योगी भवेत् यतिः ।  
 शीघ्रं योगी भवेद् विप्रो यदि स्वधर्ममाश्रयेत् ॥ २५ ॥  
 स्वधर्मनिष्ठताज्ञानं स्वज्ञानं परमात्मनः ।  
 तज्ज्ञानेन लभेत् योगं योगाधीनाश्च सिद्धयः ॥ २६ ॥  
 सिद्धाधीनं परं ब्रह्म तस्मात् योगं समाश्रयेत् ।  
 स्वधर्मनिष्ठताज्ञानं सत्यज्ञानं समाश्रयेत् ॥ २७ ॥  
 योगयोगाद्भवेन्नोक्तो मम तन्कार्यनिर्णयः ।  
 योगी ब्रह्माद्यवादी च तथा योगी महेश्वरः ॥ २८ ॥

तथा योगी भवेत् कौलः कौलो योगी न संशयः ।  
 मणिपूरभेदने तु यत्नं कुर्यात् सदा बुधः ॥ २८ ॥  
 यदि चेन्मणिपूरस्थ-देवताभेदको भवेत् ।  
 सर्वक्षणं सुखी भूत्वा चिरं तिष्ठति निश्चितम् ॥ ३० ॥  
 महाप्रभं सुन्दरञ्च महामोहविघातनम् ।  
 शेषामं विद्युदाभञ्च पूर्णतैजोमयं परम् ॥ ३१ ॥  
 मणिभिर्ग्रथितं पद्मं मणौनां चयमेव च ।  
 सूर्यकान्तैश्चन्द्रकान्तैर्महानौलैर्महोज्ज्वलैः ॥ ३२ ॥  
 इत्यादि मणिभिः सर्वं परं कान्तिगुणोदयम् ।  
 निविडे जलदे शेषे कीटिविद्युत्प्रभा यथा ॥ ३३ ॥  
 तत्प्रकारं भावनीयं सिद्धानां ज्ञानगोचरम् ।  
 अत्यन्तसूक्ष्ममार्गस्थं नित्यस्थानं हि योगिनाम् ॥ ३४ ॥

मणिपूरचक्रसाधनम् ।—

मणिभिः शोभितं पद्मं मणिपूरं तथोच्यते ।  
 दशकोमलपत्रैश्च समायुक्तं मनोहरम् ॥ ३५ ॥  
 डादिफान्तवर्णयुक्तं स्थिरविद्युत्प्रमाकुलम् ।  
 शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकाकारकम् ॥ ३६ ॥  
 आदौ वर्णरूपकाणां ध्यानं कुर्यात् स्वधामयः ।  
 महापद्मे मनो दत्त्वा निर्मलं परिभावयेत् ॥ ३७ ॥  
 डादिभान्ताक्षराणाञ्च ध्यानात् ज्ञानस्थिरी भवेत् ।  
 चित्तस्थैर्यमुपागम्य दिव्यभक्तिं समालभेत् ॥ ३८ ॥  
 वर्णध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व परमेश्वर ! ।  
 यद्विभाव्याऽमरो भूत्वा चिरं तिष्ठति मानवः ॥ ३९ ॥  
 महाधैर्यक्रियां कुर्याद्वायुपानं शनैः शनैः  
 यत्र यत्र मनो याति तन्मयस्तरक्षणाद्भवेत् ॥  
 पूर्वादिदलमारभ्य ध्यानं कुर्यात् पृथक् पृथक् ॥ ४० ॥

डां डां डां डाकिनीं तां डमरुवरकरां तारिणीं ताररूपां  
 डिं डिं डिं डामरस्थां डमरुडमगृहे डङ्गडिङ्गीं मनुस्थाम् ।  
 डं डं डं डामरेशीं डिमि डिमि डिमगध्वाननिर्माणडोरां  
 डों डों डों डाकडं डः प्रडुमडमुडां दाङ्गिमामाश्रयामि ॥ ४१ ॥  
 ढां ढां ढां गाढढक्का वरकरसुकराषाढमाषाढमन्त्रां  
 चिं चिं चिं नागरूपां भज भज विमलानन्दचित्तप्रकाशाम् ।  
 श्रीं ढें ढें वज्रढां स्वाखवटसङ्गणां स्वाहृयाचीं च वीजाम्  
 ढों ढों ढों ढक्कढाकां प्रियढलकरूपाकामिनीं लाकिनीं ताम् ॥ ४२ ॥

तारातारकमन्त्रजालविमलां तालादिसिद्धिप्रदां  
 तातङ्गानिभतेजसां मुनिमनोयोगं वदन्तीं पराम् ।  
 तार्त्तीयं तुलसीं तुलां तनुतंटां तर्कीङ्गवां तान्त्रिकां  
 श्रीसूर्यायुततेजसीं भज मनः श्रीमातरं तापसीम् ॥ ४३ ॥

व्यग्रस्थां स्थानसुस्थां स्थितिपथपथिकां धारणकूटां यमानीं  
 गाथां गाथां विमोक्षां यमिति यमिति थं वङ्गजायां स्थिराशाम् ।  
 चन्द्रज्योत्स्नास्थलस्थां स्थिरपदमथनामुज्ज्वलामासनस्थां  
 स्थेयां स्थैर्याभिरामां प्रणवनवसुधां चन्द्रवर्णां भजामि ॥ ४४ ॥  
 द्रां द्रीं द्रूं दीर्वदं द्रां दशनभयकरां साट्टहासां कुलेशीं  
 दं दं दं वङ्गिकान्तां दरदलितकराङ्गाददीर्घां दवाद्याम् ।  
 दोषैर्व्रापहन्तीं दिविदरणदशादायिनौमादरास्थां  
 शिष्टाङ्गादप्रदीप्तामखिलधनमदां दीपनीं भावयामि ॥ ४५ ॥  
 धन्तां श्रीश्रानसिद्धां धरणिधरधरां धूमधूमावतीं तां  
 धुस्तूराकारवस्त्रां कुवलयधरणीं धारयन्तीं कराजम् ।  
 विद्युन्मध्यार्ककोटिज्वलनधरसुधां कोकिलाचीं सुसूक्ष्मां  
 ध्यानाङ्गादादिसिद्धिं धवनधननिधिं सिद्धिविद्यां भजामि ॥ ४६ ॥  
 नित्यां नित्यपरायणां त्रिनयनां बन्धूकपुष्पोज्ज्वलां  
 कोव्यर्कायुतसंस्थिरां नवनवां हस्तद्वयाभोरुहाम् ।

नानालक्षणधारणामलविधु-श्रीकोटिराशमस्थिताम्  
 सानन्दां नगनन्दिनीं त्रिगुणगां नं नं प्रभां भावयेत् ॥ ४७ ॥  
 प्रीतिं प्रेममयीं परात्परतरां प्रेष्ठप्रभापूरितां  
 पूर्णां पूर्णगुणोपरि प्रलपनां मांसप्रियां पञ्चमाम् ।  
 व्यापारोपनिपातकापलपनां पानाय पीयूषणं  
 चित्तप्रापकपीतकान्तवसनां पौराणिकीं पार्वतीम् ॥ ४८ ॥  
 स्के स्के स्के फणिवहनां फणफणां फुल्लारविन्दाननां  
 फेरुणां वरघोरनादविकटास्फालप्रफुल्लाननाम् ।  
 फं फं फं फणिकङ्कणं फडिति वा मन्त्रैकमिद्वेः फणां  
 भक्त्या ध्यानमहं करोमि नियतं वाञ्छामफलप्राप्तये ॥ ४९ ॥  
 विद्युतां कारमध्ये तु विजुलीरक्तवर्णकान् ।  
 एवं ध्यायन् दश वर्षान् रक्तविद्युद्गणोद्यतान् ॥ ५० ॥  
 सदा ध्यायेत् कुण्डलिनीं कणिकामध्यकाशिनीम् ।  
 बहुहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवलक्षणां ॥ ५१ ॥  
 चारुचल(न्द)नदीर्घाङ्गीं फणिहारविभूषणाम् ।  
 द्विभुजां कोटिकिरणां भालसिन्दूरशोभिताम् ॥ ५२ ॥  
 त्रिनेत्रां कालरूपस्थां लाकिनीं लयकारिणीम् ।  
 सिद्धिमार्गसाधनाय ध्यायेद्वर्णान् दश क्रमात् ॥ ५३ ॥  
 चतुर्भुजां षड्भुजाञ्च अष्टहस्तां प्रभापराम् ।  
 दुर्गां दशभुजां देवीं निजवाहनसुस्थिताम् ॥ ५४ ॥  
 सर्वास्त्रधारिणीं सर्वां दशहस्तास्त्रशोभिताम् ।  
 चतुर्दशभुजां रौद्रीं तथा षोडशशा(पा)लिनीम् ॥ ५५ ॥  
 अष्टादशभुजां श्यामां हस्ताविंशतिधारिणीम् ।  
 एवं ध्यात्वा पूजयित्वा रुद्राणोस्तोत्रमापठेत् ॥ ५६ ॥  
 इति श्रीरुद्रयामले उत्तरान्ते महातन्त्रोद्दीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्याये भैरवी-  
 भैरव-संवादे मणिपूरषक्तसाधनं नाम षट्चत्वारिंशः पटलः ॥ ४६ ॥



## सप्तचत्वारिंशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

शृणु भैरव ! वक्ष्यामि रुद्राणीस्तोत्रमुत्तमम् ।  
 श्रुत्वा पठित्वा देवेश ! धारयित्वा सदेहके ॥ १ ॥  
 महासिद्धो भवेदेव महाकालावशो भवेत् ।  
 त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा विष्णुना कृतम् ॥ २ ॥  
 रुद्रयुक्तां महारौद्रीं श्रुत्वा सर्वजयी भवेत् ।  
 तत् श्रुत्वा मुनयः सर्वे योगिनो योगदर्शकाः ॥ ३ ॥  
 सर्वे देवाः सर्वलोकाऽधिपाः स्युः प्राणरक्षकाः ।  
 एतत्स्तवनमात्रेण ब्रह्मा ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ४ ॥  
 विष्णुविष्णुत्वमाप्नोति देवत्वं सर्वदेवताः ।  
 इदानीं शृणु तत्स्तोत्रमष्टाङ्गयोगसाधनम् ॥ ५ ॥  
 एतत्स्तोत्रस्यपाठेन चाष्टाङ्गकुलदेवताः ।  
 वशीभूता भवन्त्येव सप्तस्वर्गस्थदेवताः ॥ ६ ॥

रुद्राणीस्तोत्रम् ।—

अथ महारुद्रशक्तिस्तोत्रस्य महकालभैरवऋषिरनुष्टुप्  
 छन्दः श्रीरुद्ररूपिणी देवता वां वीजं द्रां शक्तिः स्फे स्फे  
 कीलकं महोग्रा देवता सर्वाभीष्टसिद्धार्थं जपे विनियोगः ।

महारौद्री रुद्राक्षववरवरक्रोधनिकरा  
 विकारा धर्माणां हरतु विषयं देहि परमम् ।  
 विवेकं सत्पुत्रं त्वमपि जगतामादिपुरुषा  
 विभाकीटिग्रामस्त्रलननिचला चालनचला ॥ ७ ॥  
 त्वमेका त्रैलोक्यं चरसि सततं मे शुभभवा  
 अनन्ता सा चातीन्द्रियगणधना नागवसना ।  
 श्रियं दातुं नित्यं विचलति रश्मिस्तव शिवे !  
 शिवाह्लादानन्दा जडिततममङ्गं कुरु मुदा ॥ ८ ॥

महालीभं पायं हर हर हरे हौरकनिभे !  
विषानन्दीद्वाता मम तनुरियं वेगवशिनि ! ।  
सुधानन्दं देहि क्षयमपि हर क्रोधमतुलं  
यदा कामं मोहं कुलजननि ! दिव्यं त्रितर तत् ॥९॥  
तपस्या सद्भावं त्वमपि च ददामीह यदि वा  
प्रदीप्ता मद्गता भवति तव दाने मम मनः ।  
प्रफुल्लशिखीदे जय मम नु भक्तिं निजशुभां  
समीडे त्वामेकां भुवनजनरत्नां कुरु सदा ॥१०॥  
विचार्य स्वे तन्दे रवयसि सुखं नित्यमिलितं  
महाखड्गमय्या त्रिभुवनकरा रुद्रदयिता ।  
सुराणां संरक्षां यदि कुरु मुदा पीठनिकरे  
मण्डिपी तेजोमयि हि मणिपूरिमलपदम् ॥ ११ ॥  
महाक्षेत्रे युद्धोत्सवभयहरा त्वं कुलकला  
किराती सर्वाणो मम कुलगतं पालय स्वये ।  
लयज्ञानानन्दं रचय हृदये योगजननि !  
यतीनां रक्षायै कुलयुवति विद्ये ! त्वमपि हि ॥ १२ ॥  
प्रतिष्ठा कीर्त्तस्ते त्वमवतममि त्रासि तिमिरात्  
न जाने त्वत्तत्त्वं तरुणि ! महिमानं सुखमयम् ।  
महापारावारां निधिभवजलेषु कुरु जयं  
हिरण्यह्लादस्था त्वमसि कर्तुणासागरमयि ! ॥ १३ ॥  
विधातारं विष्णुं सुरचरणवन्दिन् परजनान्  
प्रपासि त्वं निहा सुखभुवनभङ्गक्षयकरी ।  
किरन्ती सानन्दा किरणशतकोटिं त्रिभुवने  
त्वमेका कल्याणो गिरिशरमणि ! पाहि सततम् ॥१४॥  
त्वदीयं सुखान्तं समिच्छामि सत्यं  
विषर्गेन्दुवर्णात्मकं कामनाख्यम् ।

कृपादृष्टिपातासनं पाहि शुद्धा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १५ ॥  
 जगत्तारिणी त्वं जगद्गपिनी त्वं  
 जगज्जालरूपा जगद्धर्मरूपा ।  
 अनैकान्तिकत्वस्त्वमानन्दरूपा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १६ ॥  
 विधानं जनानां कुरु त्वं त्वभीशा  
 क्षपाक्षामचित्ता प्रियानन्ददात्री ।  
 त्वमाज्ञाम्बुजस्था त्वमार्या गुरुणां  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १७ ॥  
 प्रभामण्डलस्था स्थितित्यागसंस्था  
 स्थलाभोजमाहादया लग्नकरुठा ।  
 शिवश्यामवर्णा महापिङ्गलाणां  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १८ ॥  
 चतुर्थश्रुतिस्था चलच्चन्द्रसंस्था  
 महावेदभाषा त्वमेका जगत्याम् ।  
 महाभाक्तभावाश्रितं मां पाहि  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १९ ॥  
 जगद्धामचेष्टा जगद्बुद्धिनिष्ठा ।  
 जगद्दुःखीवनस्था जगद्भावस्थ्या ।  
 समावर्त्तमध्ये महाघूर्णितं मां  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २० ॥  
 महादृष्टिसंहारकालक्रमस्था  
 महामांसभक्ता सदानन्दरूपा ।  
 महाशाक्यभौतीन्द्रपूज्ये सुरेज्ये  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २१ ॥

चतुःषष्टितन्त्रार्णवाद्वाद्वादकत्वात्  
 महाभौतिकत्वान्महासिद्धविद्या ।  
 कुलाच्छुद्धदेहा कुलानन्दसंज्ञा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २२ ॥  
 शिवत्वं महत्त्वं मयत्वामयत्वात्  
 अनेकान्तिकत्वं ददासि त्वमाद्या ।  
 सुधासागरस्था महामोहनस्था  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २३ ॥  
 महासिंहपृष्ठे पदाभोजलक्ष्मि-  
 मंम श्रीशिरोमण्डलस्था प्रपातु ।  
 भवानन्दसन्तानकल्पे वदेऽहं  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २४ ॥  
 स्थिरा सा महाविद्युदाकारहारा  
 महच्चक्षुला चावला ज्ञानजन्या ।  
 सदा भावनत्वात् सदा ज्ञानसंस्था  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २५ ॥  
 कुलानन्दमोहा महाकीलकन्या  
 कुलचेतरक्षा कुलच्छत्रकारा ।  
 महच्चक्षुलत्वान्महावायुपूर्णा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २६ ॥  
 चिरं जीविनी भामिनी भूमिवीजा-  
 ऽभयाऽभावहन्त्री शरत्कोटिचन्द्रा ।  
 विभूतिर्भवानन्दकर्त्री प्रकृष्टा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २७ ॥  
 महावीरभावाश्रया भावरूपा  
 विशेषाविशेषे महाशिषवीरा ।

विसर्गापवर्गाश्रयाणोज्ज्वलत्वात्  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २८ ॥  
 महापञ्चमत्वान्महामोदकत्वात्  
 महाकीलिकत्वादसञ्चारणत्वात् ।  
 कुलप्रेमभावक्रियानिश्रलत्वात्  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २९ ॥  
 रसा निःस्रशक्ती शिवानन्दकर्त्री  
 महामैथुनानन्दसम्भेदनत्वात् ।  
 सुखाश्चामतस्वत्तपःप्राणरक्षा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ३० ॥  
 गलत्प्रेमभावा कुलघ्नानतत्त्वात्  
 प्रिया श्रोः कृपा त्वं भवाधारमुक्ताः ।  
 महैखर्ष्यहेतोर्महाराजकन्या  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ३१ ॥  
 महामोक्षविद्या महानिर्मलत्वात्  
 प्रभा पञ्चभूतस्य सिद्धिप्रिया च ।  
 महानाद्विन्दुप्रयात्राभिरामा  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ३२ ॥  
 महादिद्रुमाकारवर्णाभिरामा  
 कुलान्नादसूत्राटिसंसाधनत्वात् ।  
 महद्राज्यविद्याधनैः संहितत्वात्  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ३३ ॥  
 शिवत्वं शुभत्वं महाशैलकन्ये !  
 प्रियत्वं परत्वं महापावनत्वम् ।  
 समाधेहि तत्त्वादनैकान्तकत्वात्  
 त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ३४ ॥

अथवाऽष्टोत्तरशतं जम्बा समर्पणं चरेत् ॥ १०१ ॥  
 प्राणायामत्रयं कुर्यान्नृजमन्त्रस्य सिद्धये ।  
 ततः प्राणाममाकुर्यात् शक्तिचैतन्यहेतुना ॥ १०२ ॥  
 “नमो रुद्राय देवाय कोटिसूर्य्यन्दुमूर्त्तये ।  
 सर्वाथ ज्ञानदात्रे च नमस्ते शूलधारिणे ॥ १०३ ॥  
 नमस्ते कालरुद्राय कालाय वेदरूपिणे ।  
 वेदमार्गदर्शकाय शत्रुसंक्षयकारिणे ॥ १०४ ॥  
 रुद्राय शक्तियुक्ताय शङ्कराय नमो नमः ।  
 चतुर्भुजाय देवाय महाकाशस्वरूपिणे ॥ १०५ ॥  
 वरपद्मशूलखड्गधारिणे च नमो नमः ।”  
 रुद्रशक्त्यर्चनं कृत्वा महारुद्रेण संयुतम् ॥  
 मणिपूरे दृढो याति सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! ॥ १०६ ॥  
 शक्त्यर्चनविधिं वक्ष्ये मूलमन्त्रेण पूजनम् ।  
 सर्वत्र कारयेन्मन्त्रौ अष्टैश्वर्य्यजयाय च ॥ १०७ ॥

ऋष्यादिन्यासः ।—

आदौ ऋषिन्यासकार्यं वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ १०८ ॥  
 शिरसौह रुद्रशक्तिर्महाविष्णुपदं ततः ।  
 ऋषये नम उच्चार्य्य मुखे हस्तं नियोजयेत् ॥ १०९ ॥  
 पंक्तिछन्दसे नमश्च हृदि हस्तं नियोजयेत् ।  
 महारुद्रापीति पदं लाङ्कनी-पदमेव च ॥ ११० ॥  
 त्रिशक्त्यन्ते महाविद्या-देवतायै नमस्ततः ।  
 गुह्ये ओं पदमुच्चार्य्य निजवीजाय ते नमः ॥ १११ ॥  
 सर्वाङ्गे सकलायैव वज्राय कौलकाय च ।  
 नमः पदं समुच्चार्य्य ऋष्यादिन्यासमेव च ॥ ११२ ॥  
 रुद्रवत् सकलं कार्य्यं कराङ्गन्यासकर्मणि ।  
 आदावङ्गादिकन्यासः करशुद्धिस्ततः परम् ॥ ११३ ॥

भङ्गुनीव्यापकन्यासो हृदादिन्यास एव च ।

रुद्रशक्तिमहाषोढा-न्यासञ्च तदनन्तरम् ॥ ११४ ॥

मन्त्रन्यासं ततः कृत्वा व्यापकन्यासमाचरेत् ।

तालत्रयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् ॥

ध्यानं कुर्याद्विशेषेण रुद्रशक्त्या महाप्रभो ! ॥ ११५ ॥

रुद्राणीं रुद्रकान्तां नवरसजडितां कुङ्कुमासक्तगात्रां

लोकेशीं षड्भुजान्तां त्रिभुवनमहितां कोटिमौढामनीसाम् ।

पद्मस्थां पद्महस्तामभयवरकरां खड्गशक्तिं दधानां

ध्यायेद्द्रीद्रीं त्रिनेत्रां शरदमलशशिञ्जेणिभूषाऽमलाङ्गीम् ॥ ११६ ॥

रुद्रवत् पूजनं कार्यं रुद्रशक्त्या च शङ्कर ! ।

दशोपचारैः पूजा वा तथा पञ्चोपचारकैः ॥

अष्टादशोपचारैर्वा षोडशाद्युपचारकैः ॥ ११७ ॥

अलाभे तु प्रकृतं च मानसेन निवेदयेत् ।

सर्वत्र मानसं कार्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ११८ ॥

पूजां समाप्य विधिना जलं दत्त्वा जपादिके ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा जह्याऽष्टोत्तरकं शतम् ॥ ११९ ॥

सहस्रं वा सुहृजंश्चा अष्टोत्तरसमान्वतम् ।

जपं समापयेद्विद्वान् गुह्यातिगुह्यमन्त्रकैः ॥

प्राणायामत्रयं पश्चात् कुर्यात् साधकसत्तमः ॥ १२० ॥

बन्दनं भक्तियुक्तेन कुर्याद्दोगादिसिद्धये ।

महागौत्रेण नमस्तेऽस्तु न्नाकिन्यै च नमो नमः ॥ १२१ ॥

शान्त्यै तुष्ये नमो नित्यं अद्यायै ते नमो नमः ।

रुद्रशक्त्यै नमो नित्यं मणिधूरानवासिनि ! ॥ १२२ ॥

अष्टसिद्धिं योगसिद्धिं देहि तस्यै नमो नमः ।

सर्वग्रन्थकेदिकायै परब्रह्मस्वरूपिणि ! ॥ १२३ ॥

मां रक्ष प्रालय त्वं हि मांशुपूरे नमो नमः ।

प्रणस्य विधानानेन पूजासमापनं चरेत् ॥ १२४ ॥

पुनस्तत्र पूजयेद्देवैः प्रासादाख्यं महाप्रभुम् ।

तथा मृत्युञ्जयं देवं मणिपुरे प्रपूजयेत् ॥ १२५ ॥

श्रीकण्ठन्यासः ।—

प्रासाधामादिकं कृत्वा श्रीकण्ठन्यासमाचरेत् ।

पूर्णादिव्यादिसहितं कृत्वा पौठं न्यसेत् सुधीः ॥ १२६ ॥

पौठमनुं प्रविन्यस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ।

ऋषिरस्य वामदेवः पंक्तिच्छन्द उदीरितम् ॥ १२७ ॥

सदाशिवो देवता च अङ्गुलीन्यासमाचरेत् ।

(हां) अङ्गुष्ठाभ्यां नमः षष्ठात् ह्रीं तर्जनीपदं ततः ॥ १२८ ॥

भ्यां नमः षट्मन्ते च षड्दोर्घभाग्भिरन्वितम् ।

एवं करन्यासकार्यं विधानेन समाचरेत् ॥ १२९ ॥

शूद्रस्तु एतत्पर्यन्तं कार्यं होमादिकञ्च यत् ।

न कुर्यात् परंतीनाथ ! तथा स्त्रीजन इत्यपि ॥ १३० ॥

यदि ज्ञानी भवेदेव स देवो न तु मानुषः ।

षण्डाद्यादिनोचजातो स्थिरो वा ब्राह्मणोत्तमः ॥ १३१ ॥

ज्ञानवान् वादसंवाद-वर्जितो न्यासमाचरेत् ।

न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥ १३२ ॥

स एव ज्ञानो परमो वेदशास्त्रविशारदः ।

न्यासपूजादिकं तस्य सर्वदा नात्र संशयः ॥ १३३ ॥

यावद्देहे ह्यहं-बुद्धिस्तावत्परमधारकः ।

तद्वर्जितो मृत्युजेता न्यासपूजादिकं कृतम् ॥ १३४ ॥

षड्दोर्घभाजा वीजेन हकारेण सविन्दुना ।

करयोरङ्गुलीदिग्धं विन्यसेत् संक्रमेण तु ॥ १३५ ॥

पञ्चमूर्तिन्यासः ।—

ईशाद्याः पञ्चमूर्तीश्च विन्यसेत् साधकोत्तमः ।



षड्दीर्घभाजा वीजेन हकारेण सविन्दुना ॥ १२६ ॥  
 तत्पुरुषमघोरञ्च वामदेवं ततः परम् ।  
 सद्योजातं क्रमेणैव अङ्गुली द्वे परस्परम् ॥ १२७ ॥  
 विन्यसेत् साधकश्रेष्ठो नमोऽन्तं परमेश्वर ! ।  
 शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु विन्यसेत् सुधीः ॥ १२८ ॥  
 पञ्चमूर्तीर्न्यसेन्नाथ ! तत्प्रकारं प्रशस्य च ।  
 ईशानादिस्त्रिवीजस्य-प्रकारेण प्रविन्यसेत् ॥ १२९ ॥  
 शूद्रः कुर्याद्यासजालमेतत्पद्मान्तमेव हि ।  
 तत ऊर्ध्वं प्रदक्षिण्य-पश्चिमोत्तरसंमुखे ॥ १३० ॥

कलान्यासः ।—

ईशानस्य पञ्चकला नित्यं ऋग्वेदसंयुताः ।  
 पञ्चपादादिका नाथ ! प्रणवादिनमोऽन्तिकाः ॥ १३१ ॥  
 ईशानः सर्वावद्यानां श्रीं शशिन्यै ततः परम् ।  
 कलायै नम एवापि सर्वत्रैवं क्रमेण तु ॥ १३२ ॥  
 ईश्वरः सर्वभूतानां श्रीं अङ्गपदकं ततः ।  
 दायै कलायै नमश्चापि ब्रह्माधिपतिस्ततः ॥ १३३ ॥  
 श्रीं नमो ब्रह्मणे स्वधायै चान्ते नम इत्यपि ।  
 ततः शिरो मेऽस्तु पदं नमो वीर्यं पदं वदेत् ॥ १३४ ॥  
 कालायै नम एवं हि सदाशिवपदं ततः ।  
 ओमन्ते चाशुमालिन्यै कलायै नम इत्यपि ॥  
 दिङ्मुखे संन्यसेन्मन्त्रो पूर्वाटिकमयोगतः ॥ १३५ ॥  
 तत्पुरुषस्य चतस्रः कला न्यसेत् सदा वशी ।  
 श्रीं तत्पुरुषाय पदं विद्महे तदनन्तरम् ॥ १३६ ॥  
 श्रीं शान्त्यै च पदस्थान्ते कलायै नम इत्यपि ।  
 महादेवाय शब्दान्ते धीमहीति पदं वदेत् ॥  
 श्रीं विद्यायै पदस्थान्ते कलायै नम एव हि ॥ १३७ ॥

तन्नो रुद्रः पदं पश्चात् ओं प्रतिष्ठापदं लिखेत् ।  
 ओं कलायै नमः पश्चात् प्रचीदयात् पदं वदेत् ॥ १४८ ॥  
 ओं निचुत्यै कलायै च नमः शब्दं समुच्चरेत् ।  
 ततोऽष्टस्थानमध्ये तु अघोराष्टकला न्यसेत् ॥ १४९ ॥  
 हृद्ग्रीवायामंसयुग्मे नाभिकुक्षी च वृष्टके ।  
 तथा वक्षसि चाघोरा क्षमायै शब्दमुच्चरेत् ॥ १५० ॥  
 कलायै मनसा एवाघोरतरेभ्य एव च ।  
 ओं निद्रायै पदस्थान्ते कलायै नम इत्यपि ॥ १५१ ॥  
 सर्वतः सर्वं ओं अन्ते वायव्ये शब्दमुच्चरेत् ।  
 कलायै नम एवाथ सर्वेभ्यः पदमुच्चरेत् ॥ १५२ ॥  
 ओं सृष्टवे पदस्थान्ते कालायै नम इत्यपि ।  
 नमस्तेऽस्तु पदस्थान्ते ओं क्षुधायै पदं वदेत् ॥ १५३ ॥  
 कलायै मनसा एव रुद्ररूपेभ्य एव च ।  
 ओं कृष्णायै पदस्थान्ते कलायै नम इत्यपि ॥ १५४ ॥  
 वामदेवस्य देवेश ! त्रयोदशकला न्यसेत् ।  
 एतेषु स्थानपद्मेषु तत्प्रकारं शृणु प्रभो ! ॥ १५५ ॥  
 गुह्येऽण्डकोषमध्ये च ऊरुयुग्मे ततः परम् ।  
 जानुद्वये तथा जङ्घा-युगले स्फिकद्वये तथा ॥ १५६ ॥  
 कट्यां पार्श्वयुगे चैव क्रमेण भावको न्यसेत् ।  
 ओं वामदेवाय नम ओं वज्रायै ततः परम् ॥ १५७ ॥  
 कलायै नमः एवाथ अष्टाय नम इत्यपि ।  
 ओं रक्षायै पदस्थान्ते कालायै नम इत्यपि ॥ १५८ ॥  
 रुद्राय नमो रत्यै च कालायै नम इत्यपि ।  
 ओं कालाय नम एवान्ते पालिन्यै शब्दमुच्चरेत् ॥ १५९ ॥  
 कलायै नम एवाथ कल ओं शब्दमुच्चरेत् ।  
 मायायै शब्दमुच्चार्य कलायै नम एव हि ॥ १६० ॥

विकरणा नमोऽन्ते च प्रणवं चोच्चरेद्बुधः ।  
 संयमित्यै पदान्ते च कालायै नम इत्यपि ॥ १६१ ॥  
 बल श्रीं शब्दमुच्चार्य क्रोधायै पदमुच्चरेत् ।  
 कलायै नम एवाथ विकरणाय नमस्ततः ॥ १६२ ॥  
 श्रीं बुद्ध पदकस्यान्ते कलायै नम इत्यपि ।  
 बल श्रीं शब्दमुच्चार्य स्थिरायै शब्दमच्चरेत् ॥ १६३ ॥  
 कलायै नम एवाथ प्रमथाय नमस्ततः ।  
 श्रीं रात्रौ पदकस्यान्ते कलायै नम इत्यपि ॥ १६४ ॥  
 सर्वभूतदमनाय नम श्रीं पदमच्चरेत् ।  
 भ्रामिण्यै पदकस्यान्ते कलायै नम इत्यपि ॥ १६५ ॥  
 नम श्रीं शब्दमुच्चार्य मोहिन्यै पदकं चरेत् ।  
 कलायै नम एवाथ उन्मनाय नमस्ततः ॥ १६६ ॥  
 श्रीं जरायै पदकस्यान्ते कलायै नम उच्चरेत् ।  
 अथ न्यसेन्महाशाल ! सद्योजातस्य ताः कलाः ॥ १६७ ॥  
 अष्टस्थानिषु चैतेषु सर्वपापनिवृत्तये ।  
 पाशंथोः स्तनथीश्वैव नामिकायाश्च मस्तके ॥ १६८ ॥  
 बाहुयुग्मे महाधीर । मणिपूरं विभेदकः ।  
 तत्रकारं प्रवक्ष्येऽहं सावधानोऽवधारय ॥ १६९ ॥  
 आदौ प्रणवमुच्चार्य ततो मन्त्रं चरेत् सुधीः ।  
 सद्योजातं प्रपद्यामि श्रीं बुद्धेः पदमुच्चरेत् ॥ १७० ॥  
 कलायै नम एवाथ सद्योजाताय वै नमः ।  
 श्रीं बुद्धेः पदकस्यान्ते कलायै नम इत्यपि ॥ १७१ ॥  
 भावपदं ततः पश्चात् श्रीं सत्यै पदमुच्चरेत् ।  
 कलायै नम एवाथ भावपदं ततः पुनः ॥ १७२ ॥  
 लक्ष्म्यै कलायै नमसाऽनादिभावपदं ततः ।  
 श्रीं मेधायै पदकस्यान्ते कलायै नम उच्चरेत् ॥ १७३ ॥

ततो भजस्व मा शब्दं श्रीं प्रज्ञायै पदं वदेत् ।  
 कलायै नम एवाथ भवशब्दं समुच्चरेत् ॥ १७४ ॥  
 प्रभायै पदमुच्चार्य कलायै नम इत्यापि ।  
 उद्भवाय नमः पश्चात् श्रीं सुधायै नमस्ततः ॥ १७५ ॥  
 कलायै नम उच्चार्य न्यस्येदष्टकलाः प्रभाः ।  
 ईशानाद्यास्ततो नाथ ! भक्तः पञ्चऋषो न्यसेत् ॥ १७६ ॥

पञ्चमन्त्रन्यासः ।—

पञ्चाङ्गुलीषु योगेन क्रमशः कामनाशनात् ।  
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ततो मन्त्रं स्मरेत् सुधौः ॥ १७७ ॥  
 ईशानः सर्वादिद्यानामीश्वरस्तदनन्तरम् ।  
 उच्चरेत् सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिरित्यापि ॥ १७८ ॥  
 ब्रह्मणोऽधिपतिः पश्चात् शिवो मेऽस्तु सदाशिवीम् ।  
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ततस्तत्पुरुषाय च ॥ १७९ ॥  
 विद्महे पदतः पश्चान्महादेवाय धीमहि ।  
 तन्नो रुद्रपदस्थान्ते प्रचोदयात् पुनर्वदेत् ॥ १८० ॥  
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ततो मन्त्रं स्मरेत् सुधौः ।  
 अघोरिभ्योऽय घोरिभ्यो घोरशब्दं समुच्चरेत् ॥ १८१ ॥  
 घोरतरिभ्य एवान्ते सर्वतः सवशब्दकम् ।  
 सर्वेभ्योऽन्ते नमोऽन्तोऽस्तु रुद्ररूपेभ्य एव च ॥ १८२ ॥  
 ततः प्रणवमुच्चार्य मन्त्रं पश्चात् स्मरेद्बुधः ।  
 वामदेवाय शब्दान्ते नमो ज्येष्ठाय शब्दतः ॥ १८३ ॥  
 तमो रुद्राय शब्दान्ते नमः शब्दं समुच्चरेत् ।  
 कालाय नम एवान्ते बलविकरणाय च ॥ १८४ ॥  
 नमो बलविकरणाय नमो बलपदं ततः ।  
 प्रमथनाय नमोऽन्ते सर्वभूतपदं वदेत् ॥ १८५ ॥  
 दमनाय नमोऽन्ते तु नमः शब्दं समुच्चरेत् ।

उन्मनाय नमस्त्राय पुनः प्रणवमुच्चरेत् ॥ १८७ ॥  
 सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।  
 भवे भवेऽनादिभवे भजस्व मां ततः परम् ॥ १८७ ॥  
 भवोद्भवाय शब्दान्ते नमो मन्त्रं सदा न्यसेत् ।  
 अङ्गुलीन्यासमाकृत्य पञ्चऋचानया प्रभो ! ॥  
 एवं क्रमेण संन्यासं कुर्यादेषु स्थलेषु च ॥ १८८ ॥  
 मूर्द्धिं हृद्गुह्यापादेषु न्यसेदेता ऋचो मुदा ।  
 ततः कुर्यात् महाकाल ! चाङ्गन्यासान्तरं शुभम् ॥ १८९ ॥  
 तैत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ।  
 वान्तरं पूर्वमुच्चार्य कामवीजं ततः परम् ॥ १९० ॥  
 वकारं शत्रुसंयुक्तं दक्षकर्णेन्दुसंयुतम् ।  
 चन्द्रवीजं वामनेत्र-खान्तवह्निविधुन्नतम् ॥ १९१ ॥  
 केवलं चन्द्रवीजन्तु सविसर्गमनुं ततः ।  
 सर्वज्ञाय पदस्यान्ते हृदयाय नमः पदम् ॥ १९२ ॥  
 अमृते पदमुच्चार्य तेजोज्वालापटं ततः ।  
 मानिनेऽन्ते च तृप्ताय ब्रह्मणः शिरसे ततः ॥ १९३ ॥  
 स्वाहान्तं तत एवाथ जनितशिखिशब्दकम् ।  
 शिखायानादिवोधाय शिखायैव षडित्यथ ॥ १९४ ॥  
 वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय पदं वदेत् ।  
 कवचाय तारशब्दं ततोऽन्यद्वीजमुच्चरेत् ॥ १९५ ॥  
 शंकारं बिन्दुसंयुक्तमधोदन्तसमन्वितम् ।  
 चकारश्च हकारश्च दौर्घप्रणवसंयुतम् ॥ १९६ ॥  
 परंतो तुप्तशब्दान्ते शक्तये पदमुच्चरेत् ।  
 नेत्रत्रयाय शब्दान्ते वीषट्पदमुदीरयेत् ॥ १९७ ॥  
 शंकारं शत्रुसंयुक्तं वामनेत्रं सबिन्दुकम् ।  
 पशुशब्दं तारशब्दं अनन्तशत्रु मे पदम् ॥ १९८ ॥

अस्त्राय फाडित प्रोच्य एवं विन्यस्य योगिराट् ।

मणिपूरे मनोयोज्य ध्यायेच्चैतन्यरूपकम् ॥ १८८ ॥

“मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजत्रावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-

स्त्राक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णन्दुकोटिप्रभम् ।

शूलं टङ्ककपाणवज्रदहनाद्वागेन्द्रघण्टाङ्गुशान्

पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्याञ्ज्वलङ्गं भजे” ॥२००॥

एवं ध्यात्वा मानसोप-चारैः संपूज्य पूजकः ।

अर्घ्यस्थापनमाकुर्याद्दीजमन्त्राभिर्शोधकम् ॥ २०१ ॥

श्रेवोक्तपीठमन्त्रेण पीठपूजां ततश्चरेत् ॥ २०२ ॥

पुनर्ध्यात्वा समावाह्य चावाहनादिमुदया ।

पञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्तं परिपूजयेत् ॥ २०३ ॥

पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वाऽऽवरणार्चनमाचरेत् ॥ २०४ ॥

शिवावरणदेवांस पृजयेत्तत्क्रमान् शृणु ।

ऐशान्यां पूजयेद्दिहान् ईशानाय नमस्ततः ॥ २०५ ॥

पूर्वे ओं तत्पुरुषाय नमः शब्दं समुच्चरेत् ।

दक्षिणे ओं अघोगाय नमः शब्दं समुच्चरेत् ॥ २०६ ॥

उत्तरे ओं वामशब्दं देवाय नम उच्चरेत् ।

पश्चिमे प्रणवं पश्चात् सद्योजाताय एव हि ॥ २०७ ॥

नमोऽन्तं पूजनं कृत्वा सर्वमिद्वीश्वरो भवेत् ।

ईशानादिचतुष्केषु निवृत्त्यादीन् समुच्चरेत् ॥ २०८ ॥

प्रणवान्ते निवृत्तौ च नमश्चान्ते ततोऽर्चयेत् ।

एवं प्रतिष्ठां विद्याञ्च शान्तिं संपूज्य यत्रतः ॥ २०९ ॥

प्रणवादि नमोऽन्तेन चतुर्थ्यन्तपटेन च ।

योजयित्वा महापूजा-विधौ कुर्यात् समर्चनम् ॥ २१० ॥

दशदलस्य मध्ये तु त्रिभाव्य द्विदलं सुधौः ।

तद्वैवं पूजनं कुर्याद्दष्टाङ्गयोगसङ्घये ॥ २११ ॥

प्रणवादि नमोऽन्तेन चतुर्थ्यन्तपदेन च ।  
 पूजयेद्देवदेवेशं गन्धपुष्पाऽक्षतादिभिः ॥ २१२ ॥  
 अनन्तेशं पूजयेद्देवै तथा शम्भुं त्रिलिङ्गकम् ।  
 शिवोत्तमेशं संपूज्यं एकनेत्रेशमेव च ॥ २१३ ॥  
 एकरुद्रेशमेवं हि त्रिमूर्तीशं ततोऽर्चयेत् ।  
 भक्त्या समर्चयेत्तत्र श्रीकण्ठेशं शिखण्डिनम् ॥ २१४ ॥  
 तद्वाह्यपत्रिकाग्रेषु उत्तरादिक्रमेण तु ।  
 उमाद्या देवताः पूज्याः प्रणवादिनमोऽन्तिकाः ॥ २१५ ॥  
 उमादेवीं समभ्यर्च्यं तथा चण्डेश्वरं ततः ।  
 नन्दिनञ्च महाकालं गणेशं वृषभं तथा ॥ २१६ ॥  
 मृङ्गरौटस्कन्दपुत्रौ तद्वाह्ये क्रमतोऽर्चयेत् ।  
 इन्द्रादीन् लोकपालांश्च गन्धदौपैः समर्चयेत् ॥ २१७ ॥  
 वज्रादींश्च क्रमेणैव पूजयेत् साधकोत्तमः ।  
 धूपदीपादिनैवेद्य-पानार्थेषुनराचमम् ॥  
 संहारमुद्रया चोर्द्ध्वं स्थापयेद्गुद्ररूपिणम् ॥ २१८ ॥  
 विसर्जनान्तं तत्कर्म तत्प्रिष्टपूजनादिकम् ।  
 समाप्य तु विधानेन पूजाकर्म समापयेत् ॥  
 प्रत्यहं मानसं जापं होममर्चनतर्पणे ॥ २१९ ॥  
 वर्धयेत् साधकश्रेष्ठो भक्तिभावपरायणः ।  
 पञ्चलक्षजपेनास्य पुरश्चरणमिष्यते ॥ २२० ॥  
 सम्पूज्यैवं जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षं मधुप्लुतैः ।  
 असूनेः करवौरोत्थैरथवा जुहुयात् सुधीः ॥ २२१ ॥  
 सर्वदा मानसं कार्यं द्रव्यान्नामिऽपि सञ्चरेत् ।  
 तद्दृशांशं चाभिषेकं दशांशं विप्रभोजनम् ॥ २२२ ॥  
 एवं जपं साधनञ्च पुरा नारायणो मुनिः ।  
 कृत्वा सर्वमन्त्रमयः शीतलो योगिराड्भूत् ॥ २२३ ॥

यः करोति साधनानि सोऽचिरादमरो भवेत् ।  
 पूजादौ चैव शेषे च पूजामध्ये क्रमेण तु ॥ २२४ ॥  
 श्रणमेत् साधकश्रेष्ठो वारणात् पापभूपतेः ।  
 “नमः परमकल्याण ! नमस्ते विश्वभावन ! ॥ २२५ ॥  
 नमस्ते पार्वतीनाथ ! उमानाथ ! नमोऽस्तु ते ।  
 विश्वात्मने विचिन्त्याय गुणाय निर्गुणाय च ॥ २२६ ॥  
 धर्माय ज्ञानमोक्षाय नमस्ते सर्वयोगिने ।  
 नमस्ते कालरूपाय त्रैलोक्यरक्षणाय च ॥ २२७ ॥  
 त्रैलोक्यघातकायैव चण्डेशाय नमोऽस्तु ते ।  
 सद्योजाताय देवाय नमस्ते शूलधारिणे ॥ २२८ ॥  
 कालान्ताय च कान्ताय चैतन्याय नमो नमः ।  
 कुलात्मकाय कौलाय चन्द्रशेखर ! ते नमः ॥ २२९ ॥  
 उमाकान्त ! नमस्तुभ्यं योगौन्द्राय नमो नमः ।  
 सर्वाय सर्वपूज्याय ध्यानस्थाय गुणात्मने ॥ २३० ॥  
 पार्वतीप्राणनाथाय नमस्ते परमात्मने ।”  
 एतत्स्तोत्रं पठित्वा तु स्तौति यः परमेश्वरम् ॥ २३१ ॥  
 याति रुद्रकुलस्थाने मणिपूरं विभव्यते ।  
 एतत्स्तोत्रप्रपाठेन तुष्टो भवति शङ्करः ॥ २३२ ॥  
 खेचरत्वपदं नित्यं ददाति परमेश्वरः ।  
 ततो वक्ष्ये महादेव ! सृत्युञ्जयविधानकम् ॥ २३३ ॥  
 र्थत् कृत्वा प्ररभब्रह्म-मयो भवति साधकः ।  
 सृत्युञ्जयस्य मन्त्रं वै जपते यदि मानुषः ॥  
 कोटिवर्षशतं स्थित्वा लीनो भवति ब्रह्मणि ॥ २३४ ॥  
 सर्वव्यापकरूपेण स तिष्ठति सदाशिव ! ॥ २३५ ॥

सृत्युञ्जयविधिः ।—

तत्प्रकारं प्रवक्ष्याम साधवानोऽवधारय ।



आदौ पूजाविधानञ्च ब्रह्मामि सारनिर्णीतम् ॥ २३६ ॥  
 श्रीऋषभपूणीः शिवायामुच्यते समावरेत् ।  
 ततो हृदयमध्ये तु इन्द्राङ्गुलीसमुद्रया ॥ २३७ ॥  
 तत्त्वान्यान्वस्य देवेश ! तत्प्रकारं प्रचक्षते ।  
 प्रणवादि नमोऽन्तेन चतुर्थ्यन्तपदेन च ॥  
 योजयित्वा न्यसेन्मन्त्रो मन्त्रभावपरायणः ॥ २३८ ॥  
 पीठन्यासः ।—

आधाराशक्तिमेवं हि प्रकृतिं तदनन्तरम् ।  
 क्रमेणानन्तं तत्पश्चात् पृथिवीं चीरसागरम् ॥ २३९ ॥  
 श्वेतद्वीपं ततः पश्चान्नामगण्डपमेव च ॥ २४० ॥  
 कल्पवृक्षे ततो नाथ ! विन्यसेन्नाणिवेदिकाम् ।  
 रत्नासंज्ञासनं तत्र हृदयाभ्याजमण्डले ॥ २४१ ॥  
 दक्षवामस्कन्धभागे वामागौ दक्षिणे तथा ।  
 मुखे वामपार्श्वभागे नाभौ च दक्षपाश्वके ॥ २४२ ॥  
 प्रणवादि नमोऽन्तेन चतुर्थ्यन्तपदेन च ।  
 सर्वत्र न्यासमाकुर्यात्तेषां नाम शृणु प्रभो ! ॥ २४३ ॥  
 क्रमेण सर्वं कर्तव्यं क्रमभङ्गे न चाचरेत् ।  
 धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं तदनन्तरम् ॥ २४४ ॥  
 अधर्ममपि चाज्ञानमवैराग्यं ततः परम् ।  
 अनैश्वर्यं क्रमेणापि विन्यसेत् साधकोत्तमः ॥ २४५ ॥  
 पुनर्वारं हृदयो जे न्यसेदेकमनाः सुधीः ।  
 अनन्तं पद्ममेवन्तु अं सूर्यमण्डलं तथा ॥ २४६ ॥  
 द्वादशकलात्मना साङ्गं उं सोममण्डलं तथा ।  
 षोडशकलात्मनश्च मं वज्रमण्डलं तथा ॥ २४७ ॥  
 दशकलात्मना साङ्गं सं सत्त्वं तदनन्तरम् ।  
 रं बीजं राजसं तत्र तं तमसमेव च ॥ २४८ ॥

आं आत्मानं न्यसेन्नन्वी अं अन्तरात्मने नमः ।  
 यं बीजं परमात्मानं मायाज्ञानात्मने नमः ॥ २४९ ॥  
 इत्यन्तं न्यस्य देवेश ! मन्त्रसिद्धिमवाप्स्यसि ।  
 मणिपूरे मन्त्रसिद्धिं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २५० ॥  
 यः करोति सदा न्यासं ध्यानपूजापरायणः ।  
 वामां ज्येष्ठां तथा रौद्रीं कालीं कल्पदादिकाम् ॥ २५१ ॥  
 विकरण्याङ्गया युक्तां बलविकरणीं तथा ।  
 बलप्रमथिनीं चैव न्यसेत् साधकसत्तमः ॥ २५२ ॥  
 तत्सर्वभूतदमनीं मनोन्मनीं ततो न्यसेत् ।  
 तदुपरि न्यसेन्नाथ ! ओं नमो भगवते पदम् ॥ २५३ ॥  
 सकलगुणात्मशक्ति-युक्तायान्ते पदं न्यसेत् ।  
 अनन्ताय पदस्थान्ते योगपीठात्मने पदम् ॥ २५४ ॥  
 नमोऽन्तोऽयं महामन्त्रः सर्वोपरि न्यसेत् सुधीः ।  
 ततो नाथ ! समाकुर्यात् साधको गतभौः स्वयम् ॥ २५५ ॥

मृत्युञ्जय-ऋष्यादिन्यासः ।—

ऋष्यादिन्यासमाकुर्यात् तत्रकारं शृणु प्रभो ! ।  
 शिरसि पदमुच्चार्य कङ्कोडं ऋषये नमः ॥ २५६ ॥  
 तदुपरि ततो नाथ ! महाविष्णुपदं वदेत् ।  
 ऋषये नम इत्युक्त्वा सुखे देवीपदं वदेत् ॥ २५७ ॥  
 गायत्रीच्छन्दसे पश्चात् नमः शब्दं समुच्चरेत् ।  
 हृदि मृत्युञ्जयायैवं देवतायै नमः पदम् ॥ २५८ ॥  
 ऋषिः कङ्कोडो देव्याश्च गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।  
 मृत्युञ्जयो महादेवो देवताऽस्य प्रकीर्त्तिता ॥ २५९ ॥

कराङ्गन्यासः ।—

कराङ्गन्यासकौ कुर्यात् षड्दीर्घभाग्भिरेव च ।  
 सकारेण महाकाल ! तत्प्रकारं शृणु प्रभो ! ॥ २६० ॥

सां अङ्गुष्ठाभ्यां चान्ते च नमः शब्दं क्रमेण तु ।  
 एवं कराङ्गुलीन्यासं कुर्यादेव महाप्रभो ! ॥ २६१ ॥  
 षड्दीर्घभाजा वीजेन सकारेण सविन्दुना ।  
 कराङ्गन्यासमाकुर्यात् कुलतन्द्रक्रमेण तु ॥  
 ततो ध्यानं समाकुर्यात् शुभभावपरायणः ॥ २६२ ॥

मृत्युञ्जयध्यानम् ।—

इन्द्रकानललोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तास्त्रदं  
 मुद्रापाशसृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं द्विमांशुच्छविम् ।  
 कोटीन्दुविगलत्सुधामुततनुं हारादिभूषाकुलम्  
 कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये ॥ २६३ ॥

मृत्युञ्जयपूजा ।—

एवं ध्यात्वा समावाह्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् !  
 पाद्यादिभिः पूजयेद्गन्धपुष्पादिशीभितैः ॥ २६४ ॥  
 पद्मपुष्पाञ्जलीं दत्त्वा परिवारान् प्रपूजयेत् ।  
 केशरेष्वग्निं निर्ऋतिमीशाने च प्रपूजयेत् ॥ २६५ ॥  
 मध्ये दिक्षु च तन्मन्त्रैः सां वीजं तत्र चोच्चरेत् ।  
 हृदयाय नमश्चान्ते सां वीजं तदनन्तरम् ॥ २६६ ॥  
 शिरसे स्नाहया साङ्गं सुं वीजं तदनन्तरम् ।  
 शिखायै वषडित्यादि सौं वीजं तदनन्तरम् ॥ २६७ ॥  
 कवचाय पदस्यान्ते तारवीजं समुच्चरेत् ।  
 सौं वीजं पूर्वमुच्चार्थं नेत्रत्रयाय इत्यपि ॥ २६८ ॥  
 वीषट् चाद्ये मध्यपदं चतुर्दिक्षु ततः पदम् ।  
 सञ्चान्तेऽस्त्राय शब्दान्ते फडित्येव समर्चयेत् ॥ २६९ ॥  
 षडङ्गानि पूजयित्वा तद्वह्निः परिपूजयेत् ।  
 इन्द्रादीन् लोकपालांश्च पूजयेत् तु तथा प्रभो ! ॥ २७० ॥  
 धूपदीपादिनेत्रेद्य-पानादीनि प्रदापयेत् ।

विधिना वन्दनं कुर्यान्मृत्युञ्जयस्य भूषणात् ॥ २७१ ॥

विसर्जनान्तं तत्कर्म समाप्य विधिनाऽमुना ।

संहारमुद्रया देवं हृदये चालयेद्बुधः ॥ २७२ ॥

प्रसन्नहृदयो भूत्वा चरणोदकमापिवेत् ।

एतन्मन्त्रेण देवेश ! सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २७३ ॥

पिबामि चरणदन्दाभोजनिःसृतकं भजे ।

अमरत्वं सदा देहि मृत्युञ्जय ! नमोऽस्तु ते ॥ २७४ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्राद्गोपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकप्रकाशे  
भैरव-भैरवीसंवादे मृत्युञ्जयपूजनं नाम षट्षत्वारिंशः पटलः ॥ ४८ ॥

## एकोनपञ्चाशः पटलः ।

श्रीश्रानन्दभैरव उवाच ।—

श्रुतञ्च साधनं पुण्यं महारुद्रस्य सुन्दरि ! ।

मणिंपुरे प्रकाशञ्च कथितं ज्ञाननिर्णयम् ॥ १ ॥

अकस्मात् सिद्धिसम्पत्तिर्येन स्यात् तद् वद प्रिये ! ।

यस्य अवणमात्रेण पाठेन योगिनी वशा ॥ २ ॥

श्रानन्दभैरवव्युवाच ।—

परमानन्ददेवेश ! योगानामधिप ! प्रभो ! ।

स्तोत्रं रुद्रस्य वक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् ॥ ३ ॥

यज्ज्ञात्वा योगिनः सर्वे षट्चक्रपरिभेदकाः ।

आकाशगामिनः सर्वे स्वर्गमोक्षाभिलाषुकाः ॥ ४ ॥

महादेवसमाः सर्वे देवाश्च सर्गभोगिनः ।

सर्वरक्षाकरं स्तोत्रं ये पठन्ति निरन्तरम् ॥

ते यान्ति ब्रह्मसदनं सिद्धमुख्या महीतले ॥ ५ ॥

मृत्युञ्जयस्तोत्रम् ।—

भजामि शम्भुं सुखमोक्षहेतुं रुद्रं महाशक्तिसमाकुलाङ्गम् ।

रौद्रात्मकं रुद्रहिमांशुशेखरं कालं कुलेशं शिवशङ्करम् ॥ ६ ॥  
 सृत्युञ्जयं जीवन्रक्षकं परं शिवं परं ब्रह्मशरीरमङ्गलम् ।  
 हिमांशुकोटिच्छविमादधानं भजामि पद्मद्वयमध्यसंस्थितम् ॥ ७ ॥  
 सर्वार्थकं कामविनाशमूलं चन्द्रावतंसं मणिपूरवासिनम् ।  
 चतुर्भुजं ज्ञानसमुद्रयाव्यं पाशं सृगाचं गुणसूत्रयाप्तम् ॥ ८ ॥

\* \* \* \*

धरामयं तेजसमिन्दुकोटिं वार्युं जलेशं गगनात्मकं परम् ॥ ९ ॥  
 भजामि रुद्रं कुललाकिनीगतं सर्वाङ्गयोगं जयदं सुरेश्वरम् ।  
 शुक्रं महाभौमलयं पुराणं प्राणार्थकं व्याधिविनाशमूलम् ॥ १० ॥  
 यज्ञार्थकं कामनिवारणं गुणं भजामि विश्वेश्वरशङ्करं शिवम् ।  
 वेदागमानामतिमूलदेशं तदुद्भवं तद्रहितं परात्परम् ॥ ११ ॥  
 कालान्तकं ब्रह्मनिरूपणं प्रियं भजामि शम्भुं गगनाधिरूढम् ।  
 शिवागमं शब्दमयं विभाकरं भास्वत्प्रचण्डामलविग्रहं विभुम् ॥ १२ ॥  
 ग्रहस्थितं ज्ञानकरं करालं भजामि शम्भुं प्रकृतीश्वरं हरम् ।  
 छायाकरं योगकरं सुखेन्द्रं मत्सं महामत्तकुलोत्सवाव्यम् ॥ १३ ॥  
 योगेश्वरं योगकलानिधिं विधिं विधानवक्त्रारमहं भजामि ।  
 हेमाचलालङ्कृतशुद्धवेश वराभयादाननिदानमूलम् ॥ १४ ॥  
 भजामि कान्तं वनमालशोभितं चान्त्रानपद्मासनमानिनं कुलम् ।  
 स्वयं प्रधानं पुरुषेश्वरं सुरं सिद्धाभवाङ्गादिविभाविनं भजे ॥ १५ ॥  
 भावाप्रियं प्रेमकलाधरं शिवं गिरीश्वरं चारुपदारविन्दम् ।  
 ध्यानप्रियं ज्ञानगभीरयोगं भाग्यास्पदं भाग्यमयं सुलक्षणम् ॥ १६ ॥  
 शूलायुधं शूलविभूषिताङ्गं श्रीशङ्करं मौक्तफलक्रियं भजे ।  
 नमो नमो रुद्रगणेभ्य एवं सृत्युञ्जयेभ्यः कुलचञ्चलेभ्यः ॥ १७ ॥  
 शक्तिप्रियेभ्यो विजयादिभूतये शिवाय धन्याय नमो नमस्ते ।  
 भाव्यं त्रिशूलं वरसूक्ष्मभावं विशालनेत्रं तनुमध्यगामिनम् ॥ १८ ॥  
 महाविपद्भस्मविलासबीजं शुद्धोदयं शान्तिकरं भजामि ।

पुरान्तकं पूर्णशरीरिणं गुरु स्मरारिमाद्यं निजतर्कमागम् ॥ १८ ॥  
 अनादिदेवं दिविदोषघातिनं भजामि पञ्चाक्षरपुण्यसाधनम् ।  
 दिग्गम्ब्रं पद्मसुखं करस्थितं स्थितिक्रियायोगनियोजनं भवम् ॥ २० ॥  
 भवात्मकं भद्रशरीरिणं शिवं भजामि पञ्चाननमर्कवर्णम् ।  
 मायामयं पद्मजदामकोमलं दिग्वापिनं दण्डधरं सुरेश्वरम् ॥ २१ ॥  
 त्रिपक्षकं अक्षरबीजभावं त्रिपद्ममूलं त्रिगुणं भजामि ।  
 विद्याधरं देवविधानकार्यं कल्याणतं पीतनिनादतोषम् ॥ २२ ॥  
 नित्यं चतुर्वर्गफलाटिमूलं वेदादिसूत्रं प्रणमामि योगम् ।  
 वेदान्तवेद्यं कुलशास्त्रविज्ञं क्रियामयं योगसुधर्मदानम् ॥ २३ ॥  
 भक्तेश्वरं भक्तिपरायणं वरं भक्तं महामुक्तिकरं भजाम्यहम् ।  
 गतागतं गम्यमगम्यभावं शरद्विधोः काटिकलावतंसम् ॥ २४ ॥  
 भावार्थकं भावमयं सुखासुखं भजामि भगं प्रथमारूपप्रभम् ।  
 बिन्दुस्वरूपं परिवादवादिनं मध्याङ्गसूर्यायुतसन्निभं नवम् ॥ २५ ॥  
 विभूतिदानं निजयोगदानं दानात्मकं तं प्रणमामि देवम् ।  
 कुम्भापहं शत्रुनिकुम्भघातिनं तैत्थारिमीशं कुलकामिनौपतिम् ॥ २६ ॥  
 प्रीत्यान्वितं चिन्त्यमचिन्त्यभावं प्रभाकराह्लादमहं भजामि ।  
 त्रिमूर्त्तिमूलाय जयाय शश्वे हिताय लोकस्थ सुधायुषे मुदा ॥ २७ ॥  
 नमो भवाच्छुद्धनिघातिने ते नमो नमो विश्वशरीरधारिणे ।  
 तपःफलाय प्रकृतिग्रहाय गुणार्थिने सिद्धिकराय योगिने ॥ २८ ॥

\* \* \* \*

नमः प्रसिद्धाय दयाऽर्णवाय वाञ्छाफलोत्साहविवर्द्धनाय ॥ २९ ॥

शिव इति वरहस्ते पूर्णयोगाश्रयन्तं  
 धरणिधरकराञ्जैरस्यमाणं त्रिसर्गम् ।  
 विप्रमचरणघातं मृत्युघातं नरेशं  
 विधिगणपतिसेव्यं पूजये भावयामि ॥ ३० ॥

एतत् स्तोत्रं पठेद्द्विद्वान् मणियोगपरायणः

नित्यं जगन्नाथगुरुं भावयित्वा पुनःपुनः ॥ ३१ ॥

मणिपूरे योगनिष्ठो नित्यं स्तोत्रं पठेत् यदि ।

जीवन्मुक्तश्च देहान्ते परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने षट्चक्रकाशि भैरवी-भैरव-  
संवादे रुद्रसत्सङ्गसूक्तं नाम एकौनपञ्चाशः पटलः ॥ ४६ ॥

### षष्ठाशः पटलः ।

आनन्दभैरवव्युवाच ।—

षट्चक्रभेदनार्थाय सर्वसिद्धिसिद्धये ।

वक्ष्यामि लाकिनीदेवीस्तोत्रं परमदुर्लभम् ॥ १ ॥

यत् पाठादतिसन्तोषं प्राप्नोति यतिरौश्वर ! ।

तत्क्रिया सारसम्पन्नं स्तवनं लाकिनीप्रियम् ॥ २ ॥

लाकिनीस्तोत्रम् ।—

अथ श्रीलाकिनीस्तोत्रस्य महाविष्णुकहोडकृष्णिर्गायत्री-  
च्छन्दो महासिद्धिमृत्युञ्जयमहारुद्रडाकिनीसरस्वतीदेवतम्  
मणिपूरभेदयन्त्रिभेदनजपे विनियोगः ।

श्रीं वीजाक्षरमुक्तिमात्तिहरणीमार्थ्यां जयां हृदिदां

दीनानामपराधकोटिहननीं संज्ञामणिं योगिनीम् ।

त्वामाद्यामनुरागिणीं गुणिगुणामोटैकहेतुस्थलां

स्थित्यन्तःकृतकौतुकीं शुभकरीं वन्दे मुदा लाकिनीम् ॥ ३ ॥

हेरस्वार्चनसिद्धिदाहयगताकोटिप्रभाभास्वरा

साकारा किरणोज्ज्वला सुखमयी वेदध्वनिप्राणिनी ।

कोपा कापिललक्षणा तरुभवा कल्याणया संशया

त्वञ्चैका वैरवर्णिनी समवतु श्रीलाकिनो किङ्किणी ॥ ४ ॥

केयूरामलहारमालसुभगा वीरासनस्थायिनी  
 भार्या रुद्रपतेः प्रवालविमला रक्तोत्पला सुन्दरी ।  
 माता योगवतां सती परपदां माध्वी रसाच्छादिता  
 त्वं मां पाहि कृपामयि ! यमगतं मृत्युञ्जयश्रीधरे ॥ ५ ॥  
 आकाङ्क्षाकुलसंख्यकाक्षयकरी शत्रुप्रभानाशिनी  
 भक्तानामतिदुःखहा शशिसुखी योन्यानना कामुकी ।  
 कामस्था मम कामदोषशतकं शीघ्रं हन चेमदा  
 जीवन्मुक्तिपदं विधेहि समरे सर्गद्रुहस्य प्रियम् ॥ ६ ॥  
 त्वं पञ्चाननपूजिता त्वमसिता त्वं कालविद्यागतिः  
 त्वं सत्या सुखसत्यवाक्यकलिता त्वं केवलानन्ददा ।  
 त्वं लाक्षारुणकायिका विषधरा त्वं लिङ्गसंहारिणी  
 त्वं साक्षादमृतप्रदा त्वमजरा त्वं लाकिनौ पाहि माम् ॥ ७ ॥  
 नानामङ्गलधर्मराज्यजाडिता संस्कारबोधाश्रया  
 लिङ्गस्था चलपुत्रिका नवगृहे संकाशयन्ती शिवा ।  
 मे लिङ्गोपरि रुद्रनाथ विपथव्यामेदनं सङ्गम  
 शीघ्रं कारय देवि ! मोदभविकं कोट्यर्कचन्द्रोज्ज्वला ॥ ८ ॥  
 चन्द्राभाकरणाश्रया श्रयति या शब्दच्छटा या उमा  
 मायामोहमहोदयोदयति या कृष्णाक्रियामोहिनी ।  
 लक्ष्मीनीलकलेवरा मम मण्येः पूरं सदा रक्षतु  
 श्रीविद्याऽभयदायिनौ त्वमपि सा मे नाभिभूलोदया ॥ ९ ॥

मात्रासुद्रामथननिलया मालिनी मन्त्रविद्या  
 विश्वेशानी शयनरहिता शीतवातातपस्था ।  
 सत्या सत्या वचनसुभगा गौरि ! माता त्वमेव  
 प्राणान् रक्ष प्रथमकिरणामाश्रये त्वामनन्ताम् ॥ १० ॥  
 सिद्धासिद्धा शाश्वरविकला केवलान्भोजसस्था  
 मन्दाऽनन्दा सकलहृदयाभोजमध्यप्रकाशा ।



नित्यश्रद्धा गतिपथकरा दत्तकामानवद्या  
 नाभ्यम्भोजं भज भज जनानामखण्डप्रतापे ॥ ११ ॥  
 पीताऽपीता पवनगमना धारणा ध्यानयोगा  
 कालाकाला कनिकुलकला निष्कलाज्ञा कपाला ।  
 कृष्णानन्दा मदनकुहुरा केकरा शङ्करे या  
 त्वं श्रीधात्री धवलकमलं नाभिमूले प्ररक्ष ॥ १२ ॥  
 श्वेताश्वेतारुणशतकरा भावनाज्ञानसिद्धिः  
 प्रीताऽप्रीता पवनगठना तारणा मारणा या ।  
 हंसाविद्या विधिबुधधरा धारणा ज्ञानगम्या  
 रम्यारम्या वसननिरता नीरदा पातु नाभिम् ॥ १३ ॥  
 सेन्दोर्गन्धप्रियविधुनिता नीरवा वा वहन्तो  
 क्षेत्राऽक्षेत्रा परचरगता भुक्तिमुक्तिप्रकाशा ।  
 कौलाऽकौला क्षापितकलुषा ज्ञानगम्या चिराय  
 शुद्धाऽशुद्धा मतिधनमता नाभिसंस्थावनाभिम् ॥ १४ ॥  
 हंसो सिंहासनगतपदा चक्रविद्या सुसूक्ष्मा  
 श्रीविद्या त्वं नवविलचरा सुन्दरी रक्तवर्णा ।  
 स्वर्णाम्भोजोपरि शुभमहाचक्रमध्ये प्रतिष्ठा  
 सर्वच्छुवा परिजनदयाज्ञानपद्मं प्ररक्ष ॥ १५ ॥  
 ब्रह्मानन्दा नृपगणमहापूजया शोभिताङ्गो  
 श्रीश्रीविद्या सकलविभवा भावनीया महेन्द्रैः ।  
 सिद्धस्थानं मणिमयगृहे मूलसिंहासनस्थे  
 पद्मे चाष्टान्वितयुगदले रुद्ररूपा त्वमेव ॥ १६ ॥  
 योगज्ञानं विविधविभवं वेदविद्याप्रकाशं  
 चाष्टाङ्गैर्मां प्रणतशिरसं षोडशी भैरवस्था ।  
 चन्द्राङ्गा त्वं भव भयहुरा शोकतापापहन्त्रो  
 नाभेरन्ने उदयति सुरो यस्तमौषे प्ररक्ष ॥ १७ ॥

मुञ्चिष्टा त्वं विभर्वाकिरणे शीतले शीतशैले  
 साक्षादर्थप्रचयचयना पार्वणा पर्वपूरा ।  
 विद्युत्पूरं मम सुखमयं पाहि पञ्चानना या ।  
 त्वं सा देवौ शुभमणिगृहे शीतला त्वं विधेहि ॥ १८ ॥  
 छन्दोगानां सकलविषयच्छेदनी चार्णमाता  
 मालालाक्षाऽरुणकिरणगा गोपपूज्यादिविद्या ।  
 मातस्त्वं मे सुमणिभवनं पाहि सूक्ष्मा भवानि !  
 बालस्थाना प्रचुरप्रखरा चाङ्गिरा चान्नपूर्णा ॥ १९ ॥  
 चन्द्रोक्तासावयवसुखदा दीर्घकेशी विशाला  
 त्वं मातङ्गौ गजमुनिमता मालिका त्वं प्रचण्डा ।  
 ज्योत्स्नाजाले उदयति सदा रक्तभासा प्रकाशा  
 त्वं मे रुद्रं हरिहरतनुं नाभिमूले प्ररक्ष ॥ २० ॥  
 वाणी नाम्ना रचयति वचः सुन्दरी वर्णनस्था  
 स्थित्यन्तस्था चलतनुधरा फुल्लमन्दारवासा ।  
 बोधानन्दाकृतितनुमभिव्यापिनौ ज्ञानशुद्धा  
 मातस्त्व मे मणिकुलगृहं पाहि सर्वाङ्गविद्ये ! ॥ २१ ॥  
 वेद्यावर्णा मनसिजरुहा चन्दनालिसदेहा  
 विश्वेशानि ! भगवति ! शिवे ! त्वं क्षपा घोररूपा ।  
 ज्ञेये शश्वोर्जटिलशिवगा मोक्षदा मानसस्था  
 चित्तं शुभ्रं प्रकुरु विषयच्छेदनात् छेदिनी त्वम् ॥ २२ ॥  
 मणिमयकुलगेहे कोटिविद्युत्प्रकाशा-  
 ऽभयवरमपि देहि क्रोधविद्ये ! मयि त्वम् ।  
 सकलसुखविभोगं पालय प्राणरूपं  
 चरणतलविलग्नं मामनाथं परेशि ! ॥ २३ ॥  
 भुवनगठनहेतोः कायशङ्काविनाशात्  
 विधिसुखसुरनाथं मानुषादित्यसर्गम् ।

मम मणिकुलपद्मे नित्यरूपाभिधानं  
 जयति खलु तदा मे स्तोत्रसारप्रकारम् ॥ २४ ॥  
 तव तु चरणपद्मे लाकिनि ! देवकन्ये !  
 विरचय मनुशास्त्रं सिद्धमन्त्रप्रकारम् ।  
 भुवननिखिलतापात् त्राहि मां चन्द्रगेहे  
 कठिनहृदयनाशं शङ्करि ! त्वं कुरुष्व ॥ २५ ॥  
 कमलवनसमीपेऽरण्यमध्येऽतिगुह्ये  
 विषयविषविनाशं कौलिके त्वं विकृत्य ।  
 हर निजमणिपीठे स्थापयित्वा निदानं  
 हर हरदयिते त्वं दोषघटकं विवादम् ॥ २६ ॥  
 धीरे सान्द्रान्धकारेऽखिलनिजकुलमुद्धारकर्त्री प्रसन्ने  
 वाञ्छाकल्पद्रुमस्था त्वमिह कुशलदा दायभागातिभागा ।  
 त्वं काली लाङ्गलीस्था लयकरणघटा मध्यगा मातृका त्वं  
 भीमा भीत्यापहन्त्री हरपदविलया लाकिनी नाभिसारा ॥ २७ ॥

एतत् स्तोत्रं पठेद्द्विद्वान् योगज्ञानी निराश्रयः ।  
 महापुण्यगतो धीरो विभवेनाऽमृतेन च ॥ २८ ॥  
 भोगमोक्षी करे तस्य चैहिके योगिराड् भवेत् ।  
 परं याति महादेवी-पादपद्मे न संशयः ॥ २९ ॥  
 ऐहिके चिरजीवित्वं ददाति कामदायिनी ।  
 मणिपूरे स्थिरो याति कुलमार्गे प्रसादतः ॥ ३० ॥  
 कुलमार्गे लयस्थानं लयं विश्वेश्वरीपदम् ।  
 उल्लयान्मणिपूरस्था देवताः पश्यति ध्रुवम् ॥ ३१ ॥  
 पूजान्ते प्रपठेत् स्तोत्रं भक्तिभावपरायणः ।

शीघ्रमेव हि योगी स्यात् कुलमार्गप्रसादतः ॥ ३२ ॥  
 इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीहोत्रे सिद्धमन्त्रप्रकरणे सैरव-भैरवी

संवादे लाङ्गिनीलवणं नाम पञ्चाशः पटलः ॥ ५० ॥

## एकपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

विविधसिद्धिनाभ-प्रसङ्गः ।—

अथ कान्त ! प्रवक्ष्यामि सिद्धिसाधनमुत्तमम् ।  
येन साधनमात्रेण नरो योगी भवेद्भ्रुवम् ॥ १ ॥  
शरीरं त्रिविधं प्रोक्तं सत्त्वादिगुणभेदतः ।  
तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ २ ॥  
दिवि तिष्ठन्ति देवाश्च वीरास्तिष्ठन्ति भूतले ।  
पशवः सन्ति पाताले क्रमशः क्रमशः प्रभो ! ॥ ३ ॥  
सर्वत्र त्रिगुणाऽऽच्छन्नं सत्त्वं रजस्तमोऽभिधम् ।  
सत्त्वगुणं स्वर्गमध्ये विष्णुसेवापरायणे ॥ ४ ॥  
सदा सर्वे दृढाः स्वर्गे भूतले च रजोगुणम् ।  
ब्रह्मसेवापराः सर्वे ब्रह्मज्ञानिन एव च ॥ ५ ॥  
पाताले शिवसेवी च शिवरूपी स एव च ।  
तमोगुणात् पशोर्भावमधोदृष्टिं समाप्य च ॥ ६ ॥  
ततो विहाय तज्ज्ञानं वीरो भवति साधकः ।  
वीरभावे ज्ञानदृष्टिं ब्रह्मासिद्धिं समाप्य च ॥  
देवता भवति क्षिप्रं सत्त्वे निर्मलभावके ॥ ७ ॥  
स्थिरो भूत्वा महादेव ! भवत्येव क्रमेण तु ।  
आकाशगामिनौ सिद्धिः क्रमशो भवति भ्रुवम् ॥ ८ ॥  
मूलाधारस्य चाधो वै पातालतलवासिनः ।  
तदूर्ध्वं ब्रह्मलोके तु भूतलादिनिवासिनः ॥ ९ ॥  
तदूर्ध्वं सत्त्वनिलयं स्वाधिष्ठानन्तु दैवतम् ॥ १० ॥  
विधिविद्याप्रकाशञ्च परदेवस्य सम्पदम् ।  
तदूर्ध्वं सर्वरूपञ्च सर्वज्ञानाश्रयं परम् ॥ ११ ॥  
परस्थानं महादेव ! मणिपूरं मनाहरम् ।  
ब्रह्मशक्त्यात्मकं चक्रं श्रीविद्याचक्रमण्डलम् ॥ १२ ॥

लाकिनी परमा माया महारुद्रेण सेविता ।  
 मणिपूरप्रकाशाय रुद्रशक्तिर्विभाति च ॥ १३ ॥  
 सर्वज्ञानानन्दमयं सर्वसिद्धिप्रकाशकम् ।  
 महासूक्ष्मशब्दलयं कुण्डलीज्ञानसाधनम् ॥ १४ ॥  
 यस्याः साधनमात्रेण योगी भवति भैरव ! ।  
 प्रकारत्रयसेवायां महासिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १५ ॥  
 सर्वे च पशवः सन्ति तलवद्भूतले नराः ।  
 तेषां ज्ञानप्रकाशाय वीरभावः प्रकाशितः ॥ १६ ॥  
 वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण देवता भवेत् ।  
 यत्काले वीरभावादि-सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥ १७ ॥  
 तत्कालनिर्णयं वक्ष्ये वीराद्देवत्वमाप्नुयात् ।  
 मासेनाकर्षिणीसिद्धिर्मासे च वाक्पतिर्भवेत् ॥ १८ ॥  
 मासत्रयेण संयोगाज्जायते सुरवल्लभः ।  
 एवं चतुष्टये मासि भवेद्विकृपालगोचरः ॥ १९ ॥  
 पञ्चमे पञ्चवाणः स्यात् षष्ठे रुद्रो न संशयः ।  
 वीरभावं समाश्रित्य सर्वदा योगमाश्रयेत् ॥ २० ॥  
 पशोरधीनं देवेश ! वीरभावं मनोहरम् ।  
 वीराधीनं दिव्यभावं वीरो योगी भवेद्द्रुवम् ॥ २१ ॥  
 योगाधीनं दिव्यभावं दिव्येन रुद्रदर्शनम् ।  
 रुद्रदर्शनमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेद्द्रुवम् ॥ २२ ॥  
 जीवन्मुक्तिपदं प्राप्य किं न सिध्यति भूतले ? ।  
 मनोनिवेशमाकृत्य पशुभावाश्रितो नरः ॥  
 वीरभावं समाश्रित्य चादौ योगं समाश्रयेत् ॥ २३ ॥  
 सर्वदा चाभ्यसेत् योगं मन्त्रन्यासपरायणम् ॥ २४ ॥  
 मन्त्रसिद्धिं योगसिद्धिं मोक्षसिद्धिं ततःपरम् ।  
 यदि मोक्षमिहेच्छन्ति पशवः शास्त्रमोहिताः ॥ २५ ॥

मम ज्ञानं वीरभावं चाश्रित्य योगमाप्नुयात् ।  
योगाभ्यासस्य चाद्ये वै शरीरं परिशीलयेत् ॥ २६ ॥  
योगाङ्गशुद्धौ पञ्चासवविधानम् ।—  
आदौ पञ्चाऽऽसवाः कार्य्याः सर्वकार्य्यनिराश्रयाः ।  
केवलं योगमाश्रित्य सदा पञ्चाऽऽसवो भवेत् ॥ २७ ॥  
द्विप्रकारं महाकाल ! पञ्चाऽऽसवाभिधानकम् ।  
नेती दन्ती तथा धौती नेडली चालनं तथा ॥ २८ ॥  
एकप्रकारमेवं हि कथितं परमेश्वर ! ।  
दन्ती नेती तथा धौती नेडली चालनं क्रमात् ॥ २९ ॥  
एवं वा नित्यमाकुर्व्याद् योगसिद्धिसम्बद्धये ।  
पञ्चाऽऽसवसाधनादि-काले कुर्व्यान्निजक्रियाम् ॥ ३० ॥  
श्लोषधीपञ्चकं ग्राह्यं पञ्चयोगसुसिद्धये ।  
विल्वपत्रं जयापत्रं तुलसीश्यामपत्रकम् ॥  
निर्गुण्डीपत्रमेवन्तु ग्रन्थिदूर्वारसेन च ॥ ३१ ॥  
एषां प्रकृतनामानि वक्ष्यामि शृणु शङ्कर ! ॥ ३२ ॥  
अमरी विल्वपत्रन्तु चामरा विजयादलम् ।  
लतामराग्रन्थिदूर्वा निर्गुण्डी वासवेश्वरी ॥ ३३ ॥  
अमरा श्यामतुलसी पञ्चामरास्तरुङ्गवाः ।  
कथिता योगसिद्धयर्थं तत्प्रमाणं क्रमात् शृणु ॥ ३४ ॥  
पञ्चतोलकमानन्तु विजयापत्रमेव च ।  
अन्येषां तोलकञ्चैकं संशोध्य भक्षणं चरेत् ॥  
एतद्भक्षणमात्रेण पञ्चयोगे जयी भवेत् ॥ ३५ ॥  
पुनस्तेषां महाकाल ! मनुं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ३६ ॥  
पञ्चासवशोधनम् ।—  
सकलं चामरायोग-मन्त्रेणानेन भक्षयेत् ।  
तारद्वयं समुद्धृत्य ऋतुगं तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥

विसर्गविन्दुसंयुक्तं तत्पञ्चादमृतामुखी ।  
 मरणं हापय इन्द्रं योगसिद्धिं ततःपरम् ॥ ३८ ॥  
 देहि देहि पदस्थान्ते स्वाहान्तं मन्त्रमुत्तमम् ।  
 एतन्मन्त्रेण चोत्पाद्य मन्त्रयित्वा प्रवन्दयेत् ॥ ३९ ॥  
 एतत् कारुण्य मन्त्राणं तत्रैव परियोजयेत् ।  
 निर्गुण्डीमन्त्रराजन्तु शृणु वक्ष्यामि भैरव ! ॥ ४० ॥  
 कामबीजत्रयं पश्चात् कालीबीजत्रयं तथा ।  
 सर्वं योगं ततः पश्चात् साधय हयमेव च ॥ ४१ ॥  
 अमृतत्वे मयि शब्दं समर्पय हयं तथा ।  
 स्वाहान्तं मनुना नाथ ! चोत्पाद्य भक्षणं चरेत् ॥ ४२ ॥  
 विल्वपत्रं प्रगृह्णीयात्तन्मन्त्रं शृणु कौलिक ! ।  
 लज्जाबीजं कामबीजं शक्तिबीजं ततःपरम् ॥ ४३ ॥  
 ब्रह्मबीजं ततः पश्चात् गौरसुन्दरि चावदेत् ।  
 मां स्थापय महायोगे पालय हयमेव च ॥ ४४ ॥  
 शङ्करप्रेमगलितः स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत् ।  
 संशोध्य तुलसीपत्रं चोत्पाद्य मनुनाऽमुना ॥ ४५ ॥  
 विष्णुप्रिये ! महाप्रिये ! शिवयोगप्रसाधिनि ! ।  
 मायान्कुरेदं ततः पश्चात् संसारं हापय हयम् ॥  
 अमरत्वं देहि देहि स्वाहान्तं प्रणवादिक्कम् ॥ ४६ ॥  
 विजयाशोधने विशेषः ।—  
 शृणु श्रीविजयापत्र-शोधनं हि चतुर्विधम् ॥ ४७ ॥  
 चतुर्वर्णेषु मन्त्रेण परिशोध्य कुलाकुलम् ।  
 तत्कर्म परिवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ ४८ ॥  
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीबीजं ततःपरम् ।  
 श्रीबीजं मान्मथं बीजं लज्जाबीजहयं क्रमात् ॥ ४९ ॥  
 क्रमेण च समुद्धृत्य विजये ! ज्ञानसुन्दरि ! ।

भो(यो)गमोक्षप्रदे ! पश्चात् कायशोधनि ! पावनि ! ॥ ५० ॥  
 मम पश्चात् कायसिद्धिं देहि देहि ततःपरम् ।  
 स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य संशोध्य चापि भक्षयेत् ॥ ५१ ॥  
 एकौकृत्य महादेव ! चैतन्यान्तेन योजयेत् ।  
 अमृतेऽमृतशब्दान्ते भवेत् पदं ततःपरम् ॥ ५२ ॥  
 अमृतवर्षिणिशब्दान्तेऽमृतं तदनन्तरम् ।  
 आकर्षय इयं पश्चात् सिद्धिं देह्यन्नलप्रिये ! ॥ ५३ ॥  
 एतन्मन्त्रेण संशोध्य सावधानेन भक्षयेत् ।  
 न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शनैरभ्यासमाचरेत् ॥ ५४ ॥  
 यावत्प्रमाणभक्ष्यः स्यात् प्रमाणे चाधिकं न च ।  
 एतन्नोजनमाकृत्य पयःपानं समारभेत् ॥ ५५ ॥  
 तत्प्रकारं शृणु प्राण-नाथ ! ईश्वर ! शङ्कर ! ।  
 मरीचवीजं संशोध्य दुग्धशोधनमाचरेत् ॥ ५६ ॥  
 एतत् प्रमाणं द्विविधं तत्प्रकारं वदाम्यहम् ।  
 घाञ्छाकल्पतरोर्मूले गुरुं ध्यात्वा पुनः पुनः ॥ ५७ ॥  
 मानसोपचारद्रव्यैः पूजयित्वा विधानतः ।  
 मरीचं तोलकार्दन्तु शोधयेन्मनुनाऽमुना ॥ ५८ ॥  
 श्रीकृष्णवीजमुद्धृत्य पृथ्वोवौजत्रयं तथा ।  
 घोरघोरतरे पञ्चभ्रमरीचकुलसुन्दरि ! ॥ ५९ ॥  
 लीना त्वं भव देहि मे न बीरं शोधय-इयम् ।  
 द्विठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तस्तत्पश्चाद्दुग्धशोधनम् ॥ ६० ॥  
 आदौ मरीचं भुक्त्वा च दुग्धपानं महाफलम् ।  
 चर्वयित्वा मरीचन्तु दुग्धपानं महाबलम् ॥ ६१ ॥  
 कृष्णवीजं समुद्धृत्य कामेश्वरीमनुं ततः ।  
 शिववौजत्रयं पश्चात् कृष्णगोरसवासिनी ॥ ६२ ॥  
 योगविग्रहमुद्धृत्य मम कामप्रसाधिनी ।



तत्पश्चाद् योगसिद्धीनामीश्वरी चैत्रवासिनौ ॥ ६३ ॥  
 शरीरं वशमन्ते च चालय-द्वयमेव च ।  
 विघ्नान् वारय युग्मन्तु स्वाहान्तोऽयं महामनुः ॥ ६४ ॥  
 वारडादशमुच्चार्य चाथवा पञ्चवारकम् ।  
 वारत्रयं मृदा शोध्यं सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥ ६५ ॥  
 यदि पिबेत् खेचरत्वं तदा दुग्धं द्विपादकम् ।  
 यदि चेत् केवलं दुग्धं तदा प्रस्थं चतुर्दश ॥ ६६ ॥  
 लघ्नाहारी महाज्ञानी पञ्चमादिविरागवित् ।  
 मणिपुरे मनोयोगं समाकृत्यामरो भवेत् ॥  
 चतुर्वर्गः करे तस्य यो मण्येः पीठमाश्रयेत् ॥ ६७ ॥

आनन्दभैरव उवाच ।—

मणिपूरभेदनाथं मनोयोगसुसिद्धये ।  
 खेचरादिमहायोग-सिद्धये सर्वसिद्धये ॥ ६८ ॥  
 मृत्युञ्जयस्य देवस्य रुद्रशक्त्याश्च दर्शनात् ।  
 तथा पीठस्थिरार्थाय कालजालवशाय च ॥ ६९ ॥  
 सहस्रनामबीजानि पूतान्यष्टोत्तराणि च ।  
 मृत्युञ्जयस्य लाकिन्याः स्तोत्रं परमदुर्लभम् ॥ ७० ॥  
 कथयस्व वरारोहे ! यदि ज्ञेहोऽस्ति मां प्रति ।  
 ज्ञानदे ! परमेशानि ! शरीरं मम रक्षतु ॥ ७१ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्गीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकप्रकाशे  
 भैरवी-भैरवसंवादे मणिपूरभेदप्रकाशे एकपञ्चाशः पटलः ॥ ५१ ॥

## द्विपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ सम्भेदनार्थाय वक्ष्ये षट्पङ्कजस्य च ।  
महारुद्रस्य च श्रीश्री-महामृत्युञ्जयस्य च ॥ १ ॥  
लाकिनौशक्तिसिद्धितं सहस्रनाममङ्गलम् ।  
अष्टोत्तरपरिव्याप्तं निगूढं तव सिद्धये ॥ २ ॥  
धारयित्वा पठित्वा च श्रुत्वा वा नाममङ्गलम् ।  
शृणुष्व परमानन्द ! योगेन्द्र ! चन्द्रशेखर ! ॥ ३ ॥  
तवाह्लादप्रणयनात् सर्वसम्प्रप्तियामये ।  
मणियोगसुसिद्धयर्थं सावधानावधारय ॥ ४ ॥

अस्याष्टोत्तरसहस्रनाममङ्गलस्य महाविष्णुकहोडकष्टविर्गायत्री-  
च्छन्दो महारुद्रमृत्युञ्जयलाकिनौसरस्वतीदेवता सर्वाभीष्ट-  
मणिपीठयोनिसिद्धयर्थं विनियोगः ।

लाकिनौ-महामृत्युञ्जयस्तोत्रम् ।—

श्रीं मृत्युञ्जयरुद्रादि-लाकिन्यादिसरस्वती ।  
मृत्युजिता महारौद्री महारुद्रः सरस्वती ॥ ५ ॥  
महारौद्रो मृत्युङ्गरो महामणिविभूषिता ।  
महादेवो महावक्त्रो महाभाया महेश्वरी ॥ ६ ॥  
महावीरो महाकालो महाचण्डेश्वरीश्वरी ।  
महारात्रो महाभद्रो वीरभद्रा महान्तरा ॥ ७ ॥  
महाचण्डेश्वरो मौनो मणिपूरप्रकाशिका ।  
महामत्तो महामत्ता महावीरासनस्थिता ॥ ८ ॥  
मायावो मारहन्ता च मातङ्गी मङ्गलेश्वरी ।  
मृत्युहारी मुनिश्रेष्ठा मनोहारौ मनोजवा ॥ ९ ॥  
मण्डलस्थोऽमलानन्दो मान्या मोहनमौलिनी ।

मत्तवेशो महाबालो महाबाला महालया ॥ १० ॥  
 मारोहारो महामारी मदिरा मत्तगामिनी ।  
 महामायाश्रयो मौनी महानन्दा मरुत्प्रिया ॥ ११ ॥  
 मुद्रापी मदिरापी च मनोयोगा महोदया ।  
 मांसाशी मीनभक्षश्च मोहिनी मेघवाहना ॥ १२ ॥  
 मानभङ्गप्रियो मान्यो महामान्या महाबला ।  
 महाबाणधरो मुख्यो महाविद्या महीयसी ॥ १३ ॥  
 महाशूलधरो मत्तो महावाणी महाकुला ।  
 मलयाद्रिनिवासी च महिमाचालनप्रिया ॥ १४ ॥  
 मायापतिर्महारुद्रो मरणापहकामिनी ।  
 माली महाशङ्खमालो मञ्जरी मांसभक्षिणी ॥ १५ ॥  
 महालक्षणसम्पन्नो महालक्षणलक्षणा ।  
 महाज्ञानी महावेगी मौषली मुषलप्रिया ॥ १६ ॥  
 महाक्षो मालिनीनाथो मन्दराद्रिनिवासिनी ।  
 मुनीनामन्तरस्थश्च मानभङ्गमलम्बिनी ॥ १७ ॥  
 महाविद्यापतिर्मध्यो मध्यपर्वतवासिनी ।  
 मन्दिरापी मन्दहरो मदना मदनासना ॥ १८ ॥  
 मदनस्थो मदचेत्रो महाहिमनिषासिनी ।  
 महान् महात्मा माङ्गल्यो महामङ्गलधारिणी ॥ १९ ॥  
 मायाहीनशरीरश्च मनोहरतनूद्भवा ।  
 मायाशक्तिपतिर्मोहो महामोहनिवासिनी ॥ २० ॥  
 महच्चित्तो महात्मा च महतामायुषिस्थितिः ।  
 मत्तकुञ्जरपृष्ठस्थो मत्तकुञ्जरगामिनी ॥ २१ ॥  
 मकरो मरुतानन्दो माकरौ मृकुपूजिता ।  
 मुनिपूज्यो मनोरूपी मेघमांसविभोजनी ॥ २२ ॥  
 महाकामो महाधीरो महामहिषमर्दिनी ।

महिषासुरबुद्धिस्थो माहिषासुरनाशिनौ ॥ २३ ॥  
महिषस्थो माहिषारिर्मधुकैटभनाशिनौ ।  
मधुनाथश्च मधुपो मधुमासादिसिद्धिदा ॥ २४ ॥  
महाभैरवपूज्यश्च महाभैरवपूजिता ।  
महाकान्तिप्रियानन्दो महाकान्तिस्थिताऽमरा ॥ २५ ॥  
मालाकोटिधरो मायी सृष्ट्यमालाविभूषिता ।  
मण्डलज्ञाननिरतो मणिमण्डलवासिनी ॥ २६ ॥  
महाविभूतिक्रोधस्थो मिथ्यादोषसखती ।  
मेरुस्थो मेरुनिलयो मैनाकालयरूपिणी ॥ २७ ॥  
महाशैलासनी मेरुमेदिनी मेघवाहना ।  
मञ्जुवीरो मञ्जुनाथो मोहसुग्धधरासिनी ॥ २८ ॥  
मेरुस्थो मणिपौठस्थो मूलरूपा मनोहरा ।  
मङ्गलार्थो महायोगो मत्तदेहसमुडवा ॥ २९ ॥  
मतिस्थाना मनोमादौ मनोमाता मनोन्मनी ।  
मन्दबुद्धिहरो सृष्ट्यर्मृत्युहन्तौ मनःप्रिया ॥ ३० ॥  
महाभक्तो महाशक्तो महाशक्तिर्मदान्तरा ।  
मणिपूरप्रकाशश्च मणिपूरविभेदिनी ॥ ३१ ॥  
मङ्गारकूटनिलीयो मणिमाला मनोहरा ।  
माऽक्षरो मातृकावर्णा मातृकाबीजमालिनी ॥ ३२ ॥  
महातेजो महारश्मिमन्दहास्या मधुप्रिया ।  
मधुमांससमुत्पन्नो मधुमांसविहारिणी ॥ ३३ ॥  
मैथुनानन्दनिरतो मैथुनाह्लादहारिणी ।  
मुरारिप्रेमसन्तुष्टो मुरारिकरसेविता ॥ ३४ ॥  
माख्यचन्दनदिग्धाङ्गो मालिनी मन्त्रजीविका ।  
मन्त्रजालस्थितो मन्त्री मन्त्रिणां मन्त्रसिद्धिदा ॥ ३५ ॥  
मन्त्रचैतन्यकारी च मन्त्रसिद्धिप्रिया मता ।

महातीर्थप्रियो मेघो महासिंहासनस्थिता ॥ ३६ ॥  
 महाक्रोधसमुत्पन्नो महाबुद्धिप्रदायिनी ।  
 मरणज्ञानरहितो महामरणनाशिनौ ॥ ३७ ॥  
 मरणीद्भूतहन्ता च महामुद्रान्विता मुदा ।  
 महामोदकरो मारो मारस्था मारनाशिनौ ॥ ३८ ॥  
 महाहेतुहरो मार्गी महापुरनिवासिनौ ।  
 महाकौलिकपालश्च महदैत्यविनाशिनौ ॥ ३९ ॥  
 मार्त्तण्डकोटिकिरणो मृतिहन्ती मृतिस्थिता ।  
 महाशैलासनो मायी महाकालगुणोदया ॥ ४० ॥  
 महाजयो महारुद्रो महारुद्रारुणाकरा ।  
 मनोवर्त्ममृजोमाख्यो महातरुणरूपिणी ॥ ४१ ॥  
 मुण्डमालाधरो माद्या मोचपुष्पमृजाऽमला ।  
 मङ्गलप्रेमभावस्थो महाविद्युत्प्रभाचला ॥ ४२ ॥  
 मात्राधारी मतिस्थैर्य्या मतभेदप्रकारिणी ।  
 महापुराणवेत्ता च महापौराणिकामृता ॥ ४३ ॥  
 मौनविद्यो महामन्त्री महाधननिवासिनी ।  
 मघवा माघमासस्थो महाशैत्या महोरगा ॥ ४४ ॥  
 महाफणिधरो मायो मातृकायन्त्रवासिनी ।  
 महाविभूतिदानाढ्यो मेरुवाहनवाहना ॥ ४५ ॥  
 महाह्लादो महामित्रो महामैत्रेयपूजिता ।  
 मार्कण्डेयसिद्धिदाता मार्कण्डेयायुषिस्थिता ॥ ४६ ॥  
 मार्कण्डेयो मृकुप्रीतो मातृकामण्डलेश्वरी ।  
 मानसस्थो मानदाता मनोधरणतत्परा ॥ ४७ ॥  
 मयदानवचित्रस्थो मयदानवचित्रिणी ।  
 महद्गुणधरानन्दो महानिन्दाविहारिणी ॥ ४८ ॥  
 महेश्वरस्थितो मूलो मूलविद्याकुलोदया ।

मायापो मोहनन्यासी महागुरुनिवासिनी ॥ ४८ ॥  
 महाशुक्लाम्बरधरो मलयगुरुधूपिता ।  
 मधुपेशो मधून्नासो माध्वीरससमाश्रया ॥ ५० ॥  
 महागुरुर्महादेहो महोक्ताहा महोत्वणा ।  
 मध्यपङ्कजसंस्थाता मध्याम्बुजविनोदिनी ॥ ५१ ॥  
 भारीभयहरो मन्त्रो मन्त्रग्रहविरोधिनी ।  
 महामण्डलयोन्यादिर्मदघूर्णितलोचना ॥ ५२ ॥  
 महासह्यो मत्तकालो महाकपिलवर्त्तिनी ।  
 भेषवाहो महावक्त्रो मनसा मालधारिणी ॥ ५३ ॥  
 मरणाश्रयहन्ता च महागुरुगणस्थिता ।  
 महापद्मस्थितो मन्त्री मन्त्रविद्याविधीश्वरी ॥ ५४ ॥  
 मकरासनसंस्थश्च महामृत्युविनाशिनी ।  
 मोहनो मोहिनीनाथो मर्त्यमण्डलवासिनी ॥ ५५ ॥  
 महाकालकुलश्रीशो महत्कामादिनाशिनी ।  
 मूलपद्मनिवासी च महामूलफलोदया ॥ ५६ ॥  
 मासाख्यो माननिलयो मङ्गलस्या महद्गुणा ।  
 मायाच्छन्नहरो मीनो मीमांसागुणवासिनी ॥ ५७ ॥  
 मीमांसाकारको मायी मार्जारसिद्धिदायिनी ।  
 मेदिनीवल्लभश्चेमो मेदिनीज्ञानमेदिनी ॥ ५८ ॥  
 मौषलीशो मुषार्थस्थो मनःकल्पितकेशरी ।  
 मनसः श्रीधरो जापो मन्दाट्टहासशोभिता ॥ ५९ ॥  
 मैनाको भेनकापुत्रो मायाच्छन्ना महत्क्रिया ।  
 महाक्रियो महाहंसश्च मण्डलासनशोभिता ॥ ६० ॥  
 मायाधारणकर्त्ता च महद्देषविनाशिनी ।  
 मुक्ताऽऽकाशी मुक्तदेहो मुक्तिदा मुक्तिमालिनी ॥ ६१ ॥  
 मुक्ताहारधरो मुक्तो मुक्तिमार्गप्रकाशिनी ।

महामुक्तिरुमाच्छन्नो महागिरिनिवासिनौ ॥ ६२ ॥  
 मुषलाद्यस्त्रहस्तश्च महःगौरो मनःप्रिया ।  
 महाधनी महामानी मनोन्मत्ता मनोलया ॥ ६३ ॥  
 महारणगतो भान्तो महावौषाविनोदिनी ।  
 महाशत्रुनिहन्ता च महास्त्रजालमालिनी ॥ ६४ ॥  
 महारुद्रो महाशालः महाकितवमोदिनी ।  
 महाविद्रुमपूरस्था विद्रुमाभाऽमृतप्रभा ॥ ६५ ॥  
 पुष्पमालाधरो भान्यः शत्रूणां कुलनाशिनी ।  
 कोजागरा विमर्गस्था बीजमालाविभूषिता ॥ ६६ ॥  
 बीजचन्द्रा बीजपूरे बीजाभा विघ्ननाशिनी ।  
 विशिष्टा विधिमोक्षस्था वेदाङ्गपरिपूरणी ॥ ६७ ॥  
 किरातिनीपतिः श्रामान् विज्ञा विज्ञजनप्रिया ।  
 वर्गस्थो वर्गसम्पर्को वर्गमालाविभूषिता ॥ ६८ ॥  
 महाद्रुमगतः शूरो विजसत्कोटिचन्द्रभा ।  
 महाकुमारनिलयो महाकामकुमारिका ॥ ६९ ॥  
 कालजालक्रियानाथो विफला कमलासना ।  
 खण्डबुद्धिहरो भावो भवभीतिदुरापहा ॥ ७० ॥  
 असंख्यको रूपसंख्यो नामसंख्यादिपूरणी ।  
 कम्बलाद्यासनः कोषः किङ्किणीजालमालिनी ॥ ७१ ॥  
 चन्द्रयुक्तमुखाम्भोजो विभायुतसमानना ।  
 कालबुद्धिहरो कालो भगवत्यम्बिकाण्डजा ॥ ७२ ॥  
 अण्डस्थकोऽण्डवाहस्थो विवाटरहितावृता ।  
 पञ्चमाचारकुशलो महापञ्चमलालसा ॥ ७३ ॥  
 विकारशून्यो दुर्द्वेषी द्विपदा मानुषक्रिया ।  
 मयदानवकर्मस्थो विधाहकर्मबोधिनौ ॥ ७४ ॥  
 कलिकालक्रियारूढो वायवी चर्घरध्वनिः ।

सर्वसञ्चारकर्त्ता च सर्वसञ्चारकर्त्तृका ॥ ७५ ॥  
 मन्दमन्दगतिः प्रेगो मन्दमन्दगतिस्थितिः ।  
 साङ्गहासो विधुकलघाघोरघोरयातना ॥ ७६ ॥  
 महानरकहर्त्ता च नरकादिविनाशिनी ।  
 पञ्चराश्रमसमुद्भूतो नागादिरणघातिनी ॥ ७७ ॥  
 गरुडासनसंयुक्ता गरुडप्रेमवर्द्धिनी ।  
 अश्वत्थवृक्षनिलयो वटवृक्षतलस्थिता ॥ ७८ ॥  
 चित्राङ्गः प्रथमा बुद्धिः प्रपञ्चप्रारसङ्गतिः ।  
 प्रसिद्धः पावनी पुच्छा सुस्थः सर्गपराऽचरा ॥ ७९ ॥  
 स्थितिकर्त्ता स्थितिच्छाया विषदा हृत्प्रधारिणी ।  
 दाडिमाभासकुसुमो दाडिमोद्भवपुष्पिका ॥ ८० ॥  
 दाढ्या द्वाविडदेशस्था रतिकालापवर्द्धिनी ।  
 रत्नगर्भा रत्नमाला रत्नेश्वर इवागतिः ॥ ८१ ॥  
 खेचरो खेखरः सुस्थो महाखड्गधराऽव्यया ।  
 किशोरभावखेलस्थो विखलादिप्रकारिका ॥ ८२ ॥  
 महाशब्दप्रकाशश्च महाशब्दप्रकाशिका ।  
 चारुहासो विपद्दन्ता शत्रुमित्रगणस्थिता ॥ ८३ ॥  
 वज्रदण्डधरो व्याघ्रो वियतखेलनखञ्जना ।  
 गदाधरः शूलधरो शशी कूर्परगावला ।  
 वसनासनकारी च वसना वसनप्रिया ॥ ८४ ॥  
 महाविद्याधरो गुप्तो विशिष्टगोपनक्रिया ।  
 गुप्तगौरी गायनस्थो गुप्तशस्त्रफलप्रदा ॥ ८५ ॥  
 योगविद्यापुराणश्च योगविद्याविभा कला ।  
 एककालो द्विकालश्च त्रिकालफलदाम्बुदा ॥ ८६ ॥  
 अष्टादशभुजो रौद्रो भुजगा शिघ्रनाशिनी ।  
 विद्यागोपनकारी च विद्यासिद्धिप्रदायिनी ॥ ८७ ॥



विजयानन्दगो मन्दो महाकालमहेश्वरी ।  
 भूरिदानरतो मार्गो महागीताप्रकाशिनी ॥ ८८ ॥  
 वेशाद्यावेशसन्तानो मङ्गलाभा कुलान्तरा ।  
 द्विभुजो वेदवाहुश्च षड्भुजा कामचारिणी ॥ ८९ ॥  
 चन्द्रकान्तो मात्यधरोऽलकातिलकरागिणी ।  
 त्रिभङ्गदेहनिकरो विभङ्गस्था विनोदिनी ॥ ९० ॥  
 त्रिकूटस्थस्त्रितारस्थस्त्रसरेणुस्त्रिकालजा ।  
 एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च वक्त्रशुन्या शिशुप्रिया ॥ ९१ ॥  
 श्रीविद्यामन्त्रजालस्थो विज्ञानकुशलेश्वरी ।  
 घटासवगतो गौरो गौरवो गैरिकाऽचला ॥ ९२ ॥  
 गुरुज्ञानगतो गन्धो गन्धभोग्या गिरिध्वजा ।  
 हारमण्डलमध्यस्थो विकटा पुष्पकानना ॥ ९३ ॥  
 कामाख्या निरहङ्कारः कामाकामविकाशजा ।  
 सुलभो दुर्लभा क्षीणा सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपिणी ॥ ९४ ॥  
 श्रीवैजजापको क्रूरो विमोहगुणनाशिनी ।  
 अकुलोऽतिकुलोदासो विभुरूपा सरस्वती ॥ ९५ ॥  
 अनन्ताधारनिलयो विहङ्गगणगामिनी ।  
 अच्युतेशः प्रकाण्डस्थः प्रचण्डफलवासिनी ॥ ९६ ॥  
 अभ्रान्तो भ्रान्तिरहितो भ्रान्तो भ्रान्तिप्रतिष्ठिता ।  
 अव्यर्थो व्यर्थवाह्यस्थो विशङ्का शङ्कयान्विता ॥ ९७ ॥  
 यमुनापतिपः पीनो महाकालवशापहा ।  
 जम्बुद्वीपेश्वरः पारः पारावारहुताशिनी ॥ ९८ ॥  
 वज्रदण्डधरः शान्तो मिथ्यागतिरतिान्द्रया ।  
 अनन्तशयनोऽमूलः परमाह्लादवर्दिनी ॥ ९९ ॥  
 सिताभ्रनिलयो ध्येयो वसन्तकालसुप्रिया ।  
 विरजान्दोलितोद्भिन्नो विशुद्धगुणमण्डिता ॥ १०० ॥

आञ्जनेशः खाण्डनेशः पललाऽऽसवभक्षिणी ।  
 अङ्गभासा कृतस्नानः सुधारमकलान्तरा ॥ १०१ ॥  
 फलवीजधरो दौर्गा हारपालनपल्लवा ।  
 पिप्पलादो वारुणश्च विख्याता रतिवल्लभा ॥ १०२ ॥  
 संमारविग्रहो विप्रो विषसा कामरूपिणी ।  
 कलिकामानलः कृत्यः कलिकामानलापहा ॥ १०३ ॥  
 कामानलो वियत्कायो सुकाम्या कामरूपिणी ।  
 अवलापो लापलपा विल्लुप्ता कंसनाशिनी ॥ १०४ ॥  
 हठात्कारगतो चामो वाचामो वितयप्रिया ।  
 सर्वकालसुखाच्छन्नो जिताजितगुणोदया ॥ १०५ ॥  
 भास्वत्किरीटो भद्रारो करणेशी तलान्तरा ।  
 अमूच्यरत्नदानाद्यो दिवारात्रिखण्डजा ॥ १०६ ॥  
 मारवीजो महामानी हरवीजादिषंस्थिता ।  
 अनन्तवासुकीगानो लाकिनी काकिनी द्विधा ॥ १०७ ॥  
 कोटिध्वजो बृहद्गर्गसामुण्डा रणचण्डिका ।  
 उमेशो रत्नमालेशो विकुम्भगणपूजिता ॥ १०८ ॥  
 निकुम्भपूजितः कृष्णो विष्णुपत्नी सुधात्मिका ।  
 कम्पकानहरो कुम्भो महाकुम्भास्त्रधारिणी ॥ १०९ ॥  
 ब्रह्मास्त्रधारकः क्षिप्रो वनमालाविभूषिता ।  
 एकाक्षरो द्वात्रिंशच्च षोडशाक्षरसम्भवा ॥ ११० ॥  
 अतिगम्भीरवातस्थो महागम्भीरवाद्यगा ।  
 त्रिदिवैशस्त्रदशात्मा तृतीया त्राणकारिणी ॥ १११ ॥  
 क्रियत्कालवलानन्दो विहङ्गमार्गनाशना ।  
 गीर्वाणो वाणहस्तश्च बाणहस्ता विधुक्कुला ॥ ११२ ॥  
 विन्दुधर्मीज्वलोदारो विशञ्जलनकारिणी ।  
 विरामव्यासपूज्यश्च नवदेशी प्रधानिका ॥ ११३ ॥

विलीलवदनी व्याघो विरामो मोदकारिणी ।  
 हिरण्यहारभूषाङ्गः कलिन्दनन्दिनी नगा ॥ ११४ ॥  
 अनन्यक्षीणवचाश्च क्षितिक्षोभविनशिका ।  
 क्षणक्षेत्रप्रसादाङ्गो विशिष्टानामधीश्वरी ॥ ११५ ॥  
 रेवातीरनिवासा च गङ्गातीरनिवासिनी ।  
 गङ्गेशः पुष्करेशश्च व्यासभाषा विशेषका ॥ ११६ ॥  
 आतुरानाथसंज्ञश्च रामेश्वरसुपूजिता ।  
 रमानाथः प्रभुः प्राप्तिः कीर्तिश्चहाभिधारिणी ॥ ११७ ॥  
 लम्बोदरः प्रेमकालो लम्बोदरकुलप्रिया ।  
 अर्द्धदंष्ट्रो ध्यानपरो लोचनायुतधारिणी ॥ ११८ ॥  
 अव्यर्थवचनप्राज्ञो विद्या वागीश्वरी तथा ।  
 श्रीं श्रीं शब्दमणोः स्मृतिः कलिङ्गजीवनेश्वरी ॥ ११९ ॥  
 श्रीं श्रीं श्रीं त्रितरङ्गाद्या गुप्तचक्रात्मिकात्मदा ।  
 मणिनागगतो गन्ता वागीशानो बलप्रदा ॥ १२० ॥  
 कुलासनगतो नाशो त्रिनासा नाशसुप्रिया ।  
 विनाशमूलः कूलस्थः संहारकुलकेश्वरी ॥ १२१ ॥  
 त्रिनाक्षगुणविभ्रेन्द्रो मङ्गटाश्चर्यचित्रिणी ।  
 आशुतोषगुणाच्छत्रो मटविह्वलसुन्दरी ॥ १२२ ॥  
 विरूपाक्षो लेलिहश्च महासुद्राप्रिकाशिनी ।  
 अष्टादशाक्षरो रुद्रो मकरन्दसुबिन्दुगा ॥ १२३ ॥  
 कृत्रचासरधारो च कृत्रदात्री त्रिपुण्ड्रजा ।  
 इन्द्रात्मको विधाता च धनदानादिकारिणी ॥ १२४ ॥  
 कुण्डली परमानन्दो मधुपुष्पसमुद्भवा ।  
 विल्ववृक्षस्थो रो रुद्रो नयनाम्बुजरागिणी ॥ १२५ ॥  
 हिरण्यगर्भः कौमारो विरूपाक्षः कतुप्रिया ।  
 श्रीवृक्षनिक्षयः श्यामो महाकुलतरुद्भवा ॥ १२६ ॥

कुलवृक्षस्थितो विद्वान् हिरण्यरजतप्रिया ।  
 कुलेशः प्राणपः प्राणः पञ्चचूडधरो धरा ॥ १२७ ॥  
 उषती वेदिकानाथो धर्माधर्मविवेचका ।  
 शीतलाप्तः शीतहीनो मनस्यैथकरी क्षया ॥ १२८ ॥  
 कुक्षिस्थः क्षणभङ्गस्थो गिरिपीठनिवासिनी ।  
 स्वर्गकायः प्रसन्नात्मा प्रसन्नवनवासिनी ॥ १२९ ॥  
 प्रतिष्ठेशः प्राणधर्मो ज्योतीरूपा भृगुप्रिया ।  
 धर्मध्वजपताकेशो बलाकाशतवर्द्धनी ॥ १३० ॥  
 मेरुशृङ्गगतो धूर्तो धूर्तमत्ता खलस्यूहा ।  
 सेवासिद्धप्रदोऽनन्तोऽनन्तकार्या विभेदिका ॥ १३१ ॥

आप्तवशुद्धेः परिमाणान्तरम् ।—

अन्येषां तोलकञ्चैकं संशुध्य भक्षणं चरेत् ।  
 पुनस्तेषां महाकाल-मनुं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ १३२ ॥  
 सकलं चामरायोगं मन्त्रेणानेन भक्षयेत् ।  
 तारद्वयं समुद्धृत्य श्रियुग्मं तदनन्तरम् ॥ १३३ ॥  
 विसर्गाबन्धुसंयुक्तं तत्पश्चादमृतामुखी ।  
 मरणं चारय हन्धं योगसिद्धिं ततःपरम् ॥ १३४ ॥  
 देहि देहि पटस्थान्ते स्वाहान्तं मन्त्रमुत्तमम् ।  
 एतन्मन्त्रेण चोद्धृत्य मन्त्रयित्वा प्रभक्षयेत् ॥ १३५ ॥  
 एतत्काण्डस्य मन्त्रन्तु तत्रैव परियोजयेत् ।  
 निर्गुण्डीमन्त्रवीजन्द्रं शृणु वक्ष्यामि भैरव ! ॥ १३६ ॥

आप्तवशुद्धेर्मन्त्रान्तरम् ।—

कामवीजत्रयं-पश्चात् कालीवीजत्रयं तथा ।  
 सर्वयोगं ततः पश्चात् साधय हयमेव च ॥ १३७ ॥  
 असृत्त्वं भयिशब्दं समर्प्य हयं तथा ।  
 ब्रह्मबीजं ततः पश्चात् विराटपीठवासिनी ॥ १३८ ॥

आसवशुद्धेः स्तोत्रान्तरम् ।—

विच्छेदः छेदभेदश्च क्लृप्तशास्त्रप्रकाशिका ।  
 चारुकान्तालङ्कृतश्च सप्तहाटकरूपिणी ॥ १३९ ॥  
 परानन्दरसज्ञानो रससन्तानमन्त्रिणी ।  
 प्रतीक्षः सूक्ष्मशब्दश्च प्रसन्नसङ्गतिप्रिया ॥ १४० ॥  
 अमायी सागरोद्भूता बन्ध्यादोषविवर्जिता ।  
 जितधर्मकुलवृत्तो व्यापिका भटवाहना ॥ १४१ ॥  
 व्याघ्रचर्माम्बरो योगौ महापीठा बलप्रदा ।  
 वरदाता सारदाता ज्ञानदाऽऽनन्दवाहिनी ॥ १४२ ॥  
 चारुकेशधरो मान्यो विशालगुणदाऽम्बरा ।  
 ताडङ्कमालानिर्मान्य-धरस्ताडङ्कमोहिनी ॥ १४३ ॥  
 पञ्चालदेशसम्भूतो विशुद्धेश्वरवल्लभा ।  
 किरातपूजितो व्याधो मनुचिन्तापरायणा ॥ १४४ ॥  
 शिववाक्यरतो रामो भृगुरामकुलेश्वरी ।  
 स्वयम्भूकुसुमाच्छन्नो विधिविद्याप्रकाशनी ॥ १४५ ॥  
 प्रभाकरतनूद्भूतो विशल्यकरणीश्वरी ।  
 उग्रतीक्ष्णरसम्पर्को योगविज्ञानवामिनी ॥ १४६ ॥  
 उत्तमो मध्यमो वाच्यो वाच्यावाच्यत्राङ्गना ।  
 आं वीजवादबोधाढ्यो मन्दरोदरकरिणो ॥ १४७ ॥  
 कृष्णसिद्धान्तसंस्थानो युद्धसाधनचर्चिका ।  
 मथुरामुन्दरीनाथो मथुरापीठवासिनी ॥ १४८ ॥  
 सर्वशास्त्रविभेदश्च मत्तसिंहसनाऽऽसना ।  
 इतिहासप्रियो धीरो विमलामलरूपिणी ॥ १४९ ॥  
 मणिसिंहासनस्थश्च मणिपूरजयोदया ।  
 भद्रकाली जपानन्दा भद्रा भद्रप्रकाशिनी ॥  
 श्रीभद्रो भद्रनाथश्च भवभङ्गविधिंसनी ॥ १५० ॥

आत्मारामो विधेयात्मा शूलपाणिः प्रियान्तरा ।  
 अभिविद्यादृढाभ्यासो विशेषविधिदायिनी ॥ १५१ ॥  
 द्वितोयानाथ ईशार्धो वादरायणमोहिनी ।  
 ऋगमांसासनो भीमो भौमनेत्रा भयानका ॥ १५२ ॥  
 शिवज्ञानक्रमो दक्षो क्रियायोगपरायणा ।  
 कुलस्थो दानसम्मानो दन्तुरा पार्वती परा ॥ १५३ ॥  
 प्रियानन्दो दिवाकर्त्ता निशानिष्ठादघातिनी ।  
 अष्टहस्तो विलोलाक्षो मनःस्थापनकारिणी ॥ १५४ ॥  
 ऋदुपुत्रो ऋदुच्छ्रवो विभाण्डकुलनन्दनी ।  
 अन्तरीक्षगतो मूलो मनःसूत्रप्रकाशिनी ॥ १५५ ॥  
 अभीतिहाननिरतो विधुमालामनोहरौ ।  
 चतुरस्रो हृषीकेशो धनिकन्या कुतूहली ॥ १५६ ॥  
 शिशुपालरिपुप्राणो विद्वेषिज्वरदायिनी ।  
 अतिधार्मिकपुत्रश्च चारुसिंहासनस्थिता ॥ १५७ ॥  
 स्थापको गुणवर्गाणां सतां सिद्धिप्रकाशिनी ।  
 सिद्धिप्रियो विशालाक्षो ध्वंसकर्त्री निरञ्जना ॥ १५८ ॥  
 शक्तीशो विकलेशश्च क्रतुकर्मफलोदया ।  
 विफलेशो वियङ्गामी ललिता बुद्धिवाहना ॥ १५९ ॥  
 मलयद्रितपःक्षेम-क्षयकर्त्ता रजोगुणा ।  
 हिरण्यको हारपालो नानाविघ्नविनाशिनी ॥ १६० ॥  
 मायापद्मगतो मायी मारीविद्याविनाशिनी ।  
 द्विङ्गुलादिस्थितः सिद्धो विदुषां वादसाधिनी ॥ १६१ ॥  
 श्रीपतीशः श्रीकरेशः श्रीविद्या भुवनेश्वरौ ।  
 भतिप्रथमतो धन्यो मिथिलानाथपुत्रिका ॥ १६२ ॥  
 रामचन्द्रप्रियप्राप्तो रघुनाथकुलेश्वरौ ।  
 कर्मकुलगतो धीरो वनदुर्गा गिरौश्वरौ ॥ १६३ ॥

राजराजेश्वरो बालो रतिपीठगुणान्तरा ।  
 कामरूपधरो ज्ञासो विदग्धकामरूपिणी ॥ १६४ ॥  
 अतिथीशः क्षुब्धभर्ता नानाऽलङ्कारशोभिता ।  
 नानाऽलङ्कारभूषाङ्गो वनमालाविभूषणा ॥ १६५ ॥  
 जगन्नाथो जगद्ग्रापी जगतामिष्टसिद्धिदा ।  
 जगत्कामो जगज्जापी जयन्ती जयदायिनी ॥ १६६ ॥  
 जयकारी जीवकारी जयदा जीवनी जया ।  
 जयो गणेशः श्रीदाता मञ्चपीठनिवासिनी ॥ १६७ ॥  
 विषमः सामवेदस्थो यजुर्वेदाशया रमा ।  
 त्रिकालगुणगम्भीरो द्वाविंशतिकराम्बुजा ॥ १६८ ॥  
 सहस्रबाहुर्भावस्थो भावना भवभाविनी ।  
 भवनादकरो मार्गो विनीता नयनाम्बुजा ॥ १६९ ॥  
 सर्वत्राकर्षको खण्डः सर्वज्ञानाभिकर्षिणी ।  
 जिताग्रयो जितरिपुः कलङ्कदोषवर्जिता ॥ १७० ॥  
 निराधरो निरालम्बो विषयाज्ञानवर्जिता ।  
 अतिविस्तारवदनो विवादखलनाशिनी ॥ १७१ ॥  
 आर्य्यनाथः क्षोभनाशो रिपूणां कुलनाशिनी ।  
 आश्रयो भूरिवर्गाणां चारुकुन्तलमण्डिता ॥ १७२ ॥  
 अतिबुद्धिधरो सूक्ष्मो रजनीध्वान्तनाशिनी ।  
 ज्योत्स्नाजालकरो योगौ विद्योगगामिनीयुता ॥ १७३ ॥  
 युगगामो योगगामी जयदानकरो शिवा ।  
 संज्ञाबुद्धिकरो भावो भवभीतिविमोहिनी ॥ १७४ ॥  
 सुन्दरः सुन्दरानन्दो रतिकामातिसुन्दरी ।  
 रतिज्ञानो रतिसुखो रतिसुखप्रकाशिनी ॥ १७५ ॥  
 बुद्धिरूपी बोधमात्रा द्विबोधाहेतवर्जिता ।  
 भूरिभावहरानन्दो भूरिसन्तानदायिनी ॥ १७६ ॥

यज्ञसाधनकर्ता च सुयज्ञः परमासना ।  
 कोटिकोटिचन्द्रतेजाः कोटिकोटिरविच्छृटा ॥ १७७ ॥  
 कोटिकोटिचन्द्रनाभो द्विकोटियुतचञ्चला ।  
 कोटिसूर्याच्छ्वदेहः कोटिकोटिरविप्रभा ॥ १७८ ॥  
 कोटिचन्द्रकान्तमणिः कोटीन्दुकान्तनिर्मला ।  
 शतकोटिविधुमणिः शतकोटीन्दुकान्तगा ॥ १७९ ॥  
 विलसत्कोटिकालाग्निः कोटिकालानलोपमा ।  
 कोटिकोटिवाङ्मनिभो वङ्मजायाद्विठीङ्गवा ॥ १८० ॥  
 महातेजा वङ्मराशिः कालाग्निहारधारिणी ।  
 कालाग्निरुद्रो भगवान् कालाग्निरुद्ररूपिणी ॥ १८१ ॥  
 कानात्मा कलिकालात्मा कालिका कुलनाशिनी ।  
 मृत्युजिन्मृत्युजेता च मृत्युञ्जयमनुप्रिया ॥ १८२ ॥  
 महामृत्युङ्गरो मृत्युरपमृत्युविनाशिनी ।  
 जयो जयेशो जयदो जयदा जयवर्द्धिनी ॥ १८३ ॥  
 जयाकारो जगद्धर्मो जगज्जीवनरक्षिणी ।  
 सर्वजित् सर्वरूपी च सर्वदा सर्वभाविनी ॥ १८४ ॥  
 श्रीं श्रीं श्रीं इति कथितं महाविद्याभिधानकम् ।  
 शब्दब्रह्ममयं साक्षात् कल्पद्रुमफलान्वितम् ॥ १८५ ॥  
 अष्टोत्तरसहस्राख्यं नानामन्त्रसमाकुलम् ।  
 त्रैलोक्यमङ्गलं क्षेत्रं सिद्धिविद्याफलप्रदम् ॥ १८६ ॥  
 सकलं निष्कलं साक्षात् कल्पद्रुमफलान्वितम् ।  
 योगिनामात्मविज्ञानं मोक्षज्ञानकरं परम् ॥ १८७ ॥  
 यः पठेद् भावसम्पूर्णो मिथ्याधर्मविवर्जितः ।  
 रुद्रपीठे स्वयं भूयो महायोगी भवेत् भुवम् ॥ १८८ ॥  
 अकस्मात् सिद्धिमाप्नोति चाधिकं मान्यदायिनीम् ।  
 राजलक्ष्मीं धनैश्वर्यमतिधैर्यं हयादिकम् ॥ १८९ ॥



कुञ्जरं सुन्दरं धीरं पुत्रं राज्य सुखं जयम् ।  
 राजराजेश्वरत्वञ्च दिव्यवाहनमेव च ॥ १८० ॥  
 अक्षेशपञ्चमां सिद्धिं ततः प्राप्नोति मध्यमाम् ।  
 अत्यन्तदुःखहननं गुरुत्वं लोकमण्डले ॥ १८१ ॥  
 देवानां भक्तिभावञ्च दिव्यभावं सदासुखम् ।  
 आयुर्वृद्धिं लोकवश्यं पूर्णकोषं हि गोधनम् ॥ १८२ ॥  
 देवानां वाक्यश्रवणं प्रत्यक्षे स्वप्नकालके ।  
 दीर्घदृष्टिं भयत्यागं चाल्पकार्यं विवर्जितम् ॥ १८३ ॥  
 सदा धर्मप्रियत्वञ्च धर्मज्ञानं महागुणम् ।  
 विवेकाङ्कुरमानन्दं श्रावणीसुकृपान्वितम् ॥  
 तत उत्तमयोगस्थां प्राप्नोति साधकोत्तमः ॥ १८४ ॥  
 अत्यन्तगुह्यसंस्थानं मायार्थभूतिवर्जनम् ।  
 एकान्तस्थानवसतिं योगशास्त्रनियोजनम् ॥ १८५ ॥  
 सर्वाकाङ्क्षाविशून्यत्वं देवतैकान्तसेवनम् ।  
 खेचरत्वं सर्वगतिं भावसिद्धिं सुरप्रियाम् ॥  
 सदा योगक्रियायोगं विभूत्यष्टाङ्गसिद्धिदम् ॥ १८६ ॥  
 दृढज्ञानं धर्मशास्त्रे कवित्वं रसभागरम् ।  
 एकभावं द्वैतशून्यं महापदनियोजनम् ॥ १८७ ॥  
 महागुणवती विद्या-पतित्वं शान्तिमेव च ।  
 प्राप्नोति साधकश्रेष्ठो यः पठेद्भावनिस्रलः ॥ १८८ ॥  
 त्रिकालमिककालं वा द्विकालं वा पठेत् सुधौः ।  
 शतमष्टोत्तरद्वास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ १८९ ॥  
 पुरश्चरणमाकृत्य पठित्वा च पुनःपुनः ।  
 अष्टैश्वर्य्ययुतो भूत्वा विशुद्धसङ्गमो भवेत् ॥ २०० ॥  
 विशुद्धपद्मं भित्त्वा च शीघ्रं द्विदलगो भवेत् ।  
 द्विदलादि महापद्मं भित्त्वेतत्स्त्रोत्रपाठतः ॥

चतुर्वर्गक्रियां कृत्वा चान्ते निर्वाणमोक्षभाक् ॥ २०१ ॥  
 योगिनां योगसिद्धयर्थं सर्वभूतशुभोदयात् ।  
 निर्वाणमोक्षसिद्धयर्थं कथितं परमेस्वर ! ॥ २०२ ॥  
 एतत्स्तोत्रप्रपठेन किं न सिध्यति भूतले ? ॥ २०३ ॥  
 कुलाकुलक्रमेणैव साधयेत् योगसाधनम् ।  
 योगान्ते योगमध्ये तु योगाद्ये प्रपठेत् स्तवम् ॥ २०४ ॥  
 कृत्तिका-रोहिणीयोगे आर्द्रायां मिथुने तथा ।  
 श्रवणायां मेघलग्ने कुजे कुहूममाकुले ॥ २०५ ॥  
 संक्रान्त्याञ्च शनिवारे कुजवारे पुनर्वसौ ।  
 सन्ध्याकाले लिखेत् स्तोत्रं ध्यानशरणयोगवित् ॥ २०६ ॥  
 भूर्जपत्रे लिखित्वा च करुढे शीर्षे प्रदापयेत् ।  
 अथवा रात्रियोगे च कुलचक्रे लिखेत् सुधीः ॥ २०७ ॥  
 सर्वत्र कुलगोगेन पठित्वा सिद्धिमाप्नुयात् ।  
 एतन्नाम्ना प्रजुहुयात् कानिकाहुतिदानवत् ॥ २०८ ॥  
 तद्दशांशक्रमेणैव हुत्वा योगोह सर्वटा ।  
 मणिपूरे दृढो भूत्वा रुद्रशक्तिरूपां लभेत् ॥ २०९ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उक्तप्रकरणे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धान्तप्रकरणे षट्षकप्रकाशे  
 भैरवी-भैरवसंवादे महाब्रह्मसुब्रह्मसिद्धिप्रयोगोपासनाष्टोत्तरशतसंख्यानः समाप्तः

शान्तिः ॥ त्रिपञ्चाशः पटलः ॥ ५२ ॥

## त्रिपञ्चाशः पटलः ।

श्रीशानन्दभैरव उवाच ।—

कथयस्व वरारोहे ! मणिपूरमनुक्रमम् ।  
 यज्जन्मा मुनयः सर्वे चाष्टसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥  
 प्रजपन् गच्छति क्षिप्रं प्राणायामैरनाहते ।  
 मन्त्रार्थं मनुचेतन्यं निजविप्रहरक्षणम् ॥

तत्परापरग्रन्थस्यं त्रिचार्यै वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

महाभैरव ! कालाग्ने ! मनुज्ञानं निशामय ।

कथयामि तव स्नेहादतिकोमलसाधनम् ॥ ३ ॥

मणिपूरे मन्त्रचैतन्यम् ।—

मनुना मन्त्रचैतन्यं विविधानि शृणु प्रभो ! ।

मणिपूरे तव ज्ञाने यत्प्रसादात्शिवो भवेत् ॥ ४ ॥

एतत्करणमात्रेण योगी भवति निश्चितम् ।

कोटिकोटिमन्त्रजापात्तदर्थं कोटयः स्मृताः ॥ ५ ॥

एतन्मध्ये सारभागं कथयामि कुलार्णव ! ।

सर्वत्र समभावेन संस्मरेन्मूर्त्तिमुत्तमाम् ॥ ६ ॥

शरीरमपरिच्छिन्नं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।

मूलादिमणिपूरान्तं त्रिगुणं मनुरूपकम् ॥ ७ ॥

वर्णमालाऽनुसारेण मुहुर्मुहुर्जपेत् सुधीः ।

पूर्णतैजोमयीं ध्यायेत् कोटिकामग्निरूपिणीम् ॥ ८ ॥

स्वदेवतां सदा ध्यायेत् मूलादिब्रह्मरन्ध्रके ।

तन्मूर्त्तिमपरिच्छिन्नां गृहस्थाननिवासिनीम् ॥ ९ ॥

गभीराह्लादनानन्दां सुधासागरवासिनीम् ।

मूलरन्ध्रे सदा ध्यायेत् कोटिकालानलोज्ज्वलाम् ॥ १० ॥

ज्वलन्तं ध्यानमाकुर्यात् ऋद्धिशिखप्रभाकरम् ।

सुधारसामोदिसुग्धं हव्याग्निमदृशोज्ज्वलम् ॥ ११ ॥

ललाटं चिन्तयेत् कान्तं पूर्णेन्दुकोटिसङ्गमम् ।

विगलद्रसपुञ्जन्तु तद्रसात् प्रोज्ज्वलानलम् ॥ १२ ॥

स्थिरवायुं स्थिराकारं मन्त्रार्थञ्चेति भावयेत् ।

अथवा शुद्धसङ्काशं पूर्णब्रह्ममयं शुभम् ॥ १३ ॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलं ध्यात्वा पुनःपुनः ।

विचिन्तयेत् सूक्ष्मरूपं महागुर्वीं स्वदेवताम् ॥

मन्वार्थञ्चेति तज्ज्ञानं तज्ज्ञानान्बोद्धमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

मणिपूरमन्त्रदेवताध्यानम् ।—

न स्थूलं नातिसूक्ष्मं गुणमयवपुषं विश्वनाथं सुशक्तिं  
सानन्दानन्दचित्तं कलिफलमकलं शुक्लवर्त्तं विशुद्धम् । ।

पीनापीनादिरूपं त्रिगुणगगमनं मूलपद्मादिरन्ध्रे

विश्वात्मानं कुलाख्यं मनुगुणजडितं भावयेत् सिद्धिहेतोः ॥१५॥

चतुःषष्टिचेत्त्रे त्रिगुणजननीं ध्याननिपुणां

महामन्त्राकारं सुव्रतकरजां वेशविषये ।

महाविद्यामाद्यां मनुमथरसाच्छन्नतनुगा-

मवाप्यानन्दाश्रीं कुलपथं भजन्तीह रसिकाः ॥ १६ ॥

समस्तं शून्यार्थं रजतघटनारायणमयं

विभक्तं विन्दुस्थं रविशशिकला वृद्धिकिरणम् ।

जगद्ग्रापाराटिं भवविरहितं भावजाडितं

विकाराधाराहं दशदलयुतं स्थापयति धीः ॥ १७ ॥

सुरासुरभयप्रदं तरुणरूपशोभाकरं

मनोहरकलेवरं, सुकूलदं हसंज्ञापकम् ।

भजन्ति सुतपो नृपा प्रतिदिनं तथेन्द्रादयः

दशच्छदनिकेतने प्रकृतिदेहमध्यस्थितम् ॥ १८ ॥

प्रचण्डवराशयं ध्वनिकलापसंवर्द्धनं

महोत्कटतपःप्रियं भवति चाशुतोषं शिवम् ।

निधाय हृद्दपङ्कजे किमपि नाभिसूलेऽपि वा

दिभावगुणभावनं परिकरोति योगी महान् ॥ १९ ॥

स्वकीयगुणमस्वकी कठिनचित्तसंज्ञापनं

चतुर्भुजकलेवरे दशदलाघ इन्द्रीवरे ।

मनोहरपरं, हरं प्ररगसारमाद्याक्षरं

प्रकृष्टपरमेश्वरे प्रणवरूपमारापयेत् ॥ २० ॥  
 विविक्तमतिनिर्मलं कमलहारमाख्याश्रयं  
 शिवं सकलभास्करं सकलपद्ममध्येऽपि वा ।  
 भुजायुतधरं धराधरधरं हि मुद्राधरं  
 भजति कुलकामिनोपतय ईश वंशमास्यदाः ॥ २१ ॥  
 सदा चरणपङ्कजे विफलहानिमुद्रासये  
 कृपामयसुलक्षणं मतिगमस्त्वसम्भावनम् ।  
 सदैकगुणभावनं परमदेव देवस्य वै  
 त्रिलोकजननीपतिरमलमेव कुर्यात् वशी ॥ २२ ॥  
 एवं जप्त्वा सदा मन्त्रं विश्वमध्ये परः शुचिः !  
 अकस्मान्मन्त्रचेतन्यं प्राप्नोत्यर्थविनिर्णयम् ॥ २३ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उषरतन्त्र महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे  
 षट्पञ्चमोऽध्यायः कैरवी भैरवभवादे मन्त्राश्रितेन-  
 विद्यासो नाम विपश्चातः पटलः ॥ ५३ ॥

### चतुःपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

आनन्दमागराश्वीज-मध्यस्थ ! परमप्रिय ! ।  
 इदानीं कालजालादि-वारणं शृणु भैरव ॥ १ ॥  
 सम्पूज्य सञ्चयाच्छन्नं वायुं स्वाभाविकीगतिम् ।  
 कुम्भयित्वा स्वभावेन चिरकालं सुखो भवेत् ॥ २ ॥  
 शनैः शनै रित्ययित्वा सर्वदा तद्गतो भवेत् ।  
 कालजालवशं याति तत्क्षणाद्भाव संशयः ॥ ३ ॥  
 विना कुम्भकयोगेन को हि सिध्यति भूतले ।  
 वायुचालनमात्रेण सूक्ष्ममार्गोद्दिमेन च ॥ ४ ॥

सिध्यत्येव महायोगी कालजालवशी भवेत् ।  
 न करोति कालवशं मोहादतिसुखोदयात् ॥ ५ ॥  
 कालभक्ष्यो भवेत् सोऽहि म्निद्यते नात्र संशयः ।  
 मणिपूरे मनो दत्त्वा देवतां साधयेत् सदा ॥ ६ ॥  
 स्तोत्रं ध्यानं नामगुणं पठित्वा च पुनः पुनः ।  
 मनोयोगञ्च सर्वत्र वायुना कारयेत् बुधः ॥ ७ ॥  
 कुम्भयित्वा सदा योगी रेचयित्वा पुनः पुनः ।  
 सर्वकालवशं नीत्वा जितात्मा चामरी भवेत् ॥ ८ ॥  
 लोभमोहौ वर्जयित्वा कामक्रोधादिपातक्रम् ।  
 सर्वदा वायुपानञ्च कृत्वा रहसि सदशी ॥ ९ ॥  
 नित्यं वायुसाधनानि षट्चक्रभेदनाय च ।  
 शनैः शनै रेचयेद्द्वै चिरजौवित्वसाधनात् ॥ १० ॥  
 यदि न चिरजौवी स्यात् कालात्मा वायुसेवकः ।  
 षट्चक्रभावंसिद्धान्ते ज्ञानी मृत्युवशी भवेत् ॥ ११ ॥

अमरापञ्चकसाधनम् ।—

अतः कुर्यात् शिवज्ञानं वायुसंसिद्धिकारणम् ।  
 तत्क्रियासाधनार्थाय चादौ पञ्चाऽमराविधिम् ॥ १२ ॥  
 कुर्यात् साधकमुख्यञ्च निजकायप्रसाधनात् ।  
 नेतीयोगं तदा कुर्यात् यदा भवति संयमी ॥ १३ ॥  
 धौतीयोगं तदा कुर्यात् यदा भवति सुस्थिरः ।  
 नेडलीञ्च तदा कुर्यात् यत्र लोको न विद्यते ॥ १४ ॥  
 दन्तीयोगं तदा कुर्यात् यदा मुख्यक्रियारतः ।  
 चालनन्तु सदा कुर्यात् यथा दृष्ट्याविवर्जितः ॥ १५ ॥  
 दृष्टानाशे भवेन्मोक्ष इति मे योगनिर्णयः ।  
 विशेषेण प्रवक्ष्येऽहं शृणु कैलासपावन ! ॥ १६ ॥  
 कृत्वा कार्यमेतदादौ दिवि देवा मुनीश्वराः ।

कायसिद्धिं मुदा कृत्वा छायाभायाविवर्जिताः ॥ १७ ॥  
 सर्वत्रगामिनः सर्वे धर्मशास्त्रार्थपण्डिताः ।  
 शिरजौविन एवापि कमलाश्रीसमन्विताः ॥ १८ ॥  
 तत्तद्भेदान् प्रवक्ष्यामि साधनान् कायलक्षणान् ।  
 यः करोति महादेव ! कायसाधनमुत्तमम् ॥  
 स आयाति समानन्द-सदने नात्र संशयः ॥ १९ ॥  
 प्रभाते च समुत्थाय ब्राह्मे कलिफलोदये ॥ २० ॥  
 सहस्रारे गुरोः षाट्-पङ्कजध्यानमाचरेत् ।  
 विचिन्तयेत्ततः श्रीमान् गुरुरूपां सरस्वतीम् ॥ २१ ॥  
 स्वदेवतां परानन्द-रासिको योगबुद्धिमान् ।  
 प्रणम्य शिरसा निव्यं शीचं कार्यं समाचरेत् ॥ २२ ॥  
 शीचक्रियाक्रमेणैव सिद्धः शुचिगुणान्वितः ।  
 प्रगच्छेत् शीचकार्यार्थं घटमानं जलं नयेत् ॥ २३ ॥  
 सृत्तिकाप्रस्थमानञ्च नीत्वा शीच समाचरेत् ।  
 कुन्यनं सप्तदशकं वर्चस्व्यागं पुनः पुनः ॥ २४ ॥  
 ततस्तर्जन्याल्पतैलैर्वामहस्तास्य शङ्कर ! ।  
 गुदरन्ध्रे समायोज्य चालनं हि पुनः पुनः ॥ २५ ॥  
 यावत्कालं भवेद्वै तु निःशेषेण मलक्षयम् ।  
 तावन्मृत्ययसाऽऽक्ष्वाभ्य शोधयेद्गुदरं सुधीः ॥ २६ ॥  
 यावन्न जायते सौख्यं तावत्कालं समाचरेत् ।  
 तत उत्थाय विधिना सृत्तिकाशीचमाचरेत् ॥ २७ ॥  
 येन क्रमेण विष्टाया गन्धनाशोऽपि जायते ।  
 पादद्वयं समाक्ष्वाभ्य चान्तःशीचं समाचरेत् ॥ २८ ॥

नेतीक्रिया ।—

तत्क्रियासकलं वक्ष्ये शृणु योशेखर ! प्रभो ! ।  
 सूक्ष्मवस्त्रसमुद्भूतं डोरकं सूक्ष्मवस्त्रम् ॥ २९ ॥

नासिकायां दृढतरं कोमलं चातिनिर्मलम् ।  
 शनैः शनैर्नियोज्याथ जिह्वामूले निवेशयेत् ॥ ३० ॥  
 जिह्वामूलात् समादाय वारहादशकं सुधीः ।  
 मन्दमन्दघर्षणन्तु कृत्वा भेदं समाचरेत् ॥ ३१ ॥  
 मयात्रयेण बीजेन देवोबीजत्रयेण च ।  
 रमाबीजत्रयेणापि योगिन्यै नम इत्यपि ॥ ३२ ॥  
 एतन्मन्त्रेण योगेन्द्र ! नेतीयोगं समाचरेत् ।  
 शिरःशुद्धिं समाकृत्य करशोधनमाचरेत् ॥ ३३ ॥  
 ततो वक्षःशोधनन्तु ततो नाभेश्च शोधनम् ।  
 क्रमेण कुर्यात् कार्याथे तत्रकारं शृणु प्रभो ! ॥ ३४ ॥

धौतीक्रिया ।—

धौतीक्रियां समाकुर्यात् तप्तोदकनिषेवणम् ।  
 शुक्लवस्त्रं सूक्ष्मसूत्रं चाष्टाङ्गुलिप्रमाणकम् ॥ ३५ ॥  
 द्वात्रिंशत्तन्तुमानन्तु पूर्णसंख्या उदीरिता ।  
 मन्त्रो प्रथमतः कुर्याच्चतुरङ्गुलवस्त्रकम् ॥ ३६ ॥  
 दीर्घं पञ्चहस्तमानं तप्तोदकसमन्वितम् ।  
 भक्षयेच्छेषजिह्वाग्रे संस्थाप्य वसनं सुखम् ॥ ३७ ॥  
 तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठ-मुद्राभिर्भक्षयेत् सुधीः ।  
 क्रमेण वर्द्धयेन्नित्यं दीर्घं च प्रसरे तथा ॥ ३८ ॥  
 सर्वत्र पूर्वमन्त्रेण संशोध्य बीजमुच्चरेत् ।  
 शक्तिबीजत्रयं पश्चात् कामबीजत्रयं तथा ॥ ३९ ॥  
 लक्ष्मीबीजत्रयं पश्चात् महाधौतनिवासिनि ।  
 मे नाडीमलमन्ते तु क्षालय हयमेव च ॥ ४० ॥  
 नाद्या ( भार्यां ) बन्धे ततः पश्चात् उदरे सन्निवेशयेत् ।  
 शनैर्निवेशमाकृत्य यावत् सर्वं प्रजायते ॥ ४१ ॥



## नेत्रलीक्रिया ।—

ततः कुर्च्यात् साधकेन्द्रो विग्रहक्षेमकारणात् ।  
 नेत्रलीं परमं योगं गात्रस्य दृढबन्धनम् ॥ ४२ ॥  
 घूर्णयिमान्मोकुर्यात् उदरं परमेश्वर ! ।  
 सर्वदा चालनं कुर्च्यात् प्राणवायुप्रधारणम् ॥ ४३ ॥  
 वामे घूर्णितमाक्षत्य दक्षिणे घूर्णितं चरेत् ।  
 एवंक्रमेण देवेश ! पुटपाकं सदाऽऽचरेत् ॥ ४४ ॥  
 एतन्मन्त्रेण देवेश ! शुभासनदृढो भवेत् ।  
 ब्रह्मबीजत्रयं पश्चात् कालीबीजत्रयं ततः ॥ ४५ ॥  
 देवीप्रणवयुग्मन्तु गात्रस्थायै नमो द्विधः ।  
 तदन्ते नाडिकादीनां चालनं पस्माद्भुतम् ॥ ४६ ॥

## दन्तीक्रिया ।—

वक्षःस्थाने महाकाल ! दन्तीयोगिन कारयेत् ।  
 गजमानं दन्तकाष्ठं निर्मलं सुन्दरं मतम् ॥ ४७ ॥  
 दन्तकाष्ठं कारयेद्द्वै मनुना साधकाग्रणीः ।  
 श्यामाबीजत्रयं पश्चात् भैरवीबीजकं त्रयम् ॥ ४८ ॥  
 मर्दिनीबीजयुगलं दन्तकाष्ठनिवासिनि ! ।  
 मे हृद्ग्रन्थिं छिदयेति युगलं वल्लिसुन्दरि ! ॥ ४९ ॥  
 क्रमेण विधिनानेन गलरन्ध्रे निवेशयेत् ।  
 यावन्नाभैरधो याति यावत् सुखमयो न च ॥  
 तावद्दन्तीयोगकार्यं प्रभाते सर्वकार्यकम् ॥ ५० ॥  
 एतदन्ते ततः कुर्च्यान्नाडीचालनमेव च ॥ ५१ ॥

## नाडीचालनक्रिया ।—

तन्मन्त्रं शृणु वीरेन्द्र ! अमरत्वप्रदायकम् ।  
 आदीं प्रणवंमुद्धृत्य दीर्घप्रवणयुग्मकम् ॥ ५२ ॥  
 भुवनेश्रीबीजयुग्मं चन्द्रबीजत्रयं ततः ।

कृष्णबीजत्रयं पश्चात् अर्कबीजत्रयं ततः ॥ ५३ ॥  
 श्रीबीजं मन्मथं लक्ष्मीं शीतले तदनन्तरम् ।  
 शोधयन्नाडिकासूलं मलं चालय युग्मकम् ॥ ५४ ॥  
 स्वाहान्तमनुना नित्यं चालयेत् नाडिकाधमाः ।  
 यावत् तृष्णानाशकः स्वात्तावत्कालं समाचरेत् ॥ ५५ ॥  
 यावदुद्गमशक्तिर्न त्रिदण्डावधि धारणा ।  
 तावन्न जायते नाथ ! चालनं सुखसाधनम् ॥ ५६ ॥  
 यदि भाग्यवशादेव त्रिदण्डवायुकुम्भकम् ।  
 स्वयमेव समायाति नाडिकाचालनं शुभम् ॥ ५७ ॥  
 यावत् सूक्ष्ममलालापं मधुपानं निरन्तरम् ।  
 पादाभोजनिःसृतन्तु परमानन्दवर्द्धनम् ॥ ५८ ॥  
 तत्सुखेनापरिच्छिन्नं सञ्ज्ञाननिर्मलेन च ।  
 चिदानन्दस्वरूपेण स्वानन्दाश्रुविलोचनम् ॥ ५९ ॥  
 तदा हि हृदयग्रन्थिच्छेदनं देहवर्द्धनम् ।  
 तदैव पुलकं स्थैर्यं देहावेशस्थिरं सदा ॥ ६० ॥  
 तदा षट्कुञ्जसिद्धान्त-ज्ञानं चैतन्यनिर्मलम् ।  
 चिदानन्दमयो भूत्वा कृष्णाज्ञानविवर्जितः ॥ ६१ ॥  
 जीवन्मुक्तः परानन्द-रसिकः प्रणयप्रियः ।  
 स्थिरचेता महायोगी भवत्येव न संशयः ॥ ६२ ॥  
 आस्तिकी देवदत्तश्च निन्दावादविवर्जितः ।  
 स एवात्मा महाज्ञानी भवत्येव न संशयः ॥ ६३ ॥

ज्ञानक्रिया ।—

पञ्चयोगं समाकृत्य नेत्यादिकमनुत्तमम् ।  
 ज्ञानं कुर्याद्दिधानेन तीर्थराजनिकेतने ॥ ६४ ॥  
 ईडा-गङ्गाजले वापि पिङ्गला-यमुनाजले ।  
 सुषुम्नायां सरस्वत्यां द्युषु पुष्करकोटिषु ॥ ६५ ॥

तथापि वाह्यस्नाने तु सर्वाङ्गं मस्तकं विना ।  
 सप्तवारं समासिञ्चेत् मस्तकं वाह्यवारिणा ॥ ६६ ॥  
 मार्जनेनापि मनुना मूलमन्त्रेण वा पुनः ।  
 ततोऽङ्गं मार्जयित्वा च सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ॥ ६७ ॥

सन्ध्यावन्दनादिक्रिया ।—

वाह्यसन्ध्यां मन्त्रजालैरन्तरे प्रकृतीश्वरम् ।  
 ऊर्ध्वाधस्तैजसं बिन्दुं नादमण्डलसम्पुटम् ॥ ६८ ॥  
 सन्ध्यावन्दनमाक्त्य महौषधिं प्रभक्षयेत् ।  
 मूलमन्त्रेणाभिमन्त्रा पञ्चगव्यं कुलेश्वरम् ॥ ६९ ॥  
 ततः कुर्यात्सहापूजां स्वस्वमन्त्रोक्तमाधिताम् ।  
 षट्चक्रार्थं ततो ध्यायेद् यदुक्तं विधिना प्रभो ! ॥ ७० ॥  
 कुण्डल्यादिमहापूजां सहस्रनाममङ्गलम् ।  
 अत्यन्तगुह्यकथनं सत्त्वभक्तिप्रकारकम् ॥ ७१ ॥  
 भित्त्वा मेढं मुदा कुर्यान्मणिपीठस्थदेवयोः ।  
 ध्यानं ज्ञानं स्तवं नित्यं यजनं नामकौत्तनम् ॥ ७२ ॥  
 चैतन्यं रुद्रलाकिन्यास्तथा मृत्युञ्जयस्य च ।  
 नित्यं गुरुमयं ध्यात्वा सर्वगामिनमीश्वरम् ॥  
 चिरजीवी महायोगी भवत्येव न संशयः ॥ ७३ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्राद्द्वीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्पञ्चमोऽध्यायः  
 भैरवी-भैरवसंवादे मणिपुरभेदे नाम चतुःपञ्चाशः पटलः ॥ ५४ ॥

## पञ्चपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

पञ्चासवशोधनक्रिया ।—

परापरविमेदन्न ! निगूढज्ञानसाधनम् ।  
 इदानीं शृणु सर्वज्ञ ! पञ्चद्रव्यादिसाधनम् ॥ १ ॥

षट्चक्रपद्मभेदायै यत्कामाञ्जलयते क्षणात् ।  
 अमरं चामरं चैव सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २ ॥  
 ब्रह्मज्ञानसाधनी च ब्रह्मानन्दप्रकाशिनौ ।  
 अमरता तथा ध्येया दूर्वासंज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ३ ॥  
 सिद्धामरा च निर्गुण्डी सर्वसिद्धिप्रदायिनौ ।  
 नीलामरा ततोऽग्रयात्मा नीला तुलसीसंज्ञिता ॥ ४ ॥  
 अमरः स जयापत्रं चामरा विल्वपत्रिका ।  
 शिवप्रियाः सदा पूज्याः पूर्वोक्तां वा समाश्रयेत् ॥ ५ ॥  
 एतद्ब्रह्मणमन्त्राणि शृणु कैलासभूपते ! ।  
 ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च क्रमशो जया ॥ ६ ॥  
 तत्तन्मन्त्रेण संशोध्य भक्षयेन्मनुनाऽमुना ।  
 सर्वासाममरादीनां भक्षणे समुदोरिता ॥ ७ ॥  
 प्रणवं दीर्घप्रणवं कपिले ज्ञानसाधनी ।  
 समयोगं साधयेति युगं स्मरणसम्पुटम् ॥ ८ ॥  
 शाखाप्रशाखाः सम्पूर्णैः महौषधिनिवासिनि ! ।  
 मामेकममरं देव ! कुरु युग्मं ततो द्विधः ॥ ९ ॥  
 अमराशनमन्त्राणि शृणुष्व पार्वतीश्वर ! ।  
 यस्य स्मरणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥ १० ॥  
 शिववद्विहरेल्लोके विल्वपत्रस्य भोजनात् ।  
 श्रौवीजत्रयमुद्धृत्य वाग्देवीत्रितयं ततः ॥ ११ ॥  
 लक्ष्मीकामेश्वरौवौजं रमाकामत्रयं त्रयम् ।  
 "सिद्धविल्वेशि ! परमे ! निगूढतत्त्ववासिनि ! ॥ १२ ॥  
 मामेकज्ञानतत्त्वे तु नियोजय युगं द्विधः ।"  
 एतन्मन्त्रेण वीरेन्द्रो विधितत्त्वाख्यमुद्रया ॥ १३ ॥  
 शोधयित्वा पुनर्नाथ ! अमरास्तासु शोधयेत् ।

अमराशोधनम् ।—

दूर्वा देवि ! त्रिभुवने अमृतत्वप्रदायिनि ! ॥ १४ ॥  
 ग्रन्थिच्छेदभेदकरि ! प्रणवाद्ये पूरेव सा ।  
 ततो हि विष्णुबीजञ्च किङ्किणीबीजमुद्धरेत् ॥ १५ ॥  
 राजराजेश्वरीबीजं श्रीबीजं त्रीणि तत्परम् ।  
 सुधाखण्डे मामिहान्ते सिद्धामरपदं लिखेत् ॥ १६ ॥  
 “देहि देहि नमः स्नाहा” शब्दमुच्चार्य्य शोधयेत् ।  
 एतत् स्मरणमात्रेण चिरकालं सुखी भवेत् ॥ १७ ॥  
 सर्वसंयोगमात्रेण सिद्धो भवति साधकः ।  
 सिद्धामराशोधनन्तु शृणु श्रीचन्द्रशेखर ! ॥ १८ ॥  
 सिद्धामरा च निर्गुण्डी त्रिषु लोकेषु गोपिता ।  
 एतत् प्रधानमूलञ्च पत्रं वा भक्षयेत् सुधीः ॥ १९ ॥  
 मूलाभावे दलं भोज्यं पत्राभावे च मूलकम् ।  
 आनयेत् साधकश्चेष्टः शोभनेन दिनेन तु ॥ २० ॥  
 तदा भवति सिद्धिश्च कौलानां नियमो न हि ।  
 कौलिके सर्वसिद्धिश्च कौलिके योगसाधनम् ॥  
 कुलाचारविहीनानां योगं योगादिकं कथम् ? ॥ २१ ॥  
 विना योगिन भोगादि-सञ्चयो जायते कथम् ? ।  
 योगसञ्चयमात्रेण भोगसाधनमालभेत् ॥ २२ ॥  
 तद्भोगं परमं ज्ञानं ज्ञानासृतनिषेवणम् ।  
 विषयाह्लादभोगादिरनायासेन वर्द्धते ॥ २३ ॥  
 शरीराणामादिकार्य्यं शरीरस्य प्रभोः प्रियम् ।  
 शीतलासृतरूपाढ्यं व्यक्ताव्यक्तप्रकारकम् ॥ २४ ॥  
 आदिसाधनमेवं हि कथितं स्नेहहेतुना ।  
 वल्लभप्राणरक्षार्थं शोकाशुवारणाय च ॥ २५ ॥  
 पुनस्तु कथये तेऽहं निर्गुण्डीशोधनं प्रभो ! ।

“श्रीं निर्गुण्डि महामाये ! महासत्त्वनिवासिनि ! ॥२६॥  
 आयुरारोग्यजननि ! ब्रह्मशब्दनिवासिनि ! ।  
 मटौयं सकलं कार्यं गुह्यं कुरु युगं ततः ॥ २७ ॥  
 नान्तयुग्मं विन्दुनाद-भूषितं चाकृतेजसम् ।  
 चतुर्दशस्वरव्याप्तं धायुगं विन्दुभूषितम् ॥ २८ ॥  
 लक्ष्मीबीजत्रयं पश्चात् उमाबीजत्रयं लिखेत् ।  
 वज्रकायं देहि देहि शब्दान्ते वज्रिसुन्दरि” ॥ २९ ॥  
 एतन्मन्त्रेण संशोध्य भक्षयेत् साधकोत्तमः ।  
 ततोऽमरो भवेत् क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥  
 तुलसीशोधनं वक्ष्ये शृणुष्व परमेश्वर ! ।  
 यत् कृत्वा च निरोगो स्यात् बलवान् विजितेन्द्रियः ॥ ३१ ॥  
 “प्रणवं वैष्णवि देवि सत्त्वज्ञाननिवासिनि ।  
 कामबीजत्रयान्ते तु मां रक्ष युगलं द्विठः” ॥ ३२ ॥  
 एतत् शोधनमाहृत्य भक्षणं यः करोति हि ।  
 कायसिद्धिर्भवेत्तस्य ध्यानधारणयोगिनः ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायां उतरतन्त्रे महातन्त्रीहोपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्पञ्चाशः  
 भैरवी-भैरवर्षवादे षट्पञ्चाशः पटलः ॥ ३३ ॥

## षट्पञ्चाशः पटलः ।

शानन्दभैरव्युवाच ।—

कथयामि तव स्नेहात् कायवश्यविशेषणात् ।  
 द्विठयोगं प्रकथितमिदानीं शृणु तत्क्रमम् ॥ १ ॥  
 मणिपूरस्थितं कद्रं त्रैलोक्यपरमाक्षरम् ।  
 कथयामि शिवानन्द ! शिवशङ्करमङ्गलम् ॥ २ ॥  
 स्वाधिष्ठानोद्देशे च परमानन्दसागरम् ।  
 नाभिमूलं मेघजाल-मध्यविद्युत्प्रताकुलम् ॥ ३ ॥

रहस्यातिरहस्यञ्च योगिनामतिसागरम् ।  
 तन्नाभिमूलदेशे च नीलपद्मं महत्प्रभम् ॥ ४ ॥  
 तद्दलाये सदा भान्ति भाटिकान्ताक्षराणि च ।  
 तद्वाह्ये शोभितं रूपं त्रिकोणमनलस्य च ॥ ५ ॥  
 प्रभातशूरसङ्काशं शिखाकारं निरञ्जनम् ।  
 तत्राग्निबीजरूपञ्च रूपतीतं गुणान्तरम् ॥ ६ ॥  
 विचिन्तयेन्मेषपृष्ठ-वाहनं चारुणाकृतिम् ।  
 चतुर्बाहुं त्रिनयनं चारुदेहधरं परम् ॥ ७ ॥  
 तत्क्रोडे भाति रुद्रेशः सिन्दूरारुणविग्रहः ।  
 द्वन्द्वरूपी त्रिनेत्रश्च सृष्टिसंहारकारकः ॥ ८ ॥  
 विभूतिभूषिताङ्गश्च लोकानामिष्टदो विभुः ।  
 तस्य वामे सदा भाति लाकिनी परदेवता ॥ ९ ॥  
 चतुर्भुजा महादेवी त्रिनेत्रा सौख्यदायिनी ।  
 श्यामाङ्गी पीतवसना विचित्रालङ्कृताम्बरा ॥ १० ॥  
 सर्वसिद्धिप्रदा माता सर्वत्र सर्वपालिका ।  
 सदा रक्षतु मां देवी विद्याभिः कुलकालिका ॥ ११ ॥  
 एवं ध्यात्वा पूजयित्वा जपयागस्तवादिभिः ।  
 ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रो मणिपूरप्रसादतः ॥ १२ ॥  
 मणिपूरफलं वक्ष्ये समःसेन शृणु प्रभो ! ।  
 कीटिवर्धशक्तेनापि फलं-वक्तुं न शक्यते ॥ १३ ॥  
 मणिपूरानन्तरं हि प्रवृत्तव्यमनाहतः ।  
 स्तोत्रं ध्यानं समाधेयं सहस्रगुणशङ्करम् ॥ १४ ॥  
 फलमत्यन्तगुह्यञ्च सुहृत्पद्मोपलब्धिगम ।  
 आत्मज्ञानं मोक्षसिद्धिं प्रेमभक्त्याटिलाभकम् ॥ १५ ॥  
 संहर्त्ता जनसङ्घानां पालकः कमलापतिः ।  
 अकस्माज्ज्ञानसन्दोह-लक्ष्मीं प्राप्नोति योगिराट् ॥ १६ ॥  
 इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकप्रकाशे  
 भैरवो-भैरवसंवादे मणिपूरभेदो नाम षट्षकांशः पटलः ॥ ५६ ॥

## सप्तपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच—

हृत्पद्मादीनां प्रकारप्रश्नः ।—

वद कामिनि ! कौमारि ! सुरानन्दकुलेश्वरि ! ।  
हृदयाभोजविन्यासमधुना वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥  
यस्य विज्ञानमात्रेण नरो योगेश्वरो भवेत् ।  
सर्वसिद्धिक्रियास्थानं योगिनामतिदुर्लभम् ॥ २ ॥  
सर्वतत्त्वस्वरूपञ्च सिद्धिमागप्रकाशकम् ।  
हृदयाभोजविज्ञानान्मात्तण्डभैरवो भवेत् ॥ ३ ॥  
योतुमिच्छामि तत्सर्वं षट्सु चक्रेषु मङ्गलम् ।  
स्नेहदृष्टिक्रमेणैव भक्तियोगोद्भवेन च ॥ ४ ॥  
भेदनं भावनं ज्ञानं चित्तदर्शनमेव च ।  
मन्त्रोद्धारञ्च सङ्केतं सर्वज्ञानगुणोदयम् ॥ ५ ॥  
यजनं काकिनीदेव्या ईश्वरस्य गुणात्मनः ।  
स्तवनं कवचं सर्वं सहस्रनाममङ्गलम् ॥ ६ ॥  
वायूनां मण्डलज्ञानं समासेन वदस्व मे ।  
त्वमेव शरणं देवि ! त्वाहि मां दुःखसङ्कटात् ॥ ७ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

महाकाल ! भद्राभाग ! भक्तिभावपरायण ! ।  
महानन्दभैरवेश ! शृणु वक्ष्यामि यत्नतः ॥ ८ ॥  
यदुक्तं भवता चात्र अश्रुतं परमाद्भुतम् ।  
नोक्तं कुत्रापि सर्वेश ! तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥ ९ ॥  
अप्रकाश्यामिदं रहस्यं दुःखजालनिवारणम् ।  
सावधानेन सर्वेश ! कुरु त्वं योगसाधनम् ॥ १० ॥  
मयि योगं महादेव ! कृत्वा कालवशं हर ! ।  
मयि योगं न करोति सिद्धिभक्तिक्रियादिकम् ॥ ११ ॥



एकस्मान्धरणं तस्य कालभक्षी न संशयः ।  
 केवलं मां हृदभोजे परिपूर्णफलोदये ॥ १२ ॥  
 सर्वकाममनीवाह्ये नानाकौतुकसङ्कुलः ।  
 मूर्जयित्वा सदा ध्यायेत् काकिनीं मां न संशयः ॥ १३ ॥  
 स योगी जायते नाथ ! हृदभोजप्रसादतः ।  
 हृत्पङ्केरुहमध्यस्थाः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ १४ ॥  
 भ्रामर्चयन्ति ते नित्यं भक्तिभावपरायणाः ।  
 ये ध्यायन्ति महावीरा तपस्यन्ति च वासवान् ॥ १५ ॥  
 क्रमेण प्राणसंयोगान्धां पश्यन्ति न संशयः ।  
 मामेकं काकिनीध्यानं स्थिरवायुं प्रचण्डकम् ॥ १६ ॥  
 पश्यन्ति योगिनः काये अष्टेश्वर्यमहाप्रभम् ।  
 केवलं भक्तियोगेन नित्ययोगेन चोत्तमम् ॥ १७ ॥  
 पद्मध्यानं प्रथमतः कृत्वा सिद्धो न संशयः ।  
 तद्ध्यानं शृणु वीरेश ! योगिनामिह दुर्लभम् ॥ १८ ॥

हृत्पद्मध्यानम् ।—

हृत्पद्मे कुलपालितं सुललितं हंसेन संशोभितं  
 वल्लुं कोमलदीप्तिकोटिजडितं सन्भावितं साधकैः ।  
 अत्युत्कृष्टमयूखपुञ्जमिलितं सिन्दूरवर्णारुणं  
 ध्यात्वा पश्यति यो नरः प्रतिदिनं काद्यारुणैराहृतम् ॥ १९ ॥  
 स स्यात् कोटिधनेश्वरो नरवरो भूयस्त्वं वक्षसि  
 यो नित्यं लिपिभावनं प्रकुरुते नित्येश्वरालोकनात् ।  
 तद्ध्यानं क्रमतो वदामि सकलं येन प्रसिद्धो भवे-  
 दानन्दार्णवमध्यपद्मकलितं काद्यार्कवर्णोज्ज्वलम् ॥ २० ॥  
 दले पूर्वे ध्यायेदतिविमलवर्णं कामिति वा  
 प्रभातार्ककाद्यारुणकिरणयोगं युगमथम् ।

अनाहतपद्मविन्यासः ।—

चतुर्धाङ्गे नित्यं त्रिनयनमनन्तं रविगतं  
 भवाद्याशक्तिरूपं स्वभवनघटाशोभिततनुम् ॥ २१ ॥ कं ।  
 द्वितीयं पद्मस्थं विधुयुतकपालं त्रिनयनं  
 ससिन्दूराकारं त्रिगुणभुजशोभाभवमहम् । खं ।  
 सटा ध्यायेद्देवं परमपुरुषं श्रीगणपतिम्  
 सुरदाकारं वै तरुणमणिमालं जितमिदम् ॥ २२ ॥ गं ।  
 चतुःपत्रे ध्यायेत्कमलमरुणं घोरनिन्दं  
 क्रियाटच्चं मूर्त्तिं त्रिनयनमरोजं युगभुजम् ।  
 वराभीतिप्रोच्छत्स्फटिकजपमालादिसहितं  
 फणानङ्काराङ्गं शिवशिवम(सु)खेशोत्तममहम् ॥ २३ ॥ घं ।  
 डवीजं सिन्दूराङ्गमखिलनार्थं त्रिनयनं  
 महाभोक्तस्थानं शशिकनकरत्नाभरणकम् ।  
 चतुर्धाङ्गं रुद्रं पतितजननार्थं गुणविभुं  
 श्रिया नार्थं देवं वरमभयकं बिभ्रतमहम् ॥ २४ ॥ ङं ।  
 चतुर्धाङ्गं ध्याये कमलवरमालाभिसहितं  
 विभुं तं ध्यायेत्सं विधुशतमुखं तत्रिनयनम् ।  
 प्रभातार्कप्रायं सकलमणिरत्नाभरणकं  
 महज्ज्योत्स्नाजालं परमरमत्रिन्दूद्वतनुम् ॥ २५ ॥ चं ।  
 तमेकं नेत्रस्थं क्लृप्तमिलकरं नूतनरावं  
 चतुर्धाङ्गं ध्याये वरतनुकपालेष्टसाहितम् ।  
 सुधाधारापानं कनकजपमालाऽऽहततनुं  
 त्रिनेत्रं योगिन्द्रं वसुदलगतं चारुवदनम् ॥ २६ ॥ छं ।  
 चतुर्वक्त्रं ध्यायेदथ च मनसा चारुणतनुं  
 विशालाक्षं सूक्ष्मं समयमनिश चक्रवपुषम् ।  
 चतुर्धाङ्गं देवं त्रिभुवनपदं सारघटितं  
 महाशङ्खं रुद्रं वरमभयकं बिभ्रतमाप ॥ २७ ॥ जं ।

महाकायं तेजोमयमपि च भं वीजमखिलं  
 सदा ध्याये कामापहमतिसुखं चाष्टदलके ।  
 महासिन्दूराद्रिं दिनकरकलाकोटिविमलं  
 त्रिनेत्रं पद्माख्यं दशभुजयुतं सर्ववपुषम् ॥ २८ ॥ भं ।  
 जं वीजं साङ्गचन्द्रोद्भवाशखमखेशं त्रिनयनं  
 चतुर्बाह्वं ध्यायेऽलकमलगदाचक्रनिविडम् ।  
 महामालाव्याप्तं कनकशुभमालाङ्कितगुरुं  
 प्रभातार्कं विश्वार्चितजटिलरूपं रविदले ॥ २९ ॥ जं ।  
 मनोरूपाच्छत्रं त्रिनयनमधीशं दशदले  
 टकारं बिन्दाख्यं जपवटिवराभीत्यसिधरम् ।  
 तमेकं सोमेशं कनकविलसत्कुण्डलधरं  
 मुदा ध्याये शशुं हृदि शिवदले सिद्धकमले ॥ ३० ॥ टं ।  
 त्रिनेत्रं कामाख्यं शिशुकरुणया सिद्धफलदं  
 सुरत्नालङ्कारच्छविरुचितनृणां समनघम् ।  
 ठकारं बिन्दाख्यं नवरविघटाकोटिविकलं  
 दले चार्कं ध्याये कमलवरमालाशशधरम् ॥ ३१ ॥ ठं ।  
 एतत् शुद्धमनोलयस्य भुवने चैतन्यसंसिद्धये  
 वर्णानां जपभावनं यदि सदा चिन्तामणेरण्डलम् ।  
 योगीन्द्रः कुरुते वाशष्ठसदृशो वरचांपतिर्भूतले  
 वाक्सिद्धिं चिरकालवासमखिले देवो हि नो मानुषः ॥ ३२ ॥  
 वाक्काचिन्तामणेरिहं हृदयाश्रोजमण्डलम् ।  
 तन्मध्ये पवनस्थान-मण्डलाकारमुल्लसम् ॥ ३३ ॥  
 बुद्धिप्रतिभया व्याप्तं तन्मध्ये पवनाक्षरम् ।  
 आच्छन्नधूमसङ्काशं प्रसिद्धस्थानभुक्तमम् ॥ ३४ ॥  
 तन्मध्ये देवतापौठं षट्कोणं मण्डलं परम् ।  
 तन्मध्ये भावयोर्दष्टं स्वस्वकल्पोक्तयाधितम् ॥ ३५ ॥

वायोर्ध्यानं तत्र कुर्यादत्यन्तसूक्ष्मरूपिणम् ।  
निराकारं परं ब्रह्म साकारं शब्दरूपिणम् ॥ ३६ ॥  
निरक्षरं स्वाक्षराद्यं महोग्रग्रन्थिरूपिणम् ।  
चतुर्धाङ्गं जगद्ग्राप्तं कृष्णसारासनं वरम् ॥ ३७ ॥  
लोकत्रयाणां वरदं कर्णसिन्धुरूपिणम् ।  
पञ्चभूतात्मकं रीढं प्राणसंज्ञं किरीटिनम् ॥ ३८ ॥  
संबिम्बितं वराभौति-घण्टाडामरसेवकान् ।  
ईशनाम्ना परिचितं परं हंसं कुलेश्वरम् ॥ ३९ ॥  
सर्वालङ्कारशोभाङ्गं रवेरुदयकारणम् ।  
विचिन्तयेत् साधकेन्द्रः परिवारगणावृतम् ॥ ४० ॥  
तत्र पङ्केरुहे ध्यायेद्दीश्वरं वर्णरूपिणम् ।  
त्रैलोक्यमङ्गलं नाथं चतुर्धाङ्गं किरीटिनम् ॥ ४१ ॥  
रक्तमालाशोभिताङ्गं शुक्लवर्णं महाप्रभम् ।  
ईश्वरं योगिनामीशं ध्यायेत् हृत्पद्ममण्डले ॥ ४२ ॥  
तत्पार्श्वं साधको ध्यायेत् काकिनीं परमेश्वरीम् ।  
त्रैलोक्यपूजितां देवीं काकचक्षुप्रकाशिनीम् ॥ ४३ ॥  
चतुर्भुजां महादेवीं पीतवस्त्रोपशोभिताम् ।  
नवाविद्युत्कोटिरूपां विलोमनेत्रपङ्कजाम् ॥ ४४ ॥  
कपालशशिशूलास्त्र-वरदानसमाकुलाम् ।  
दिचित्ररत्ननिर्माणां स्वर्णालङ्कारभूषिताम् ॥ ४५ ॥  
त्रैगुण्यललितां सूक्ष्मां वराभयकराम्बुजाम् ।  
सुधापानरतां मत्तां पूर्णरूपां कुलेश्वरीम् ॥ ४६ ॥  
रत्नकङ्कणमालाढ्यां परमानन्दभैरवीम् ।  
हृदयाम्भोजमध्यस्थां ध्यायेत् हंसगामिनीम् ॥ ४७ ॥  
तत्पीठध्याननिकरे त्रिकोणां परिचिन्तयेत् ।  
पीठशक्तिं सुवर्णाढ्यां विद्युत्कोटिसमीदयाम् ॥ ४८ ॥

काकिनैसदृशीं मत्तां पूर्वान्तःकरणोद्यताम् ।  
 सर्वालङ्कारभूषाढ्यां परिवारगणावृताम् ॥ ४८ ॥  
 तद्वक्षिणे पार्श्वभागे चिन्तयेद्वाणालङ्ककम् ।  
 सुवर्णशुद्धसङ्काशं निर्मलं चारुतेजसम् ॥ ५० ॥  
 महालक्ष्मीप्रियानन्दं सर्वाकारं निरञ्जनम् ।  
 ज्ञानयोगोदयं ब्रह्म-रूपिणं बहुरूपिणम् ॥ ५१ ॥  
 प्रदीपकलिकाऽऽकारं चिन्तयेदौश्वरं शिवम् ।  
 एतेषां ध्यानमाकृत्य वागीशो भवति क्षणात् ॥ ५२ ॥  
 राज्यसिद्धिं तत्र नाथं चिन्तयेत्तत्प्रसिद्धये ॥ ५३ ॥  
 तत्र भानोर्मण्डलञ्च चिन्तयेत् साधकाग्रणीः ॥ ५४ ॥  
 पद्मकिञ्चल्कमध्ये तु चिन्तयेदरुणायुतम् ।  
 मासैकसाधनादेव योगी स्यात् शीतलाङ्कष्टक् ॥ ५५ ॥  
 द्विमासे ग्रान्थभेदः स्यादत्यन्तगुणवान् भवेत् ।  
 साधको योगयोग्यः स्यात् सर्पादिविषनाशकृत् ॥ ५६ ॥  
 चतुर्मासे निर्मलात्मा भावुकः स्थिरमानसः ।  
 पञ्चमे मासि सम्प्राप्ते वायवीकृपयाऽन्विता ॥ ५७ ॥  
 स्थिरवायुः स्थिरा दृष्टिस्त्वतीव सुखसम्पदाम् ।  
 ततो दिने दिने वृद्धिर्वायूनाम्नुकम्पया ॥ ५८ ॥  
 षण्मासात् पापसंत्यक्तो मुक्तवद् भ्रमते चिरम् ।  
 जले चाग्नी च भूगर्त्ते कदाचिन्न म्रियेत हि ॥ ५९ ॥  
 ईश्वरात्मा महाज्ञानी निःशङ्को निरूपद्रवः ।  
 महाविवेकसिद्धिस्तु ज्ञानी भेदविवर्जितः ॥ ६० ॥  
 स भूत्वा चिरजीवो च भुक्तिमागौ दिने दिने ।  
 सप्तमे कल्पसन्त्यक्तो मदनीपमविग्रहः ॥ ६१ ॥  
 नित्यानन्दगुणप्राप्तभूमित्यागो दिने दिने ।  
 अष्टमे सर्वशत्रुघ्नो वाञ्छानाशविवर्जितः ॥ ६२ ॥

अणिमादिदर्शनञ्च ब्रह्मगोविन्ददर्शनम् ।  
 नवमे चालना सिद्धिः पञ्चभूतमयाङ्गष्टकम् ॥ ६३ ॥  
 सप्तसर्गालोकनञ्च षट्शिवप्रियदर्शनम् ।  
 द्वादशे देवसम्मानं देवतापाददर्शनम् ॥ ६४ ॥  
 अत्यन्तसुखसन्तानं मायाजालनिवारणम् ।  
 सर्वविद्या सर्वसिद्धिर्दिव्यभक्तिः शुभोदया ॥ ६५ ॥  
 ते वीरास्ते च योगेन्द्रास्ते दिव्यास्ते च भैरवाः ।  
 ते सर्वे मृत्युगोप्तारस्ते भक्ता मुक्तिभागिनः ॥ ६६ ॥  
 ये तिष्ठन्ति महारण्ये निर्जने पर्वते चिरम् ।  
 धारयन्ति साधयन्ति योगमेतत्कुलेश्वर ! ॥ ६७ ॥  
 योगयोगाङ्गवेम्बोच्च इति तत्त्वस्य निर्गमः ।  
 संसारोत्तारणान्मुक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ॥ ६८ ॥  
 लोके हि दुर्लभं योगं योगात्परतरं न हि ।  
 योगं पञ्चविधं प्रोक्तमेकं विषयसम्मतम् ॥ ६९ ॥  
 द्वितीयञ्च द्विभेदञ्च पूजायोगं तृतीयकम् ।  
 भक्तियोगं परं ब्रह्म-योगसारं कुलेश्वर ! ॥  
 सर्वत्रापि मनोयोगाद्ब्रह्मो सुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७० ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धनन्दप्रकरणे षट्चक्रप्रकाशे  
 भैरवी-भैरवसंबादे अनाहतपञ्चविन्वासे नाम सप्तपञ्चाशः पटलः ॥ ५७ ॥

## अष्टपञ्चाशः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथातः संप्रख्यामि विवेकगुणलक्षणम् ।  
 वर्णध्यानानन्तरं हि पूजनं तन्महत्फलम् ॥ १ ॥  
 पूजया लभते पूजां विवेकं भावसम्भवम् ।

काकिनीस्वरसंयोगं भावं परमदुर्लभम् ॥ २ ॥  
 यजनं काकिनीदेव्या ईश्वरस्यापि भावनम् ।  
 पूजाभावे महासिद्धिर्जायते तत्क्षणात् शिव ! ॥ ३ ॥  
 भावेन लभ्यते पूजा विवेकं पूजया लभेत् ।  
 विवेकात् ब्रह्मभावन्तु प्राप्नोति कोटिजन्मनि ॥ ४ ॥  
 अथवा लभते शौभ्रं तवापि मदनुग्रहैः ।  
 तत्प्रकारं शृणु प्राण-वल्लभ ! त्रिपुरेश्वर ! ॥  
 यस्य विज्ञानमात्रेण भवेत् परमभावुकः ॥ ५ ॥

काकिनीपूजा ।—

विचिन्तयेद्दण्डपार्श्वं चतुर्दिक्षु क्रमेण तु ।  
 सिद्धेश्वरान् योगयुक्तान् महापुरुषसंज्ञितान् ॥ ६ ॥  
 ब्रह्माणं परमं हंसं रुद्रं विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ ७ ॥  
 सृष्ट्युत्थयं महाकाल-नीलकण्ठं सुरेश्वरम् ।  
 श्रीविष्णुं कमलानाथं पञ्चचूडं कुमारकम् ॥ ८ ॥  
 चन्द्रं सूर्यं प्रभानाथं दक्षं मुनीन्द्रमेव च ।  
 प्रचेतसं मरीचिञ्च कश्यपं पुलहं तथा ॥ ९ ॥  
 वशिष्ठञ्च भृगुञ्चैव गौतमं कपिलं मुनिम् ।  
 पुलस्त्यञ्च क्रतुञ्चैव प्रह्लादं कर्दमं तथा ॥ १० ॥  
 अथर्वाङ्गिरसञ्चैव वा(वा)लि(ल)खिल्यान् मरीचिपान् ।  
 मानसांशान्तरीक्षाञ्च विद्याञ्च परमं विभुम् ॥ ११ ॥  
 तेजसञ्च जलञ्चैव महीं स्पर्शञ्च शब्दकम् ।  
 तथा रूपं रसं गन्धं प्रकृतिञ्च विकारकम् ॥ १२ ॥  
 यच्चान्यत् कारणं सर्वं भवान्नयत्साचरम् ।  
 तत्पार्श्वगामिनो देवाः सेन्द्रा भ्रमन्ति नित्यशः ॥ १३ ॥  
 अगस्त्यञ्च महातेजा मार्कण्डेयञ्च वीर्यवान् ।  
 जमदग्निर्भरद्वाजः संवत्स्रप्रवन्स्तथा ॥ १४ ॥

दुर्वासाश्च महाभागो ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः ।  
 सनत्कुमारो भगवान् योगाचार्यो महातपाः ॥ १५ ॥  
 असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् ।  
 ऋषभार्जितशत्रुश्च महावीर्यस्तथा मणिः ॥ १६ ॥  
 एते चान्ये च बहव ईश्वरं समुपासते ।  
 एताः पार्श्वे चिन्तनीया वर्णानां साधकोत्तमैः ॥ १७ ॥  
 तत्पार्श्वस्थप्रभाकोटि-धारकः प्रतिभाति च ।  
 शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैव च ॥ १८ ॥  
 मन्त्रो रथन्तरश्चैव हविष्मान् वसुमानपि ।  
 आदित्याः साधिराजानो नानावृन्दैरुपागताः ॥ १९ ॥  
 मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च कपालिनः ।  
 तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हविंश्यथ ॥ २० ॥  
 ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथा विधिः ।  
 अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥ २१ ॥  
 इतिहासोपदेशश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ।  
 ग्रहा यज्ञाश्च सोमाश्च दैवतानि च सर्वशः ॥ २२ ॥  
 सावित्री तारिणी दुर्गा वाणो सप्तविधा तथा ।  
 मेधा धृतिः स्मृतिश्चैव प्रज्ञा बुद्धिर्यशः क्षमा ॥ २३ ॥  
 सामानि स्तुतिशास्त्राणि गाथास्तु विविधास्तथा ।  
 भाष्याणि तर्कयुक्तानि देहवन्ति विभान्ति च ॥ २४ ॥  
 नाटिका विविधाः कार्याः कथाऽऽख्यायिककारिकाः ।  
 अत्र तिष्ठन्ति ये पुण्या ये पुण्या गुरुपूजकाः ॥ २५ ॥  
 क्षणा वायुर्मुहूर्त्ताश्च दिवा रात्रिश्च सर्वतः ।  
 अर्द्धमासास्तथा मासा ऋतवः षट् च शङ्कर ! ॥ २६ ॥  
 संवत्सराः पञ्चयुगं मासा रात्रिश्चतुर्विधाः ।  
 कालचक्रश्च यहियं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ २७ ॥



धर्मचक्रं तथाचापि नित्यमास्ते महेश्वर ! ।  
 अदितिश्च दितिश्चैव कद्रुश्च विनता तथा ॥ २८ ॥  
 कालिका सुरभौ देवी सरमा चाथ गौतमी ।  
 एताद्यान्याश्च वै देव्यो देवतानाञ्च मातरः ॥ २९ ॥  
 रुद्राणी श्रीश्च लक्ष्मीश्च भद्रा षष्ठौ तथा परा ।  
 पृथिवीसंज्ञिता देवी ह्योः स्वाहा कीर्तिरेव च ॥ ३० ॥  
 सुरादेवी शची चैव तथा पुष्टिररुन्धती ।  
 संसिद्धिः सिद्धिदा विद्या महादेवौ रतिस्तथा ॥ ३१ ॥  
 एताद्यान्याश्च वै देव्य उपतस्युरलङ्कृताः ।  
 आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनावपि ॥ ३२ ॥  
 विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पितरश्च महर्षयः ।  
 राजर्षयस्तत्र भान्ति हरिश्चन्द्रादयः प्रभो ! ॥ ३३ ॥  
 सर्वे हेमकुण्डलिनः सर्वालङ्कारभूषिताः ।  
 भावुका गीतवाद्यादि-निःस्वनैर्मग्नदेहिनः ॥ ३४ ॥  
 भावयन्ति महेशानीं काकिनीं परमेश्वरीम् ।  
 वर्णरूपां नित्यकल्पां महेश्वरपतिव्रताम् ॥ ३५ ॥  
 ईश्वरं भावयन्त्येते पूजयन्ति निरन्तरम् ।  
 वेष्टिताः सुन्दराकारा अष्टसिद्धिसृष्टिदाः ॥ ३६ ॥  
 यताः पूज्या महाकाल-वर्णपार्श्वचराः प्रभो ! ।  
 प्रसीद नाथ ! स्वामीति नाम्ना मनसि पूजयेत् ॥ ३७ ॥  
 “वर्णेश्वरप्रियानन्दां काकिनीं पूजयाम्यहम् ।”  
 इति मन्त्रेण वै पूज्या वर्णरूपा सरस्वती ॥  
 तदा प्रसन्नाः सिध्यन्ति श्रीकाकिन्यः कली युगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रीद्वीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षण्णप्रकाशे भैरवी-  
 भैरवसंवादे काकिनीपार्श्वचरयजनं नाम अष्टपञ्चाशः पटलः ॥ ५८ ॥

## एकोनषष्टितमः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथाष्टसिद्धिमाहात्म्यं शृणु श्रीचन्द्रशेखर ! ।  
मन्त्रोद्धारं तथा न्यासं कवचाङ्गं तव प्रियम् ॥ १ ॥  
स्त्रोत्रं सहस्रनामाख्यं साष्टोत्तरमनुप्रियम् ।  
साकारध्यानमखिलं सालोक्यादिपटप्रदम् ॥ २ ॥  
यस्य स्मरणमात्रेण शिवो भवति मानुषः ।  
ब्रह्मबीजाङ्गवेद्भूतः प्रज्ञायाश्च फलोदयः ॥ ३ ॥  
यथा तथैव मन्त्राणामुदयो बीजयोगतः ।  
बीजन्तु परमज्ञानं बीजाधीनं चराचरम् ॥ ४ ॥  
बीजमाश्रित्य सर्वेन्द्राः प्रतिभान्ति महौजसः ।  
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशाः प्राणस्थाननिवासिनः ॥ ५ ॥  
के चाप्ययुतसूर्य्याभाः शतसूर्य्यसमप्रभाः ।  
केचिद्वादशसूर्य्याभाः केऽपि ज्वलत्प्रभाकराः ॥ ६ ॥  
कोऽपि नानामणेर्योतिः कोऽपि चन्द्रसमप्रभः ।  
कोऽपि श्रीकान्तकिरणः शङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥ ७ ॥  
एते बीजसमुद्भूता निर्वाजाः पञ्च देवताः ।  
ब्रह्मविष्णुशिवानन्द-भैरवप्राणदेवताः ॥ ८ ॥  
ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपेण श्वासमार्गप्रवेशकः ।  
विष्णुर्वैष्णवतन्त्रेण कुम्भकान्तर्गतः प्रभुः ॥ ९ ॥  
शिवः संहाररूपेण महाप्रलयगस्ततः ।  
आनन्दभैरवः श्रीमान् मूलज्ञानी परात्परः ॥ १० ॥  
मूलाभोजात् ब्रह्मरन्ध्रं यावत्तत्र प्रवेशकः ।  
प्राणविद्यास्वरूपेण बीजरूपा सनातनी ॥ ११ ॥  
सा भाव्या योगिभिर्नित्यं योगाङ्गैरतिभाव्यते ।  
योगशास्त्रं विना नाथ ! के जानन्ति महर्षयः ॥ १२ ॥

अनन्तसुखसाध्या सा योगिज्ञेया मनोजवा ।  
 नानारूपा हृद्द्रूपा श्वासीच्छासप्रकाशिनो ॥ १३ ॥  
 हृदयाभोजमध्यस्था ईश्वरस्थानवासिनी ।  
 काकचक्षुप्रकाशा च सर्वभूतहृदि स्थिता ॥ १४ ॥  
 सर्वेषां ज्ञानकर्त्री च सर्वानन्दकरो हृदि ।  
 सा देवी काकिनी विद्या ईश्वरी परमा कला ॥ १५ ॥  
 विभाव्या कोटिसूर्याभा कोटिचन्द्रसमानना ।  
 तस्या मन्त्रं महामन्त्रं ब्रह्ममन्त्रं हि योगिनाम् ॥ १६ ॥  
 शृणु नाथ ! कुलानन्द ! भैरव्यादिमनुं मुदा ।  
 एतन्मन्त्रप्रसादेन परात्मानं वशं नयेत् ॥ १७ ॥

काकिनीमन्त्रोच्चारः ।—

दीर्घप्रणवमुद्धृत्य वामनेत्रं समुद्धरेत् ।  
 मायान्ते वाग्भवं वीजं कामबीजं समुद्धरेत् ॥ १८ ॥  
 कामबीजं तथैश्वर्यं नमोऽन्तर्वाङ्गकामिनी ।  
 एतन्मन्त्रप्रसादेन भवेत् कालवशः क्षणात् ॥  
 अनन्तसुखमाप्नोति भयाञ्जानापहो भवेत् ॥ १९ ॥  
 कामेन पुटितं मन्त्रं वाग्भवेनापि वा प्रभो ! ।  
 स्वमन्त्रपुटितं कृत्वा सिद्धिः स्याद्दुर्गरादिह ॥ २० ॥  
 अथान्यमन्त्रं वक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ २१ ॥  
 भद्रकालीं समुद्धृत्य किङ्किणीवौजमुद्धरेत् ।  
 कलाबीजं समुद्धृत्य महैश्वर्यं नमो द्विठः ॥ २२ ॥  
 केवलं मूलमन्त्रेण पुटितं मूलमन्त्रकैः ।  
 पूजयेत् परया भक्त्या हृदयाभोजमण्डले ॥ २३ ॥  
 अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।  
 लक्षजपेन सिद्धिः स्यात् हृदयाब्जे शिवो भवेत् ॥ २४ ॥  
 अकस्माद्दीपकालिकाऽऽकारं वीजं प्रपश्यति ।

ततो भवेन्महायोगी ईश्वरौमन्त्रसाधनात् ॥ २५ ॥  
 ध्यानं वक्ष्यामि पूजाया गुह्याहुह्यतरं परम् ।  
 ध्यात्वा पाद्यादिभिर्नाथ ! मनःकल्पितपुष्पकैः ॥  
 पूजयेत् परया भक्त्या मन्त्रध्यानपरायणः ॥ २६ ॥

काकिनीध्यानम् ।—

अशधरशतकोटिश्रीमयूखप्रभा या  
 सुरतरुगणशोभा निर्मला वेदहस्ता ।  
 अरुणकिरणभाला हारमाला विलीला  
 हृदयकमलमध्ये श्रीश्वरीं तां भजामि ॥ २७ ॥  
 एवं सर्वात्मरूपां तां विभाव्य हृदयास्त्रुजे ।  
 पुनः पुनः पूजयेद्दे त्रैलोक्योद्भवपुष्पकैः ॥ २८ ॥  
 अवश्यं सिद्धिमाप्नोति पूजायोगप्रभावतः ।  
 आयुरारोग्यजननीं सुमहत्फलसम्भवाम् ॥ २९ ॥  
 ततो जपेत् महामन्त्रं वर्णमालाक्रमेण तु ।  
 प्राणायामं ततः कृत्वा न्यसेत् सर्वाङ्गमध्यके ॥ ३० ॥  
 मातृकाग्रन्थिनिकरे न्यसेत् पूर्वाक्तनामभिः ।  
 यदुक्तं पूर्वपटले तेषां नामभिरेव च ॥ ३१ ॥  
 विन्यस्य मन्त्रपुटितं मन्त्रन्यासं ततश्चरेत् ।  
 काकिन्या अष्टशक्तीनां न्यासः कुर्यात्ततःपरम् ॥ ३२ ॥  
 काकजिह्वा द्विकाकेशी काकाक्षी काकिनीध्वजा ।  
 काकिनी काकमाला च काकचक्षुप्रकाशिनो ॥ ३३ ॥  
 कोकिला चाष्टशक्तीनां नाम्ना विन्यस्य मस्तके ।  
 कण्ठकूपे न्यसेत् पश्चात् षोडशस्वरसंपुटम् ॥ ३४ ॥  
 हृदये विन्यसेन्नाथ ! कादिद्वादशसंपुटम् ।  
 मनः विन्यस्य विधिना नाभौ मन्त्रेण संपुटम् ॥ ३५ ॥  
 डादिफान्तं प्रविन्यस्य वादिलान्तं स्त्रलिङ्गके ।

मूलाधारे मूलमन्त्रपुटितं वादिमान्तकम् ॥ ३६ ॥  
 विन्यस्य व्यापकन्यासं कृत्वाङ्गानि च वर्द्धयेत् ।  
 प्राणायामत्रिकं कृत्वा प्राणायामं समाश्रयेत् ॥ ३७ ॥  
 ततः स्तोत्रं पठेद्द्विमान् तत्सर्वं श्रुणु शङ्कर ! ।  
 हविष्याशी वशी भूत्वा साधयेद्दिह सिद्धये ॥ ३८ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकभेद-  
 प्रकाशे भैरवी-भैरवसंवादे काकिनीसिद्धिसाधनं नाम  
 एकोनषष्टितमः पटलः ॥ ५९ ॥

## षष्टितमः पटलः ।

काकिनीस्तोत्रम् ।—

ज्ञानेश्वरी शुभकरी परिभावनीया  
 योगेश्वरैर्हरिहरैर्गुरुभिर्महेन्द्रैः ।  
 तां काकिनीं प्रसविनीं परमेशपत्नीं  
 तां स्तौमि चारुहृदयाखुजराजिमध्ये ॥ १ ॥  
 एकाकिनीं त्रिजगतामतिनाशकाले  
 त्वां काकिनीं समरकालककाकपत्नीम् ।  
 त्वां साक्षिणीं भुवनभङ्गावधौ सकान्ते  
 भूषण्डकाकमहिषीं सततं भजामि ॥ २ ॥  
 एकाकिनीं सकलधारणकालयोगे  
 आधार्थ्यदेहसमये खलु काकिनीं त्वाम् ।  
 वायुमने मनस आर्शावकारनाशे  
 काकिन्द्रचञ्चुचलितामहमेवमीडे ॥ ३ ॥  
 भावोदये प्रणयिनी विभवे च भावा  
 आह्लादयोगविभवे भुवनेश्वरी त्वम् ।

रक्षां कुरु प्रथमतो मतिमाश्रयामि  
 गोप्यागमे सुखकरी शुभदा च शुद्धा ॥ ४ ॥  
 सा त्वं सुखानुभवकारिणि पूजनीये  
 रक्षां कुरु प्रथमभास्करमाङ्गुली ।  
 ते पादपङ्कजमजस्रमहं भजामि  
 सानन्दविन्दुविमलाननहासपुञ्जे ॥ ५ ॥  
 गुञ्जत्कटौविमलमालसुशोभिताङ्गे  
 श्यामि च मे चरमभावसमूहधात्री ।  
 पञ्चानने दशभुजे सकलास्त्रयुक्ते  
 विद्योऽभये नरहरे नरहारभूषे ॥ ६ ॥  
 श्वेतासने त्रिनयने जननि त्वमेव  
 दीनोऽस्मि ते चरणपङ्कजमाश्रयामि ।  
 श्रीसुन्दरी प्रणतवेदविचारवक्त्री  
 तारेश्वरि त्वमपि रक्ष विनाशकाले ॥ ७ ॥  
 यद्येक एव इतिहासपुराणरूपे  
 नित्यं तवैव खलु पादसरोजमीडे ।  
 ते श्रीपदं भुवनसारमनन्तसेव्यं  
 योगास्पदं कृमिभिराश्रयमेकयोगम् ॥ ८ ॥  
 सर्वे भजन्ति निजमोक्षफलाय नित्यं  
 दीनोऽहमद्य भुवनेशि ! मुदाऽऽश्रयामि ।  
 त्रैलोक्यपूजितपदं हृदयाम्बुजस्थं  
 चित्तप्रकाशकमशेषसुखानुभूतम् ॥ ९ ॥  
 मायाश्रयं सकलसिद्धिनिदानरूपं  
 मञ्जीरहारविनतं वरमाश्रयामि ।  
 चन्द्रोदये सुखमयं द्युतिकोटिदीप्तं  
 शोभाकरे स्थिरतरा भव मे हृदये ॥ १० ॥

भूमण्डले हि बलवान् कृतकृत्य एव  
 त्वामीश्वरीं हृदि मुदा सुखमाश्रयामि ।  
 नित्यं पुरा भवसि वै खलु योगसिद्धे  
 शम्भुर्गिरिश इति चेश्वरपार्श्वगामी ॥ ११ ॥  
 सायुज्यं नाथपदवीं गत ईशकान्ते  
 एकाकिनं कुललताङ्घ्रियुग विमन्थैः ।  
 ध्यायन्ति योगिन इहैव तवाङ्घ्रियुग्मं  
 संहारहेतुकसदाऽघविनाशनाथ ॥ १२ ॥  
 चित्तोत्सवाय विभवाय जयाय भूमेः  
 दीनो भजामि भुवि तच्चरणौ श्रियेऽहम् ।  
 कृष्णे सिते विमलपङ्कजकोषसंस्थे  
 वर्णाश्रये त्वमव मामिह दौनमेकम् ॥ १३ ॥  
 पुत्रं तवैव चरणाभ्युजसंश्रितं मां  
 नीलाभ्युजस्थिरतरं कुरु कामदात्रि ! ।  
 सर्वेश्वरी प्रियकरी भवभावहन्त्री  
 नानात्मिके सकलकामहरे विचित्रे ॥ १४ ॥  
 रत्नाम्बरे सुखघटं यद्वि देहि दास्यं  
 तच्चारुवर्णगणितं घटमाश्रयामि ।  
 रत्नाकरे सकरणेऽरुणकोटिवर्णे  
 स्वार्थादिनिर्मितस्रजा धरिशोभिताङ्गी ॥ १५ ॥  
 त्वं काकिनो यदि कटाक्षनिपातमेकं  
 शर्वं कुरुष्व खलु मोक्षपटानुमोदी ।  
 आद्ये प्रबालविमलेऽमलमाख्यगोमे  
 सूक्ष्मेऽतिसूक्ष्मतनु देहि पटानुयुग्मम् ॥ १६ ॥  
 आदौ भवेत् कामरूप-भूपतिः सिद्धदर्शकः ।  
 कुलपूजाविधानेन निजपौठे प्रपूजयेत् ॥ १७ ॥

कामेश्वरीं कामकन्यां कामकौतूहलोज्ज्वलाम् ।  
 कामरूपां प्रपूज्याथ सबभावेन पूजयेत् ॥ १८ ॥  
 सुधादानं पाद्यदानमर्घ्यमाख्यादिमुद्रया ।  
 आचमनीयसकलं गन्धमालिङ्गनादिकम् ॥ १९ ॥  
 नखदंष्ट्राक्षतादीनि पुष्पाणि विविधानि च ।  
 समूहधूपदानन्तु कुलपौठप्रदर्शनम् ॥ २० ॥  
 तत्स्यर्शनं भवेद्दोषः प्रवेशो हि कुलान्तरे ।  
 तत्रैवेद्यं महासीख्यं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ २१ ॥  
 कुलद्रव्यन्तु पानार्थं ततस्ताम्बूलभक्षखम् ।  
 ध्यापनं तर्पणं विद्धि मम पूजाक्रमादिकम् ॥  
 तन्मूलेन यथा नाथ ! पूर्वीक्तेन प्रकाशयेत् ॥ २२ ॥

कुण्डलीगमनविज्ञानम् ।—

कुण्डलीगमनं वच्चे संक्षेपात् शृणु वल्लभ ! ॥ २३ ॥  
 कायशांघनमाकृत्य आसनादिकमाचरेत् ।  
 प्राणायामं त्रिधा कृत्वा भूतन्यासं समाचरेत् ॥ २४ ॥  
 अङ्गन्यासकरन्यासी वीजन्यासेषु षोडश ।  
 व्यापकं पञ्चधा कृत्वा भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ २५ ॥  
 जीवेनैक्यं विभाव्यैव ब्रह्मरन्ध्रे निवेशयेत् ।  
 ब्रह्मरन्ध्रे ततो गत्वा सुषुम्ना सुखमाश्रयेत् ॥ २६ ॥  
 तन्मध्ये कर्णिकास्थानं तन्मध्ये च चतुर्दलम् ।  
 चतुर्दलान्ते सा देवी विभाति तामुपाश्रयेत् ॥ २७ ॥  
 तामुपाकुञ्च्य यत्नेन सिद्धरूपी प्रबुद्धयेत् ।  
 देवैः साङ्घं ततो गच्छेत् षड्दले राकिणोत्थले ॥ २८ ॥  
 तथा साङ्घं कुण्डलिन्या देवैर्गच्छेद्दशच्छुदे ।  
 एवं क्रमेण हृत्पद्मं षोडशार ततः परम् ॥ २९ ॥



कण्ठपद्मादिभेदविज्ञानम् ।—

द्विदलं भेदमोक्तव्य बोधिनीचक्रमाश्रयेत् ।  
 ततः कटहमाभेद्य पर्णशैलं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥  
 ततोऽसौ द्युमणिं भित्त्वा घटाधारे मनोलयम् ।  
 तदूर्ध्वं प्रलयाकारं ब्रह्मचक्रं निराकुलम् ॥ ३१ ॥  
 तदूर्ध्वं ब्रह्माटण्डन्तु तदूर्ध्वं किवलं जलम् ।  
 सर्वं जलं समालक्ष्य सहस्रारं प्रभामयम् ॥ ३२ ॥  
 तदूर्ध्वं कर्णिकास्थानं सिद्धखड्गं तदूर्ध्वके ।  
 सर्वबीजमयं नाथ । मातृकामण्डलं ततः ॥ ३३ ॥  
 मातृकामण्डलोर्ध्वं च प्रेतबीजं सुधामयम् ।  
 प्रेतासनोपरि ध्यायेन्महाकालकुलेश्वरीम् ॥ ३४ ॥  
 तत्रैव श्रीपदाभोज-तले संस्थापयेन्ननः ।  
 पूर्वोक्तदेवताभिस्तु लययोगेन लेपयेत् ॥ ३५ ॥  
 तत्रैव स्थित्वा सन्ध्यायेन्मूलेऽनलमनुं प्रभो ! ।  
 वायुबीजेन प्रज्वाल्य दहेद्देहं यतीश्वरः ॥ ३६ ॥  
 तन्नेत्रद्वयपर्यन्तं कर्णयुग्मावधि प्रभो ! ।  
 प्रदह्य भ्रूदले नेत्रे वङ्गी वङ्गिलयं चरेत् ॥ ३७ ॥  
 तच्छिखापटलेनैव क्षरन्ति ब्रह्मबिन्दवः ।  
 तद्दिन्दुधारया देहं वरुणैर्ग्रासयेत्ततः ॥ ३८ ॥  
 शुद्धदेहस्ततो ध्यायेद्बीजेन प्रथमाङ्कुरम् ।  
 अधोमार्गेण सन्ध्यायेत् कुण्डलिन्याः समागमम् ॥ ३९ ॥  
 इत्येतत् कथितं नाथ ! कुण्डलीगमनादिकम् ।  
 साधकालम्बनं वक्ष्ये येन सिद्धो हि साधकः ॥  
 प्राणविद्यासु सिद्धः स्वादायुरारोग्यवान् भवेत् ॥ ४० ॥  
 श्रीशङ्करे कारणगुप्तभावे विभावयामि प्रियपादपद्मम् ।  
 एवं मनोशोगमुपेत्य नित्यं श्रीसाधकालम्बनमेव सम्यत् ॥ ४१ ॥

साधकः सर्वदा भक्त्या सुन्दरीचरणाम्बुजे ।

आत्मानमर्पयेत् भावैः साधकालम्बनं हि तत् ॥ ४२ ॥

कण्ठपद्मादि-वर्णध्यानम् ।—

वर्णध्यानं शृणु प्रीतः शङ्कर ! प्राणवत्तम ! ।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तमकारादीन् स्मरेद्बुधः ॥ ४३ ॥

स्मृत्वा ग्रथित्वा मनुना विलोमेन पुनः पुनः ।

भावयेन्मनसा योगी सत्त्वधिष्ठानतत्परः ॥ ४४ ॥

कोटिसूर्यायुताभासं प्रत्येकग्रन्थिभेदतः ।

मन्त्राक्षरं परं ब्रह्म ध्यात्वा शिवञ्च भास्करम् ॥ ४५ ॥

भित्त्वा सहस्रारदलं विभाति तच्च चन्द्रगम् ।

अनुलोमविलोमेन विभाव्य ध्यानमाचरेत् ॥ ४६ ॥

अकारादिचकारान्तं वर्णध्यानं समीरितम् ।

दलभेदं प्रवक्ष्यामि यत्र यत्र पदस्थितिः ॥ ४७ ॥

विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्तं दलभेदः प्रकीर्तितः ।

तथापि शृणु योगेन्द्र ! सङ्केतार्थविनाशनम् ॥ ४८ ॥

देवता दक्षिणावर्त्त-योगेन भावयेद्दलम् ॥

एवं मूलादिपद्मानां भेदः श्रीकण्ठभूषणम् ॥ ४९ ॥

एवं सहस्रारपद्म-दलभेदः प्रकीर्तितः ।

स्फूर्तिविद्यां प्रवक्ष्यामि अकस्मात् सिद्धिदायिनीम् ॥ ५० ॥

निरन्तरं जपेद्विद्यां मम भावपरायणः ।

अकस्मात् स्फूर्तिविद्यां तां जप्त्वा वाक्पतिरौश्वरः ॥

इष्टसिद्धिः करे तस्मै कुलिकासिद्धिरेव च ॥ ५१ ॥

यदि कण्ठाम्बुजे ध्यायेत् काकचञ्चुपुटस्थितः ।

इत्येता स्फूर्तिविद्यां हि सर्वपद्मदलस्थिता ॥ ५२ ॥

वियोगं सम्प्रवक्ष्यामि येन मन्त्री च निर्भयः ।

स्त्रीपुत्रधनमित्यादि-लोभमोहादिपातकम् ॥ ५३ ॥

वर्जायत्वा तनुक्लेशं विवेकं समुपाश्रयेत् ।  
 वियोगः स हि विज्ञेयो मन्त्रन्यासपरायणः ॥ ५४ ॥  
 अथ वक्ष्ये त्रियोगेन्द्र ! पूर्वज्ञानसमोदयम् ।  
 काले काले क्रियासिद्धिश्चण्डिकापार्श्वगो भवेत् ॥ ५५ ॥  
 पूर्वस्थां दिशि पूर्वाह्ने वदनाभोजमण्डले ।  
 ज्ञानद्रव्यसमरसैर्दयं भावयेद्रवेः ॥ ५६ ॥  
 पूर्वपूर्वखजन्मादि ज्ञानसोमोदयं लभेत् ।  
 आकाशे च मनो दृष्ट्वा आकाशाख्यं स्मरेन्ननुम् ॥ ५७ ॥  
 पूर्वजन्मादिसंज्ञानां जानाति समभावकः ।  
 इति ते कथितो नाथ ! पूर्वज्ञानसमोदयः ॥ ५८ ॥  
 अथान्यं संप्रवक्ष्यामि सिद्धिशुद्धफलार्थभाक् ।  
 येन क्रमेण सम्भूयात् खेचरीमेलनं प्रभो ! ॥ ५९ ॥  
 याभिः समरसप्राप्तिस्ता एव फलसिद्धिदाः ।  
 शृणु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये पञ्चादक्तव्यमेव तत् ॥ ६० ॥  
 आसनादिकमाकृत्य कायसङ्कोचमाचरन् ।  
 कामलताक्षुद्रतरैर्भेदिता रसनाशकैः ॥ ६१ ॥  
 तालुमूलोत्तरे मूले नियुज्य मधुपो भवेत् ।  
 तदैव जपमाकृत्य वायुं धृत्वा पिबेन्मधु ॥ ६२ ॥  
 सा स्यात् समरसप्राप्तिः कामलिङ्गे स्थिरो भवेत् ।  
 इत्येषा कथिता विद्या लताभेदं शृणु प्रभो ! ॥ ६३ ॥  
 श्वेतवाय्यालसूत्रेण लतां कुर्याद्विचक्षणः ।  
 अष्टादशाङ्गुलमितां नातिसूक्ष्मां प्रमाणवत् ॥ ६४ ॥  
 जिह्वाधः सन्निवेश्याथ घर्षयेत् कामसुन्दर ! ।  
 तदा जिह्वा स्वयं याति घर्षणेन पुनः पुनः ॥ ६५ ॥  
 पश्चात् जिह्वाक्रियां कुर्यात् तालुमूले निधाय च ।  
 क्रमेणासृतमाप्नोति जिह्वाधश्छेदने ध्रुवम् ॥ ६६ ॥

सा स्यात् समरसप्राप्तिर्यदि मन्त्राक्षरं भजेत् ।  
 जीवब्रह्मबुद्धिमन्तस्ते तिष्ठन्ति निरञ्जने ॥ ६७ ॥  
 कुष्माण्डाकारदेही च ब्रह्मसाधनतत्परः ।  
 सदा समरसप्राप्तिरनायासेन लभ्यते ॥ ६८ ॥  
 जले स्थले भूमिगर्त्ते शरीरं नापि पश्यति ।  
 अमरामरदेही च स्याद् योगी योगिदुर्लभः ॥ ६९ ॥  
 कायसाधनमावक्ष्ये येन सिद्धिपतिर्भवेत् ।  
 शृणुष्वेकमना शश्वो ! गृहस्थानान्तु दुर्लभम् ॥ ७० ॥  
 महारण्ये पद्मवने शीतले गन्धशोभिते ।  
 कायकल्पनमाकृत्य भावयेत् कण्ठपङ्कजम् ॥ ७१ ॥  
 उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ।  
 पद्मे पद्मे स्वदेहस्य कल्पना च दले दले ॥ ७२ ॥  
 क्रमशः कण्ठपद्मे च स्वीयदेहस्य कल्पना ।  
 क्रियते यदि योगौन्द्रेस्तदा देहस्य रक्षणम् ॥ ७३ ॥  
 अन्यथा मृत्युरेव स्याद् योगभ्रष्टो भवेन्नरः ।  
 एवं क्रमेण सर्वत्र कुर्यात् कायस्य कल्पनम् ॥ ७४ ॥  
 जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते मोहसङ्कटात् ।  
 अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कायकल्पनमेव तत् ॥ ७५ ॥  
 नानापौठत्वसाध्ये च चक्षुरिन्द्रियवर्जिते ।  
 मनीगम्ये स्थिरो भूत्वा स्वदेहमपि कल्पयेत् ॥ ७६ ॥  
 वाराणस्यादिपीठे च महाज्वालासुखीपदे ।  
 कुरुक्षेत्रे प्रयागे च दक्षिणे द्वारकादिषु ॥ ७७ ॥  
 हरिद्वारोदये तीर्थे मार्कण्डेये च कापिले ।  
 ब्रन्दावने गुह्यपीठे गङ्गायामुनयोस्तटे ॥ ७८ ॥  
 पुष्करे पृथिवीतीर्थे कायतीर्थे गयादिषु ।  
 कायकल्पनमाकृत्य अज्ञावान् पूजयेत् परम् ॥ ७९ ॥

सदाशिवं शाकिनीशं शाकिनीयोगिनीगणैः ।  
 विष्टितं परयो भक्त्या ध्यात्वा देहं प्रकल्पयेत् ॥ ८० ॥  
 प्रकल्प्य स्वतनुं तत्र ततो देवस्य कल्पयेत् ।  
 तेषां मर्नासं यद्ग्रानं तद्ग्रानं कायकल्पनम् ॥ ८१ ॥  
 एतत्कायकल्पनेन मीनो वाक्सिद्धिमाप्नुयात् ।  
 इदानीं कामदेवस्य मथनं शृणु भैरव ! ॥ ८२ ॥  
 कामदेवस्य मथनं सुखदं मोक्षदं परम् ।  
 यावद्विन्दुः स्थिरो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ? ॥ ८३ ॥  
 विन्दुपाताद्भवेन्नाशस्ततो हि विन्दुरक्षणम् ।  
 तत्तदौषधमावच्ये येन विन्दुः स्थिरो भवेत् ॥ ८४ ॥

विन्दुस्थिरीकरणम् ।—

नित्यं सेवनमाकुर्व्यादेतेषां मूलमावहन् ।  
 श्वेतापराजितामूलं सिद्धिमूलं ततः परम् ॥ ८५ ॥  
 शतपद्मीमूलमेकं कदम्बमूलमेव च ।  
 श्वेतकुन्दपुष्पमूलं करवीर तथा सितम् ॥ ८६ ॥  
 कृष्णधुस्तूरमूलञ्च शैफालीमूलमेव च ।  
 चितामूलं तथा शम्भो ! निर्गुण्डीमूलमेव च ॥ ८७ ॥  
 एकीकृत्य विधानेन रविवारेऽर्कमूलकैः ।  
 समभागेन योगिन्द्र ! चूर्णीकृत्य पृथक् पृथक् ॥ ८८ ॥  
 शुक्रवारे च पूर्वाह्ने मिश्रं कुर्यात् दिनत्रयम् ।  
 षड्भिराशोधयेत् काम-मुद्राभिर्वाग्देवता ॥ ८९ ॥  
 मध्यमाङ्गुलिमुत्तोल्य दक्षिणेनापि मुष्टिना ।  
 धृत्वा च शोधयेदादौ रुद्रमूलादिसाधकः ॥ ९० ॥  
 विजयाचूर्णयोगेन पिबेच्चूर्णद्वितोलकम् ।  
 अर्द्धतोलकमुष्ट्यैकं विजया सार्द्धतोलका ॥ ९१ ॥  
 मिश्रीकृत्य विधानेन तत्तत् कुजदिने शुभे ।  
 एतत् प्रमक्षयेन्नैव मदनं वशमानयेत् ॥ ९२ ॥

यदा मनसि आयाति पुष्पधन्वा महाबली ।  
 तदा त्वां पूजयित्वा च कामदेवं निवारयेत् ॥ ८३ ॥  
 इति कामस्य कथनं देहे व्यवस्थितं शृणु ।  
 अङ्गुष्ठगुल्फजानूरु-सीवनी-लिङ्ग-नाभिषु ॥ ८४ ॥  
 हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि ।  
 भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि वायुकाशप्रियालये ॥ ८५ ॥  
 वायुरूपं स्वदेहन्तु स्थापयित्वा मनं जपेत् ।  
 कुम्भकप्राणयोगेन निजदेहव्यवस्थितिः ॥ ८६ ॥  
 कराभोजो स्थिरो यो हि तं जलं शृणु भैरव ! ।  
 योगारम्भावधिर्यो हि स्त्रीसंसर्गं विवर्जयेत् ॥ ८७ ॥  
 मातृणां गमनं नास्ति यस्य स कण्ठसुस्थिरः ।  
 नित्यं करोति योगं यो धर्मात्मा स्थिरचेतनः ॥ ८८ ॥  
 स एव कण्ठपद्मे च स्थिरो भवति निश्चितम् ।  
 भावज्ञानी च यो विद्वान् तं वदामि दयार्णवम् ॥ ८९ ॥  
 कुण्डलीस्पर्शमात्रेण तन्मयो जायते क्षणात् ।  
 सर्वदेवपरं भावं कृत्वा ज्ञानेन पूजयेत् ॥ ९० ॥  
 सर्वपीठे स्थिरो भूत्वा ज्ञानात्मा परिपूजयेत् ।  
 क्रमेण कण्ठभेदः स्याद् योगी भवति सत्वरम् ॥ ९१ ॥  
 धनं धान्यं धरां धर्मं कीर्त्तिमायुर्यशः प्रियम् ।  
 तुरगान् दन्तिनः पुत्रान् लोकान् सर्वसुखोदयम् ॥  
 एतज्ज्ञानप्रसादेन लभते परमेश्वरम् ॥ ९२ ॥

ज्ञात्वा योगेन्द्रचक्रं त्रिभुवनत्रिविधध्वान्तजालप्रकाशं  
 मूलाभोजे रसाख्ये दशदलविमले हृत्सु पद्मे विलापम् ।  
 कण्ठाभोजे मनोज्ञे द्विदलसुकमले भावयन्तं सुरैन्द्रेः  
 श्वेताभोजे परेशं निरवधिगगनं पूजया भावयामि ॥ ९३ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायाम् लक्षणतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्चक्रप्रकाशे  
 भैरवी-भैरवसंवादे कण्ठपद्मभेदविज्ञानविन्यासी नाम षष्ठितमः पटलः ॥६०॥

## एकषष्टितमः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ कान्त ! प्रवक्ष्यामि समुदायफेलोटयम् ।

कण्ठाभोजस्य वर्णानां ध्यानं मन्त्रं शृणु प्रभो ! ॥ १ ॥

आदौ श्रौशाकिनीध्यानं पश्चात् ध्यानं सदाशिवे ।

द्वयोरभेदबुद्ध्या च कामजेता स्वयं भवेत् ॥ २ ॥

शाकिनीध्यानम् ।—

वन्दे नित्यां सुशीलां त्रिभुवनवरदां शाकिनीं पीतवस्त्रां

वेदाद्यां वेदमातां सुखमयललितां वेदहस्तीज्ज्वलाङ्गीम् ।

ध्यायेत् पौयूषधाराऽमलघटसुधया स्निग्धदेहां हसन्तीं

मायां शशोर्ललाटे विधुकरणकरां श्रोत्रदानन्दयुक्ताम् ॥ ३ ॥

अभोजास्त्रादिमुद्रां शिववरदजटां धारयन्तीं करालां

श्यामां पौनस्तनाक्यां त्रिनयनकमलां प्रेतलिङ्गासनस्थाम् ।

सर्वालङ्कारदीप्तां शशधरवदनाभोजशोभां वहन्तीं

शशोरानन्दकर्त्रीं चरमगुणपदां स्थूलसूक्ष्मस्वरूपाम् ॥ ४ ॥

एवं ध्यायेन्महायोगी स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणीम् ।

अभेद्यभेदकरणीं शङ्कर ! प्रेमवल्लभ ! ॥ ५ ॥

या विद्या वाग्भवाद्या हरिवधुकमला केवले निष्कलान्ते

मायालक्ष्मीस्त्रिकूटं शशिसुखि तदधः शाकिनी क्षेत्रपालम् ।

वचोदन्द्ं त्रिकूटं बहुमधरामिव सिद्धिमिष्टां विधेहि

स्त्राहान्तोऽयं महेश ! त्रिभुवनभवाह्लादहेतोः प्रकाशम् ॥ ६ ॥

शाकिनीमन्त्रोद्धारः ।—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वाग्भवं तदनन्तरम् ।

शाकिनि त्वं तदन्ते तु मम दोषान् विनाशय ॥ ७ ॥

युगलं वङ्गिकान्तां च मन्त्राणां सारदाः स्मृताः ।

कामबीजं समुद्धृत्य हिरण्याक्षि सनातनि ! ॥ ८ ॥

शाकिन्यन्ते महामाये मायावद्भिप्रियायुतम् ।  
 एषा मन्वात्मिका विद्या कण्ठाभोजप्रकाशिनी ॥ ८ ॥  
 शाकम्भरी महाविद्या तस्या वामे विभाति च ।  
 तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि ज्ञात्वैव योगवित प्रभुः ॥ १० ॥  
 मायामन्त्रस्य माहात्म्यं कथितं नेव शक्यते ।  
 भावमात्रेण सिद्धिः स्यात् किं पुनर्मीक्षसाधनम् ? ॥ ११ ॥  
 विद्यां कामकलां विचित्रवसनां पद्मासनस्थां शिवां  
 कामाख्यां सकलान् स्वरान् त्रिजगतां शाकैमहायोगिनीम् ।  
 नित्यं या परिपाल्यने भगवतीं शाकम्भरीं तां भजे  
 सा योगाधिपरोक्षका निशि निर्गम्यैककण्ठपद्मे प्रभा ॥ १२ ॥  
 अद्यापि प्रियकण्ठपद्मनिकरे संभाति शाकम्भरी  
 विद्यावाक्कमलायुतं क्षितिसुखी प्रान्ते च शाकम्भरी ।  
 वर्द्धिवारुणवायुबीजकमलद्वयं हि रक्षयिष्यम्  
 वर्द्धिप्रेमकलान्वितो मनुवरः साक्षाज्जगत्क्षोभकत् ॥ १३ ॥  
 शाकम्भरीं महामायां पूजयेद्द्वारदेवताम् ।  
 तदन्ते सर्वदेवांसु शक्रादौन् परिपूजयेत् ॥ १४ ॥  
 ध्यात्वा च शाकिनीं देवीं शाकम्भर्यां च दक्षिणे ।  
 पूजयेत् परया भक्त्या पूर्वोक्तविधिना प्रभो ! ॥ १५ ॥  
 शाकम्भरीं त्रिनयनां सूर्येन्दुवह्नियोजिताम् ।  
 रक्तपद्मस्थितां श्यामां वेदबाहुं श्रियोञ्ज्वलाम् ॥ १६ ॥  
 वराभयकरां खड्गकपालकमलान्विताम् ।  
 नानालङ्कारशोभाङ्गीं मुक्तकुन्तलभूषिताम् ॥ १७ ॥  
 प्रसन्नवदनाभोज-क्षितहास्यविराजिताम् ।  
 साधकाभौष्टदां नित्यां महाविद्यां भजास्यहम् ॥ १८ ॥  
 ततो-मानसपूजाञ्च ध्यानान्तेऽपि समाचरेत् ।  
 पुनर्ध्यानं ततः कृत्वा चित्तावाहनमाचरेत् ॥ १९ ॥



पाद्यादौः पूजयेन्नित्यं भक्त्या योगसुचिह्वये ।  
 ततो जपेत् शतं वा । चाष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ २० ॥  
 एवं जपसमाप्तौ तु कण्ठे देवीं प्रपश्यति ।  
 होमादौन् क्रमशः कुर्याद् ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥ २१ ॥  
 तदन्ते शाकिनीपूजां प्रथमे वापि कारयेत् ।  
 तत्प्रकारं शोधयित्वा हस्ती च देवविग्रहम् ॥ २२ ॥  
 चालयित्वा द्विराचम्य मूलमन्त्रेण साधकः ।  
 शिखावन्धनमाकृत्य आसनं परिशीघयेत् ॥ २३ ॥  
 ततोऽर्घ्यस्थापनं कृत्वा पीठं निर्माय यत्नतः ।  
 पीठचक्रं शोधयित्वा पीठपूजां समाचरेत् ॥ २४ ॥  
 ततो ध्यानं भूतशुद्धिं न्यासजालं समाचरेत् ।  
 पुनः प्राणायामयुग्मं कृत्वा देहं दृढं नयेत् ॥ २५ ॥  
 ततो ध्यानं मानसार्चां मुद्रादर्शनमेव च ।  
 ततः पाद्यं तथाऽर्घ्यन्तु चारुशङ्केन कारयेत् ॥ २६ ॥  
 आचम्यञ्च ततः स्नानं पुनराचमनं तथा ।  
 गन्धं पुष्पाणि सर्वाणि विल्वपत्राणि दापयेत् ॥ २७ ॥  
 निजावरणदेवांश्च पूजयित्वा क्रमेण तु ।  
 धूपदीपौ निवेद्याथ नेवेद्यञ्च ततःपरम् ॥ २८ ॥  
 पुनराचमनं दत्त्वा वलिद्रव्याणि दापयेत् ।  
 वलिं दत्त्वा जपेन्नन्तं सहस्रं वा शताष्टकम् ॥ २९ ॥  
 दिवसे यज्जपं कुर्यात् रात्रौ तज्जाप्यमाश्रयेत् ।  
 जपं समापयेद्विद्वान् गुह्यातिगुह्यमन्त्रकैः ॥ ३० ॥  
 प्राणायामत्रिषष्ट् कृत्वा बन्दनञ्च प्रदक्षिणम् ।  
 स्तोत्रञ्च कवचं नित्यं सहस्रनाममङ्गलम् ॥ ३१ ॥  
 पठेद्भक्त्या कण्ठपद्मे कायकल्पसङ्करः ।  
 एवं विधिविधानेन पूजयित्वा सदाशिवम् ॥ ३२ ॥

अस्मिन् शास्त्रे क्रिया गुप्ता गुप्तनारीप्रपूजनम् ।  
 अथवा मनसा सर्वं पूजा-याग-जपं चरेत् ॥ ३३ ॥  
 यथा देव्यास्तथा शम्भोर्जपयागः समीरितः ।  
 एवं क्रमेण पूज्याश्च वाह्यस्था मुनयः क्रमात् ॥ ३४ ॥  
 पूज्या वर्णकला नाथ ! तद्वाह्यस्थानमर्चयेत् ।  
 एवं हि मासकार्येण वरां सिद्धिं समाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उक्तप्रकरणे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकप्रकाशे भैरवी-  
 भैरवसंवादे शाकिनीसदाश्रियार्चनं नाम एकषष्टितमः पटलः ॥ ६१ ॥

## द्विषष्टितमः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कैलासशिखरारूढ ! पञ्चवक्त्र ! त्रिलोचन !  
 सर्वभूतप्रपूज्याथ शाकिनीयजनं शृणु ॥ १ ॥

शाकिनीपूजा ।—

पूजनं त्रिविधं प्रोक्तं मनः साक्षाद्बचो मम ।  
 मानसं योगिनां प्रोक्तं तदा साक्षात् गृहे प्रभो ! ॥ २ ॥  
 वाचामयं तामसानां नृपाणां कार्मिनां प्रभो !  
 एका पूजा च त्रिविधा कथिता परमेश्वर ! ॥ ३ ॥  
 सा पूजा सिद्धिदा काले त्रिकाले सर्वकालके ।  
 काले सिद्धिर्गृहस्थानां त्रिकाले ब्रह्मचारिणाम् ॥ ४ ॥  
 योगिनां सर्वकाले तु विफला दुष्टचेतसाम् ।  
 भावत्रयं हि पूजानां रजःसत्त्वतमोमयम् ॥ ५ ॥  
 त्रिशक्तिपूजनं नाथ ! सर्वत्र परिकीर्तितम् ।  
 ब्रह्माणीं वैष्णवीं तत्र पूजयेत्तां महेश्वरीम् ॥ ६ ॥

त्रिभावेन पूजयित्वा शक्तिब्रह्मत्रयेण च ।

पद्मरूप-वीररूप-दिव्यरूपेण पूजयेत् ॥ ७ ॥

वालिदानं हि सर्वत्र परं मोक्षाय केवलम् ।

क्रमेण गुणयोगेन सर्वविद्यादिपूजनम् ॥

यत्कृत्वा संभवेद् योगौ परं ब्रह्ममयोऽचिरात् ॥ ८ ॥

स्थानं वीक्ष्य महेन्द्रकोटिसदृशं श्रीलक्ष्मणैर्लक्षितं

देवानां गतिदं तथा सुरचिरं पुण्यं पवित्रं सुखम् ।

रम्यं देवगृहान्वितं परिजनैर्व्याप्तं तरुच्छायया

सौगन्ध्यादि-सुमान्द्यशैत्यपवनं काले वसन्तेऽपि वा ॥ ९ ॥

शून्ये देवगृहे तले वरतरोच्चित्तार्पितात्मा यति-

श्चाश्वीजासनसंस्थितो नृदृकटे व्याघ्राजिने वारणे ।

पादौ पादयुगं भुवि स्थितमिथो विस्तार्ये हस्तौ तथा ।

जीवं निर्मलगन्धराजमिलितैः संक्षाण्ड्य पद्माननः ॥ १० ॥

जलशोधनमन्त्रस्तु श्रूयतां परमेश्वर ! ॥ ११ ॥

प्रणवस्तरणप्रान्ते वज्रोदकमतः परम् ।

शोधयामि ततः स्वाहा जलमन्त्र उदाहृतः ॥ १२ ॥

प्रक्षिपेत्तज्जलं पात्रे पवित्रे च सुरेश्वर ! ।

हस्तौ पादौ तज्जलेन क्षालयेत् काममायया ॥ १३ ॥

विग्रहं मूलमन्त्रेणाचमने द्वे उदाहृते ।

शिखाबन्धनमन्त्रन्तु शृणुष्वत्तकुमारक ! ॥ १४ ॥

अप्रकाश्यं महामन्त्रं शिखाबन्धनमासनम् ।

(श्री) शोधये त्रिपुरानाथ ! कालाग्निशिखयोञ्ज्वल ! ॥ १५ ॥

आसनं शोधयाम्यद्य द्वारपालो भवाऽनिशम् ।

ततोऽर्घ्ये स्थापयेद्विद्वान् शङ्काधारे मनोरमे ॥ १६ ॥

मूलमन्त्रेण संक्षाण्ड्य ततो मूलेन पूरयेत् ।

रक्तचन्दनयुक्तेन जलेन चन्दनेन च ॥ १७ ॥

ततो दूर्वाऽर्घ्यपुष्पाणि साधारे दापयेत् सुधीः ।  
दशधा मूलमन्त्रन्तु तत्र जप्त्वा सुधामयम् ॥ १८ ॥  
धेनुमुद्रां मत्स्यमुद्रां योनिमुद्राञ्च दर्शयेत् ।  
प्रणवञ्च महारेखा शब्दान्ते शोधयामियुक् ॥ १९ ॥  
वह्निजायान्तमन्त्रेण शोधयेत् पीठचक्रकम् ।  
पीठपूजां ततः कुर्यात् प्रणवादि-नमोऽन्तकैः ॥ २० ॥  
मां पदं पूर्वमुच्चार्य हृदयाय नमस्ततः ।  
षड्दीर्घभाजा वीजेन पूजयेदामतः सुधीः ॥ २१ ॥  
पूर्वादीशानपर्यन्तं चतुर्दिक्षु च मध्यके ।  
पूजयित्वा च तन्मध्ये वर्षोच्चारणपूर्वकैः ॥ २२ ॥  
पीठशक्तिं पूजयित्वा पीठनायकमर्चयेत् ।  
प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र प्रतिपूजयेत् ॥ २३ ॥  
पीठशक्तिं शाकिनीन्तु तथा शाकम्भरीं शिवाम् ।  
लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां चण्डिकां गणनायिकाम् ॥ २४ ॥  
भद्रकालीं विशालाक्षीं शुद्धां मायां दलां कलाम् ।  
रणचण्डां मधुमतीं प्रसन्नां रत्नमालिनीम् ॥ २५ ॥  
द्विरण्यवर्षां कौमारीं वाग्देवीं त्रिजटां महीम् ।  
त्रिशूलिनीं देवमायां सिद्धाद्यां मधुनायिकाम् ॥ २६ ॥  
मधुपुरेश्वरीं कुब्जां तथा मधुमतीं यजेत् ।  
शाकाख्यां शाकमध्याञ्च वेदहस्तां हसन्मुखीम् ॥ २७ ॥  
कपालिनीं खड्गहस्तां वनमालाञ्च माधवीम् ।  
विचित्राङ्गीं लोलजिह्वां चेतिकालां प्रभामयीम् ॥ २८ ॥  
सर्वां सर्वाकर्षिणीञ्च वक्षरूपां सुधांशुटाम् ।  
सर्वमयीं वर्णमयीं मुण्डमालां त्रिकालिकाम् ॥ २९ ॥  
विश्वेश्वरीं विश्वमातां महाविद्यां सनातनीम् ।  
एता विद्याः पूजनीयाः प्रणवादिनमोऽन्तिकाः ॥ ३० ॥

ततो ध्यानं प्रवक्ष्यामि संक्षेपतः शृणु प्रिये ! ॥ ३१ ॥

शाकिनीध्यानम् ।—

शाकिनीं श्रीवेदविद्यां स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणीम् ।

पीतवर्णां त्रिनयनां वेदहस्तां हसन्मुखीम् ॥

सदाशिवयुतां गौरीं सर्वालङ्कारमण्डिताम् ॥ ३२ ॥

त्रिलोचनां सूर्यचन्द्र-वाङ्मण्डलमण्डिताम् ।

कपालपद्मविमल-वराभयकराम्बुजाम् ॥ ३३ ॥

देवदानवगन्धर्व-योगसिद्धिप्रपूजिताम् ।

षोडशारमहापद्म-संस्थितां वनमालिनीम् ॥ ३४ ॥

शाकम्भरीं वेदविद्यां माधवीं शक्तिशोभिताम् ।

मुनिदेवमहेन्द्रादि-ब्रह्मविष्णुशिवाश्रयाम् ॥

ध्यायेत्कण्ठपद्मस्थां सर्वसिद्धिसम्प्लिदाम् ॥ ३५ ॥

एवं ध्यात्वा कण्ठपद्मे भूतशुद्धिं ततश्चरेत् ॥ ३६ ॥

भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि येन कण्ठस्थिरो भवेत् ।

आकाशगामिनी सिद्धिर्लभते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

भूतशुद्धिः ।—

संयोज्य जीवं कुलवक्त्रमध्ये श्रीकुण्डलिन्या सह मूलपद्मम् ।

क्रमेण भित्त्वा समयोर्द्ध्वतुण्डे विशुद्धपद्मे लयमाचरेद्बुधः ॥ ३८ ॥

शाकिनीपार्श्वभागे च जीवं संस्थापयेत् सुधीः ।

कुण्डलिन्या लयं कृत्वा वाङ्मण्डलैर्वाजेन भस्मसात् ॥ ३९ ॥

देहं तदा विदधीत वायुवीजेन शोधयेत् ।

वारुणेनामृतं कृत्वा सर्वथा च हितो भवेत् ॥ ४० ॥

धैर्येण भावयेद्देवं शाकिनीं सदाशिवम् ।

त्रैलोक्यान्यतमौशानं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ ४१ ॥

पूर्वाक्तध्यानमाकुर्व्यान्मन्त्राक्षराणि भावयेत् ।

चिच्छक्तौ परमात्मानं भावयित्वा पुनःपुनः ॥ ४२ ॥

आत्ममग्नं तत्र पदे कृत्वा चिन्तामणिं मजेत् ।

धूम्राकारं महाकाशं विचिन्त्य तेजसाऽऽवृतम् ॥ ४३ ॥

प्राणप्रतिष्ठा ।—

लीलामयं देवताया रूपं संपूज्य मानसैः ।

क्रमेण नासिकाद्वारात् सोऽहं वीजेन चालयेत् ॥ ४४ ॥

आनीय सम्मुखे पीठे संस्थाप्य जीवमर्पयेत् ।

तत्रैव सुस्थिरो भूत्वा तत्प्राणान् तत्र विन्यसेत् ॥ ४५ ॥

आं क्लीं क्रौं(क्रौं) शब्दमुच्चार्य यं रं लं वं ततः परम् ।

इत्याद्यैः स्थापयेत् प्राणान् ततोऽर्चाविधिमाचरेत् ॥ ४६ ॥

पूजाप्रारम्भः ।—

न्यासजालं ततः कुर्यात् शृणु तत्त्वासनादिकम् ।

सदाशिवऋषिश्चास्य मस्तके संन्यसेत् सुधीः ॥ ४७ ॥

सदाशिवाय धारये नमः प्रणवमाद्यके ।

मुखे प्रणवमुच्चार्य चानुष्टुप्कृन्दसे नमः ॥ ४८ ॥

हृदि प्रणवमुच्चार्य शाकिन्यै तदनन्तरम् ।

सदाशिवप्रयुक्तायै देवतायै नमस्ततः ॥ ४९ ॥

कराङ्गन्यासौ संकुर्यात् षड्दीर्घस्वरसंयुतैः ।

सकारैर्देवदेवेशे माहृकां वीजसंपुटाम् ॥ ५० ॥

माहृकास्थानमालम्ब्य सांवीजेनान्तराचरेत् ।

व्यापकं षोडशवारं प्राणायामयुगं चरेत् ॥ ५१ ॥

पुनर्ध्यानं मानसार्चां योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

घेनुमुद्रां मत्स्यमुद्रां सिंहमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥

पद्ममुद्रां ततः कुर्यात् पाद्याद्यैः परिपूजयेत् ॥ ५२ ॥

आदौ मूलं समुच्चार्य एतत्पाद्यं ततः स्मरेत् ।

सदाशिवप्रयुक्तायै शाकिन्यै नम इत्यपि ॥ ५३ ॥

एवंक्रमेण दूर्वार्घ्यमाचामं विनिवेदयेत् ।

स्नानीयं क्रमतो दद्यात् पुनराचमनीयकम् ॥ ५४ ॥  
 गन्धं पुष्पाणि मूलेन दद्याद्भक्त्या सदाशिवे ।  
 विल्वपत्राणि मूलेन दत्त्वावरणमर्चयेत् ॥ ५५ ॥  
 प्रणवं सां हृदयाय नमश्चाग्नी प्रपूजयेत् ।  
 प्रणवञ्च सीं शिरसे स्नाहया नैऋते यजेत् ॥ ५६ ॥  
 प्रणवं सूं शिखायै तु वषट् वायौ यजेत् क्रमात् ।  
 प्रणवं सैं कवचाय कूर्चमीशे प्रपूजयेत् ॥ ५७ ॥  
 मध्ये सौं नेत्रत्रयाय वीषट् प्रणवमाद्यके ।  
 चतुर्दिक्षु ततः पश्चात् सः अस्त्राय ततो हि फट् ॥ ५८ ॥  
 प्रणवाद्यं पूजयित्वा मस्तके ऋषिमर्चयेत् ।  
 प्रणवं मूलऋषये सदाशिवाय हृत्ततः ॥ ५९ ॥  
 पूर्वादि वामतः पूज्याः परिवारादिदेवताः ।  
 आनन्दभैरवं पश्चात् महाकालं समर्चयेत् ॥ ६० ॥  
 ज्ञानानन्दं सदानन्दं भैरवानन्दमेव च ।  
 श्यामानन्दं शिवानन्दं कालानन्दमतःपरम् ॥ ६१ ॥  
 सुधानन्दं हरानन्दं भैरवानन्दमेव च ।  
 कुलानन्दं प्रियानन्दं यज्ञानन्दमतःपरम् ॥ ६२ ॥  
 ध्यानानन्दं परानन्दं योगानन्दं समर्चयेत् ।  
 क्रोधानन्दं क्रियानन्दं बोधानन्दं तथाऽर्चयेत् ॥ ६३ ॥  
 देवानन्दं जयानन्दं विजयानन्दमेव च ।  
 ब्रह्मानन्दं प्रभानन्दं पूर्णानन्दं समर्चयेत् ॥ ६४ ॥  
 जगदानन्दरूपन्तु ममाज्ञा गुरुचक्रगम् ।  
 पूजयित्वा देहशक्तिमेतेषां पाशंके यजेत् ॥ ६५ ॥  
 कात्यायनीं कालकन्यां त्रिपुरां षोडशीं तथा ।  
 विद्याधरीं व्याघ्रमुखीं मधुपानमदीक्षदाम् ॥ ६६ ॥  
 रम्यां स्नेहकलां धर्म्यां तथा मधुमतीं हराम् ।

हारमालां वनमालां राकाञ्च कुलकामिनीम् ॥ ६७ ॥  
 पूजितां गुरुशर्वाणीं सर्वतत्त्वस्वरूपिणीम् ।  
 पूजयेत् पूर्वतः शक्त्या ईशानान्तं क्रमेण तु ॥ ६८ ॥  
 तन्मध्ये केशवं ध्यात्वा दलस्वरमुपाश्रयेत् ।  
 अकारादिषोडशार्णान् प्रणवादिनमोऽन्तकान् ॥ ६९ ॥  
 नीलवर्णान् स्वरक्ताब्जान् कुङ्कुमालक्तवेष्टितान् ।  
 विद्युत्कोटिसमाभास-पद्मरागसमोज्ज्वलान् ॥ ७० ॥  
 मनोरथपूर्णकरान् जगदानन्दवर्द्धकान् ।  
 सप्रियापरिवारादि-परमात्मप्रदर्शकान् ॥ ७१ ॥  
 तेषां नाम्ना पूजयित्वा यथा मार्त्तण्डमण्डले ।  
 तथा एते पूजिताः स्युः स्त्रस्त्रनामप्रचोदिताः ॥ ७२ ॥  
 शृणु नाथ ! महाकाय ! मटोन्नत ! दिगम्बर !  
 स्थिरचेताः तदा भूत्वा पूजयित्वा हि शाकिनीम् ॥ ७३ ॥  
 तत्र पद्मकर्णिकायां शवरूपं सटाशिवम् ।  
 ध्यात्वा तद्गात्रमध्ये तु पीठचक्रं प्रपूजयेत् ॥ ७४ ॥  
 मूलाक्षरे कामरूपं कामचक्रं त्रिलक्षणम् !  
 पीठाय नम उच्चार्य चाद्यतारकमुच्चरेत् ॥ ७५ ॥  
 हृदि जालन्धरं पीठं सिद्धपीठं त्रिचक्रकम् ।  
 ललाटे पूर्णगिर्याख्यं हिङ्गुनादं स्वपीठकम् ॥ ७६ ॥  
 उड्डीयानं तद्दूर्ध्वं तु मेघकुञ्जं स्वपीठकम् ।  
 महापीठं भ्रुवोर्मध्ये वाराणसीञ्च लिङ्गकम् ॥ ७७ ॥  
 लोचनत्रयमध्ये तु ज्वलन्तीसिद्धपीठकम् ।  
 ज्वालामुखी त्रिवेणी च पीठत्रयमुटाहृतम् ॥ ७८ ॥  
 त्रिलोचन ! त्रिपीठं मे अवश्यं परिपूजयेत् ।  
 हृदम्बुजे पूजयेद्दे मायावतीं सुभद्रिकाम् ॥ ७९ ॥  
 काम्पिष्यनगरं वंशं नगरं कामभञ्जनम् ।



हिरण्यनगरं तत्र एकदन्तं रसायनम् ॥ ८० ॥  
 कपालपीठं तत्त्वाख्यं फण्णिपीठं मुखे यजेत् ।  
 कण्ठे मधुपुरीपीठं सुधापीठं तदन्तिके ॥ ८१ ॥  
 आन्नापीठञ्च श्रीपीठं शून्यपीठं श्रियाञ्जनम् ।  
 पुरञ्जनाख्यं भद्राख्यं कण्ठे हस्ते पुरी मम ॥ ८२ ॥  
 नाभौ महापीठबीजमयोध्याभवपीठकम् ।  
 लक्ष्मीपीठञ्च सङ्केत-लाङ्गलीपीठमेव च ॥ ८३ ॥  
 मणिपीठं ज्ञानपीठं रुद्रपीठं तदन्तिके ।  
 शाकिनीकुलपापीठं वलाङ्गीपीठमेव च ॥ ८४ ॥  
 रौद्रप्रभामहापीठं स्तेच्छदेशस्य पीठकम् ।  
 मर्कासिद्धिकरीपीठं निरञ्जनस्वपीठकम् ॥ ८५ ॥  
 ब्रह्मपीठं दन्तपीठमभयापीठमेव च ।  
 रुक्मिणीपीठमेवं हि फेल्कारीपीठमर्चयेत् ॥ ८६ ॥  
 गर्गरीसिद्धपीठञ्च चन्द्रशेखरशैलकम् ।  
 हरिहाराख्यपीठन्तु समुद्रपीठमर्चयेत् ॥ ८७ ॥  
 कन्यां समुद्रपीठञ्च काञ्चीपीठं त्रिघर्बरम् ।  
 शूलिनीपीठमभ्यर्च्य लङ्कापीठं समर्चयेत् ॥ ८८ ॥  
 वारुणीपीठमभ्यर्च्य वज्रपीठं समर्चयेत् ।  
 सिद्धकटाहपीठञ्च महासङ्घातपीठकम् ॥ ८९ ॥  
 षट्पीठं द्वाविड़ीपीठं विष्णुपीठं रसान्वितम् ।  
 दलपीठं तथा राधा-पीठं पञ्चाननाख्यकम् ॥ ९० ॥  
 कुण्डलीचक्रपीठन्तु कामपीठं समर्चयेत् ।  
 महावायुकाशपीठं त्रिकालचक्रपीठकम् ॥ ९१ ॥  
 ब्राह्मीपीठं धरापीठं शत्रुपीठं समर्चयेत् ।  
 कुञ्जराख्यं महापीठं कालधर्माख्यपीठकम् ॥ ९२ ॥  
 तद्वामे डाकिनीपीठं गर्भपीठं तदन्तिके ।

मयूरपीठमभ्यर्च्यं गारुडीपीठमर्चयेत् ॥ ९३ ॥  
प्रणवं पूर्वमुच्चार्यं चात्र पीठस्थितान् स्वरान् ।  
पूजयामि महापुष्पैः प्रसन्ना प्रभवन्तु ते ॥ ९४ ॥  
पूजयित्वा पीठलोकं शिवलोकं समर्चयेत् ।  
चेत्रपाललोकमेवं धर्मलोकं त्रिलोककम् ॥ ९५ ॥  
पूजयेत् सागरान् सप्त भुवनानि चतुर्दश ।  
ताराग्रहगणाक्रान्त-लोकपालयुतानि च ॥ ९६ ॥  
पूजयित्वा च तद्वाह्ये शक्तिविद्याः प्रपूजयेत् ।  
डाकिनो राकिणो पूज्या लाकिनो काकिनो तथा ॥ ९७ ॥  
शाकिनी हाकिनी पश्चात् प्रभा नीला(ली) च बोधिनी ।  
उन्ननो भाविनी वित्ता प्रियाङ्गी मानसेश्वरी ॥ ९८ ॥  
उक्तामुखौ क्रोधमुखौ विप्रचित्ता सुभद्रिका ।  
नागिर्गौ नागमाला च पृथिवी तीर्थवासिनी ॥ ९९ ॥  
अकलङ्गा जाङ्गवी च स्वर्गगङ्गा मनोन्मनी ।  
सं सत्त्वस्था रं रजःस्था तं तमःस्था प्रपूजयेत् ॥ १०० ॥  
सर्वां देवीं पूजयेद्द्वै प्रणवादिनमोऽन्तिकाम् ।  
धूपदीपो स्वामूलेन दद्यात् साधकयोगिराट् ॥ १०१ ॥  
नैवेद्यं शोधयित्वा च दद्यात् पानार्थकं प्रभो ! ।  
पुनराचमनं दत्त्वा विशेषबलिमर्पयेत् ॥ १०२ ॥  
पूर्वाक्तोत्तममन्त्रेण पञ्चतत्त्वक्रियादिभिः ।  
अनेन मनुना दद्याद्बलित्रयमनुत्तमम् ॥ १०३ ॥  
प्रणवं कालमायेऽन्ते सर्वपीठनिवासिनि ।  
तदन्ते कालिकावीजं वलिन्तु तदनन्तरम् ॥ १०४ ॥  
परिगृह्य युगं पश्चात् शब्दवीजं ततो द्विठः ।  
अनेन मनुना दद्याद्बलित्रयमनुत्तमम् ॥ १०५ ॥  
सर्वत्र मानसैर्योगी दद्याच्च पूजनं बलिम् ।

प्राणायामं त्रिधा कृत्वा जपेन्नन्त्रं यथाविधि ॥ १०६ ॥

सहस्रं वा शतं वाऽपि चाष्टोत्तरसमन्वितम् ।

दिवसे यज्जपं कुर्यात् रात्रौ तज्जपमाश्रयेत् ॥ १०७ ॥

जपं समापयेद्देव्या वामहस्तेन मन्त्रकैः ।

“गुह्यातिगुह्यगोप्ति ! त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥

सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्पसादात् सुरेश्वरि !” ॥ १०८ ॥

प्रणाम-प्रदक्षिणे ।—

प्राणायामत्रिषट् कृत्वा वन्दनञ्च प्रदक्षिणम् ॥ १०९ ॥

“सम्बन्धे वरदे देवि ! त्रैलोक्यकुलपावनि ! ।

सर्वसिद्धिप्रदे देवि ! शाकिनि ! त्वां नमाम्यहम् ॥ ११० ॥

वेदविद्याप्रसन्ने ! त्वं नानाविद्याविनोदिनि ! ।

भवानि ! सिद्धिदे ! देवि ! वरदा भव सर्वदा ॥ १११ ॥

सर्वदानवहन्त्रि ! त्वं मम शत्रून् विनाशय ।

अकालमृत्युहरणं कुरु कौमारि ! शाकिनि ! ॥ ११२ ॥

सदाशिवयुते ! नित्ये ! सदाशिवविहारिणि ! ।

अमरत्वं सदा देहि भुक्तिं मुक्तिं प्रयच्छ मे ॥ ११३ ॥

शाकिनि ! प्राणदे ! देवि ! देवानां प्राणरक्षिणि ! ।

शाकम्भरि ! नमस्तेऽस्तु मम टेहं समाश्रय ॥ ११४ ॥

वाञ्छाकल्पतरोर्मूले ! स्थायिनि ! प्रेमदायिनि ! ।

सर्वलोकाचर्चते ! सिद्धे ! कण्ठपद्मे स्थिरा भव ॥ ११५ ॥

कण्ठाश्वोरुहमण्डले सुविमले वाञ्छाफले ज्वालिनि

कामाख्ये ! प्रणमामि शाकिनोपदं माता हि शाकम्भरि ! ।

देवनां जगतां हिताय विलये सम्यग्वरश्रीप्रदे !

स्थित्यादिक्रमसंस्थिता भव महाकाशप्रभाचञ्चले ॥ ११६ ॥

इति प्रणम्य भावेन भुक्तिं मुक्तिं लभेद् ध्रुवम् ।

पूजाफलमवाप्नोति प्रदक्षिणरतो नरः ॥११७ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

कुरु नाथ ! वन्दनं भो ! पूजनं कवचं पठ ।

बणध्यानं कण्ठपद्मे स्थिरो भव जगत्पते ! ॥ ११८ ॥

परमा शाकिनौ विद्या महामोहनिवारिणी ।

योगिनीकोटिभिः साहं राजते कोटिसूर्यवत् ॥ ११९ ॥

वाराणसीपुरे स्थित्वा कण्ठपद्मस्थितां भज ।

स्तोत्रेषानेन विधिना भक्तिं कुरु सदाशिवे ॥ १२० ॥

आनन्दे नीलपङ्केरुहविमलकरे स्थापितं षोडशारे

हेमाभां विद्युताभा सुकनकवलयं चन्द्रकोटिप्रकाशाम् ।

रौद्रीं मायां सुकेशीं विधुनयनयुतां शत्रुकालप्रकाशां

सिन्धुस्थां भावयामि प्रमथगणबधूप्रोज्ज्वलां योगनिद्राम् ॥ १२१ ॥

योगेन्द्रानन्दकर्त्रीं सकमलवलयं नीलजीमूतनेत्रां

षोडशारां कारणाख्यां मधुगृह्निकरामष्टगेहप्रकाशाम् ।

आनन्दज्ञाननित्यां दितिजदलकलां कण्ठवैकुण्ठशीभां

धर्मार्थज्ञानदात्रीं त्रिभुवनभविकाऽऽह्लादहेतोः प्रकाशाम् ॥ १२२ ॥

विन्ध्यस्थां पीठकन्यां सुकमलनयनां वेदहस्तां प्रसन्नां

स्मराख्यां चन्द्रवक्त्रां हरिहरविधिभिर्ध्यानगम्यां कदाचित् ।

शश्वुस्थां चारुरूपां भवभयहरणीं तारिणीं भावयामि

सूक्ष्मां स्थूलप्रभाक्या चरणतलविभां कोटिवन्धूककान्तिम् ॥ १२३ ॥

कान्तानां कामकान्ता विजयभगवतीं शाकिनीं शोक्हन्त्रीं

शब्दान्तःप्रान्तरस्थां स्थितिलयगगनां पद्मवागस्रजाक्याम् ।

कान्त्या विश्वं ज्वलन्तीं मदनविधुसमां वीजमालां स्मरामि

व्याघ्रस्थां व्याघ्रवक्त्रां हरिणनयनकैः केवलानन्दरूपाम् ॥ १२४ ॥

बालां शक्तिं प्रवालां त्रिकुलजलकलां कामराजेश्वरीं तां

आनन्दाश्रीं प्रभान्तीं प्रभुगुणभयङ्गां मातृकाबीजकोषाम् ।

घोराहाहाश्रयुक्तां दशगृहसयुतां चारुनेत्रां भजामि

बालादित्यायुताभां कमलमधुमदागन्धमाधुर्ययुक्ताम् ॥ १२५ ॥  
 क्षीणीसिंहासनस्थां मणिमयजपमालास्थिरानन्दहस्तां  
 मातस्त्रैलोक्यपालां तव तनुविमलां निर्मले कण्ठपद्मे ।  
 नित्यज्ञानप्रकाशां भजति मम मनस्तत्त्वचिन्ताप्रसन्नां  
 देवीं विद्योतिताङ्गीं परमसुखमयीं वेदसन्तानकर्त्रीम् ॥ १२६ ॥  
 योगानन्दादिकर्त्रीं तरुणघनघटावीररूपां करालां  
 आकाशाभोजमध्येऽविकलकरणव्यापकाङ्गप्रकाशाम् ।  
 त्वं माता श्रीं वहन्ती कलुषकरकली मोक्षयुक्तां भजे त्वां  
 सा विद्या धर्मचिन्तान्णिगुणजनिता योजिता जातभौतिः ॥ १२७ ॥  
 शब्दब्रह्मैकहेतुः स्थलनिलयमहाज्ञानसाध्या प्रतीता  
 त्वं माता वेदमाता हर हर कलुषं दालिशं तारयस्व ।  
 जीवात्मानं सदा वै क्षयमरणभयभ्रान्तिसङ्घात् प्ररक्ष  
 ज्वालामालाविलोला कलयति कलुषं शाकिनौ शैवमाता ॥ १२८ ॥  
 माता सन्ध्या प्रभातोदयदिवसनिशा भ्रान्तिमोहा विनाशा  
 धर्मज्ञानप्रकाशा चल चल दलके त्वं कलाषोडशारे ।  
 बीजात्मा यज्ञकुण्डे रचयति चरणच्छन्दसां गद्यपद्यैः  
 पाताले भृकराले कुलयुगदलके निर्गता देवशक्तिः ॥ १२९ ॥

\* \* \* \*

पश्यन्ती ब्रह्म सद्यो नयनवचनगा वैखरीवाक्स्वरूपा ।  
 कण्ठे हृत्पद्ममूले कथयति विमला संनतस्त्वां श्रयामि ॥ १३० ॥  
 परा सा सर्वा सा रतिरसिकहासा प्रविश मे  
 घनश्यामा वामा द्विकमलललाटेऽतिशिखया ।  
 वहन्ती सिन्दूरं त्रिजपपरया नामपयसा ।  
 सुखे शोभा भव्या भवभवयुगं षोडशदले ॥ १३१ ॥  
 रमा लज्जा माया मधुमदनकूर्चास्त्रसहिता  
 हिता मातः शाकम्भरि ! धरणि बाला कमलया ।

निशाङ्गं मातस्त्वं हन हन सदा मद्विपुचयं

षट्कूटा त्वं मातर्मदनमदहन्ती हरवधुः ॥ १३२ ॥

ततो जपेन्महामन्त्रं वर्णमालाक्रमेण च ।

प्राणायामं ततः कृत्वा न्यसेत् सर्वाङ्गमध्यमे ॥ १३३ ॥

मातृकाग्रन्यनिकरे न्यसेत् पूर्वोक्तनामभिः ।

यदुक्तं पूर्वपटले तेषां नामभिरिव च ॥ १३४ ॥

विन्यस्य मन्त्रपुटितं मन्त्रन्यासं ततश्चरेत् ।

काकिन्या ह्यष्टशक्तौनां न्यासं कुर्यात्ततः परम् ॥ १३५ ॥

काकजिह्वा द्विकाण्डेयी काकाक्षी काकिनोध्वजा ।

काकिनी काकमाला च काकचक्षुप्रकाशिनी ॥ १३६ ॥

काकिला चाऽष्टशक्तौनां नाम्ना विन्यस्य मस्तके ।

कण्ठकूपे न्यसेत् पश्चात् षोडशस्वरसम्पुटम् ॥ १३७ ॥

हृदये विन्यसेन्नाथ ! कादिद्वादशसम्पुटम् ।

डादिफान्तं प्रविन्यस्य वादिलान्तं खलिङ्गके ॥ १३८ ॥

मूलाधारे मूलमन्त्र-पुटितं वादिमान्तकम् ।

विन्यस्य व्यापकन्यासं कृत्वाऽङ्गानि च वर्द्धयेत् ॥ १३९ ॥

प्राणायामत्रिकं कृत्वा प्राणायामं समाश्रयेत् ।

ततः स्तोत्रं पठेद्दोमान् तत्सर्वं शृणु शङ्कर ! ॥

हविष्याशी वशी भूत्वा साधयेदिह सिद्धये ॥ १४० ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितासु उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्घोषने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षक-

प्रकाशे भैरवी-भैरवसंवादे काकिनोसिद्धिसाधनं नाम

द्विषष्टितमः पटलः ॥ ६२ ॥

## विषष्टितमः पटलः ।

ज्ञानन्दभैरव उवाच ।—

वद कान्ते परानन्दे रहस्यं कुलसुन्दरि ! ।  
यस्य विज्ञानमात्रेण भवेद्भङ्गाधरो हरिः ॥ १ ॥  
ईश्वरस्य स्तवं ब्रह्म परं निर्वाणसाधनम् ।  
श्रीभाकोटिर्योगपतेर्योगेन्द्रस्य परा गतिः ॥ २ ॥  
ईश्वरं के न नमन्ति ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।  
तस्य स्मरणमात्रेण महावाग्मी च मृत्युजित् ॥ ३ ॥  
सर्ववेदान्तसिद्धान्तैस्तं भजन्ति महर्षयः ।  
देवा मनुष्या गन्धर्वास्तं भजन्ति महेश्वरम् ॥ ४ ॥  
अकालमृत्युहरणं सर्वदा सर्वतोमुखम् ।  
सदा तस्य स्तवं दिव्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्करि ! ॥ ५ ॥

ज्ञानन्दभैरव्युवाच ।—

कौञ्ज त्वं शृणु शङ्कर ! प्रियकरं स्तोत्रं मदीशस्य च  
श्रीनाथाय नमः कुलेश ! सततं प्राणेश ! तुभ्यं सुदा ।  
सानन्दाय नमो भवाय पतये लोकेश्वरायौ नमः  
भूतेशाय गणाधिपाय सततं श्रीशूलिने ते नमः ॥ ६ ॥  
क्रान्ताय प्रभवाय योगपतये योगेश्वरायौ नमः  
श्रीङ्काराय कवीश्वराय महते नित्याय नित्यं नमः ।  
स्वाधिष्ठानविभेदकाय हरये मूलाजसम्भेदिने  
श्रीं नमोऽम्बुजभेदिने च हृत्पद्मोद्भेदकाय श्रीं नमः ॥ ७ ॥  
स्वाधिष्ठानविभेदकाय हरये मूलाजसम्भेदिने  
भीक्ष्णाय प्रमथेश्वराय कवये खट्वाङ्गहस्ताय ते ।  
भक्तिश्रीनिलये महेश्वरचरैर्मायाश्रयार्थो नमो  
विज्ञानाय शिवाय सूक्ष्मगतये गूढाय भूयो नमः ॥ ८ ॥  
सर्वज्ञाय जयाय भूतपतये भूतेश्वराय प्रभो !

पञ्चास्याय हराय देवपतये गौरीश्वराय श्रिये ।  
 श्रीं भोगान्तरगामिने हरिहरायाऽऽनन्दचिद्रूपिणे  
 कल्याणाय भगाय शुद्धमतिभिर्नित्यं नमस्ते नमः ॥ ९ ॥  
 गोविन्दप्रियवल्लभाय विधये ब्रह्मादिकोत्पत्तये  
 उत्पत्तिस्थितिसंहर्तप्रकृतये वाच्याय विश्वात्मने ।  
 तुभ्यं काल ! नमो नमः प्रलययोगोक्तासिने भूभृते  
 विख्याताय गिरीन्द्रपूजित ! विभो ! भूताधिपायानिशम् ॥ १० ॥  
 गौरीशाय गणार्चनाय मनवे मान्वाय भूवासिने  
 भूतोत्साहमहोद्यनाय शशिचूडाय प्रधानाय ते ।  
 नित्यं नित्यकलाकुलाय फणिचूडाय प्रवुद्धाय ते  
 तेजःशान्तिपते ! सतां पतिपते ! निर्वाससे ते नमः ॥ ११ ॥  
 शोभाकोटियुताय चन्द्रकिरणाह्लादाय सूक्ष्माय ते  
 तुभ्यं नाथ ! नमो नमः प्रणमतामानन्दसिन्धूत्सव ! ।  
 हेरिस्वाश्रय ! कार्तिकेश ! जनकानन्दप्रियाय प्रभो !  
 पित्रे सर्वसुखाय सर्वपतये श्रीनीलकण्ठेश्वर ! ॥ १२ ॥  
 त्रिब्रह्मार्पितभूतये सुरपते श्रीभास्वते योगिना-  
 मानन्दोदयकारिणे कुलपते ! हे नाथ ! तुभ्यं नमः ।  
 ब्रह्मानन्दकुलाय रौप्यगिरये सौन्दर्यसंसिद्धये  
 सर्वानन्दकराय संपरतरायाख्याय तुभ्यं नमः ॥ १३ ॥  
 काशीशं कौशिकीशं सुरतरुकिरणं कारणाख्यं सुधाख्यं  
 गौरीशं शर्वमीशं गुरुगिरिनामितं श्रौणिलिताङ्गभस्मम् ।  
 घोषाख्यं मञ्जुघोषं घनगणघटितं घोरसङ्घटनादं  
 अर्घीशं राघवेशं जनहृदि घटनं चेश्वर घोटकेशम् ॥ १४ ॥  
 नित्यं त्वं वै विशाली वसति तव करे स्थावरो जङ्गमो वा  
 भूताध्यक्षं वशिष्ठं स्वपरिजनकुले सर्वदा पाहि शम्भो ! ।  
 भक्तिज्ञानं न दत्तं चपलसितमणिश्रेणिमालाविलोली



लोकातीतः कलङ्की विधुशतमुकुटश्रीपटाश्वोरुहस्ते ॥ १५ ॥  
 धूर्तः शौरिः प्रशान्तो विमलमधुरसामोदमानः प्रमत्तो  
 मायामोहप्रणाशोऽसुरमददमनो सर्वसम्मानदाता ।  
 ते नाथ । श्रीपटाश्वोरुहविमलतलेऽहं कथं चाशु वक्ष्ये  
 पूर्वाश्वो वा पराश्वो धनपतिवदनः पश्चिमाश्वो मुनीन्द्रः ॥ १६ ॥  
 भेदे सिद्धान्तविद्याधरविधुकिरणः कारणोऽनन्तशक्तिः  
 यः साक्षात् कामधेनुः स च धनपतिपः सर्वभोगानुरागी ।  
 पाटाश्वोजे हि नित्यं सकलगिरिसुतानाथ । ते योगिपत्वं  
 चित्तं मे चञ्चलाख्यं शशधरकिरणो वाक्पतेर्योगसिन्धो ॥ १७ ॥

कापर्दी श्रीखङ्गाऽसिवरगदया वेदभुजगो  
 धनच्छायां सङ्कोचय मम सदा कायनिचये ।  
 जयी जेता जातेर्जयमनुकरोतु श्रियतमो-  
 ज्वलज्ज्ज्वावातेक्षणधर इह क्रोध इति मे ॥ १८ ॥  
 सदाज्ञाचक्रान्तर्गतविषधरभाच्छन्नजटिलः  
 प्रतिज्ञाभङ्गस्थः कटकशतकोटिप्रकटितः ।  
 कुठारास्त्रः क्रोधी कमठतटवासी कठिनहा  
 ककाराद्यर्णैर्द्वादशकिरणयुक्तोऽवतु सदा ॥ १९ ॥  
 सुधाखण्डं हुत्वा स्तवनपठनेन प्रियकरं  
 पदाश्वोजं चेति प्रचरति सुभाग्यं कुलपतेः ।  
 प्रधाने भूखण्डे जयति यदि मृत्युञ्जयपदं  
 विनोदं भूयोगं पठति सहसा प्रेमतरणः ॥ २० ॥  
 यद्येवं प्रपठेदिदन्तु नियतं कौलावलीसम्मतं  
 संसारे सरहस्यकं भवभयानन्दैकचित्तस्थलम् ।  
 योगीन्द्रावमतित्वमुक्तिफलदं सर्वेश्वरत्वप्रदं  
 चन्द्रादित्यसमागतं परपदाह्लादैकमात्रं लभेत् ॥ २१ ॥  
 ते शशो यदि पादाश्वोरुहमङ्गलवाङ्मकाम् ।

स्तीति वै सर्वदा योगी निर्वाणगुणसिद्धये ॥

किं न सिध्यति भूमध्ये शिवभक्तिप्रसादतः ॥ २२ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।  
 इति श्रीब्रह्मसंहितायां चतुःषष्टितमः पटलः ॥ ६३ ॥

## चतुःषष्टितमः पटलः ।

आनन्दभैरव उवाच ।—

वद कल्याणि ! कामेशि ! त्रैलोक्यपरिपूजिते ! ।

ब्रह्माण्डानन्दनिलये ! कैलासशिखरोज्ज्वले ! ॥ १ ॥

कालिके ! कालरात्रिस्थे ! महाकालनिषेविते ! ।

शब्दब्रह्मस्वरूपे ! त्वं वक्तुमर्हसि सादरात् ॥ २ ॥

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-सारं परममङ्गलम् ।

ज्ञानसिद्धिकरं साक्षात् अत्यन्तानन्दवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

सङ्केतशब्दमोक्षार्थं काकिनैश्वरसंयुतम् ।

परानन्दकरं ब्रह्म निर्वाणपदलालितम् ॥ ४ ॥

स्नेहादतिसुखानन्दादायी श्रोतुं वरानने ! ।

इच्छामि सर्वदा मातर्जगतां सुरसुन्दरि ! ॥

स्नेहानन्दरसोद्रेक-सम्बन्धात् कवचं द्रुतम् ॥ ५ ॥

आनन्दभैरव्युवाच ।—

ईश्वर ! श्रीनौलकरह ! नागमात्यविभूषित ! ।

नागेन्द्रचित्रमालोक्य ! नागाधिप ! परेश्वर ! ॥ ६ ॥

काकिनैश्वरयोगार्थं सहस्रनाममङ्गलम् ।

अष्टोत्तराहताकारं कोटिसौटामनौप्रभम् ॥ ७ ॥

आयुरारोग्यजनन शृणुष्वार्वाहितो मम ।

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-सारं नित्यं परात्परम् ॥ ८ ॥

साधनं ब्रह्मणो ज्ञानं योगिनां योगसाधनम् ।  
 सर्वज्ञ-गुह्यसंस्कार-संस्कारादिफलप्रदम् ॥ ९ ॥  
 वाञ्छासिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ।  
 महादारिद्र्यशमनं महैश्वर्यप्रदायकम् ॥ १० ॥  
 पठेद् यः प्रातरुत्थाय मध्याह्ने वा तथाविधः ।  
 नमस्कृत्य जपेन्नाम ध्यानयोगपरायणः ॥ ११ ॥  
 काकिनीश्वरसंयोगं ध्यानात् ध्यानगुणोदयम् ।  
 आदौ ध्यानं समाचर्य निर्मलोऽमलचेतसाम् ॥ १२ ॥  
 ध्यायेद्देवीं महाकालीं काकिनीं कामरूपिणीम् ।  
 परानन्दरसोन्मत्तां श्यामां कामदुघां पराम् ॥ १३ ॥  
 चतुर्भुजां खड्गचर्म-वरपद्मधरां पराम् ।  
 शत्रुक्षयकरिं रत्नालङ्कारकोटिमण्डिताम् ॥ १४ ॥  
 तरुणानन्दरसिकां पीतवस्त्रां मनोरमां ।  
 केयूरहारललितां ताडङ्कद्वयशोभिताम् ॥ १५ ॥  
 ईश्वरीं कामरत्नाख्यां काकचञ्चुपुटाननाम् ।  
 सुन्दरीं वनमालाढ्यां चारुसिंहासनस्थिताम् ॥  
 हृत्पद्मकर्णिकामध्य-कोटिभौटामनीप्रभाम् ॥ १७ ॥  
 एवं ध्यात्वा पठेन्नाम मङ्गलानि पुनः पुनः ।  
 ईश्वरं कोटिसूर्याभं ध्यायेत् हृत्पद्मण्डले परम् ॥ १८ ॥  
 चतुर्भुजं वीररूपं लावण्यभावमश्ववम् ।  
 श्यामं हिरण्यभूषाङ्गं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ १९ ॥  
 अभयं वरदं पद्म-महाखड्गधरं विभुम् ।  
 किरीटिनं महाकायं स्मितहास्यप्रकाशकम् ॥ २० ॥  
 हृदयास्त्रजमध्यस्थं नूपुरैरुपशोभितम् ।  
 कोटिकालानलोद्दीप्तं काकिनीदक्षिणे स्थितम् ॥ २१ ॥  
 एवं विचिन्त्य मनसा योगिनां परमेश्वरम् ।

ततः पठेत् सहस्राख्यं वदामि तत् शृणु प्रभो ! ॥ २२ ॥

काकिनोश्वरसहस्रनामानि ।—

अस्य श्रीकाकिनीश्वरसहस्रनाम्नः स्तोत्रस्य ब्रह्मचर्य-  
गार्ग्यत्रीच्छन्दो जगदोश्वरकाकिनोदेवता निर्वाणयोगार्थसिद्धयर्थं  
विनियोगः ।

श्रीं श्रीं ईश्वरः काकिनोशा ईशानः कुलेश्वरी ।  
ईशः साक्षी कामधेनुः कपर्दिन्नाकपद्मिनी ॥ २३ ॥  
कौलः कुलीनान्तरगा कविकाव्यप्रकाशिनौ ।  
कलादेशः सुकविता वारणा कल्पामयी ॥ २४ ॥  
कञ्जपत्रक्षणः काली कालः कीलावल्लेश्वरी ।  
किरातरूपी कौवल्या केवलं कमलासना ॥ २५ ॥  
किन्नरेशः सुकेशाक्षी कपिलः कलिप्रस्फुटा ।  
किशोरः कौशरासका कौलवेशः कुलेश्वरी ॥ २६ ॥  
केशकिञ्जल्को जटिलः कामबीजकुतूहला ।  
करकोटिधरः कूटा क्रियाक्रूरः क्रियावती ॥ २७ ॥  
कष्टहा कुष्ठहन्त्री च कटकस्थः कलावती ।  
कम्पवन्नः काममुखी कोटिसूर्य्यवरानना ॥ २८ ॥  
कम्पः कम्पसुबुद्धिस्थः कल्पान्तस्थः कुलाचला ।  
कुलपः कीलपाकाशा सुकान्तः काञ्चिवासिनी ॥ २९ ॥  
सुकृतिः शाङ्करी विद्या कामहा कुलपरिणता ।  
कङ्केशः कमनीयाङ्गी कुशलः कुशलावती ॥ ३० ॥  
केतकीपुष्पमालाढ्यः केतकीकुसुमान्विता ।  
कुसुमानन्तमालाढ्यः कुसुमाऽमलमालिका ॥ ३१ ॥  
कवीन्द्रः काव्यसम्भूतः कालमञ्जोरभञ्जिनौ ।  
कुशासनस्थः कौशिन्याः कुलपः कल्पपादपा ॥ ३२ ॥  
कल्पहृत्तः कल्पलता विकल्पः कल्पगामिनी ।

कठोरस्थः कठिनभा करालः कालवासिनौ ॥ ३३ ॥  
 कालकूटाश्रयानन्दः कर्कशाऽऽकाशवाहिनी ।  
 कटधूमाकृतिच्छाया विकटासनसंस्थिता ॥ ३४ ॥  
 कालधारौ कूपकरो करवोरा भगः कृशा ।  
 कालगन्धोरनादान्तो विकलालापमानुषा ॥ ३५ ॥  
 प्रकृतिस्थः सत्यकृतिः प्रकृष्टः कर्षिणोश्चरौ ।  
 भगवान् वर्णौवर्णा वर्णो वर्णस्वरूपिणौ ॥ ३६ ॥  
 स्वर्णवर्णो हि हेमाभा महामहेन्द्रपूजिता ।  
 महात्मा महतीशानी महेशो मत्तगामिनी ॥ ३७ ॥  
 महावीरो महावेगा महालक्ष्मोश्चरो मतिः ।  
 महादेवो महादेवो महानन्दो महाकला ॥ ३८ ॥  
 महाकालो महाकालौ महाबलो महाबला ।  
 महामान्यो महामान्या महाधन्या महाधनी ॥ ३९ ॥  
 महामालो महामाला महाकाशो महावियत् ।  
 महायज्ञो महायज्ञा महाराजो महेश्वरौ ॥ ४० ॥  
 महाविद्यो महाविद्या महामुख्यो महामुखी ।  
 महारात्रो महारात्रिर्महाधीरो महाशया ॥ ४१ ॥  
 महाक्षेत्रो महाक्षेत्रा कुरुक्षेत्रः कुरुप्रिया ।  
 महाचण्डो महोग्रा च महामत्तो महामतिः ॥ ४२ ॥  
 महावेदो महावेदा महोक्ताहो महोक्तवा ।  
 महत्कल्पो महत्कल्पा महायोगी महामतिः ॥ ४३ ॥  
 महाभद्रो महाभद्रा महासूक्तो महाचला ।  
 महावाक्यो महावाणी महाजल्पा महाज्वरी ॥ ४४ ॥  
 महाभूतिर्महाकान्ती महाधर्मो महाधना ।  
 महामहोग्रो महिषी महाभाग्यो महाप्रभा ॥ ४५ ॥  
 महाक्षेमो महामाया महामायो महारमा ।

महेन्द्रपूजितो माता त्रिभाण्डो मण्डलेश्वरी ॥ ४६ ॥  
महाविकारो विकला प्रतलस्थः स्थलायता ।  
कैवल्यदाता कैवल्या कौतुकस्थो विकल्पिनी ॥ ४७ ॥  
बालार्पतिर्बालपत्नी पत्नी बालो बलाङ्गजा ।  
श्रवणीशः कालवैरा प्राणेशः प्राणरक्षिणी ॥ ४८ ॥  
पञ्चमाचारगः पञ्चा प्रपञ्चः पञ्चमौश्वरी ।  
प्रपञ्चः पञ्चरसना निष्प्रपञ्चः क्षपामयी ॥ ४९ ॥  
कामरूपो कामरूपा कामक्रोधविवर्जिता ।  
कामात्मा कामनिलया कामाख्य कामवञ्चला ॥ ५० ॥  
कामपुष्पधरः कामा कटकस्थः कलावती ।  
कम्बवक्त्रः काममुखी कौटिसूर्यकरानना ॥ ५१ ॥  
कुलपः कौलपाकाशा सुकान्तः काञ्चिवासिनी ।  
सुकृतिः शाङ्गरी विद्या कामहा कुलपण्डिता ॥ ५२ ॥  
कङ्केशः कमनीयाङ्गी कुशलः कुशलावती ।  
केतकीपुष्पमालाढ्यः केतकीशुसुमान्विता ॥ ५३ ॥  
महामुद्राधरो मुद्रा-समुद्रः काममुद्रिका ।  
चन्द्रार्द्धकृतभालाभो विधुकोटिमुखान्बुजा ॥ ५४ ॥  
चन्द्रकोटिप्रभाधारी चन्द्रज्योतिःस्वरूपिणी ।  
सूर्याभः सूर्यकिरणा सूर्यकोटिविभासिता ॥ ५५ ॥  
महेन्द्रेशो मीनवक्त्रा अन्तर्यामौ निराश्रया ।  
प्रजापतीशः श्रीकन्या दक्षेशः कुलरोहिणी ॥ ५६ ॥  
स्वचेतःस्थः स्वचेतःस्था व्यासेशो व्यासपूजिता ।  
काश्यपेशः कान्तपेशी भृगुपो भार्गवेश्वरी ॥ ५७ ॥  
कर्दमेशः कर्दमाद्या बालको बालपूजिता ।  
मनस्थश्चान्तबीजस्था शब्दज्ञानौ सरस्वती ॥ ५८ ॥  
रूपातीतो रूपशून्या विरूपो रूपमोहिनी ।

विद्याधरेशो विद्येशो वृषस्थो वृषवाहना ॥ ५८ ॥  
 रसज्ञो रसिकानन्दा विरसो रसवार्जता ।  
 मौनः सनत्कुमारेणो योगाचार्येश्वरप्रिया ॥ ६० ॥  
 दुर्वासाप्राणनिलयः सांख्ययोगसमुद्भवा ।  
 असंख्यमांसभक्षा च सुमांसाशी मनोरमा ॥ ६१ ॥  
 नरमांसविभोक्ता च नरमांसविनोदिनौ ।  
 रोहिताशो मत्स्यगन्धा मत्स्यमत्ताऽऽसवप्रिया ॥ ६२ ॥  
 आसवाढ्योऽमला देवी निर्मलाऽऽसवसुप्रिया ।  
 विमुक्तो मदिरामत्ता मत्तकुञ्जरगामिनी ॥ ६३ ॥  
 मणिमालाधरो माला महाकेशः प्रसन्नधीः ।  
 जरासृत्सुहरो गौरी गायनस्थोऽजरामरा ॥ ६४ ॥  
 सुवचलोऽतिदुर्द्धर्षा कण्ठस्थहृद्गता सती ।  
 अशोकः शोकरहिता मन्त्रस्थो यतिमन्त्रिणी ॥ ६५ ॥  
 मन्त्रमालाधरानन्दो मन्त्रयन्त्रप्रकाशिनी ।  
 मन्त्रार्थचैतन्यकरो मन्त्रसिद्धिप्रकाशिनी ॥ ६६ ॥  
 मन्त्रज्ञो मन्त्रनिलया मन्त्रार्थो मन्त्रमन्त्रिणी ।  
 सुमन्त्रो मन्त्रजालस्था मन्त्रमालोऽतिसिद्धिटा ॥ ६७ ॥  
 मन्त्रवेत्ता च मन्त्रस्थो मन्त्रिणी मन्त्रिकान्तरा ।  
 बीजस्वरूपो बीजेशो बीजमालाऽतिबौजिका ॥ ६८ ॥  
 बीजात्मा बीजनिलया बीजगो बीजमालिनी ।  
 बीजध्यानो बीजयज्ञा बीजाढ्यो बीजसुन्दरी ॥ ६९ ॥  
 बीजतातो बीजमाता बीजज्ञो बीजमालिनी ।  
 महाबीजधरो बीजा बीजाढ्यो बीजवल्लभा ॥ ७० ॥  
 मेघमालो मेघमाला वनमालो हलायुधा ।  
 कृष्णाजिनधरो रौद्रा रुद्रो रुद्रगणप्रिया ॥ ७१ ॥  
 रौद्रप्रियो रौद्रकर्त्री रुद्रलोकप्रदः प्रभुः ।

विनाशी सर्वनागानां शर्वाणी सर्वसम्पदाम् ॥ ७२ ॥  
 नारदेशः प्रधानेशो रावणेशो रणेश्वरी ।  
 कृष्णेश्वरः केशवेशी कृष्णवर्णाऽतिचञ्चलः ॥ ७३ ॥  
 रामेश्वरो रामवेशी वाणेशो वाणपूजिता ।  
 भवानीशो भवानो च भवेन्द्रो भववल्लभा ॥ ७४ ॥  
 भवानन्दोऽतिसूक्ष्माख्या भवमूर्त्तिर्भवेश्वरी ।  
 भवच्छायो भवानन्दा भवभीतिहरोऽबला ॥ ७५ ॥  
 भाषाज्ञानी भाषमाणा महाजिह्वोऽतिवामना ।  
 लोभापहो लोभकर्त्री प्रलोभा लोभवर्द्धिनौ ॥ ७६ ॥  
 मोहकारी मोहमाता मोहजालोऽमरावती ।  
 मोहमुद्गरदो बीजा मोहमुद्गरधारिणी ॥ ७७ ॥  
 महान्वतो महासुक्ता कामेशः कामिनीश्वरी ।  
 कामलोपकरोऽकामा सत्कामा कामनाशिनी ॥ ७८ ॥  
 बृहन्मुखो बृहन्नेत्रा पद्माभोऽम्बुजलोचना ।  
 घञ्जमालः पद्ममाला श्रौटेवो देवरक्षिणी ॥ ७९ ॥  
 अक्षितोऽप्यसिता चैव साक्षादो नाशमाहका ।  
 नगेश्वरः शैलमाता नगिन्द्रेन्द्रो नगात्मजा ॥ ८० ॥  
 नारायणेश्वरः कीर्त्तिः सत्कीर्त्तिः कीर्त्तिवर्द्धिनौ ।  
 कृत्तिवेशः कार्त्तिकी च कलहा कलहप्रिया ॥ ८१ ॥  
 प्रतिष्ठेशो विशाला च निरालोको निरिन्द्रिया ।  
 प्रेतबीजस्वरूपश्च प्रेतालङ्कारभूषिता ॥ ८२ ॥  
 प्रेमगः प्रेमहन्त्रो च हरीन्द्रो हरलक्षणा ।  
 कालेशः कालिकेशानो कौलिकेशश्च काकिनी ॥ ८३ ॥  
 कलमञ्जीरधारी च कलमञ्जीरमोहिनी ।  
 करालवदना कालो कैवल्यदानदः सदा ॥ ८४ ॥  
 कमलापालकः कुन्ती कैकेयीशसुतः कला ।



कलाननः कुलज्ञा च कुलगामौ कुलाश्रया ॥ ८१ ॥  
 कुलधर्मास्थितः कौला कुलमार्गः कुलान्तरा ।  
 कुलजिह्वः कुलानन्दो कृष्णः कृष्णतनूइवा ॥ ८२ ॥  
 कालाननः कृष्णकेशा काकुत्स्थः काकचञ्चुका ।  
 कालधर्मी कामरूपा कालाकालप्रकाशिनो ॥ ८३ ॥  
 कालजः कालजन्या च कालेशः कालसुन्दरी ।  
 खड्गहस्ता खर्पराख्या खरगः खरखञ्जनी ॥ ८४ ॥  
 खरबुद्धिहरः खेला खञ्जनेशः सुखाञ्जनी ।  
 गीतप्रियो गायनस्था गणाधीशो गुह्यप्रिया ॥ ८५ ॥  
 गर्गप्रियागमप्राप्तिर्गर्गस्थो हि गभीरिणी ।  
 गार्हृदेशो हि गन्धर्व-पतीशो गार्हृवङ्गजा ॥ ८६ ॥  
 गणगन्धर्वगोपालो गणगन्धर्वगोगता ।  
 गभीरनादसम्भेदो गभीरकोटिसागरा ॥ ८७ ॥  
 गतिस्थो गाणपत्यस्थो गगनाद्यो गवां तनुः ।  
 गन्धहारो गन्धमाला गन्धाख्या गन्धनिर्गमा ॥ ८८ ॥  
 गन्धमोहितसर्वाङ्गी गन्धचन्दनमोहिनी ।  
 गन्धपुष्पधूपदीप-नैवेद्याटिप्रपूजितः ॥ ८९ ॥  
 चन्दनागुरुकस्तूरी-कुङ्कुमादिसुमण्डिता ।  
 गोकुला मधुरानन्दा पुष्पगन्धान्तरस्थितः ॥ ९० ॥  
 गन्धमादनसम्भूतः पुष्पमाल्यविभूषिता ।  
 रत्नाद्यशेषालङ्कार-मणिसण्डितविग्रहः ॥ ९१ ॥  
 स्वर्णाद्यशेषालङ्कार-हारमालाविमण्डिता ।  
 करवोकुसुमप्रख्या रक्तलोचनपङ्कजः ॥ ९२ ॥  
 जवाकोटिकोटिशत-चारुलोचनपङ्कजा ।  
 घनकोटिसमानास्य-पङ्कजा लोलविग्रहः ॥ ९३ ॥  
 घण्टाडमक्यन्त्रादि-ध्वानानन्दकराम्बुजा ।

घण्टा-शङ्ख-पद्म-चक्र-वराभय-कराम्बुजा ॥ ८८ ॥  
घातको रिपुकोटीनां कुम्भादीनां तथा सती ।  
घातिनी दैत्यघोरात्त-भयानां नाशिनौ तथा ॥ ८९ ॥  
सर्वशत्रुविनाशाय चतुराननपङ्कजः ।  
चञ्चलानन्दसर्वार्थ-सारवाग्वादिनोश्वरी ॥ १०० ॥  
चन्द्रकोटिसुनिर्मल-मालालम्बितकण्ठभृत् ।  
चन्द्रकोटिसमानास्य-पङ्केरुहमनोहरा ॥ १०१ ॥  
चन्द्रज्योत्स्नायुतप्रख्य-हारभूषितमस्तकः ।  
चन्द्रविम्बसहस्राभा चन्द्रभूषितमस्तका ॥ १०२ ॥  
चारुचन्द्रकान्तमणि-मणिहारयुताङ्गभृत् ।  
चन्दनागुरुकस्तूरी-कुङ्कुमालक्तमालिनी ॥ १०३ ॥  
चण्डमुण्डमहामुण्डायुतनिर्माख्यमाल्यभृत् ।  
चण्डमुण्डमहामुण्ड-निर्माख्यकुलमालिनी ॥ १०४ ॥  
चण्डाट्टहासघोराख्य-वदनाश्रोजचञ्चलः ।  
चलत्खञ्जननेत्राश्रोरुहमोहितशङ्करः ॥ १०५ ॥  
चलदश्रोजनयनानन्दपुष्पकमोहितः ।  
चलदिन्दुभासमान-विग्रहस्त्रेदचन्द्रिका ॥ १०६ ॥  
चन्द्रार्द्धकोटिकिरण-चन्द्रार्द्धचूडमण्डितः ।  
चन्द्रचूडाश्रोजमाला उत्तमाङ्गविमण्डिता ॥ १०७ ॥  
चलदकसहस्राभ-रत्नहारविभूषितः ।  
चलदर्ककोटिशत-सुखाश्रोजभयोञ्ज्वला ॥ १०८ ॥  
चारुरत्नासनाश्रोज-कर्णिकामध्यसंस्थितः ।  
चारुद्वादशपत्रादि-कर्णिकासुप्रकाशिका ॥ १०९ ॥  
चमत्कारघटाङ्गार-वधूर्वालकराम्बुजः ।  
चतुर्थवेदगाथादि-स्तुतिकोटिसुसिद्धिदा ॥ ११० ॥  
चलदम्बुजनेत्रार्क-वक्त्रिचन्द्रत्रयान्वितः ।

चलत्सहस्रदक्षपङ्केरुहादिप्रकाशिका ॥ १११ ॥  
 मनोयोगकरी दुर्गा मनःप्रत्यक्षकेश्वरी ।  
 मनोभवनिहन्ता च मनोभवविवर्द्धिनी ॥ ११२ ॥  
 मनसान्तरौक्षयोगो निराकारगुणोदया ।  
 मनोविकारयोगी च मनोयोगेन्द्रमाक्षिणी ॥ ११३ ॥  
 मनःपूतिर्मनोज्योतिर्मानसेशो मनोगतिः ।  
 नवद्रव्यनिगूढार्थी नरेन्द्रमणिवासिनी ॥ ११४ ॥  
 द्वारदेवीश्वरप्रौतिः प्रलयाम्निकरायणी ।  
 भूषण्डगणतातश्च भूषण्डरुधिरप्रदा ॥ ११५ ॥  
 ककारादीशः सर्वेशो काकपक्षधरोऽजया ।  
 अजितेशा जितानन्दो वीरभद्रो प्रभावती ॥ ११६ ॥  
 अन्वनाड़ीगतप्राणो वैशेषिकगुणोदया ।  
 रत्ननिर्माणभा कोटि-सिंहस्थो रथगामिनी ॥ ११७ ॥  
 कुलकोटीश्वराचार्या वामुदेवनिषेविता ।  
 आधारविरहज्ञानी सर्वाधारस्वरूपिणी ॥ ११८ ॥  
 सर्वज्ञः सर्वविज्ञाना मार्त्तण्डेयेन्दुवन्दिता ।  
 छत्केशो विल्वशैलेशो चारुनेत्रप्रकाशिनी ॥ ११९ ॥  
 अनन्तराजराजेन्द्रो ज्वालान्तासुरनाशिनी ।  
 आशीर्वादरता देवी भक्तानुग्रहकातरा ॥ १२० ॥  
 प्रेतासनसमाप्तीनी मेरुकुञ्जनिवासिनी ।  
 मणिमन्दिरमध्यस्थो मणिपीठनिवासिनी ॥ १२१ ॥  
 सवप्रहरणोपेतो विधिविद्याप्रकाशिनी ।  
 प्रचण्डनयनानन्दो मञ्जीरकनकाञ्जलिः ॥ १२२ ॥  
 कल्मसञ्जीरपाटाजो सर्वत्यागपरायणा ।  
 कुलमान्नाव्यापिताङ्गी कुलेन्द्रकुलपण्डिता ॥ १२३ ॥  
 क्वालिकेशो रुद्रचण्डा बालेन्द्रः प्राणवाहिका ।

कुमारीशः काममाता मन्दिरेशः सुमन्दिरा ॥ १२४ ॥

अकालजननीनाथो विश्वात्मा सुप्रियङ्करो ।

वेदाद्यो वेदजननी वैराग्यस्थो विरागदा ॥ १२५ ॥

स्मितहास्यास्यकमलः स्मितहास्यविमोहिनी ।

मांसप्रधानभोक्ता च प्रधानमांसभक्षिणी ॥ १२६ ॥

मद्यमांसमहासुद्रो रजोरुधिरसुप्रिया ।

सुरामांसमहामीन-सुद्रामैथुनसुप्रिया ॥ १२७ ॥

कुलद्रव्यप्रियानन्दा मद्यादिकुलसिद्धिदा ।

हृत्कण्ठभ्रूसहस्रार-भेटनो भूरिभेदिनी ॥ १२८ ॥

प्रसन्नहृदयान्नाज-प्रसन्नहृदयान्बुजा ।

प्रसन्नवरदानाढ्यः प्रेमानन्दप्रकाशिनो ॥ १२९ ॥

प्रभाकरफलोदारः परमः सूक्ष्मपूरका ।

प्रभाकररश्मिरूपः प्रथमो भानुशोभिता ॥ १३० ॥

प्रचण्डविपुलान्ततः चलितेन्दुप्रभावहः !

प्रभापटलजटिलः प्रभूतधर्मीपूजिता ॥ १३१ ॥

सुरेन्द्रगणपूजितः सुरवरेन्द्रसंपूजिता

नरेन्द्रकुलसेविता नरपतीन्द्रसंसेविता ।

नगेन्द्रगणनायको नगपतीन्द्रदेवात्मजा

भवार्यवगतारको जलधिकर्णधारप्रिया ॥ १३२ ॥

सुरासुरकुलोद्भवः सुररिपुप्रसिद्धिस्थिता

सुरारिगणघातकः सुरगणेन्द्रसंसिद्धिदा ।

बलिच्छलनतत्परः सुरवरादिसिद्धिप्रदा

प्रियद्विजकुलार्थदः सुनधनापवर्गप्रदा ॥ १३३ ॥

शिवश्च शिवकामिनी हरो हरा च भीमः सभा

क्षितीश इषुरक्षका मदनदर्पहन्तादयः ।

गुणेश्वर उमावती हृदयपद्मभेदे गतिः

क्षपाकरललाटधृक् विकटहासविस्फारिता ॥ १३४ ॥  
 श्मशानतटनिष्पटः स्मरकपाटसंछेदकः  
 स्मरानलविमर्दनप्रियवसन्तसहायवी ।  
 विराजितमुखाम्बुजः कमलपञ्चासहासना  
 भवो भवपतिप्रभा भवकविश्व भव्याभवः ॥ १३५ ॥  
 क्रियेश्वर इलावती तरुणगो हि तारावती  
 मुनीन्द्रसुखसिद्धिदः सुरमुनीन्द्रसिद्धिप्रदा ।  
 मुरारिहरदेहगस्त्रिभुवनस्य नाशक्रिया  
 हितः कनककाकिनी कनकशुद्धिरर्थप्रदा ॥ १३६ ॥  
 किलालकमलाकुलः कुलकलार्कमालोऽमला  
 सुभक्तयतिसाधकः प्रतियोगयोग्यार्चिता ।  
 विवेकगतमानसो विभुवरादिहस्तार्चिता  
 त्वमेव कुलनायकः प्रलयकालयोगच्छविः ॥ १३७ ॥  
 प्रचण्डगणगो नगा भुवनदर्पहारी तथा  
 चराचरसहस्रगः प्रकृतरूपशक्तिस्थिता ।  
 स्वनामगुणपूरकः स्वगुणनामसम्पूरणी  
 क्षपाद्रुहृदया सदा निखिललोककल्पद्रुमः ॥ १३८ ॥  
 इति ते कथितं नाथ ! सहस्रनाममङ्गलम् ।  
 अत्यद्भुतं परानन्द-रससिद्धान्तदायकम् ॥ १३९ ॥  
 मातृकामन्त्रधटितं सर्वसिद्धान्तसारकम् ।  
 सिद्धिविद्यामहोत्साहमानन्दगुणसाधनम् ॥ १४० ॥  
 दुर्लभं सर्वलोकेषु यामले तत् प्रकाशितम् ।  
 तव स्नेहरसामोद-मोहितानन्दभैरव ! ॥ १४१ ॥  
 कुत्रापि नापि कथितं सिद्धिदानेसु शङ्कया ।  
 भवादियोगसिद्धान्त-सिद्धये भुक्तिमुक्तये ॥ १४२ ॥  
 प्रेमाह्लादरसेनैव दुर्लभं तत् प्रकाशितम् ।

येन विज्ञानमात्रेण भवेत् श्रीभैरवेश्वरः ॥ १४३ ॥  
 एतन्नाम्नः शुभफलं वक्तुञ्च न समर्थकः ।  
 कोटिवर्षशतेनापि यत् फलं लभते नरः ॥  
 तत् फलं योगिनामेव क्षणान्नभ्यं भवान्तरे ॥ १४४ ॥  
 यः पठेत् प्रातस्तथाय दुष्टग्रहनिवारणम् ॥ १४५ ॥  
 ध्यात्वाऽसुरभयेनापि महाभयनिवारणम् ।  
 ध्यात्वा नाम जपेन्नित्यं मध्याह्ने च विशेषतः ॥ १४६ ॥  
 सन्ध्यायां रात्रियोगे च साधयेन्नामसाधनम् ।  
 योगाभ्यासे ग्रन्थिभेदे योगज्ञाननिरूपणे ॥ १४७ ॥  
 पठनाद् योगसिद्धिः स्याद् ग्रन्थिभेदो दिने दिने ।  
 योगज्ञानप्रसिद्धः स्याद् योगी स्यादेकचित्ततः ॥ १४८ ॥  
 देहस्थदेहवश्याय महामोहप्रशान्तये ।  
 स्तम्भनाथ विशल्यानां प्रत्यहं प्रपठेत् शुचिः ॥ १४९ ॥  
 भक्तिभावेन पाठात्तु सर्वकर्मसु सुखमः ।  
 स्तम्भयेत् परशल्यानि वारैकमात्रपाठतः ॥ १५० ॥  
 वारद्वयप्रपाठेन वशयेद्भुवनत्रयम् ।  
 वारत्रयं पठेद् यस्तु पण्डितोऽपण्डितोऽपि वा ॥ १५१ ॥  
 शान्तिमाप्नोति परमां विद्यां भुवनमोहिनीम् ।  
 प्रतिष्ठाञ्च ततः प्राप्य मोक्षे निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १५२ ॥  
 विद्वेषयेदरीन् शीघ्रं चतुर्वारप्रपाठने ।  
 पञ्चावृत्तिप्रपाठेन शत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात् ॥ १५३ ॥  
 षड्वाहत्या साधकेन्द्रः शत्रूणां नाशको भवेत् ।  
 आकर्षयेत् सुरद्रव्यं सप्तवारं पठेद् यदि ॥ १५४ ॥  
 एवं योगमतं ध्यात्वा यः पठेदतिभक्तितः ।  
 स भवेद् योगिनीनाथो महाकल्पद्रुमोपमः ॥ १५५ ॥  
 ग्रन्थिभेदे समर्थः स्यान्नासत्रयं पठेद् यदि ।

दूरदर्शी महावीरो बलवान् पण्डितेश्वरः ॥ १५६ ॥  
 महाज्ञानी लोकनाथो भवत्येव न संशयः ।  
 मासैकेन समर्थः स्थान्निर्वाणमोक्षसिद्धिभाक् ॥ १५७ ॥  
 प्रपठेद् योगसिद्धयर्थं भावुकः परमप्रियः ।  
 शून्यागारे वित्त्वमूले चितायां शून्यदेशके ॥ १५८ ॥  
 महागर्ते महारण्ये चैकान्तनिर्जनेऽपि वा ।  
 दुर्भिक्षवर्जिते देशे सर्वोपद्रववर्जिते ॥ १५९ ॥  
 श्मशाने प्रान्तरेऽश्वत्य-मूले वटतरुस्थले ।  
 इष्टकामयगेह्ये च हेमकाष्ठादिनिर्मिते ॥ १६० ॥  
 तत्तदानन्दरूपी च महापीठस्थलेऽपि वा ।  
 दृढासनस्थः प्रजपेन्नाममङ्गलमद्भुतम् ॥ १६१ ॥  
 ध्यानधारणशुद्धाङ्गो न्यासपूजापरायणः ।  
 ध्यात्वा स्तौति प्रभाते यो सृष्ट्युजिता भवेन्नरः ॥ १६२ ॥  
 कालकालो भवेद् योगी चामरत्वमवाप्नुयात् ।  
 गुरुदेवमहामन्त्र भक्तो भवति निश्चितम् ॥ १६३ ॥  
 तस्य शरीरे दुःखानि न भवन्ति कदाचन ।  
 दुष्टा ग्रहाः पलायन्ते तं दृष्ट्वा योगिनं वरम् ॥ १६४ ॥  
 यः पठेत् सततं मन्त्री तस्य हस्तोऽष्टसिद्धयः ।  
 तस्य हृत्पद्मनिङ्गस्था देवाः सिध्यन्ति चापराः ॥ १६५ ॥  
 युगकोटिसहस्राणि चिरायुर्योगिराड् भवेत् ।  
 सुकुलीनो निराकारो ब्रह्माविष्णुशिवेषु च ॥  
 स नित्यः कायसिद्धिस्थो जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १६६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे षट्षकमेदप्रश्नांशे  
 भैरवी-भैरवसंवादे ईश्वरशक्तिकाकियष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्रविन्यासी

## पञ्चषष्टितमः पटलः ।

आनन्दभैरव्युवाच ।—

अथ नाथ ! प्रवक्ष्येऽहं काकिनीगुरुदेवयोः ।

मन्त्रोद्धारं स्तवज्ञानं येन सिद्धो भवेद् यतिः ॥ १ ॥

एतत् स्तवनपाठेन सहस्राख्यान्तसन्धिषु ।

राजत्वं लभते सद्योऽथवा योगी च सम्पदि ॥ २ ॥

यथा जनकराजा च विषयी गुरुभक्तिमान् ।

महासिद्धो महाज्ञानी तथा भवति साधकः ॥ ३ ॥

सुरा नागा रुद्रगणाः सर्वे विद्यार्थसेवकाः ।

योगज्ञानी तथा सिद्धाः खेचरा यक्षराक्षसाः ॥ ४ ॥

मृत्युश्च क्रोधवेतालौ तथा चक्रेश्वरादयः ।

एतत् शुभस्तवेन्द्रेण सुत्वा सर्वसुसिद्धिगाः ॥ ५ ॥

काकिनीश्वरस्तवान्तरम् ।—

पूर्णः पूर्णेन्दुदिवाननकमलकटा खोक्तटाद्यापहारी

नारौ धाता विधाता प्रसरति न च तान् योगयोग्यान्महेन्द्रान् ।

योगी भूयान्नरोऽसौ निरवधिवरदानन्दगोप्ता सर्वोरो

मृत्यो मृत्युञ्जयस्य प्रभुरिति भुवने पातु मे गुप्तदेहः ॥ ६ ॥

कामक्रोधापहन्ता जनयति भवतः पाति पृथ्वीव योगौ

मालाधारौ प्रपायात् मम कुलसकलं सर्वदा शङ्करो वै ।

तत्क्रोडे लोकचक्रं तिलतुलतुलनासन्निभं भाति सूक्ष्मं

तत् श्रीनाथाङ्घ्रिपद्मद्वयमघहरणं भावयेदाशु कुञ्जे ॥ ७ ॥

मायामोहे विवेकी सचकितरिपुहृत्कोषविध्वंसकारौ

सर्वाधेशो महेशो निखिलसुखमयो निर्गुणो निर्विकारः ।

लोकातीतोऽहि तौत्रो जय जय करुणानाथ ! दाता तपस्वी

मन्त्रोद्धारार्थगुप्तं समवति नियतं प्राणनाथं तमीडे ॥ ८ ॥



तारान्ते याऽपि गुर्वी निजहृदि कमलेऽन्ते सरस्वत्यथो वा  
 तस्यै नित्यं नमो मे नम इति मनुना मोहितो वाक्पतौशः ।  
 मन्त्रार्थं ह्यौपलाख्यो निजविजयसखा कोटिभिर्वेष्टितो यो  
 बालाकीनन्दवश्यः प्रचयशतमुखः पातु मां दुःखजालात् ॥ ८ ॥  
 कृष्णाकृत्या स्वरूपो कुलविमलशिखाकोटिभिः संयुतो यो  
 मन्त्रश्चैतन्यहर्ता प्रणवमथ शिवां तत् सदान्ते शिवश्च ।  
 ध्यात्वा माहेश्वराय नम इति जपनात् ते महेन्द्राधिपः स्यात्  
 कालीपुत्रः स एव त्वमभयवरदः सेवते यः स सुक्तः ॥ १० ॥  
 हंसः प्राणो विहन्ता त्वमखिलवरदस्त्वं निधानप्रधानः  
 शान्तीशस्त्वं प्रतिष्ठः प्रणमसि च सदा भद्रमाहेश्वराय ।  
 अन्ते उच्चैर्नमोऽन्तं मनुमिह जपति तत्पटे देव ! भृङ्ग  
 आनन्दाब्धौ त्वमेको गुरुरिह चपलश्चापलं माञ्च पाहि ॥ ११ ॥  
 सृष्टिस्थिचन्तकारो त्वमपि च करुणासागरो मुक्तिदाता  
 पूज्यो विद्याधरीणां त्वमसुरविजयः पार्वतौप्राणनाथः ।  
 तारान्तं विन्दुयुक्तं सकलविधुयुतं मन्त्रमेकाक्षरं ते  
 जप्त्वा ध्यात्वा च देवीं त्रिभुवनविजयो योगिराट् भूतले स्यात् ॥ १२ ॥  
 सप्ताणंस्थं सुसिद्धो हरबधुमधुरं चन्द्रविन्दुस्वरूपं  
 जप्त्वा नित्यं विलोमं दुरितमृतिहरं वङ्गि कान्ता तदन्ते ।  
 एतद्रूपं सदा यो भजति मनुवरं सर्वसिद्धोश्वरो वै  
 हे मातः ! सो भवेऽस्मिन् विजयवरकुलानन्दसन्तानयुक्तः ॥ १३ ॥  
 उच्चाटे मोहने वाऽप्यरिवधसमये शान्तिपुष्ट्यादिकाले  
 तन्मन्त्रान् योजयित्वा जपति यदि सुधौः श्रापदाजावलम्बो ।  
 सिद्धो षट्कर्मसारः स भवति भुवने भूतनाथप्रपन्नः  
 राजेन्द्रः सर्वलोके धनपतिसदृशः शशुनाथप्रसादात् ॥ १४ ॥  
 शान्तं शक्ताधिरूढं विधुनयनयुतं कामबोजं त्रिशक्तिं  
 तस्यान्ते श्रीं शिवाय नम इति मिलितं यो जपेन्नाथ ! मन्त्रम् ।

त्वन्नाम्ना योजयित्वा कुलपथनिरतः साधकः किं वरेण्यः  
 किं तस्यासाध्यसिद्धिः प्रजपति सुमुखौ योगमार्गप्रपन्नः ॥ १५ ॥  
 सर्वाभीतो विहारो पदगतिरहितः सर्वगामो विवासो  
 हस्ताभावो विनेता निरवधिवरदः सर्वरूपी विरूपो ।  
 मन्त्रज्ञस्यः सुमन्त्रो सकलमनुमयः संशयेऽसारहन्ता  
 मन्त्रो विश्वेश्वरीणां परपशुपतयेऽन्ते नमः पातु नम्रम् ॥ १६ ॥  
 योगो भोगो विरागो त्वमतुलविभवः सम्भवः पञ्चदूडो  
 वाणेशेषः प्रयासः शशिशकलरुचा शोभिताङ्गो ह्यनङ्गः ।  
 कामो मायारमेशः प्रथमदिनकरश्रेणीशोभाविर्लसः  
 सर्वा सिद्धिं प्रपायादमलकमलगः क्रोधगेयो नृलोकम् ॥ १७ ॥

एतत् श्रीशङ्करस्तोत्रं यः पठेत् नियतः शुचिः ।  
 संवत्सराद्भवेत् सिद्धिः सर्वज्ञानप्रदायिनी ॥ १८ ॥  
 शुचौ वाऽशुचके स्तौति भक्त्या यः साधकोत्तमः ।  
 स सर्वयातनामुक्तो योगी ग्रन्थिविभेदकः ॥ १९ ॥  
 अकस्मात् क्षिप्तिमाप्नोति प्रेमानन्दसुभक्तिदाम् ।  
 शतमष्टोत्तरञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ २० ॥  
 न स्नानं न जपः कार्यो न पूजादिविधानकम् ।  
 केवलं स्तवपाठेनाऽनाहते सुस्थिरो भवेत् ॥ २१ ॥  
 चिरजीवी वीतरोगी वीतसंसारभावनः ।  
 पठित्वा सावयित्वा च योगभ्रष्टो न सम्भवेत् ।  
 अनायासे योगसिद्धिं प्राप्नोति परमां श्रियम् ॥ २२ ॥

इति श्रीब्रह्मसंहिता उच्यते मन्त्रान्तोद्घोषे सिद्धमन्त्रप्रकरणे

षट्षकभेदप्रकाशे भैरवी-भैरवधंवादे ईश्वरस्तीव्रविद्यायां

नाम पञ्चषष्टितमः पटलः ॥ ६५ ॥

## षट्षष्टितमः पटलः ।

श्रीशानन्दभैरव्युवाच ।—

काकिनीश्वरकवचान्तरम् ।—

कवचं शृणु चास्यैव लोकनाथ ! शिवापते ! ।

ईश्वरस्य परं ब्रह्म निर्वाणयोगदायकम् ॥ १ ॥

कवचं दुर्लभं लोके नाथ ! सम्मोहनं परम् ।

कवचध्यानमार्गेण निर्वाणफलभाग् भवेत् ॥ २ ॥

अतुलं फलमाहात्म्यं तथापि तद्ददाम्यहम् ।

केवलं ग्रान्थभेदाय निजदेहानुरक्षणात् ॥ ३ ॥

सर्वेषामपि योगेन्द्रो देवानां योगिनां तथा ।

तारादिसिद्धिलाभाय कामनिर्मलसिद्धये ॥ ४ ॥

प्रकाशितं महाकाल ! तव स्नेहवशादपि ।

सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति सम्मोहकवचाश्रयाः ॥ ५ ॥

कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा ऋन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।

ईश्वरो देवता प्रोक्तो तथा शक्तिश्च काकिनी ॥ ६ ॥

कीलकं ह्रं तथा ज्ञेयं ध्यानसाधनसिद्धये ।

हृदजभेदनार्थं तु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥

एतत्श्रीसम्मोहनकवचस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्द ईश्वरो  
देवता काकिनो शक्तिः ह्रं कीलकं ध्यानसाधनसिद्धये हृदज-  
भेदनार्थं जपे विनियोगः ।

प्रणवो मे पातु शीर्षं ललाटञ्च सदाशिवः ।

प्रसादो हृदयं पातु बाहुयुग्मं महेश्वरः ॥ ८ ॥

पृष्ठं पातु महादेव उदरं कामनाशनः ।

पार्श्वौ पातु कामराजो वलिः पृष्ठतलान्तरम् ॥ ९ ॥

कुक्षितूष्णं महावीरो ललितापतिरीश्वरः ।

मृत्युञ्जयो नीलकण्ठो लिङ्गदेशं सदाऽवतु ॥ १० ॥

लिङ्गाधो मुद्रिकां पातु पादयुग्मसुमापतिः ।  
 अङ्गुष्ठं पातु सततं पार्वतीप्राणवल्लभः ॥ ११ ॥  
 गुल्फं पातु त्र्यम्बकश्च जानुनी युवतीपतिः ।  
 ऊरुमूलं सदा पातु मञ्जुघोषं सनातनः ॥ १२ ॥  
 सीवनीं मे सदा पातु भैरवः क्रोधभैरवः ।  
 लिङ्गदेशोद्गमं पातु लिङ्गरूपी जगत्पतिः ॥ १३ ॥  
 हृदयाग्रं सदा पातु महेशः काकिनीश्वरः ।  
 श्रोत्रं पातु वृषस्थश्च कण्ठदेशं दिगम्बरः ॥ १४ ॥  
 गणेशो लम्बिकां पातु नासिकां भवनाशनः ।  
 भ्रूमध्यं पातु योगीन्द्रो महेशः पातु मस्तकम् ॥ १५ ॥  
 मूर्द्धदेशं मुनोन्द्रश्च द्वादशस्थो महेश्वरः ।  
 द्वादशाश्वोरुहं पातु कामिनीप्राणवल्लभः ॥ १६ ॥  
 नाभिमूलाश्वजं पातु महारुद्रा जगन्नाथः ।  
 स्वाधिष्ठानाश्वजं पातु सदा हरिहरात्मकः ॥ १७ ॥  
 मूलपद्मं सदा पातु ब्रह्मेन्द्रो डाकिनीश्वरः ।  
 कुण्डलीं सर्वदा पातु डाकिनी-योगिनौश्वरः ॥ १८ ॥  
 कुण्डलीं मातृकां पातु वटुकेशः शिवो हरः ।  
 राकिनीविग्रहं पातु वामदेवो महेश्वरः ॥ १९ ॥  
 पञ्चाननः सदा पातु लाकिनीवज्रविग्रहम् ।  
 स्वस्थानं द्वादशारश्च वीरः पातु स्वकाकिनीम् ॥ २० ॥  
 वीरेन्द्रः कर्णिकां पातु द्वादशारं वृषासनः ।  
 षोडशारं सदा पातु क्रोधवीरः सदाशिवः ॥ २१ ॥  
 मां पातु वज्रनाथेशो विभवान् क्रोधभैरवः ।  
 षड्वक्त्रं सर्वदा पातु लाकिनो श्रीसदाशिवः ॥ २२ ॥  
 षोडशाश्वोरुहान्तस्थं पातु धूम्राक्षपालकः ।  
 दिङ्नाथेशो महाकायो मां पातु परमेश्वरः ॥ २३ ॥

आकाशगङ्गाजटिलो विदलं पातु चेश्वरः ।  
 गङ्गाधरः सदा पातु हाकिनीपरमेश्वरः ॥ २४ ॥  
 हाकिनीशः शिरः पातु भ्रूपद्मं परिरक्षतु ।  
 दण्डपाणीश्वरः पातु मनोरूपं द्विपत्रके ॥ २५ ॥  
 साधकेशः सदा पातु मनोन्मन्यादिवासिनम् ।  
 पिङ्गलाक्षः सदा पातु भयभूमौ तनुं मम ॥ २६ ॥  
 लम्बनो मे स्थलं पातु बोधिनीसहितं शिवः ।  
 सुधाघटः सदा पातु ममानन्दाधिदेवताम् ॥ २७ ॥  
 आनन्दभैरवः पातु गूढदेशाधिदेवताम् ।  
 मायामयः सदा पातु सुषुम्नानाडिकाकलाम् ॥ २८ ॥  
 ईडाकलाधरं पातु चन्द्रशेखर ईश्वरः ।  
 पिङ्गलामिहिरं पातु कोटिसूर्यप्रभाकरः ॥ २९ ॥  
 कोटिकालानलस्थानं स्वस्वन्यायं सदाऽवतु ।  
 सुधासमुद्रो मां पातु रत्नकोटिसुनौश्वरः ॥ ३० ॥  
 शिवनाथः सदा पातु कुण्डलीचक्रमेव मे ।  
 त्रिष्णुचक्रं महादेवः कालरात्रः कुलान्वितम् ॥ ३१ ॥  
 मृत्युजिता सदा पातु सहस्रारं सदा मम ।  
 सहस्रदलगं शम्भुं स्वयम्भूः पातु सर्वदा ॥ ३२ ॥  
 सर्वाङ्गं सर्वदा पातु देवः सर्वो हि सर्वदा ।  
 सर्वद्वयं सर्वदा पातु श्रीनीलकण्ठ ईश्वरः ॥ ३३ ॥  
 सर्वबीजस्वरूपो मे बीजमालां सदाऽवतु ।  
 मातृकां सर्वबीजेशो मातृकार्णं शिवो मम ॥ ३४ ॥  
 अहङ्कारः सदा पातु करमालां सदा मम ।  
 जलेऽस्थे महाभीतौ पर्वतं शून्यमण्डपे ॥ ३५ ॥  
 व्याघ्रभक्षकमहिष-पश्वादिभयदूषिते ।  
 महारण्ये घोरयुद्धे गगने भूतले तले ॥ ३६ ॥

अत्युत्कटे शस्त्रघाते शत्रुचौरादिभौतिषु ।  
 महासिंहभये क्रूरे मत्तहस्तिभये तथा ॥ ३७ ॥  
 ग्रहव्याधिमहाभीती सर्पभीती च सर्वदा ।  
 पिशाचभूतवेताल-ब्रह्मदैत्यभयादिषु ॥ ३८ ॥  
 अन्नादेरपवादेषु मिथ्यावादेषु सर्वदा ।  
 करालकालिकानाथः प्रचण्डः प्रखरः परः ॥ ३९ ॥  
 उग्रः कपर्दभीटंष्ट्री कालाच्छन्नकरः कविः ।  
 क्रोधाच्छन्नो मदोन्मत्तो गार्ड्डीयो महास्त्रभृत् ॥ ४० ॥  
 पञ्चाननः पञ्चरश्मिः पावनः पावमानकः ।  
 शिखामात्रो महामुद्रा-धारकः क्रोधभूपतिः ॥ ४१ ॥  
 द्रावकः पूरकः पुष्टः पोषकः पारिभाषिकः ।  
 एते पान्तु महारुद्राः द्वाविंशतिमहाभये ॥ ४२ ॥  
 एते सर्वे शक्तियुताः मुण्डमालाविभूषिताः ।  
 अहङ्कारेश्वराः क्रुद्धा योगिनस्तस्त्वचिन्तकाः ॥ ४३ ॥  
 चतुर्भुजा महावीराः खड्गखेटकधारकाः ।  
 कपालशङ्खमालाढ्या नानारत्नविभूषिताः ॥ ४४ ॥  
 किङ्किणीजालमालाढ्याः सुनूपुरविराजिताः ।  
 नानालङ्कारशोभाढ्याश्चन्द्रचूडाविभूषिताः ॥ ४५ ॥  
 सदानन्दयुताः श्रीदा मोक्षदाः कर्मयोगिनाम् ।  
 सर्वदा भगवान् पातु ईश्वराः पान्तु नित्यशः ॥ ४६ ॥  
 ब्रह्मा पातु मूलपद्मं श्रीविष्णुः पातु षड्दलम् ।  
 रुद्रः पातु दशदलं ईश्वरः पात्वनाहतम् ॥ ४७ ॥  
 सदाशिवः पातु नित्यं षोडशारं सदा मम ।  
 परशु द्विदलं पातु षट्शिवाः पान्तु नित्यशः ॥ ४८ ॥  
 अपराः पान्तु सततं मम देहं कुलेश्वराः !  
 पूर्णं ब्रह्म सदा पातु सर्वाङ्गं सर्वदेवताः ॥ ४९ ॥

कालरूपी सदा पातु मनोरूपी शिवो मम ।  
 आत्मलीनः सदा पातु ललाटं वेदवित् प्रभुः ॥ ५० ॥  
 वाराणसीश्वरः पातु नौलकेशो हरेश्वरः ।  
 कर्णदेशं सदा पातु अमरोऽईश्वरो मम ॥ ५१ ॥  
 महासेनेश्वरस्तुण्डं मम पातु निरन्तरम् ।  
 श्रीकण्ठादिमहारुद्राः स्वाङ्गग्रन्थेषु मातृकाः ॥ ५२ ॥  
 मां पातु कालरुद्रश्च सर्वाङ्गं कालसंचयः ।  
 अकालतारकः पातु उदरं परिपूस्कः ॥ ५३ ॥  
 अगस्त्यादिमुनिश्रेष्ठाः घान्तु योगिन ईश्वराः ।  
 श्रीनाथेश्वर ईशानः घातु मे सूक्ष्मनाडिकाः ॥ ५४ ॥  
 त्रिशूली पातु पूर्वस्यां दक्षिणे मृत्युनाशनः ।  
 पश्चिमे वारुणीमत्तो महाकालः सदाऽवतु ॥ ५५ ॥  
 उत्तरे चावधूतेशो भैरवः कालभैरवः ।  
 ईशाने पातु सर्वेशो वायव्यां योगिवल्लभः ॥ ५६ ॥  
 मरुत्कोणे दैत्यहन्ता पातु मां सततं शिवः ।  
 वङ्गिकोणे सदा पातु कालानलमुखाश्वजः ॥ ५७ ॥  
 ऊर्ध्वं ब्रह्मा सदा पातु अधोऽनन्तः सदाऽवतु ।  
 सर्वदेवः सदा पातु रक्ताङ्गेशस्त्रिलोचनः ॥ ५८ ॥  
 बुधः श्यामसुन्दरेशः पातु मे हृदयस्थलम् ।  
 सुवर्णवर्णी गुर्वीशो मम कण्ठं सदाऽवतु ॥ ५९ ॥  
 सिन्दूरजलदाच्छ्रुन्नादकंशुकेश्वरो गणम् ।  
 नाभिदेशं सदा पातु शशिश्चामेश ईश्वरः ॥ ६० ॥  
 वाहुं पातु महावक्त्रः केवलं मुखमण्डलम् ।  
 केतुः घातु महाकायः सदा मे गुह्यदेशकम् ॥ ६१ ॥  
 इन्द्रादिदेवताः पान्तु परिवारगुणैर्युताः ।  
 शिरोमण्डलदिग्रूपं पान्तु वेकुण्ठवासिनः ॥ ६२ ॥

भैरवा भैरवोयुक्ताः सर्वदेहसमुद्भवाः ।  
 भौमदंष्ट्रा महाकाष्ठां रम पान्तु निरन्तरम् ॥ ६२ ॥  
 यज्ञभुक् नौलकण्ठो मे हृदयं पातु सर्वदा ।  
 क्रोधभूपतयः पान्तु श्रीमाधामदनान्विताः ॥ ६३ ॥  
 रत्येतत् कवचं तारं तारकब्रह्ममङ्गलम् ।  
 अथितं नाथ ! यत्नेन कुत्रापि न प्रकाशितम् ॥ ६५ ॥  
 त्वं स्रेहवशाद्देव ! प्रसन्नहृदयान्वित ! ।  
 क्षपाङ्कुर दयानाथ तच्चैव कवचाद्भुतम् ॥ ६६ ॥  
 हिताय जगतां मोह-विनाशायानृताय च ।  
 ठितव्यं साधकेन्द्रैर्योगिन्द्रैरुपवन्दितम् ॥ ६७ ॥  
 दुर्लभं सर्वलोकेषु सुलभं तत्त्ववेदिभिः ।  
 असाध्यं साधयेद्देव ! पठनात् कवचस्य च ॥ ६८ ॥  
 धारणात् पूजनात् साक्षात् सर्वाभौष्टफलं लभेत् ।  
 काकचक्षुपुटं कृत्वा सप्तधा पञ्चधापि वा ॥ ६९ ॥  
 कवचं प्रपठेद्दिवान् गूढसिद्धिनिबन्धनात् ।  
 काकिनीश्वरसंयोगं स्तोत्रञ्च कवचान्वितम् ॥ ७० ॥  
 ईश्वराङ्गं विभाव्यैव कल्पवृक्षसमो भवेत् ।  
 एतत्कवचपाठेन देवत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ७१ ॥  
 आरोग्यं परमं ज्ञानं मोहनं जगतां वशम् ।  
 स्तम्भयेत् परसेन्यानि पठेद्द्वारत्रयं यदि ॥ ७२ ॥  
 शान्तिमाप्नोति शीघ्रं सः षट्चक्रधारणक्षमः ।  
 एतत्सम्मोहनाख्यस्य कवचस्य प्रपाठतः ॥ ७३ ॥  
 वाणी वश्या स्थिरा लक्ष्मीः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।  
 आरोग्यं लभते पश्चात् निःसङ्को विहरेत् शिवः ॥  
 सदाशिवे मनो याति सिद्धमन्त्रो न संशयः ॥ ७४ ॥  
 चतुर्वर्गं लभेत् सद्यो ब्रह्मज्ञानी सदाशिवः ।



सर्वभूतसमः शान्तः परममन्त्रचिन्तयः ॥

भवेत् लोके न सन्देहो मामन्तः प्रसादतः ॥ ७५ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने सिद्धमन्त्रप्रकरणे

षट्षकमेदप्रकाशे भैरव-भैरवीसंवादे सम्प्रोहनकवचं नाम

षट्षष्टितमः पटलः ॥ ६६ ॥

